ग्रंथ

प्रकाशक : नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी
मुद्रक : शंभुनाथ वाजपेयी, नागरी मुद्रण, वाराणसी
संवत् : २ १६, तृतीय संस्करण, प्रतियाँ ११
मूल्य : ८

निवेदन

जयपुर राज्य के अंतर्गत इसोतिया ग्राम के रहनेवाले बारहट नरसिंहदासजी के पुत्र बारहट बालाबख्शजी की बहुत दिनों से इच्छा थी कि राजपूतों और चारणों की रची हुई ऐतिहासिक और (डिंगल तथा पिंगल) कविता की पुस्तकें प्रकाशित की जायें जिससे हिंदीसाहित्य के भांडार की पूर्ति हो और ये ग्रंथ सदा के लिए रक्षित हो जायँ। इस इच्छा से प्रेरित होकर उन्होंने नवम्बर सन् १९२२ में ५) काशी नागरीप्रचारिणी सभा को दिए और सन् १९२१ में २) और दिए। इन ७) से ३॥) वार्षिक सूद के १२) के अंकित मूल्य के गवर्मेंट प्रामिसरी नोट खरीद लिए गए हैं। इनकी वार्षिक आय ४२) होगी। बारहट बालाबख्शजी ने यह निश्चय किया है कि इस आय से तथा साधारण व्यय के अनंतर पुस्तकों की बिक्री से जो आय हो अथवा जो कुछ सहायतार्थ और कहीं से मिले उसमें 'बालाबख्श राजपूत चारण पुस्तकमाला' नाम की एक ग्रंथावली प्रकाशित की जाय जिसमें पहले राजपूतों और चारणों के रचित प्राचीन ऐतिहासिक तथा काव्यग्रंथ प्रकाशित किए जायँ और उनके छप जाने अथवा अभाव में किसी जातीय संप्रदाय के किसी व्यक्ति के लिखे ऐसे प्राचीन ऐतिहासिक ग्रंथ, ख्याति आदि छापे जायँ जिनका संबंध राजपूतों अथवा चारणों से हो। बारहट बालाबख्शजी का दानपत्र काशी नागरीप्रचारिणी सभा के तीसवें वार्षिक विवरण में अविकल प्रकाशित कर दिया गया है। उसकी धाराओं के अनुकूल काशी नागरीप्रचारिणी सभा इस पुस्तकमाला को प्रकाशित करती है।

विषयसूची

भूमिका

महाकवि महाराज पृथ्वीराज राठोड़ की 'क्रिसन-रुकमणीरी वेलि' नामक ग्रंथ का संपादन करते समय हस्तलिखित पुस्तकों की खोज के सिलसिले में हमें राजस्थान के इस सुप्रसिद्ध प्राचीन ढोला मारूरा दूहा नामक काव्य की अनेक प्रतियाँ देखने को मिलीं। तभी हमारा विचार हुआ कि इस सुंदर काव्य को सुंदर रूप से संपादित करके हिंदी जनता के सामने रखा जाय। यह आज से कोई पाँच छः बरस पहले की बात है।

वेलि का कार्य समाप्त होते ही हमने तुरंत इस कार्य को हाथ में लिया और प्रायः लगभग पाँच बरसों के परिश्रम के बाद हम इसे पाठकों की सेवा में उपस्थित कर सके हैं।

ढोला मारूरा दूहा काव्य की हस्तलिखित प्रतियाँ राजस्थान के पुस्तक भंडारों में बहुतायत से मिलती हैं। परंतु उनमें से अधिकांश दूहा-चौपाइयों में हैं। असली काव्य आरंभ में समग्र सब दूहों में ही लिखा गया पर आगे चलकर बहुत से दूहे लोग भूल गए, केवल बीच बीच के कुछ दूहे बच रहे जिनका कथासूत्र बिलकुल छिन्नभिन्न था। इस कथासूत्र को मिलाने के लिये जैन कवि कुशललाभ ने संवत् १६१८ के लगभग चौपाइयाँ बनाईं और उनको दूहों के बीच में रखकर कथासूत्र ठीक कर दिया। आजकल अधिकांश प्रतियाँ इसी कुशललाभ की रचना की ही प्राप्त होती हैं। केवल दूहों के मूलरूप की प्रतियाँ कहीं भूले भटके ही मिलती हैं। इस प्राचीन मूलरूप की पाँच प्रतियाँ हमें बीकानेर राज्य में प्राप्त हुईं। दोनों रूपों की कोई १७ प्रतियाँ एकत्र करके हमने अपना संपादन कार्य आरंभ किया। इन प्रतियों की खोज में हमें जोधपुर, जयपुर, नागोर और बीकानेर राज्य के चूरू, सरदार शहर आदि भिन्न भिन्न स्थानों की यात्राएँ करनी पड़ीं।

ढोला मारूरा दूहा एक प्राचीन जनप्रिय लोक गीत था। राजस्थान में इसका बहुत प्रचार था। यहाँ तक कि इसके नायक नायिका ढोला और मारवणी के नाम साहित्य और बोलचाल में नायक नायिका के अर्थ में रूढ़ हो गए हैं। सिंध गुजरात, मध्यभारत और मध्यप्रदेश के कतिपय भागों में इसकी कथा अभी अनेक भिन्न भिन्न रूपों में प्रचलित मिलती है। राजस्थान

में वह इस समय भी ढोली, ढाढी आदि गाने का पेशा करनेवाली जातियों के मुँह से नाना विकृत रूपों में सुना जाता है। वे रूप यहाँ तक विकृत हो गए हैं कि लोग इसका नाम सुनकर नाक भौं सिकोड़ने लगते हैं। जब हमने श्री गौरीशंकर हीराचंदजी ओझा से इसका सर्वप्रथम जिक्र किया तो वे चौंके और कहने लगे कि क्यों इसके पीछे समय नष्ट करते हैं। ग्रंथ की प्रत्या प्राप्त होने और वास्तविक बात मालूम होने पर उनका परितोष हुआ।

संपादन का कार्य हमने जितना समझा था उतना सहज न निकला। किसी प्रति में चार सौ तथा चार सौ से अधिक दूहे नहीं थे पर उनमें भिन्नता बहुत अधिक थी। समस्त प्रतियों के दूहों की कुल संख्या बढ़ दो हजार से कम न निकली। हमने प्राचीन प्रतियों के आधार पर ६७४ दूहे चुन लिए और उन्हीं को मूलपाठ म संमिलित किया। इनमें भी कुछ दूहे ऐसे हैं जो प्राचीन नहीं ज्ञात होते पर काव्यसौंदर्य की दृष्टि से स्वीकृत किए गए हैं। ऐसे दूहों को [ ] इस प्रकार के कोष्ठकों के भीतर रखा गया है। अन्यान्य दूहों को, तथा इस संबंध में प्राप्त समस्त सामग्री को, हमने परिशिष्ट में दे दिया है जिससे पाठकों को सब कुछ एकत्र ही प्राप्त हो जाय।

पाठांतर तैयार करने के काम में बहुत अधिक समय लगा। प्रत्येक दूहे में अनेक पाठांतर मिले। इस विषय में पर्याप्त सावधानी रखी गई है पर फिर भी कुछ प्रतियों के पाठांतर दृष्टिदोष से या प्रतिलिपि उतारते समय, छूट गए हों तो कोई आश्चर्य नहीं। इस काम ने इतना समय लिया कि अंत में हमने कई एक प्रतियों के, जो विशेष महत्त्व की नहीं थीं, केवल महत्त्वपूर्ण पाठांतर ही लिए। (च) प्रति हमें बहुत बाद में मिली अतएव उसके भी पूरे पाठांतर हम नहीं दे सके।

इस ग्रंथ को तैयार करने में हमें अनेक दिशाओं से अनेक प्रकार की सहायता मिली और यहाँ पर हम अपने समस्त सहायकों के प्रति सधन्यवाद हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं। राजपूत इतिहास के विश्वविश्रुत विद्वान् परम श्रद्धेय महामहोपाध्याय रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंदजी ओझा, हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान् और काशी के हिंदू विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के प्रधान रायबहादुर श्यामसुंदरदासजी बी ए , राजस्थानी साहित्य के विद्वान् जयपुर निवासी पुरोहित हरिनारायणजी बी ए , विद्याभूषण, और राजस्थान के स्वनामधन्य उदारमना सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला ने हमें प्रत्येक प्रकार से

उत्साहित किया। श्रीओझाजी ने बहुत कष्ट उठाकर संपूर्ण ग्रंथ को सुना और हमें कई उपयोगी और आवश्यक सूचनाएँ देकर अनुगृहीत किया। अपना अमूल्य समय देकर उन्होंने इतिहास-संबंधी बातों का विस्तृत स्पष्टीकरण लिखकर भेजा और मूल की अनेक कठिनाइयों को सुलझाने में हमारी सहायता की। पूर्वपरिचय न होने पर भी इस प्रकार अत्यंत प्रेमपूर्वक उन्होंने जो सहायता दी उसके लिये हम नहीं जानते कि किन शब्दों में उनका धन्यवाद करें। बाबू श्यामसुन्दरदासजी ने अन्यान्य सहायताओं के साथ इस ग्रंथ के कुछ अंश के प्रूफ देखने का भी कष्ट उठाया। सेठ घनश्यामदासजी ने हमें सब प्रकार से प्रोत्साहित करने के साथ-साथ इस ग्रंथ में दिए गए तीन चित्रों का प्रकाशन व्यय अपने ऊपर उठा लिया। इसके अतिरिक्त बिड़ला परिवार ने ग्रंथ की दो सौ प्रतियाँ लेने का पहले ही वचन देकर इसके मुद्रण और प्रकाशन में बड़ी भारी सहायता की। हिंदी के प्रसिद्ध कवि श्रीयुत मैथिलीशरणजी गुप्त और राय कृष्णदासजी से भी हमें इस विषय में बहुत कुछ प्रोत्साहन मिला।

जोधपुर के सरदार म्यूज़ियम के सुपरिंटेंडेंट, इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् श्री विश्वेश्वरनाथ रेउ तथा पं॰ रामकर्ण आसोपा ने इस ग्रंथ की अनेक प्राचीन प्रतियाँ प्राप्त करने में हमारी अमूल्य सहायता की। उनकी सहायता के बिना हमारा कार्य इतना सफलतापूर्वक सिद्ध न होता। बीकानेर के राँगड़ी-स्थित जैनों के बड़े उपासरे के श्रीपूज्यजी तथा अन्य प्रबंधकों ने वहाँ के पुस्तक-भंडार से कई प्रतियाँ उदारतापूर्वक हमें प्रदान कीं। श्रीयुत रामनरेशजी त्रिपाठी ने भी गुजराती की इस ग्रंथ की एकमात्र छपी पुस्तक हमें भेजने की कृपा की।

ग्रंथ में जो तीन प्राचीन चित्र दिए गए हैं। वे जोधपुर के सरदार म्यूज़ियम में सुरक्षित चित्रमाला से लिए गए हैं। उन्हें ग्रंथ में देने की अनुमति प्रदान करने के लिये हम जोधपुर राज्य और उक्त म्यूज़ियम के प्रधान पदाधिकारी श्री विश्वेश्वरनाथजी रेउ के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

काशी की नागरी प्रचारिणी सभा इस वृहत् ग्रंथ के प्रकाशन का भार यदि अपने ऊपर न ले लेती तो इस रूप में इसका प्रकाशित होना असंभव सा था। अतः इसके लिये सभा के प्राण बाबू श्यामसुंदरदासजी, तथा (बाबू

भूतपूर्व) प्रधानमंत्री राव कृष्णदासजी एवं सभा का प्रबंधमंडल, विशेष रूप से धन्यवाद के पात्र हैं।

अंत में हम अपने सुहृद्वर अजमेर-निवासी श्रीयुत लेफ्टिनेंट महेशचंद्र शर्मा एम ए , एल-एल बी और जोधपुर के जसवंत कालेज के भूतपूर्व प्रोफेसर श्रीयुत् केदारनाथ तिवारी एम ए एल-एल बी को धन्यवाद देना सबसे आवश्यक समझते हैं जिन्होंने बड़े प्रेम और निस्स्वार्थ भाव से एक नहीं अनेक प्रकार से हमारी सहायता की।

रामसिंह
सूर्यकरण
नरोत्तम दास

प्रवचन

(१)

'ढोला मारूरा दूहा' राजस्थानी भाषा का एक प्रसिद्ध काव्य है। इस काव्य के दो रूप पाए जाते हैं—पहला केवल दोहों में है जो प्राचीन है और दूसरा दोहे और चौपाइयों में है। संवत् १६ के लगभग जेसलमेर में कुशललाभ नाम के एक जैन कवि थे। उनके समय में 'ढोला मारू काव्य' प्रसिद्ध था परंतु संभवतः वह अपने संपूर्ण रूप में नहीं मिलता था। जितना कुछ मिल सका उतना उन्होंने एकत्र किया और कथासूत्र मिलाने के लिये उसमें अपनी ओर से चौपाइयाँ बनाकर जोड़ दीं। इन चौपाइयों के अंत में उन्होंने लिखा है कि 'दूहा घणा पुराणा अछै'—अर्थात् दोहे बहुत पुराने हैं अनुमानतः 'घणा पुराणा' का अर्थ सौ वर्ष पुराना तो होगा ही। इस अनुमान पर असली काव्य का समय सं० १५ ० विक्रमी के लगभग होगा। इसकी भाषा को देखने से भी प्रायः इसी अनुमान की पुष्टि होती है। अतः यह काव्य लगभग ५ वर्ष पुराना तो अवश्य है। इसके संपादकों ने परिश्रमपूर्वक इस काव्य के प्राचीन रूप—अर्थात् केवल दोहोंवाले रूप—का पता लगाकर उसका सुचारु रूप से संपादन किया है। दोहे चौपाइयोंवाला रूप तो हस्तलिखित प्रतियों में भी बहुत मिलता है परंतु केवल दोहोंवाला प्राचीन रूप अभी तक अप्राप्य सा ही था।

यह काव्य भाषा एवं भाव दोनों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है। इसकी भाषा कृत्रिम डिंगळ (राजस्थानी) नहीं है जो साहित्य में प्रसिद्ध है। यह तत्कालीन बोलचाल की राजस्थानी भाषा में लिखा गया है। भाषा के इतिहास के अध्ययन के लिये यह काव्य उपयोगी सिद्ध होगा। कविता की दृष्टि से भी यह काव्य महत्त्वपूर्ण है। यह एक विचित्र (रोमैंटिक) प्रेम गाथा है और इसमें मानवहृदय के कोमल मनोभावों एवं बाह्य प्रकृति के मनोहर चित्र अंकित किए गए हैं।

काव्य का नायक ऐतिहासिक व्यक्ति है परंतु घटनाओं एवं वर्णनों में कल्पना का बहुत बड़ा पुट है जो ऐसी रचनाओं में प्रायः स्वाभाविक है। काव्य का मूल रूप तो प्राचीन है परन्तु बाद में समय समय पर इसमें नए

होते भी मिलावट करते रहे हैं। संपादकों ने प्रायः १६–१७ हस्तलिखित प्रतियाँ एकत्र कर इसका संपादन किया है और सं० १६६७ की लिखी एक प्रति तथा सं० १८०२ के लगभग की लिखी दूसरी प्रति संपादन के आधारस्वरूप ग्रहण की है। नई मिलावट विशेषकर इस समय के बाद ही हुई है। इससे पूर्व जो मिलावट हुई है वह नगण्य है, फिर भी संपादकों ने सावधानी से काम लिया है।

इन्हीं संपादकों ने राजस्थानी भाषा के एक अन्य सुप्रसिद्ध काव्य पृथ्वीराज कृत 'क्रिसन रुकमिणीरी वेलि' का उत्तम संपादन किया है जो प्रयाग की हिन्दुस्तानी एकेडेमी से प्रकाशित हो रहा है। यह इनका दूसरा प्रयत्न है। इस ग्रंथ के साथ भी वेलि की अति विस्तृत भूमिका अर्थ, पाठांतर, शब्द कोष एवं विस्तृत टिप्पणियाँ रहेंगी। ग्रंथ प्रकाशित होने पर राजस्थानी एवं हिंदी साहित्य के लिये उपयोगी होगा, इसमें संदेह नहीं। इसका प्रकाशन किसी भी प्रकाशन संस्था के लिये गौरव की बात होगी। मैं इस काव्य को शीघ्र ही प्रकाशित रूप में देखना चाहता हूँ।

गौरीशंकर हीराचंद ओझा
ता० १२—७—३१

---

(२)

ढोला मारूरा दूहा नामक राजस्थानी भाषा के इस काव्य का प्रवचन लिखते हुए मुझे बड़ा हर्ष होता है। राजस्थानी भाषा का प्राचीन साहित्य भंडार बहुत विस्तृत है जिसमें अनेक अमूल्य रत्न भरे पड़े हैं। परंतु अभी तक वे अज्ञान के अंधकारपूर्ण गहरे गर्तों में ही छिपे हैं उनको प्रकाश में लाने के लिये कोई प्रयत्न नहीं हुआ। राजस्थान के विद्वानों और धनकुबेरों के लिये यह कोई गौरव की बात नहीं है।

यह ढोला मारू काव्य भी राजस्थानी साहित्य का एक श्रेष्ठ रत्न है। इसकी मनोमुग्धकारिणी कहानी का संबंध आँबेर के राजधानी तथा वीर कछवाहा राजवंश से लोक में प्रकट है। ढूँढाहड़ देश की कहानियों तथा

यहाँ के साहित्य में राजकुमार ढोला और रूपराशि राजकुमारी मारवणी की सुंदर कहानी का स्थान बहुत ऊँचा है। उसका प्रचार यहाँ तक है कि बाजार में पोथी बेचनेवालों के पास भी ढोला मारू की बात अथवा ढोला मारू का ख्याल नाम की छोटी-छोटी पुस्तकें हम देखते हैं। यह मोहिनी कथा कितने ही बालकों को पालने में झुलाने और उनके कमलनयनों में सर्वेंद्रिय-सुखकारिणी सुखनिद्रिया को बुलाने में जादू का सा कार्य करती रही है। मैं अपनी ही कहूँ कि न जाने कितनी रातों में अपनी पूज्य माताजी तथा अपने मित्र कहानी कहनेवाले ब्राह्मण गंगाबक्स से राजरानी की इस सुमधुर कहानी को चाव के साथ सुनकर मैंने इसका पीयूष पान किया है और इसके कई अंश तो अभी तक मेरे स्मृतिपथ पर अंकित हैं। चारणों और भाटों ने इस कहानी को नाना रूप देने में अपनी बुद्धि और चतुराई का खूब उपयोग किया है और इसके कथानकों एवं वृत्तांतों को चित्रांकित करने में अगणित चित्रकारों ने अपने कौशल का प्रदर्शन किया है। इसको यदि राजस्थान के सर्वोत्तम प्राचीन काव्यों में से एक कहा जाय तो कोई असंगति नहीं।

इतिहास की कसौटी पर कसे जाने से इसकी कांति में कुछ भी न्यूनता नहीं आने की। वास्तविक वृत्त एवं तिथि आदि के भेद से इसके अमरत्व और गौरव को कोई बाधा नहीं पहुँच सकती। अवश्य ही ढूँढाड़ राज्य के मूल संस्थापक के साथ इस कहानी का उतना संबंध नहीं। सोढ़देवजी के पुत्र दूलहरायजी अपने पिता की गद्दी पर वि माघ सुदी ७ संवत् १ ६१ को विराजे थे और उनका स्वर्गवास खोह स्थान में वि मार्गशीर्ष सुदी १ सं १ ९१ को हुआ था जब वे ग्वालियर पर आक्रमण करनेवाले दक्षिण के राजाओं को पराजित कर लौट रहे थे। महामति टाड साहब ने भाटों से जिस रूप में इस कहानी को सुना उसी रूप में लिख दिया। इतने पर भी यह कहानी अपनी उत्तमता के कारण राजस्थानी साहित्य भंडार में एक निराला महत्व रखती है और कृतविद्य अथच कार्यकुशल और परिश्रमी

---

१ संपादकों की सम्मति में ढोला और दूलहराय एक ही व्यक्ति नहीं जैसा कि टाड ने लिखा है। परंतु, जैसी कि श्री ओझाजी की सम्मति है दूलहराय का समय ग्यारहवीं शताब्दी न होकर तेरहवीं शताब्दी है तथा ढोला दूलहराय का पूर्वज था और दसवीं शताब्दी के लगभग हुआ है।—संपादक।

संपादकद्वय के हाथों में पड़कर इसे वह सुंदर रूप मिला है कि जिससे इसकी शोभा में द्विगुणित श्रीवृद्धि हुई है।

राजस्थान के पुस्तक भंडारों में अभी बहुसंख्यक अमूल्य ग्रंथरत्न पड़े हैं जो कीड़ों के आहार बने जा रहे हैं। उनका प्रकाशित होना नितांत आवश्यक है जिससे उनका योगक्षेम हो सके। इस ग्रंथरत्न को इस सुसंपादित रूप में प्रकाशित करने के लिये विद्वान् संपादक तथा नागरीप्रचारिणी सभा के प्रबंधक हार्दिक अभिनंदन के पात्र हैं।

जयपुर
ता २-१-११

पुरोहित हरिनारायण शर्मा
(बी ए, विद्याभूषण)

---

(२)

राजपूताना अपने पराक्रमी वीरों और साहसिक एवं कुशल व्यापारियों के लिये वैसे तो काफी प्रसिद्ध है किंतु बहु कम लोग जानते हैं कि राजपूताने ने कविता और कला की भी काफी सेवा की है। राजपूत सभ्यता भी एक निराली चीज है यहां तक कि आज भी अन्य प्रांतीय नरेश राजपूत सभ्यता का अनुकरण करने में अपना गौरव समझते हैं। चित्रकला में राजपूताने का स्थान किसी समय बहुत ऊँचा था और राजपूत नरेशों के दरबारी कवियों ने कविता में काफी नाम कमाया था। इस समय राजपूत चित्रकला तो अजायबघरों या कतिपय शौकीनी के संग्रहों तक ही परिसीमित है, किंतु राजस्थानी कविता का तो इससे भी बुरा हाल है। संतोष इतना ही है कि पुरानी *पूँजी नष्ट नहीं हुई है। राजपूताने के पुस्तकालयों एवं भाट-चारणों के कंठों में,* वह कला आज भी मौजूद है। बात यह है कि कला मर नहीं गई है किंतु है सही; मगर नींद में है। इसे जगा देना राजस्थानी सपूतों का काम है ठाकुर रामसिंहजी पंडित सूर्यकरणजी पारीक और पंडित नरोत्तमदासजी स्वामी ने इस सोती हुई कला को जगाने का बीड़ा उठाया है। किसन रुकमिणीरी वेलि का उद्धार तो हो चुका; *राजस्थान का एक अमूल्य रत्न तो* संसार के सामने आ गया। 'ढोला मारूरा दूहा' के उद्धार का यह प्रयत्न *इनका द्वितीय प्रयास है। पाठकों को इसमें पर्याप्त रस मिलेगा। मारवाड़ी* जिन को चाहे इसमें विशेष नवीनता भले ही प्रतीत न हो किंतु मीठी चीज

बराबर खाने पर भी मीठी ही लगती है। इस न्याय से मरुवन इसके रसपान से अघा जायँगे, ऐसा भय नहीं है। यदि यह कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी कि यह पहली पुस्तक होगी जिसमें राजस्थान की आत्मा का हूबहू चित्र पाया जाता है।

इसका जो प्रसंग मुझे सबसे अधिक पसंद आया और जिसकी ओर मैं पाठकों का ध्यान आकर्षित करूँगा वह है इसमें किया हुआ मरुभूमि का वर्णन। यह कितना स्वाभाविक एवं कितना सच्चा है! पाँच सौ साल पहले का किया हुआ वर्णन ऐसा मालूम होता है मानो आज का ही हो।

माळवणी (मालवे की) और मारवणी (मारवाड़ की) दोनों ढोला की स्त्रियाँ थीं। दोनों एक दूसरे के प्रति की विनोद में निंदा करती हैं। मालवणी कहती है—

> बाबा, म देइस मारुवाँ सूधा एवाळाँह।
> कंधि कुहाडउ, सिरि घडउ वासउ मींझि वणाँह ॥६५८॥
>
> बाबा म देइस मारुवाँ वर कूँआरि रहेसि।
> हाथि कचोळउ सिरि घडउ सींचंती य मरेसि ॥६५९॥
>
> मारू, थाँकइ देसडइ एक न भाजइ रिड्ड।
> ऊचाळउ, क अबरसणउ कइ फाकउ कइ तिड्ड ॥६६ ॥
>
> जिण भुइ पन्नग पीयणा कयर कंटाळा रूँख।
> आके फोगे छाँहडी हूँछाँ भाँजइ भूख ॥६६१॥

अनुवाद—हे बाबा मुझे मारवाड़ियों के यहाँ मत ब्याहना जो सीधे सादे पशु चरानेवाले होते हैं। वहाँ कंधे पर कुल्हाड़ा और सिर पर घड़ा रखना होगा और जंगल में वास करना होगा।

हे बाबा मुझे मारवाड़ियों के यहाँ मत देना, चाहे मैं कुँआरी ही रह जाऊँ। वहाँ दिन भर हाथ में कटोरा और सिर पर घड़ा—इस प्रकार पानी भरती भरती ही मर जाऊँगी।

हे मारवणी तुम्हारे मारवाड़ देश में एक भी कष्ट दूर नहीं होता या तो ऊचाळा (अकाल में परदेश गमन) या अवर्षण या फाका या टिड्डियाँ, कोई न कोई उपद्रव अवश्य रहता है।

मारवाड़ की भूमि में पीनेवाले (पीयणे) साँप रहते हैं, कैर (करील) और ऊँटकटारा (एक झाड़ विशेष) ही पेड़ों की गिनती में आते हैं, आक

और फोग की ही छाया मिलती है और भुरट घास के दानों से पेट भरना पड़ता है।

मारवणी चुपचाप सुन लेती है, किंतु मालवणी फिर ताना मारती है—

> पहिरण ओढ्ण कंबळ साठे पुरिसे नीर।
> आपण लोक उभाँखरा गाडर छाळी खीर ॥६६२॥
> बाळउँ बाबा देसड़उ पाँणी जिहाँ कुवाँह।
> आधीरात कुहक्कड़ा ज्यउँ माणसाँ मुवाँह ॥६६३॥

अनुवाद—जहाँ पहनने और ओढ़ने को मोटे ऊनी कंबल ही मिलते हैं जहाँ पानी साठ पुरुष गहरा होता है लोग भी जहाँ एक जगह नहीं टिकते और जहाँ बकरी और भेड़ का दूध मिलता है ऐसा तुम्हारा मारवाड़ देश है।

हे बाबा ऐसे देश को जला दूँ जहाँ पानी केवल गहरे कुँओं में ही मिलता है, जहाँ कुँओं पर पानी निकालनेवाले आधीरात को ही पुकारने लगते हैं, जैसे मनुष्यों के मरने पर पुकार करते हैं।

अबकी बार मारवणी मुखी-जबुखी फटकार बताती है और कहती है—

> बाळूँ, बाबा देसड़उ, जहाँ पाँणी सेवार।
> ना पणिहारी झूलरउ, ना कूवइ लैकार ॥६६४॥
> सुख बीसारण मनहरण जउ ईं नाद न हुंति।
> हियड़उ रतन तळाव ज्यउँ फूटी दह दिसि जंती ॥६६५॥

अनुवाद—बाबा उस देश को जला दूँ जहाँ पानी पर सेवार छाई रहती है जहाँ न तो पनिहारिनों का झुंड आता-जाता रहता है और न कुँओं पर पानी निकालनेवालों का लयपूर्ण शब्द ही सुनाई देता है।

दुःख को बिसराने करानेवाला और मन को हरनेवाला यदि वह संगीत न होता तो हृदय रत्न-सरोवर की तरह फूटकर दसों दिशाओं में बह जाता।

सच है कुएँ पर मालियों के 'बारे' की ध्वनि को अन्य प्रांत के लोग चाहे पसंद न करें और 'आधीरात कुहक्कड़ा' को 'ज्यउँ माणसाँ मुवाँह' की उपमा देते रहें परंतु मारवाड़ी चित्त पर तो वह आज भी 'सुख बीसारण मनहरण' नाद है।

कौन ऐसा मारवाड़ी है जो मस्त होकर नीचे लिखे दोहे न गाता हो—

> बाजरियाँ हरियाळियाँ बिचि बिचि बेलाँ फूल।
> जउ भरि बूठउ भादवउ मारू देस अमूल ॥६५॥

देस सुहावउ, जळ सजळ, मीठा-बोला लोइ।
मारू-कामिण मुंई दखिण, जइ हरि दियइ त होइ ॥४८५॥

धर मूरा, वन संखरा, नहीं सु चंपउ वाइ।
गुणे सुगंधी मारवी, महकी सहु वणराइ ॥४८६॥

अनुवाद—वाडियाँ हरी हो गई हैं और बीच बीच में बेलें फूल रही हैं। यदि भादों भर बरसता रहा तो मारू देश अमूल्य (निराली शोभावाला) होगा।

मरुस्थल बड़ा सुहावना देश है, जहाँ का जल स्वास्थ्यप्रद है और लोग मधुरभाषी हैं। ऐसे मारू देश की कामिनी दक्षिण देश में यदि भगवान् ही दें तो मिल सकती है।

भूमि (बालुकामयी होने से) भूरी है, वन झंखाड़ हैं। वहाँ चंपा उत्पन्न नहीं होता। मारवणी के गुणों की सुगंधि से ही सारा वनखंड महक उठा है।

ऐसे मरुदेश को मेरा शतशः प्रणाम।

घनश्यामदास बिड़ला

प्रस्तावना

की कलात्मक चमत्कार के आगे लुप्तप्राय हो गया। इससे देश, जाति और साहित्य की बड़ी हानि हुई।

हमारे सौभाग्य से साहित्य में अब क्रांति का युग उपस्थित हो रहा है। नवीन दृष्टिगोचर भावनायें, नवीन जागृति और नवीन स्फूर्ति चारों ओर हो रही हैं। संसार भर में क्रांति का एक चक्र चल पड़ा है जिसका मूल मंत्र Back to nature प्रकृति की ओर लौटने, प्रकृति का पुनः परिशीलन करने के लिये प्रबल प्रेरणा कर रहा है। पाश्चात्य देशों ने इस क्रांति का सबसे पहले लाभ उठाया है। वे अपने प्राचीन साहित्य के पुनरुद्धार में कटिबद्ध होकर लग गए हैं और अब तक इस ओर प्रशंसनीय कार्य कर चुके हैं। भारतीय भाषाओं के द्वार पर भी यह लहर टकरा चुकी है। बँगला गुजराती और मराठी ने अपने प्राचीन साहित्य की बहुत कुछ खोज कर ली है। परंतु हिंदी की नींद अभी तक पूर्ण रूप से खुली नहीं। उसे खुमारी में अब भी नखशिख, नायिका भेद, षड्ऋतु वर्णन, अलंकार, रस, छंद की स्मृति बनी हुई है। परंतु शुभ लक्षण दिखाई दे रहे हैं। इधर कुछ वर्षों से हिंदी ने भी अपने प्राचीन साहित्य की ओर दृष्टिपात करना आरंभ कर दिया है।

प्रस्तुत ग्रंथ कोई शास्त्रप्रथित काव्य अथवा महाकाव्य नहीं है। इसमें साहित्यिक कला की चाकचक्यमान चमत्कृति नहीं है और न प्रबंध का शास्त्रविहित निर्वाह है। इसके विपरीत यह एक सीधी सादी दोहात्मक कहानी है, जिसमें मानवहृदय की सरल और स्वाभाविक भावनाओं को प्राकृतिक रंगों में रँगकर प्रकट किया गया है। यह एक ऐसा वन्यकुसुम है जो अब तक विशाल कानन की शांतिपूर्ण शून्यता में स्वतंत्रतापूर्वक आत्मानंद में लीन था। इसे यह कभी आशंका न रही होगी कि इस प्रकार उसके स्वतंत्र जीवन को बंदी बनाकर कुछ पढ़ेलिखे लोग सदा के लिये उसकी स्वच्छंदता को छीन लेंगे।

भारतवर्ष में राजस्थानी भाषा का साहित्य इस प्रकार के प्राचीन लोकगीतों और गाथाकाव्यों से परिपूर्ण है। कुछ लोगों का कथन है कि राजस्थान देश की प्राकृतिक परिस्थिति और राजस्थानी जनता की स्वाभाविक उग्रता और रूखेपन के अनुरूप ही राजस्थानी भाषा का साहित्य भी रूखा, उग्र उद्दंड एवं वीररस प्रधान है और उसमें हृदय के कोमल, करुण एवं स्निग्ध भावों को व्यक्त करने के लिये न तो उपयुक्त शब्दावली है और न भावप्रदर्शन की योग्यता ही। यह एक बड़ा भारी अभियोग है। पर [illegible] हम आलोचकों से

सर्वथा दोषी नहीं ठहरा सकते। कारण अब तक जो कुछ थोड़ा सा राजस्थानी का साहित्य प्रकाशित हुआ है उसमें पाठकों को अधिकांश में तलवारों की चमचमाहट और इनमों का सामरिक उत्साह, राजपूत-प्रण-प्रतिज्ञा की दृढ़ता अथवा किसी विकट युद्ध की दिल को दहलानेवाली भयंकरता का ही वर्णन मिलता है। परंतु हमारा कथन यह है कि राजस्थानी का साहित्य यहीं समाप्त नहीं हो जाता।

राजस्थान की पुण्यभूमि प्राचीन काल में भारत के अतीत गौरव पुण्यशील कीर्ति और शिखरारूढ़ सभ्यता का महत्वपूर्ण केंद्र और स्तंभ रही है। कोई भी विचारशील पुरुष निष्पक्ष रूपता के साथ यह नहीं कह सकता कि भारत के इतिहास में अग्रणी रहनेवाली इस भूमि का साहित्य भी उतना ही महत्वपूर्ण, सर्वांग संपूर्ण उतना ही उज्ज्वल आदर्शमय एवं उतना ही पथप्रदर्शक नहीं रहा होगा। परंतु यह सब होते हुए भी सत्य को प्रकाशित करने के लिये प्रमाणों की आवश्यकता होती है। दुःख तो इस बात का है कि विद्वानों ने राजस्थान के साहित्य को अब तक उपेक्षा की दृष्टि से देखा है। यही कारण है कि राजस्थानी साहित्यभंडार के उत्तमोत्तम रत्नों से परिपूर्ण होते हुए भी उनकी झलक सूर्य के प्रकाश में बाह्य जगत् को अब तक नहीं मिली। कुछ एक संस्थाओं यथा काशी की 'नागरीप्रचारिणी सभा' और कलकत्ता की बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, तथा कुछ विद्वानों यथा महामहोपाध्याय श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा डाक्टर टैसीटरी पंडित रामकरण मुंशी देवीप्रसाद आदि, का हमको बड़ा उपकार मानना चाहिए, जिन्होंने अनवरत परिश्रम पूर्वक खोज करके सर्वप्रथम साहित्यिक जगत् को यह महत्वपूर्ण सूचना दी कि इस भाषा में भी बहुमूल्य साहित्यभंडार भरा पड़ा है। अब यदि आवश्यकता है तो उन परिश्रमशील अन्वेषकों की जिनके हृदय में राजस्थान के पूर्वगौरव के प्रति वास्तविक श्रद्धा हो और जो हृदप्रतिज्ञ महाराणा प्रताप और बप्पा रावल चक्रवर्ती दिल्लीपति महाराजा पृथ्वीराज महाकवि राठौड़ महाराज पृथ्वीराज वीरभद्र दुर्गादास साहित्यरथी महाराजा जसवंतसिंह एवं उदार जयसिंह और भक्तशिरोमणि मीराबाई एवं कविभद्र चंदवरदाई के यशगान पद्य और कृतियों को सुरक्षित रखने का उद्योग करें।

इस बात को हिंदी के सभी ज्ञाता एवं विद्वान् मानते हैं कि राजस्थानी और हिंदी का चोलीदामन का साथ है। वास्तव में देखा जाय तो हिंदी का अधिकांश प्राचीन साहित्य प्रायः राजस्थानी रूप में प्रकट हुआ है। हिंदी

और रीतिशास्त्र के कठिन बंधनों में जकड़कर अंतःकरण के स्वच्छंद और सरल भावों को बुद्धिसंगत, कला-समन्वित कृत्रिम और अलंकृत वेश में प्रकट नहीं किया जाता। प्रकृति के सरल सौंदर्य को रत्नों और सुवर्ण से निर्मित निर्जीव आभूषणों से लदे हुए रूप में जब तक हम देख नहीं पाते तब तक हमारी कृत्रिम भावनाएँ रीझतीं नहीं। मनुष्य ने दुर्भाग्यवश अपने जीवन को इतना बनावटी बना लिया है कि क्या वस्तु क्या पदार्थ, क्या भावनाएँ और क्या विचार सभी में कृत्रिमता की प्रतिमा देखकर ही उसे तृप्ति होती है।

मानवजीवन की सहचारिणी कविता के उद्गम स्थल की ओर जब हम दृष्टिपात करते हैं और पीछे से उसके विकास और समृद्धि के इतिहास सूत्र को लेकर आधुनिक काल में उसके परिवर्तित स्वरूप की तुलना करते हैं तो हमको आकाश-पाताल का अंतर प्रतीत होने लगता है। इस महान् परिवर्तन को देखकर मन खिन्न हो जाता है। कविता की उत्पत्ति अनादि काल से है और उसने ईश्वरीय प्रतिभा की झलक के रूप में मनुष्य के हृदय में जन्म लिया था। उसने मानवजीवन में एक विचित्र आलोक युक्त संवेदना व्यापक सहानुभूति एकता और प्रेम के ऐक्यसूत्र के रूप में विकास पाया था। जब तक उसका यह सरल मधुर, निष्कपट रूप बना रहा तब तक उसने मानवजीवन का बड़ा उपकार किया। विषम वेदनाओं और कठिन आध्यात्मिक आपत्तियों के निवारण करने में उसने मनुष्य को अमृत संजीवनी का काम दिया। परंतु ज्यों ज्यों मनुष्य कठिन जगत् की दुर्भेद्य माया के जाल में फँसता गया त्यों त्यों वह सरलता को छोड़कर कृत्रिमता की आराधना करने लगा और अंतःकरण के सरल संस्कारों को तिलांजलि देने लगा त्यों त्यों उसे कविता देवी के प्राकृतिक सुंदर, सरस और सौम्य रूप के प्रति उदासीनता होने लगी। समयांतर में उसी कृत्रिम और कल्पनाप्रिय बुद्धि ने व्याकरण रीति अलंकार और छंद शास्त्र के बंधनों में जकड़कर कविता का एक ऐसा रूप प्रकट किया जिसने काव्य को बहुरूपिए का एक स्वाँग सा बना डाला। इसी स्वाँग को सच्ची कविता और उत्तम काव्य समझकर मनुष्य संतुष्ट और प्रसन्न रहने लगा।

निषाद द्वारा मिथुन का शरद् ऋतु के निर्मल आकाश में आनंदपूर्वक विहार करते हुए देखकर अकस्मात् निषाद ने बाण मार ही तो दिया। आहत पक्षी के वियोग में विरही पक्षी ने जो करुण क्रंदन किया उसके प्रभाव आश्रम में

कवि की मूक हृतंत्री को झंकृत कर दिया। रुका हुआ काव्यप्रवाह प्रबल वेग के साथ सारे प्रतिबंधों को तोड़कर अविच्छिन्न रूप से चल पड़ा। वेदना और अभिशाप की तरल तरंगें दशों दिशाओं में गूँज उठीं और क्षितिज के सुदूरस्थ किनारों पर टकराकर प्रतिध्वनित होने लगीं। आदि कवि वाल्मीकि की संवेदनात्मक अंतःकरण की पुकार ने जिस दिन जन्म लिया उसी दिन कविता का प्रथम प्रभातोन्मेष हुआ—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंच मिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

कविता का यह प्रथम उद्रेक सरल था स्वाभाविक था निष्कपट था, कृत्रिम अलंकरणों के निर्जीव भार से निर्मुक्त था रीति के जटिल बंधनों से रहित था छंद था, परंतु स्वच्छंद। हृदय के रंग में वह रँगा हुआ था। वह कविता थी और आज भी कविता होती है। अंतर क्या है? कुछ की वह मर्मभेदी कहानी कौन कहेगा?

उपर्युक्त विवेचन से हमारा आशय काव्य के कल्पनात्मक और प्राकृतिक भेदों के भिन्न भिन्न स्वरूपों को बतलाने का है। कल्पनात्मक साहित्य में भारत में बड़ी उन्नति की है यह तो सभी जानते हैं। संस्कृत साहित्य में महाकवि भास, शूद्रक कालिदास भारवि बाण भवभूति, श्रीहर्ष आदि ने काव्य नाटक गद्य आख्यायिका आदि साहित्य को कलात्मक उन्नति की पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया। यही हाल प्राकृत और अपभ्रंश साहित्यों का भी रहा। इधर वर्तमानकाल में भारतीय भाषाओं ने भी कलात्मक दृष्टि से खूब साहित्यवृद्धि की है। बंगला गुजराती मराठी और हिंदी भाषाओं में काव्यकला की दृष्टि से उत्तम साहित्य भरा पड़ा है। बिहारी भूषण मतिराम, केशव प्रभृति कवि कलात्मक कविता के बड़े आचार्य हो गए हैं। परंतु इन बहुमूल्य कलामयी हुए रत्नों के होते हुए सभी भाषाओं ने अपने प्राचीन सरल लोकसाहित्य की उपेक्षा की दृष्टि से ही देखा है। यह स्वाभाविक भी था। मानवकौशल द्वारा निर्मित सुंदर से सुंदर विविधविध पुष्पों वृक्षों और फलों से लदी हुई वाटिकाओं के होते हुए भला किस उपवन जंगल के सरल और कटकित परंतु सरल और सुगंधित वन्य कुसुमों की सुवास लेने को क्यों जाने लगा? यही कारण हुआ कि एक समय में सारे देश की जनरुचि और जनमनभावनाओं को आकर्षित करनेवाला गीत-गाथा और दास्तान लोकसाहित्य आधुनिक काल

की कलात्मक चमचमाहट के आगे लुप्तप्राय हो गया। इससे देश जाति और साहित्य की बड़ी हानि हुई।

हमारे सौभाग्य से साहित्य में अब क्रांति का युग उपस्थित हो रहा है। नवीन दृष्टिगोचर भावनाएँ, नवीन जागृति और नवीन स्फूर्ति चारों ओर हो रही हैं। संसार भर में क्रांति का एक चक्र चल पड़ा है जिसका मूल मंत्र Back to nature प्रकृति की ओर लौटने, प्रकृति का पुनः परिशीलन करने के लिये प्रबल प्रेरणा कर रहा है। पाश्चात्य देशों ने इस क्रांति का सबसे पहले लाभ उठाया है। वे अपने प्राचीन साहित्य के पुनरुद्धार में कटिबद्ध होकर लग गए हैं और अब तक इस ओर प्रशंसनीय कार्य कर चुके हैं। भारतीय भाषाओं के द्वार पर भी यह लहर टकरा चुकी है। बँगला गुजराती और मराठी ने अपने प्राचीन साहित्य की बहुत कुछ खोज कर ली है। परंतु हिंदी की नींद अभी तक पूर्ण रूप से खुली नहीं। उसे खुमारी में अब भी नखशिख नायिका भेद षट्ऋतु वर्णन अलंकार रस छंद की स्मृति बनी हुई है। परंतु शुभ लक्षण दिखाई दे रहे हैं। इधर कुछ वर्षों से हिंदी ने भी अपने प्राचीन साहित्य की ओर दृष्टिपात करना आरंभ कर दिया है।

प्रस्तुत ग्रंथ कोई लब्धप्रतिष्ठ काव्य अथवा महाकाव्य नहीं है। इसमें साहित्यिक कला की चाकचक्यमान चमत्कृति नहीं है और न प्रबंध का शास्त्र-विहित निर्वाह है। इसके विपरीत यह एक सीधी सादी लोकप्रिय कहानी है, जिसमें मानवहृदय की सरल और स्वाभाविक भावनाओं को प्राकृतिक रंगों में रँगकर प्रकट किया गया है। यह एक ऐसा वन्यकुसुम है जो अब तक विशाल कानन की शांतिपूर्ण शून्यता में स्वतंत्रतापूर्वक आत्मानंद में लीन था। इसे यह कभी आशंका न रही होगी कि इस प्रकार उसके स्वतंत्र जीवन को बंदी बनाकर कुछ परदेशिये लोग सदा के लिये उसकी स्वच्छंदता को छीन लेंगे।

भारतवर्ष में राजस्थानी भाषा का साहित्य इस प्रकार के प्राचीन लोकगीतों और गाथाकाव्यों से परिपूर्ण है। कुछ लोगों का कथन है कि राजस्थान देश की प्राकृतिक परिस्थिति और राजस्थानी जनता की स्वाभाविक उग्रता और कड़ेपन के अनुरूप ही राजस्थानी भाषा का साहित्य भी रूखा, उग्र उद्दंड एवं वीररस प्रधान है और उसमें हृदय के कोमल कांत एवं स्निग्ध भावों को व्यक्त करने के लिये न तो उपयुक्त शब्दावली है और न भावप्रदर्शन की योग्यता ही। यह एक बड़ा भारी अभियोग है। पर इसके लिये हम आलोचकों को

सर्वथा दोषी नहीं ठहरा सकते। अस्तु, अब तक जो कुछ थोड़ा सा राजस्थानी का साहित्य प्रकाशित हुआ है, उसमें पाठकों को अधिकांश में तलवारों की चमचमाहट, वीर क्षत्रियों का समरिक उत्साह राजपूत-प्रथा प्रतिज्ञा की दृढ़ता अथवा किसी विकट युद्ध की दिल को दहलानेवाली मर्मस्पर्शता का ही वर्णन मिलता है। परंतु हमारा कथन यह है कि राजस्थानी का साहित्य यहीं समाप्त नहीं हो जाता।

राजस्थान की पुण्यभूमि प्राचीन काल में भारत के अतीत गौरव, पुण्यशील कीर्ति और शिल्पयुक्त सभ्यता का महत्त्वपूर्ण केंद्र और स्तंभ रही है। कोई भी विचारशील पुरुष निष्पक्ष स्पष्टता के साथ यह नहीं कह सकता कि भारत के इतिहास में अग्रणी रहनेवाली इस भूमि का साहित्य भी उतना ही महत्त्वपूर्ण सर्वांग संपूर्ण उतना ही उज्ज्वल, माधुर्यमय एवं उतना ही पथप्रदर्शक नहीं रहा होगा। परंतु यह सब होते हुए भी सत्य को प्रकाशित करने के लिये प्रमाणों की आवश्यकता होती है। दुःख तो इस बात का है कि विद्वानों ने राजस्थान के साहित्य को अब तक उपेक्षा की दृष्टि से देखा है। यही कारण है कि राजस्थानी साहित्यभांडार के उत्तमोत्तम रत्नों से परिपूर्ण होते हुए भी उनकी झलक सूर्य के प्रकाश में बाह्य जगत् को अब तक नहीं मिली। कुछ एक संस्थाओं यथा काशी की 'नागरीप्रचारिणी सभा' और कलकत्ता की 'बंगाल एशियाटिक सोसाइटी' तथा कुछ विद्वानों, यथा महामहोपाध्याय श्री गौरी शंकर हीराचंद ओझा डाक्टर टैसीटरी पंडित रामकर्ण मुंशी देवीप्रसाद आदि, का हमको बड़ा उपकार मानना चाहिए, जिन्होंने अनवरत परिश्रम पूर्वक खोज करके सर्वप्रथम साहित्यिक जगत् को यह महत्त्वपूर्ण सूचना दी कि इस भाषा में भी बहुमूल्य साहित्यभांडार भरा पड़ा है। अब यदि आवश्यकता है तो उन परिश्रमशील अन्वेषकों की जिनके हृदय में राजस्थान के पूर्वगौरव के प्रति अक्षुण्ण श्रद्धा हो और जो स्वनामधन्य महाराणा प्रताप और बाप्पा रावल, चक्रवर्ती दिल्लीपति महाराजा पृथ्वीराज महाकवि राठौड़ महाराज पृथ्वीराज वीरभद्र दुर्गादास साहित्यरथी महाराजा चतुरसिंह एवं सवाई जयसिंह और भक्तशिरोमणि मीराँबाई एवं सर्वश्रेष्ठ चंदबरदाई के उत्तम पद्य और कृतियों को सुरक्षित रखने का उद्योग करें।

इस बात को हिंदी के सभी ज्ञाता एवं विद्वान् जानते हैं कि राजस्थानी और हिंदी का चोलीदामन का साथ है। वास्तव में देखा जाय तो हिंदी का अधिकांश प्राचीन साहित्य अपने राजस्थानी रूप में प्रकट हुआ है। हिंदी

साहित्य के इतिहास-निर्माण में राजस्थानी का बड़ा महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है। चंदबरदाई हिंदी का आदि कवि रहा है और वही राजस्थानी का एक श्रेष्ठ कवि भी। मीराँबाई की कविताओं में हिंदी की श्रेष्ठ कवयित्री समझी जाती हैं और वही राजस्थानी काव्य की भी आत्मा हैं। इस नाते से राजस्थानी हिंदी की बड़ी बहिन हुई। अतएव राजस्थानी साहित्य का जितना उद्धार होगा हिंदी साहित्य की समृद्धि भी उतनी ही बढ़ेगी। हमारी तो यह धारणा है कि हिंदी साहित्य यदि त्रिवेणी का सुन्दर और महत्त्वपूर्ण संगम है तो राजस्थानी उसकी एक शाखा यमुना है और अवधी उसकी दूसरी शाखा सरस्वती। इन दोनों के बीच ब्रजभाषा-रूपी गंगा की पावन तरंगिणी अपने सरस काव्य प्रवाह को लिए हुए उत्तर भारत के रसिक समुदाय को आह्लादित करती हुई अनवरत बह रही है। जब तक हिंदी हिंदी है तब तक इनका साथ छूट नहीं सकता।

हिंदी भाषा के आदिकाल की ओर दृष्टि डालने पर पता लगता है कि हिंदी के वर्तमान स्वरूपनिर्माण के पूर्व गाथा और दोहा साहित्य का उत्तर भारत की प्रायः सभी देशभाषाओं में प्रचार था। उस समय भी राजस्थानी और हिंदी में इतना रूपभेद नहीं हो गया था जितना आजकल है। यदि यह कहा जाय कि वे एक ही थीं तो अत्युक्ति होगी। उदाहरणों द्वारा यह कथन प्रमाणित किया जा सकता है।

(२) ढोला मारूरा दूहा काव्य का परिचय

ढोला मारूरा दूहा राजस्थान का एक बहुत प्रसिद्ध प्राचीन काव्य है। यह एक सुन्दर प्रेमगाथा है जो राजस्थान में बहुत लोकप्रिय रही है। मानवहृदय के कोमल मनोभावों तथा बाह्य प्रकृति के बड़े ही मनोहर चित्र इसमें अंकित किए गए हैं। प्रेमगाथा होने पर भी इसका शृंगारवर्णन बहुत ही मर्यादापूर्ण है। इसके विषय में राजस्थान में यह दोहा बहुत प्रसिद्ध है—

सोरठियो दूहो भलो भलि मरवणरी बात।
जोबन छाई धण भली तारों छाई रात'॥

अर्थात् दोहों में सोरठिया दोहा (सोरठा) अच्छा है बातों में ढोला मारवणी की बात अच्छी है यौवन से छाई हुई धण अच्छी होती है और तारों से छाई हुई रात अच्छी होती है।

यह काव्य राजस्थान का जातीय काव्य कहा जा सकता है। राजस्थानी भाव भावनाएँ इसकी आत्मा में ओतप्रोत हैं। जनता में इसका खूब प्रचार रहा है। राजस्थान म शायद ही कोई दूसरा लोकगीत इतना लोकप्रिय रहा हो। शायद ही राजस्थान का कोई पुस्तकभाण्डार ऐसा होगा जिसमें इसकी एकाध प्रति न पाई जाय। इसके दूहे शताब्दियों पयत राजस्थानी जनता की जिह्वा पर रहे हैं और आज भी अनेकों मनुष्यों को ये याद हैं। इस काव्य की घटनाओं को लेकर अनेकों चित्र और चित्रमालाएँ बनाई गई हैं[1]। राजस्थानी घरों पर आज भी ऊँट पर जाते हुए ढोला मारवणी के चित्र अंकित मिलेंगे। महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचंद ओझा सूचित करते हैं कि उन्होंने अपनी ऐतिहासिक यात्रा में अलवर राज्य के किसी ग्राम म ढोला मारू की मूर्तियाँ भी देखी थीं जो कम से कम दो सौ वर्ष की पुरानी होंगी।

इस काव्य म ढोला और मारवणी की प्रेमकथा का वर्णन है। यह ढोला कछवाहा वंश के राजा नल का पुत्र था। इसका समय विक्रमी संवत् १ के लगभग है। मारवणी पूगल के राजा पिंगल की कन्या थी। दोनों का विवाह ऐतिहासिक घटना है। राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासलेखक मुँहणोत नैणसी की ख्यात म ढोला के मारवणी और माळवणी नामक दो स्त्रियों के होने का उल्लेख है।

ढोला मारवणी की कथा आज भी राजस्थान और मध्यभारत के विभिन्न भागों म विभिन्न रूपों म प्रचलित है। लोगों की जिह्वा पर रहते रहते इस कथा में बहुत कुछ परिवतन हो चुका है और इसके अनेक विकृत रूप बन गए हैं। यहाँ तक कि जैसा भाई श्री ओझाजी हमें सूचित करते हैं अजमेर में होली के दिनों में ढोला मारू की एक सवारी निकलती है जिसमें औरत पुरुष को जूतों से मारती है।

ढोला-मारू काव्य एक लोकगीत (Ballad) है। यह आरंभ से लोकप्रिय और लोगों की जिह्वा पर रहा है। ऐसे जनप्रिय लोकगीतों की जो हालत होती है वही इसकी भी हुई। समय समय पर इसमें अनेक परिवतन और परिवधन हुए। नए दूहे और नई घटनाएँ समय समय पर जुड़ती गई।

---

[1] ऐसी एक चित्रमाला, जिसमें इस कथा की विविध घटनाओं पर कोई १११ चित्र हैं जयपुर के सरदार म्यूजियम में विद्यमान है। उसके तीन चित्र इस ग्रंथ के साथ दिए गए हैं।

और पुराने दूहे और पुरानी घटनाएँ कभी कभी छूट भी होती गईं। आरंभ में यह किसी एक लेखक की—संभवतः ढोली ढाढी जाति के किसी व्यक्ति की—रचना रही हो यह संभव है परंतु इसके वर्तमान रूप का निर्माता तो कोई एक कवि न होकर समस्त जनता ही है।

आरंभ में यह कृति दूहा छंद में लिखी गई थी जो अपभ्रंश के जमाने से जनता का सबसे प्यारा छंद रहा है। इसका लेखक कौन था और यह कब लिखी गई इसके विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। ढोला का समय संवत् १ के आसपास है और वही इसके रचनाकाल की ऊपरी सीमा है[1]।

धीरे धीरे दूहे छिन्नभिन्न होने लगे और उनका कथासूत्र टूट गया पर कथा लोगों को अब भी ज्ञात थी यद्यपि उसमें भी बहुत कुछ परिवर्तन हो चुका था। जेसलमेर के रावल हरिराज ने अपने समय में प्राप्य दूहों को एकत्र करवाकर अपने आश्रित जैन कवि कुशललाभ को उनका कथासूत्र मिलाने की आज्ञा दी। उक्त कवि ने चौपाइयाँ बनाकर और उनको दूहों के बीच बीच में जोड़कर यह कार्य संपन्न किया। जैनों म कुशललाभ

---

१ रचनाकाल की पिछली सीमा जैन कवि कुशललाभ का समय (१६१८ के आसपास) है जिसके समय में इस काव्य के अधूरे दूहे ही मिलते थे और जिसने कथासूत्र मिलाने के लिये बीच बीच में चौपाइयाँ जोड़ी थीं। उसने लिखा है कि—

'दूहा घणा पुराणा अछइ ।

सो कम से कम १२०-१ वर्ष पुराने तो होंगे ही। इस प्रकार इन दूहों की रचना संवत् १०२ के बाद की नहीं हो सकती।

२ इसके विषय में प्रसिद्ध चारण कवि गोविंद गिलाभाई ने मनोरंजक कथा लिखी है जो इस प्रकार है। सम्राट् अकबर का विद्याप्रेम प्रसिद्ध है। उसके दरबार में बीकानेर नरेश राजा रायसिंहजी के छोटे भाई पृथ्वीराज राठौड़ रहते थे जो डिंगल के बड़े भारी कवि थे। ये वही पृथ्वीराज हैं जिन्होंने महाराणा प्रताप को उत्तेजित करने के लिये वीररस के दूहों में पत्र लिखा था। पृथ्वीराज ने किसन रुकमणीरी वेलि नामक एक बड़ा सुंदर शृंगार रसात्मक काव्य बनाकर अकबर को सुनाया। अकबर उस काव्य को प्रतिदिन काव्य चर्चा के समय सुनता और उसकी प्रशंसा करता। उस समय जैसलमेर के राजकुमार हरराज ने भी यह प्रशंसा सुनी। बीकानेरवालों और जैसलमेरवालों में प्रतिद्वंद्विता का भाव था। हरराज को यह प्रशंसा सहन न हुई। जब वह राजा हुआ तो उसने अपने दरबार के कवियों को आज्ञा दी कि *ढोला मारू की कथा के प्रचलित दूहे जितने मिल सकें उन्हें एकत्र करके* यथाक्रम लगाकर ग्रंथरचना करो और जो ग्रंथ सर्वोत्तम होगा उस पर पुरस्कार

की ढोला-मारू-चउपई का बहुत प्रचार हुआ और शायद ही कोई जैन पुस्तक भंडार मिले जहाँ इसकी प्रतियाँ न पाई जायँ।

पर दूहोंवाला रूप सर्वथा लुप्त नहीं हुआ। उसकी कई प्रतियाँ अनुसंधान करने पर हमें प्राप्त हुईं। सबमें दूहों की संख्या लगभग समान है और कथासूत्र बराबर मिलता है, कहीं खंडित नहीं होता।

कई अन्य लोगों ने, जिन्हें पूरे दूहे नहीं मिले, कथासूत्र मिलाने के लिये बीच बीच में गद्यवार्ता जोड़ी। इस गद्य पद्यात्मक रूप की प्रतियाँ बहुत कम मिलती हैं। कुछ प्रतियाँ ऐसी भी मिलती हैं जिनमें दूहे कुशललाभ की चौपाइयाँ और गद्यवार्ता तीनों हैं। इनमें कुशललाभ की चौपाइयाँ पूरी नहीं हैं और दूहे भी बहुत कम हैं। दोनों प्रकार के रूप विशेष प्राचीन नहीं हैं, अतः कोई महत्व नहीं रखते॥

दिया जायगा। कुशललाभ की रचना सर्वोत्तम निकली। हरराज ने उसे अकबर को भेंट किया। अकबर ने उसे पसंद किया और काव्यचर्चा के समय उसके दूहे भी पढ़े जाने लगे। एक दिन सम्राट ने हँसी में पृथ्वीराज से कहा तुम्हारी वेलि को तो ढोला का करहला (ऊँट) चर गया है। इस श्लेषयुक्त वाक्य को सुनकर पृथ्वीराज ने कहा कि इस संसाररूपी उद्यान में से अन्य मकरंद परिपूर्ण पुष्पोंवाले वृक्ष सेवा में भेंट करते कोई देर नहीं लगेगी। और इसके बाद सवैधंत मालविका की शृंगारपरिपूर्ण वार्ता बनाकर पृथ्वीराज ने भेंट की जो अकबर को बहुत पसंद आई।

यह कथा केवल कथा मात्र ही है। इसमें सत्य का कुछ भी अंश नहीं जान पड़ता। रावल हरराज युवराजत्व में तो अकबर के दरबार में गया ही नहीं। उसने संवत् १६२० में अपने राजा होने के दो वर्ष बाद अकबर की अधीनता स्वीकार की थी। फिर पृथ्वीराज की वेलि तो सं० १६३० या १६३८ में बनी थी जैसा उसके अंतिम छंद से ज्ञात होता है। ढोला-मारू-चउपई की रचना कुशललाभ संवत् १६१८ के पूर्व ही कर चुका था जैसा कि इस ग्रंथ की पुष्पिका से सिद्ध होता है। सुप्रसुप्त मालविका की वार्ता भी पृथ्वीराज की बनाई नहीं है। पृथ्वीराज की रचनाओं में उसका कहीं नाम नहीं और न बीकानेर राज्य के पुस्तकालय में उसकी जो एक दो प्रतियाँ हैं उनमें इस बात का कहीं उल्लेख है। ये प्रतियाँ भी उस समय के बहुत बाद की हैं।

ऐसी ही एक कहानी पृथ्वीराज की वेलि और चारण कृष्णा भाइयों के रुक्मिणीहरण के विषय में कही जाती है कि दोनों बादशाह की नजर से गुजरे और हरण की रचना वेलि से अच्छी देखकर उसने यह श्लेषमय वाक्य कहा कि पृथ्वीराज तुम्हारी वेल को चारण बाबा की हरणियाँ (= हरण) चर गई (राजरसनामृत हिं॰ देवीप्रसाद कृत पृष्ठ ३१, ३२)।

इस प्रकार इस समय ढोला मारू काव्य के चार रूपांतर मिलते हैं—(१) पहला—जिसमें केवल दूहे हैं और जो प्राचीन है। (२) दूसरा—जिसमें दूहे और कुशललाभ की चौपाइयाँ हैं यह प्राचीनता में दूसरे नंबर पर आता है। (३) तीसरा—जिसमें दूहे और गद्यवार्ता हैं (४) और चौथा—जिसमें दूहे कुशललाभ की कुछ चौपाइयाँ और गद्यवार्ता है।

इनमें केवल पहले दो रूपांतर ही महत्वपूर्ण हैं। पिछले दो रूपांतरों में असली दूहों का भाग बहुत ही कम रह गया है और जो कुछ रह गया है वह भी बहुत कुछ विकृत हो गया है। दूसरे रूपांतर में भी बाद में जाकर परिवर्तन हुआ और बहुत से नए दूहे जोड़ दिए गए पर उसका असली रूप निश्चित रूप में रह जाने के कारण निश्चित किया जा सकता है०।

पहले और दूसरे रूपांतरों में भी काफी अंतर पाया जाता है विशेषतः आरंभ के भाग में। हम यहाँ पर दोनों में जो जो अंतर है उसका संक्षिप्त विवेचन करेंगे। विशेष मालूम करने के लिये परिशिष्ट में दिए हुए भिन्न भिन्न रूपांतरों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

(१)

रूपांतर नं० १ की कथा का आरंभ एक गाहा से होता है। उसके बाद ढोला मारवणी के विवाह का प्रसंग है। पूगल देश में एक समय अकाल पड़ा तो राजा पिंगल अपने परिवार के साथ नळवर देश को गया वहाँ के राजा नल ने उसका बड़ा आदर सत्कार किया। नल के पुत्र ढोला को देखकर पिंगल की रानी रीझ गई और उसने अपनी पुत्री मारवणी का विवाह उसके साथ कर दिया। उस समय मारवणी की अवस्था बहुत छोटी होने के कारण उसे ससुराल में न रखकर पिंगल अपने साथ पूगल लेता आया। इधर बड़ा होने पर ढोला का विवाह माळवे की राजकुमारी माळवणी के साथ हो गया। ढोला को मारवणी की और उसके साथ विवाह होने की बात ज्ञात नहीं हुई। युवावस्था में प्रवेश करने पर मारवणी ने अपने पति ढोला का स्वप्न में दर्शन किया और उसी समय से विरह व्याकुल रहने लगी। विरह में अभिभूत होकर कभी पपीहे को फटकारती है तो कभी कुरझों से संदेशा ले जाने के लिये कहती है। राजा पिंगल ने ढोला को बुलाने के लिए कई आदमी भेजे पर माळवणी के षड्‌यंत्र के कारण उन्हें सफलता न हुई। इतने में एक सौदागर आता है और मारवणी के ढोला के साथ विवाह होने की बात जानकर माळवणी का सब भेद बतलाता है। पिंगल

फिर अपने ब्राह्मण को ढोला के पास भेजना चाहता है पर अंत में रानी की सलाह के अनुसार ढाढ़ी भेजे जाते हैं। ये ढाढ़ी किसी प्रकार मालवणी के रक्षकों से बचकर ढोला के महल के पास ठहरते हैं और रात में करुण राग में मारवणी के संदेश को गाते हैं जिसको सुनकर ढोला व्याकुल हो उठता है। प्रातःकाल उठकर वह ढाढ़ियों को अपने पास बुलाकर पूछता है और ढाढ़ी उसे मारवणी का सब हाल सुनाते हैं जिसे सुनकर ढोला मारवणी से मिलने के लिये व्याकुल हो उठता है।

रूपांतर सं० २ के प्रारंभ में मंगलाचरण उसके बाद वस्तुसूचना और उसके बाद पूगल के राजा पिंगळ का वर्णन करके कथा का प्रारंभ होता है। राजा पिंगळ एक बार शिकार खेलने गया। वहाँ उसे भाऊ नामक एक भाट मिला जिसने जालोर के देवड़ा राजा सामंतसी की कन्या उमा के रूप की बहुत प्रशंसा की जिससे पिंगळ का मन उमा की ओर आकर्षित हुआ। महल में लौटने पर राजा ने अपने प्रधान और सेवक बेसळ को, उमा को माँगने के लिये जालोर भेजा। उमा की सगाई गुजरात के राजकुमार रणधवळ के साथ हो चुकी थी पर उमा की माता अपनी कन्या को उतनी दूर नहीं देना चाहती थी। उसने राजा से सलाह की कि विवाह का दिन निश्चित करके हम ठीक मौके पर *गुजरात को समाचार भेजेंगे जिससे वहाँकी बरात* समय पर नहीं पहुँच सकेगी। लग्न के समय यदि राजा पिंगळ यहाँ आबू यात्रा के बहाने आ जाय तो हम लग्न टलता देखकर उमा का विवाह उसके साथ कर देंगे। फिर गुजरात की बरात आवेगी तो हम कह देंगे कि आप समय पर नहीं आए, हमारी चढ़ी हुई कन्या नहीं रह सकती थी अतः हमने उसका विवाह पूगल के राजा के साथ, जो यात्रा करने के लिये आबू जा रहा था कर दिया। सामंतसी ने अपनी सम्मति दे दी और रानी ने सब बातें बेसळ की मारफत पिंगळ को कहला भेजीं। इसी के अनुसार कार्यवाही हुई और पिंगळ के साथ उमा का विवाह हो गया। उधर दूत गुजरात नरेश उदयचंद के पास पहुँचा और उसने जाकर कहा कि मैं मार्ग में बीमार पड़ गया अतः ठीक समय पर नहीं पहुँच सका। उदयचंद की धाक बड़ी भारी थी एवं वह बड़ा प्रबल राजा था। उसने सोचा कि मेरे लड़के की माँग (वाग्दत्ता) को विवाहने का साहस और किसी राजा को नहीं हो सकता। उसने रणधवळ को बरात के साथ रवाना कर दिया। रणधवळ जालोर पहुँचा तो उसे मालूम हुआ कि उमा का विवाह पिंगळ के साथ हो गया। उसने

सब हाल पिता को कहला भेजा और एक भारी सेना ने बाड़ोर को घेर लिया। सांगलसी ने पिंगळ को पहले ही पूगळ भेज दिया था और उमा को बाद में भेजने के लिये कहा था। गुजरात की सेना चारों ओर उत्पात मचाने लगी। उधर पिंगळ के सेवक सेल्ह ने बैरों की एक घोड़ी को ऐसा साधा कि वह एक दिन में बाड़ोर जाकर लौट आवे और एक रोज रात उमा को लेकर पूगळ लौट आया। उमा को हाथ से गई देख गुजरात की सेना चली गई। पिंगळ से उमा के मारवणी नाम की कन्या हुई। एक बार अकाल पड़ने पर पिंगळ सपरिवार पुष्कर जा पहुँचा।

इसके बाद ढोला के जन्म की कथा इस प्रकार कही गई है। राजा नळ के कोई संतान न थी। उसने पुष्कर जाता की मनौती की जिससे उसके एक पुत्र हुआ जिसका नाम ढोला रखा। ढोला के तीन वर्ष का हो जाने पर राजा नळ सपरिवार पुष्कर यात्रा को गया। वहाँ नळ ने मारवणी को देखा। वह पिंगळ से मिला और ढोला के लिये मारवणी को माँगा। फिर दोनों का विवाह हो गया।

मारवणी की अवस्था छोटी होने के कारण पिंगळ ने उसे नळ के साथ नहीं भेजा और पूगळ ले आया। पीछे से पूगळ को दूर जानकर और रास्ता खतरनाक समझकर नळ ने ढोला का दूसरा विवाह माळवे के राजा की कन्या माळवणी से कर दिया। मारवणी के साथ विवाह होने की बात ढोला से छिपी रही। पर माळवणी को यह बात मालूम हो गई और उसने ऐसा प्रबंध कर लिया कि पूगळ का कोई आदमी नगर में न आने पावे।

उधर मारवणी ने यौवन में पैर रखा। एक बार एक घोड़ों का सौदागर पूगळ आया और पिंगळ के यहाँ ठहरा। मारवणी को देखकर और उसका परिचय पाकर उसने ढोला और माळवणी का सब हाल कह सुनाया। माळवणी के षड्यंत्र का भी हाल कहा। प्रियतम के समाचार सुनकर मारवणी विरहसंतप्त हो उठी। इसके बाद पपीहों को कोसना और कुरजों से सँदेशा ले जाने की प्रार्थना है। राजा अपने पुरोहित भीमसेन को ढोला के पास भेजना चाहता है परंतु मारवणी माता के द्वारा ढाढ़ियों को भेजने के लिये कहती है। मारवणी का सिखाया संदेशा लेकर ढाढ़ी नळवर जाते हैं। पहरेदार उनको साधारण याचक जानकर छोड़ देते हैं। वहाँ जाकर वे माढ़ू भाट से, जो अब नळवर में था मिलते हैं। माढ़ू भाट मौका पाकर माळवणी की अनुपस्थिति में ढोला से उनकी भेंट करवा देता

है। उनसे मारवणी का संदेशा सुनकर ढोला मारवणी के लिये आतुर हो उठता है। फिर ढाढ़ियों को पुरस्कार के साथ विदा करता है।

यहाँ तक के कथा भाग में मुख्य अंतर निम्नलिखित बातों में है—

(१) रूपांतर नंबर २ आरंभ में एक लंबी प्रस्तावना है जिसमें पिंगळ और उमा के विवाह मारवणी के जन्म और ढोला के जन्म की कथा है।

रूपांतर नंबर १ में यह नहीं है।

(२) रूपांतर नंबर १ में पिंगळ नळ के देश में आता है और वहाँ पिंगळ की रानी ढोला को देखकर रीझती है और मारवणी का विवाह ढोला के साथ हठपूर्वक करवा देती है।

रूपांतर नंबर २ में नळ और पिंगळ दोनों ही पुष्कर में एकत्र होते हैं। एक अपने पुत्र ढोला को स्नान कराने के लिये आता है और दूसरा अकाल के कारण। इस रूपांतर में नळ पहले मारवणी को देखता है और ढोला के लिये उसे माँगता है। पिंगळ रानी से पूछकर संबंध करता है और रानी यद्यपि कन्या को इतनी दूर देने में संकोच करती है फिर भी स्वीकार कर लेती है।

(३) रूपांतर नंबर २ में ढोला और मारवणी के विवाह की कथा दी गई है।

रूपांतर नं १ में यह नहीं है केवल आगे चलकर सौदागर के कथन द्वारा इसकी सूचना दी गई है।

(४) नंबर १ में मारवणी का विरह ढोला को स्वप्न में देखकर आरंभ होता है और वह कुरजों से संदेशा ले जाने के लिये कहती है। फिर सौदागर आकर ढोला और मारवणी का हाल सुनाता है।

रूपांतर नंबर २ में सौदागर आकर ढोला का हाल कहता है। तब मारवणी का विरह आरंभ होता है और वह कुरजों से संदेशा भेजना चाहती है।

(५) रूपांतर नंबर १ में ढाढ़ियों को भेजने की सलाह रानी देती है।

रूपांतर नंबर २ में मारवणी ढाढ़ियों को भेजने के लिये पिता से कहती है।

(६) रूपांतर नंबर १ में ढाढ़ी ढोला के महल के नीचे डेरा लेकर ठहरते हैं और रात में मारवणी का संदेशा गाते हैं। प्रातःकाल ढोला उन्हें बुला कर सब हाल पूछता है।

रूपांतर नंबर २ में ढाढ़ी पहले मारू भाट से मिलते हैं। वह उपयुक्त समय पर उन्हें ढोला के पास ले जाता है और वे मारवणी का संदेश ढोला को सुनाते हैं।

(२)

रूपांतर नंबर १—ढोला मारवणी से मिलने के लिये आतुर हो उठता है। मालवणी का भी उसे भय है। इस किंकर्तव्यविमूढ़ अवस्था में मालवणी उसे देखती है और चिंता का कारण पूछती है। पहले ढोला बहाने करके टालता है पर अंत में बतला देता है। कारण सुनकर मालवणी विरह की संभावना से मूर्छित हो जाती है। होश में आने पर वह ढोला को पूगल जाने से रोकती है। उसके प्रेम से ढोला ग्रीष्म भर के लिये रुक जाता है। वर्षा आने पर वह फिर जाने की अनुमति माँगता है। वह रोकती है और ढोला दो मास के लिये और रुक जाता है। दशहरा आ पहुँचता है। मालवणी फिर भी अनुमति नहीं देती। पर अब ढोला नहीं रुक सकता। अंत में मालवणी ने ढोला से वचन ले लिया कि जब मैं सो जाऊँ तब जाना। अब ढोला एक तेज चलनेवाले ऊँट को तैयार करता है। मालवणी ऊँट के पास जाकर उसे न जाने के लिये और लँगड़ा हो जाने के लिये प्रार्थना करती है जिसे ऊँट मन में स्वीकार कर लेता है। पर ढोला को मालूम हो जाता है कि ऊँट वास्तव में लँगड़ा नहीं किंतु जान बूझकर लँगड़ाता है। अब मालवणी के पास ढोला को रोकने का केवल यही उपाय रह जाता है कि वह सोवे नहीं। पंद्रह दिन तक वह बराबर जगती रहती है पर अंत में रात को थोड़ी देर के लिये झपकी आ जाती है। मौका पाकर ढोला चल देता है। ऊँट की बलबलाहट को सुनकर मालवणी तुरंत जाग पड़ती है और ढोला को गया देख खूब विलाप करती है। वह एक सुग्गा को ढोला के पीछे भेजती है कि वह उसके मरने का समाचार सुनाकर ढोला को लौटा लावे। सुग्गा प्रातःकाल ढोला के पास पहुँचता है और झूठा बहाना बनाकर कहता है कि मालवणी मर गई सो आप तुरंत लौटिए। पर ढोला उसके झूठ को ताड़ लेता है और नहीं लौटता। सुग्गा भी ही लौट आता है।

रूपांतर नंबर २—में यह कथा इसी प्रकार है। केवल आरंभ में इतना विशेष है कि ढाढ़ियों के पूगल लौटकर पिंगल को सब समाचार सुनाने का वर्णन दिया गया है। नंबर १ में मालवणी ढोला को लौटाने का उपाय भी बतलाती है कि ढोला को मेरे मरने की बात कहना। नंबर २ में वह केवल इतना ही कहती है कि किसी प्रकार ढोला को लौटा ला।

(३)

रूपांतर नं० १—ढोला आगे चलता है। तीसरे पहर वह आड़ावळ्य की घाटी को लाँघ जाता है। वहाँ ऊँट को पानी पिलाता है। फिर रुनि थोड़ा रहा देखकर ऊँट को तेजी से चलाता है[1]। मार्ग में ऊमरसूमरे का एक चारण मिलता है जो कहता है कि मारवणी तो बूढ़ी हो गई अब तू जाकर क्या करेगा? ढोला दुःखी होकर सोच में पड़ जाता है कि इतने में बीसू नाम का एक चारण आ जाता है जो उसे सच्ची बात कहकर उसका संदेह दूर करता है। फिर ढोला के पूछने पर वह मारू के रूप की प्रशंसा करता है। ढोला प्रसन्न होकर उसे पुरस्कार देता है और अपने आने का समाचार देकर पूगल भेज देता है। थोड़ा आराम करके फिर स्वयं चलता है। उधर उस दिन के पूर्व की रात को मारवणी स्वप्न में ढोला से मिलती है और प्रातःकाल उसका हाल सखियों को सुनाती है। ढोला के आने के पूर्व उसके बाएँ अंग फड़कने लगते हैं और इतने में बीसू आ जाता है। सब लोगों को बड़ा हर्ष होता है और इस समय ढोला पूगल पहुँचता है। ढोला मारवणी का मिलाप होता है। इसके बाद दोनों के मिलन और पारस्परिक विनोद का वर्णन है।

रूपांतर नंबर २ में भी यही कथा है पर कुछ फेरफार के साथ। सुग्गा के चले जाने पर ढोला आगे चलता है। चन्देरी के पास उसे एक बनिया मिलता है जो ढोला से अपना एक पत्र बीस योजन दूर एक गाँव तक पहुँचा देने को कहता है। ढोला कहता है कि तू पत्र लिखेगा तब तक मैं ठहर नहीं सकता, इसलिये तू पीछे ऊँट पर बैठ जा और पत्र लिख दे फिर मैं पहुँचा दूँगा। बनियाँ बैठकर पत्र लिखने लगा। पत्र समाप्त हुआ तब तक तो ऊँट उसी गाँव में पहुँच गया जहाँ वह बनिया पत्र भेजना चाहता था।

अब ढोला पुष्कर पहुँचा। वहाँ ऊँट को पानी पिलाया। सूखे मारवाड़ देश को देखकर ऊँट उसकी शिकायत करता है। ढोला उसे समझाता है कि यह मेरी ससुराल है; यहाँ तो करील और आक ही खाने को मिल सकते हैं। नरवर की नागरबेल और ताल-बिजौरे यहाँ कहाँ? अब ढोला आड़ावळ्य को पार करता है। इसके बाद उसे एक चारण मिलता है जो राजा

---

[1] कुछ प्रतियों (जैसे—क ख, ग) में इसके पूर्व एक मालिन के मिलने की कथा भी है जो मूलपाठ में दी गई है।

पिंगळ से नाराज था। वह कहता है कि मारवणी बूढ़ी हो गई, अब जाकर क्या करेगा ? ढोला दुःखी होता है। इतने में एक दूसरा चारण आता है जिसे मारवणी ने सामने भेजा था। वह कहता है कि वह चारण तो ऊमर का है जो मारवणी को अपनी स्त्री बनाने के लिये प्रयत्न करता है।

ढोला आगे चलता है। यहाँ पिंगळ का एक भारहट उसे मिलता है जो ढोला के सामने मारवणी के रूप की प्रशंसा करता है। चारण के प्रत्येक दूहे पर एक एक मोहर ढोला पुरस्कारस्वरूप देकर आगे बढ़ता है। ऊँट थक जाता है। इस पर ढोला उसे तेज चलने को कहता है।

उधर मारवणी रात को स्वप्न में ढोला से मिलती है। और माता से सब हाल कहती है। संध्या समय वह सहेलियों के साथ कुएँ पर जाती है। ढोला भी ऊँट को पानी पिलाने के लिये वहाँ पहुँचता है। यहाँ दोनों का मिलन होता है। मारवणी लौट जाती है और ढोला को लेने के लिये आदमी आते हैं। सत्कार के पश्चात् रात्रि में ढोला मारू का मिलन होता है।

अंतर

(१) रूपांतर नंबर २ में बनिये की कथा है जो रूपांतर नंबर १ में नहीं है।

(२) रूपांतर नंबर १ में आडावळा की घाटी पार करके ढोला ऊँट को पानी पिलाता और तेज चलने को कहता है फिर ऊमर का चारण और बीसू चारण मिलते हैं। रूपांतर नंबर २ में ऊँट को पानी पिलाकर उसके बाद ढोला आडावळा की घाटी को पार करता है। फिर ऊमर का चारण मारवणी का चारण और पूगळ का भारहट क्रमशः मिलते हैं। फिर ढोला ऊँट को तेज चलने के लिये कहता है।

(३) रूपांतर नं १ मे मारवणी स्वप्न का हाल सखियों से कहती है। नंबर २ में यह हाल माता से कहा गया है।

(४) रूपांतर नं २ मे कुएँ पर ढोला और मारवणी के मिलने का वृत्तांत है जो रूपांतर नं १ में बिलकुल नहीं है।

(५) रूपांतर नं १ में दंपतिविनोद में पहेलियाँ दी गई हैं। नंबर २ में ये नहीं हैं।

(६) रूपांतर नंबर २ की (ख) प्रति में एक उपाख्यान भी है। जो कुछ हेरफेर के साथ सौराष्ट्र की लोककथाओं में अब भी प्रसिद्ध है। लोक

में प्रसिद्ध होने के कारण बाद में ढोला मारू में भी जोड़ दिया गया होगा।

(४)

रूपांतर नम्बर १—ढोला पंद्रह दिन तक ससुराल में रहता है। फिर मारवणी को विदा कराकर नरवर चलता है। दूसरे दिन रात्रि को एक सूने स्थान म सब ठहरते हैं। रात को एक पीवणा साँप मारवणी को पी जाता है। ढोला मारवणी के साथ जल मरने को तैयार होता है पर एक योगी की मंत्रशक्ति से मारवणी जी उठती है। उधर ऊमरसूमरा मौका देख ही रहा था। जब उसने देखा कि ढोला मारवणी अकेले जा रहे हैं तो पीछा किया। मार्ग में उनको जा पकड़ा और बोला—ठाकुर, हम भी नरवर जा रहे हैं, साथ ही चलेंगे जरा ठहरकर अमल पाणी (जलपान) कर लो। ढोला को विश्वासघात की कोई आशंका नहीं थी। वह भी उतर पड़ा। ऊँट को पैर बाँधकर बिठा दिया गया और मारवणी उसके पास मुहरी (नकेल) पकड़कर बैठ गई। ढोला और ऊमर आदि मिलकर शराब पीने लगे। मारवणी के पीहर की एक डूमनी ऊमर के साथ थी। उसे सब षड्यंत्र मालूम था। उसने गाने के बहाने मारवाणी को सब बात कह दी और ऊँट को छड़ी से मारने के लिये कहा। ऊँट छड़ी से मारे जाते ही भागा। ढोला पकड़ने को दौड़ा तो मारवणी भी साथ पहुँच गई और उसने ढोला को ऊमर के षड्यंत्र का हाल कह सुनाया। दोनों तुरत ऊँट पर सवार हुए और भाग निकले। ऊँट का पैर खोल देने का ध्यान न रहा। उनको भागते देखकर ऊमर ने भी पीछे घोड़े दौड़ाए पर वह ऊँट को न पा सका। ढोला को भाग म एक चारण मिला जिसने ऊँट के पैर के बंधन की ओर ध्यान दिलाया। ढोला ने चारण के द्वारा छुरी से बंधन कटवाया और आगे चला। दूसरे दिन प्रातःकाल ऊमर को वही चारण मिला और उससे सब हाल जानने पर ऊमर निराश होकर अपने देश को लौट गया। ढोला कुशल घर लौट आया।

कई प्रतियों की कथा यहीं समाप्त हो जाती है। पर कुछ में मालवणी की मारवाड़ की निंदा तथा मारवणी की मालवा की निंदा और मारवाड़ की प्रशंसा के दूहे भी मिलते हैं।

रूपांतर नं० २ में भी कथा इसी प्रकार है।

(१) उसमें ढोला के नरवर पहुँचने के पश्चात् पिंगल के दहेज भेजने का भी वर्णन है।

(२) कुछ प्रतियों में योगी योगिनी की जगह शिव पार्वती का उल्लेख है।

(३) मारवाड़ की निंदा और प्रशंसा के दूहे इस रूपांतर में हैं।

पुर संबंध या प्रस्तावना

रूपांतर नंबर २ में सौदागर के आने के ऊपर तक की जो कथा है वह रूपांतर नंबर १ में नहीं पाई जाती। पर रूपांतर नंबर १ की दो प्रतियों में उसके कुछ दूहे—केवल दूहे चौपाइयाँ नहीं—पाए जाते हैं। इनमें से पहली (क) प्रति है और दूसरी (झ) प्रति।

(क) प्रति में मारवणी की उत्पत्ति और पूगळ में अकाल पड़ने तक की कथा के ११ दूहे हैं। इसके बाद गाहा से असली कथा आरंभ होती है। ये दूहे उस प्रति में सर्वथा अस्थानस्थित (out-of place) हैं। फिर रूपांतर नंबर २ की भाँति उनके बीच बीच में चौपाइयाँ न होने से उनका कथासूत्र बराबर नहीं मिलता।

(झ) प्रति में भी असली कथा की गाहा के पहले ये प्रस्तावना के दूहे हैं। परंतु इस प्रति के दूहे अधूरे नहीं पूरे हैं जिससे कथासूत्र बराबर मिलता जाता है। रूपांतर नंबर २ में बीच बीच में चौपाइयों से कथासूत्र मिलाया गया है पर इसमें चौपाइयों की आवश्यकता नहीं होती। इन दूहों के अंत में लिखा है—इति पुरसंबंध। और इसके बाद असली कथा गाहा से आरंभ की गई है। इसमें भी यह प्रस्तावना या पुर-संबंध अस्थानस्थित जान पड़ता है। मूल कथा के लिये उसकी कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

इस पुरसंबंध में कथा के पिंगळ आदि पात्रों का पूर्वपरिचय दिया गया है। अवश्य ही यह प्रस्तावना भाग आरंभिक मूल कथा का अंग न था। यह बाद में जोड़ा गया है और जोड़नेवाले का उद्देश्य नायक और नायिका के माता-पिता का परिचय देने के साथ साथ उनकी उत्पत्ति का हाल दे देने का था। यह प्रस्तावना कुशललाभ के समय से अवश्य पुरानी है। कुशललाभ को इसके कुछ ही बहुत थोड़े दूहे मिले। (क) प्रति में भी वही दूहे हैं जो कुशललाभ में हैं। (झ) ही एक ऐसी प्रति है जिसमें यह पूरी प्रस्तावना दूहों में है। परंतु एक पृष्ठ नष्ट हो जाने से प्रस्तावना के बीच के कुछ दूहे अप्राप्य हो गए हैं।

(न) प्रति में भी पूरी प्रस्तावना दूहों में है पर यह प्रति बहुत भ्रष्ट है और विश्वसनीय नहीं है। इसकी विचित्रता यह है कि कथा इसकी रूपांतर नंबर

२ के अनुसार है पर है यह रूपांतर नंबर १ की भाँति केवल दूहों में। रूपांतर नंबर १ की भाँति यह गाथा से आरंभ नहीं होती। आरंभ में न केवल दूहों में प्रस्तावना है और उसके आगे की कथा रूपांतर नंबर २ की भाँति चलती है। इसकी प्रस्तावना आशय में (क) की प्रस्तावना से मिलती है पर इसमें दूहों का रूप बहुत कुछ विकृत हो गया है। नए दूहे भी बहुत से हैं।

इस प्रस्तावना के पात्र जालोरपति देवड़ा चाचिगदेव और देवड़ा सामंतसी, गुजरात नरेश अखयचंद या उदयादित्य उसका पुत्र रणधवल, पूगल का राजा पिंगल, उसकी स्त्री और सामंतसी की कन्या उमा आदि हैं। इनमें पिंगल और उमा मूल कथा में भी आते हैं। देवड़ा सामंतसी जालोर का राजा था और उसके शिलालेख संवत् १३३६ से १३५४ तक के मिलते हैं। चाचिगदेव उसका पिता था। उसने संवत् १३१९ से लेकर १३३४ तक तो निश्चित रूप से जालोर में राज्य किया। गुजरात के राजा चावड़ा अखयचंद और रणधवल का उल्लेख अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। गुजरात में चावड़ों का राज्य संवत् ८२१ से १ १० तक रहा था। इस पिछले संवत् के आसपास सोलंकियों ने उनका उच्छेद कर डाला। उधर कछवाहा ढोला का समय संवत् १ के पूर्व आता है। पूगल में पँवारों का राज्य ११ के पहले ही नष्ट हो चुका था अतः पूगल का परमार राजा पिंगल सामंतसिंह का समकालीन नहीं हो सकता। इस प्रकार इस प्रस्तावना की इतिहाससंबंधी बातें इतिहास से मेल नहीं खातीं। इस प्रस्तावना का निर्माण सोलहवीं शताब्दी में कहीं हुआ है ऐसी संभावना जान पड़ती है।

(३) ऐतिहासिक विवेचन

काव्य की कथा का मूल आधार ऐतिहासिक है। राजस्थान के प्राचीन इतिहास की पूरी पूरी खोज अभी तक नहीं हुई अतः यह कहना असंभव सा है कि कथा में ऐतिहासिकता कितनी है। नल और ढोला ऐतिहासिक व्यक्ति हैं और कछवाहा राजपूतों की ख्यातों में उनके उल्लेख मिलते हैं। ढोला का विवाह मारवणी के साथ हुआ था इसका उल्लेख भी ऐतिहासिक ग्रंथों एवं लोककथाओं में यत्र तत्र मिलता है।

इस काव्य में ढोला को नरवर के राजा नल का पुत्र बताया गया है। उसका दूसरा नाम साल्हकुमार कहा गया है। यह किस वंश का था इस

विषय में कहीं कुछ नहीं कहा गया है। कुछ उत्तरकालीन प्रतियों के अंत में एक दूहा मिलता है—

'चढ़ मढ़ीमाची मारवी, प्रिय ढोलउ चहुआण।
बदली बनमी मारवी दढ़कउ पढ़ु कुराण'।

इसका निम्नलिखित पाठांतर भी मिलता है—

मारू ढोलो बनमिया स्वाम प तलाव।
बन मटियाणी मारवर प्रिय ढोलो चहुआण'॥

इससे ढोला का चौहान और मारवणी का भाटी होना सिद्ध होता है पर समस्त प्राचीन प्रतियों के अनुसार मारवणी परमार वंश की थी। इस प्रकार ढोला का चौहान होना भी संभव नहीं क्योंकि नरवर में चौहानों का राज्य कभी नहीं हुआ और न चौहान वंश में नल और ढोला नाम के राजाओं के होने का ही कहीं उल्लेख मिलता है। उक्त दोहे का एक दूसरा पाठांतर भी एकाध प्रति में मिलता है जो इस प्रकार है—

अंबे ्बा लोक पुराविया परणी पढे पुराण।
चढ़ मटियाणी मारवणि ढोलो कूरम राण'॥

इसके अनुसार ढोला कूर्म या कछवाहा सिद्ध होता है जो ठीक है। पर इसमें मारवणी भटियाणी अर्थात् भाटी वंश की ही कही गई है जो ठीक नहीं। बात यह है कि यह दोहा बहुत पीछे का बना हुआ है। उस समय लोगों को ढोला और मारवणी के वंशों का ठीक ठीक ज्ञान न था। उस समय पूगल में भाटियों का राज्य हो गया था अतः सबने मारवणी को भी भाटी वंश की मान लिया।

कछवाहा वंश की ख्यातों में नल और ढोला का स्पष्ट वृत्तांत मिलता है[1] और इस ढोला को मारवणी का पति कहा गया है अतः इसमें तो कोई संदेह नहीं रह जाता कि वह कछवाहा राजपूत था। मारवणी के विषय में हम आगे चलकर लिखेंगे।

ढोला कब हुआ इसका निश्चित पता इतिहास से नहीं चलता। कछवाहों का राज्य पहले नरवर में था जो राजा नल का बसाया हुआ माना जाता है। पीछे सं० १ १४ से कुछ पूर्व उन्होंने ग्वालियर को अपने अधिकार में करके उसे अपनी राजधानी बनाया[2]। सं० ११६ तक उनका राज्य

1 देखो राजस्थान, ओझाजी द्वारा संपादित ओझाजी का टिप्पण वं० २६ पृष्ठ १०१।

2 वही पृष्ठ १०१।

ग्वालियर में रहा। नरवर में भी उनकी शाखा राज्य करती रही जिसने सं ११७७ तक वहाँ निश्चित रूप से राज्य किया[1]। हुमायूँ के शासनकाल म नरवर फिर कछवाहों को मिल गया था[2]।

कछवाहों के जो शिलालेख मिले हैं उनमें नल और ढोला के नाम नहीं मिलते। कछवाहों की ख्यातों में लिखा है कि कछवाहा वंश के राजा नल ने नरवर का किला बनवाया जिसका पुत्र ढाला और ढोला का पुत्र लखमण हुआ तथा लखमण के पुत्र वज्रदामा ने ग्वालियर का किला बनवाया। परन्तु यह पिछला कथन विश्वास के योग्य नहीं है क्योंकि ग्वालियर का किला वज्रदामा से पूर्व ही बना हुआ था और पडिहारों के अधिकार में था। वज्रदामा ने इस किले को पडिहारों से जीत लिया और उसे अपनी राजधानी बनाया[3]।

मुँहणोत नैणसी की ख्यात राजस्थान के इतिहास का एक सुप्रसिद्ध ग्रंथ है। उसमें ढोला को नळवर के संस्थापक नल का बेटा और मारवणी का पति बताया है। साथ ही यह भी लिखा है कि ग्वालियर को ढोला ने बसाया था। उसमें भी लखमण को ढोला का बेटा और वज्रदामा को ढोला का पौत्र बताया गया है[4]।

शिलालेखों म कछवाहों की जो वंशावलियाँ मिलती हैं वे लखमण से आरंभ होती हैं। वज्रदामा का समय संवत् १ ३४ के लगभग है क्योंकि इस संवत् का उसका एक लेख मिला है। अतः नल और ढोला को उसका परदादा और दादा मानकर उनका समय विक्रम की दसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध निश्चित कर सकते हैं। इस समय के लगभग पूगळ और माळवा में भी परमारों के राज्य स्थापित हो चुके थे।

कई लोग जयपुर राज्य के संस्थापक दूलहराय को ढोला मानते हैं। टाड ने अपने सुप्रसिद्ध राजस्थान के इतिहास म ऐसा ही लिखा है[5]। उसने तो दूलहराय का नाम ही ढोलाराय लिखा है। उसके अनुसार संवत् ९५१ के

---

१ टाड राजस्थान आम्आजी द्वारा संपादित पृष्ठ १०९।

२ वही पृष्ठ १०९।

३ वही पृष्ठ १०१।

४ डा टेसीटरी का डिस्क्रिप्टिव कैटेलग ऑफ बार्डिक एंड हिस्टॉरिकल मैनुस्क्रिप्ट्स् सेक्शन १ पार्ट १ पृष्ठ २२।

५ टाड-कृत एनाल्स एंड एंटिक्विटीज् ऑफ् राजस्थान विलियम क्रुक द्वारा संपादित भाग ३ पृष्ठ १३२८-१३३१।

लगभग कछवाहा वंश में नल नाम का राजा हुआ जिसने नैषध या नरवर का राज्य कायम किया। उसकी तेंतीसवीं पीढ़ी में सोढ़देव हुआ जिसका पुत्र ढोलाराय था। सोढ़देव की मृत्यु के समय ढोलाराय बालक था अतः उसका राज्य उसके चाचा ने छीन लिया। ढोला की माता बालक को लेकर पश्चिम की ओर चली गई और वहाँ उसने वर्तमान जयपुर से कुछ दूर खोगाँव के मीणों के यहाँ आश्रय लिया। बड़े होने पर ढोला ने अपने आश्रयदाता को सहायकों सहित धोखे से मार डाला और स्वयं राजा बन गया। इस प्रकार संवत् १ २१ में उसने वर्तमान जयपुर राज्य की नींव डाली। कुछ समय बाद ढोला ने अजमेर की राजकुमारी मारवणी से विवाह किया। एक समय जब ढोला देवी के दर्शन करके लौट रहा था तब मीणों ने उस पर हमला किया और सहायकों समेत मार डाला। मारवणी गर्भवती थी। वह किसी प्रकार बच निकली। उसके कांकिल नामक पुत्र हुआ जिसने अपना राज्य फिर से जीत लिया।

इस वृत्तांत में ऐतिहासिक तथ्य बहुत कम है। जयपुर राज्य का संस्थापक दूलहराय संवत् १ २१ के बहुत बाद हुआ है। वज्रदामा के पुत्र मंगलराज का छोटा बेटा सुमित्र था। उसकी चौथी पीढ़ी में ईशसिंह या ईश्वरसिंह हुआ जो पहलेपहल राजपूताने की ओर आया था। उसका पुत्र सोढ़सिंह का पुत्र दूलहराय था। कछवाहों की राजधानी राजपूताने में पहले दौसा में हुई, फिर आँबेर में। महाराज सवाई जयसिंह (१७४९–१८) के समय म जयपुर उनकी राजधानी हुई। वज्रदामा का समय संवत् १ १४ के आस-पास और उसके बड़े पौत्र कीर्तिवर्मा का समय संवत् १ ७८ के आसपास शिलालेखों और मुसलमानी तवारीखों से सिद्ध होता है। अतः कीर्तिवर्मा के अनुज सुमित्र का समय भी संवत् १ ७८ के लगभग होना चाहिए। दूलहराय उसका छठा वंशधर था अतः उसका समय संवत् १२ के लगभग माना जा सकता है (न कि १ २१ जैसा कि टाड ने लिखा है)। मारवणी को अजमेर की राजकुमारी बताना भी ठीक नहीं क्योंकि अन्यान्य ख्यातों तथा लोककथाओं से इसकी पुष्टि नहीं होती।

हमारी संमति मे जयपुर के दूलहराय के साथ इस कथा के नायक का कोई संबंध नहीं है क्योंकि वह दूलहराय न तो नरवर का था और न उसके पिता का नाम नल था। अंत में हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कथा

का नायक ढोला बज्रदामा के पिता लक्ष्मण का पिता था और उसका समय विक्रम की दसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध भाग था।

नळ—यह कछवाहा वंश का राजा था और नरवर या नळवर, जो नळपुर का अपभ्रंश रूप है इसी का बसाया माना जाता है। जैसा कि ऊपर कह आए हैं; शिलालेखों में इसका नाम नहीं मिलता पर कछवाहों की ख्यातों में इसे लक्ष्मण के पिता ढोला का पिता और नरवर का संस्थापक कहा गया है। इसका समय संवत् ९५ और १ के बीच में हो सकता है।

टॉड ने लिखा है कि इसके पहले कछवाहों का राज्य पूर्व में था और रोहतासगढ़ उनकी राजधानी थी। नळ रोहतासगढ़ को छोड़कर पश्चिम में चला आया और नरवर को बसाकर वहाँ उसने नया राज्य कायम किया। नरवर की संस्थापना का समय टॉड ने संवत् १५१ दिया है जो सर्वथा अशुद्ध है। इस संवत् के लगभग तो नरवर के आसपास के भूखंड में गुप्तों का राज्य था।

कई लोग इस नळ का संबंध सुप्रसिद्ध पौराणिक राजा और दमयंती के पति नल से मिलाते हैं और नरवर को उसी का बसाया हुआ मानते हैं। किसी किसी लोककथा में तो ढोला को भी इसी नळ और दमयंती का पुत्र माना गया है। नरवर या नळपुर इस राजा का बसाया हुआ हो सकता है पर हमारी कथा के नळ का और इस नल का कोई संबंध नहीं।

मारवणी—इस काव्य में यह पूगळ के राजा पिंगळ की कन्या कही गई है पर उसके वंश का उल्लेख नहीं हुआ। कुशललाभ ने इसे परमार वंश की बताया है। (ग) प्रति में एक दूहा आया है जो इस प्रकार है—

मा ऊमादे देवड़ी नाना सामँतसीह।
पिंगळरा पम्मारड़ी कुमरी मारवणीह॥

पुरबंध का अधिकांश भाग कुशललाभ से पुराना है। उसने भी पिंगळ को परमार ही बताया है। लोककथाओं में तो यह परमार वंश का ही सिद्ध होता है। ढोला का समय हमने ऊपर संवत् १ के लगभग सिद्ध किया है। उस समय पूगळ में परमारों का ही राज्य था। परंतु ऊपर ढोला के विषय में लिखते हुए हमने जो दोहे उद्धृत किए हैं उनमें मारवणी को भटियाणी या भाटी वंश की बताया गया है। भाटियों का राज्य पूगळ में बहुत बाद में हुआ है। अतः मारवणी को किसी भी हालत में भाटी नहीं माना जा सकता।

पंजाब में भी मारवणी का एक गीत प्रचलित है जिसमें उसे सिंहलद्वीप में स्थित पिंगळगढ़ के राजा की कन्या बताया गया है। सिंहलद्वीप लोक-कथाओं का एक अत्यंत प्रिय स्थान है। प्रत्येक प्रेमकथा का संबंध सिंहल द्वीप के साथ जोड़ दिया जाता है। (मिलाइए—जायसी का पद्मावत जहाँ पद्मावती सिंहलद्वीप की राजकुमारी मानी गई है)।

पिंगळ—यह मारवणी का पिता और पूगळ का राजा था। कथा में इसके वंश का निर्देश नहीं है पर मारवणी के प्रसंग में उल्लिखित चारणों से वह परमार ही सिद्ध होता है। पहले समस्त पश्चिमी राजस्थान में परमारों का एक विस्तृत साम्राज्य था जिसका मुख्य स्थान आबू के पास चंद्रावती नामक प्राचीन नगर था। आगे चलकर इस राज्य की अनेक शाखाएँ हो गईं जिनमें पूगळ भी एक था। पूगल के इतिहास की खोज अभी बिलकुल नहीं हुई है। अतः निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि यहाँ पिंगळ नाम का कोई राजा हुआ था नहीं और यदि हुआ तो कब हुआ। नैणसी ने परमार वंशों की जो वंशावलियाँ दी हैं उसमें पूगळ की वंशावली नहीं है और न पिंगळ का नाम कहीं आया है।

ऊमा देवड़ी—अध्य के ७९ और ८ नंबर के दूहों में मारवणी की माता का नाम ऊमा देवड़ी बताया गया है पर ये दोनों दूहे हमें बहुत पुराने नहीं जान पड़ते। रूपांतर नंबर १ (जो पुराना है) की किसी भी प्रति में ये दूहे उपलब्ध नहीं होते। रूपांतर नंबर २ इतना पुराना नहीं है। इस रूपांतर के साथ एक धुर संबंध पाया जाता है जो आरंभ में मूल कथा का भाग नहीं था। इस धुरसंबंध में ऊमादे और पिंगळ के विवाह की कथा वर्णित की गई है। उसमें ऊमादे को आबू के देवड़ा शाखा के चौहानवंशीय राजा सामंतसिंह की कन्या बताया गया है। (ग) प्रति के एक दूहे में भी जो ऊपर उद्धृत किया गया है यही बात कही गई है। सामंतसिंह का समय विक्रम की चौदहवीं शताब्दी का मध्यभाग है। ऊपर के ७९ और ८ नंबर के दूहों में ऊमा नाम इसी धुरसंबंध से लिया गया जान पड़ता है।

धुरसंबंध की कथा अवश्य ही बाद में जोड़ी हुई है अतः हमारी संमति में मारवणी की माता का नाम ऊमादे नहीं हो सकता। यदि हो तो वह देवड़ा सामंतसी की कन्या नहीं हो सकती। सामंतसिंह के समय में पूगळ में परमारों का राज्य होना भी संभव नहीं जान पड़ता (और धुर

संबंध में पिंगल को परमार बताया है जिससे उसकी अनैतिहासिकता स्वयं सिद्ध होती है)।

मालवणी—इस नाम का अर्थ मालवा की राजकुमारी है। मालवणी मालवा के राजा की कन्या बताई गई है। (देखिए दूहा नं ६४)। पर उसका नाम नहीं दिया गया है। कुशललाभ ने उस राजा का नाम भीम लिखा है। उसके वंश का उल्लेख उसने भी नहीं किया है। मालवा में उस समय परमारों का राज्य था पर भीम नाम का कोई राजा वहाँ नहीं हुआ। वाक्पतिराज वैरिसिंह द्वितीय और श्रीहर्ष ने उस समय के आसपास राज्य किया था। यह भी संभव है कि मालवणी राजा की ही कन्या न होकर राजा के किसी संबंधी या सामंत की कन्या हो।

ऊमरसूमरा—सूमरों को अरबी तवारीखों में अरबी जाति के मुसलमान लिखा है पर हिंदू कहते हैं कि वे पहले भाटी थे और जब सिंध में मुसलमानों का राज्य हुआ तो अन्य जातियों के साथ वे भी मुसलमान बन गए। संवत् २११ के लगभग उन्होंने ठट्ठे से मुसलमान हाकिम को निकाल कर वहाँ अपना राज्य कायम किया। ऊमर नाम के दो राजा इस वंश में हुए। एक का समय सं १२ के लगभग और दूसरे का सं ११ के लगभग आता है। दोनों का ही समय ढोला के समय से मेल नहीं खाता। इसलिये या तो ऊमरवाला प्रसंग बाद में जोड़ा गया है या यह ऊमर कोई साधारण सरदार था राजा नहीं।

परमारों में भी ऊमरसूमरा नाम की दो शाखाएँ पाई जाती हैं। कुछ विद्वानों का कथन है कि परमारों की ऊमर शाखा से ये शाखाएँ निकली हैं। ऊमर का परमार होना ठीक नहीं जान पड़ता क्योंकि राजपूतों के अनुसार परमार का विवाह परमार के साथ नहीं हो सकता। अत ऊमर की मारवणी को अपनी स्त्री बनाने की चेष्टा उस हालत में संभव नहीं हो सकती।

ओझाजी अपने पत्र में लिखते हैं कि सूमरा सिंध में थे परंतु किस वंश के थे यह ठीक ठीक निश्चित नहीं हो सका।

पुरसंबंध या उपोद्घात के ऐतिहासिक व्यक्ति

सामंतसी देवड़ा—देवड़ा चौहानों की एक शाखा है। ये देवड़ा क्यों और कब कहलाए इस विषय में कुछ निश्चित पता नहीं चलता। ख्यातों में लिखा है कि जालोर के एक सोनगरे राजा के यहाँ देवी जी होकर रही थी

जिससे उसकी संतान देवड़ा कहलाई। और यह कहते हैं कि वंश के किसी राजा का नाम या दूसरा नाम, देवराज था जिससे यह नाम पड़ा।

सामंतसी जालोर का राजा था। जालोर पहले परमारों के हाथ में था। संवत् १२१८ के कुछ पूर्व नाडोल के चौहान राजा आल्हण के तीसरे बेटे कीर्तू ने उसे परमारों से छीन लिया। जालोर का दूसरा नाम सुवर्णगिरि था जिससे यहाँ के शासक चौहान सोनगरा चौहान कहलाने लगे। कीर्तू के वंश में चाचिगदेव हुआ जिसका समय सं० १३१९ से १३३४ के लगभग है। चाचिगदेव का पुत्र सामंतसी हुआ जिसके शिलालेख १३३९ से १३५४ तक के मिले हैं। उसके पुत्र कान्हड़देव से अलाउद्दीन खिलजी ने जालोर छीन लिया।

आबू पर भी पहिले परमारों का अधिकार था। संवत् १३६८ के लगभग कीर्तू के पुत्र समरसिंह के दूसरे पुत्र के वंशज बीजड़ के पौत्र लुंभा ने उसे परमारों से छीन लिया। सामंतसी का आबू पर अधिकार होने की जो बात पूर्वसंबंध में कही गई है वह ठीक नहीं जान पड़ती।

उदैचंद (या उदयादित्य) और रिणधवल—पूर्वसंबंध में इन्हें चावड़ा वंशीय बताया गया है और उदैचंद को गुजरात का अधीश्वर कहा गया है। चावड़ों का राज्य गुजरात में ८२१ से ९९७ तक रहा। उनमें उदयादित्य या उदैचंद और रिणधवल नाम के कोई राजा नहीं हुए। अन्यत्र भी उनका कहीं उल्लेख नहीं मिलता। लोककथाओं में मालवा के परमारों में उदैचंद या उदयादित्य का और उसके कुमार रिणधवल का नाम आता है। उदयादित्य का समय इतिहास के अनुसार सं० ११४० के आसपास है। यह समय न तो सामंतसी के समय से मेल खाता है और न ढोला के समय से।

इस पूर्वसंबंध की सभी बातें इतिहास के विरुद्ध मालूम पड़ती हैं जिससे स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि यह प्रारंभ में मूलकथा का भाग न था पर बहुत बाद में जोड़ा गया था जब कि लोग मूलकथा की इतिहाससंबंधी बातें सर्वथा भूल गए थे।

(४) कवि या लेखक

किसी ग्रंथ को हाथ में लेते समय सबसे पहले यह प्रश्न पाठक के मन में उपस्थित होता है कि इसका निर्माता कौन है। लेखक की जीवनी तथा उसकी परिस्थिति के संबंध में जानकारी प्राप्त करना और उसके व्यक्तित्व को

उसकी कृति में प्रतिफलित देखकर आनंदलाभ करने की हममें स्वाभाविक रुचि होती है। काव्य जीवन की आलोचना है और इस काव्यमयी आलोचना के व्यापक क्षेत्र में कवि न केवल बाह्य जीवन को ही सीमाबद्ध करता है वरन् कवि का आंतरिक जीवन भी इसी आलोचना के अंतर्गत आ जाता है। परंतु लोकगीत और इतर साहित्यिक रचनाओं में बड़ा अंतर होता है। इतर रचनाओं के लिये साहित्यनिर्माता के लिये साहित्यकला में कुशल होना आवश्यक होता है परंतु लोकगीत एक ऐसा प्राचीन काव्य है कि जिसका निर्माता यदि कोई हो सकता है तो देशविशेष की प्राचीनकालीन परिस्थिति और साधारण जनता का सामूहिक रागात्मक अभिरुचि ही हो सकती है। यद्यपि रीति और साहित्यशास्त्र के बहाव में सदियों तक बह चुकने के बाद आज हमारी कल्पना काव्योत्पत्ति के इस प्रकार की संभाव्य और युक्तिसंगत समझने में असमर्थ है परंतु यदि हम प्राचीन समय के मौखिक परंपरागत साहित्य के प्रवाह और परिस्थिति को ध्यानपूर्वक देखें तो यह बात सहज ही समझ में आ सकेगी। इन सिद्धांतों के अनुसार ढोलामारू की प्रेमगाथा को किसी व्यक्तिविशेष कवि की कृति न मानकर भी हमको यह कल्पना करने में कठिनाई नहीं होती कि यह काव्य मौखिक परंपरा के प्राचीन काव्ययुग की एक विशेष कृति है और संभव है कि तत्कालीन जनता की साधारण अभिरुचि को ध्यान में रखकर उससे प्रेरित होकर किसी प्रतिभा संपन्न कवि ने जनता के प्रीत्यर्थ उसी के मनोभावों को वर्तमान काव्यरूप में बदलकर उसके समक्ष उपस्थित कर दिया हो और जनता ने बड़ी प्रसन्नता से इसे अपनी ही सामूहिक कृति मानकर कंठस्थ किया हो। ऐसी दशा में व्यक्तिविशेष कवि होने पर भी उसके व्यक्तित्व का सामूहिक अभिरुचि के प्रबल प्रवाह में लुप्तप्राय हो जाना संभव है। अतएव हमारा अनुमान है कि व्यक्तिविशेष का इसके बनाने में कुशल हाथ स्पष्ट दृष्टिगोचर होने हुए भी सामूहिक भावनाओं की एकता और सहानुभूति एकत्रित होने के कारण कवि का व्यक्तित्व समूह में लुप्त हो गया है और अंत में मौखिक परंपरा से चला आता हुआ यह काव्य हमको किसी व्यक्ति विशेष कवि की कृति के रूप में नहीं मिला प्रत्युत जनता के काव्य के रूप में उपलब्ध हुआ है।

रूपांतर नंबर २ में जो पुस्तक का प्रस्तावना मिलती है उसके चतुर्थ छंद में लिखा है—

गाहा गूढ़ा गीत गुण कवित कथा कल्लोल[1]।
चतुर तणा चित रंजवण कहियइ कवि कल्लोल[2] ॥

इस दूहे के आधार पर कल्पना की जा सकती है जैसा एकाध महानुभाव ने किया भी है कि इस काव्य का निर्माता कोई कल्लोल नाम का कवि होगा। ऐसा होना असंभव नहीं है पर फिर भी हम वर्तमान स्थिति में कल्लोल को इसका निर्माता नहीं मान सकते। पहले तो पुरखवाला भाग आरंभ में मूलकथा का भाग नहीं था और बाद में जोड़ा हुआ है। दूहोंवाले रूपांतरों की प्रतियों में यह भाग मिलता भी नहीं। अतः उसकी प्रामाणिकता स्वीकार नहीं की जा सकती। दूसरे अब तक की हुई खोज से कल्लोल नाम के किसी कवि का पता नहीं चलता। यह नाम किसी व्यक्ति का होना अधिक संभव भी नहीं जान पड़ता। अतः जब तक इस विषय में और अधिक बातें न मालूम हो जायँ तब तक 'ढोला मारूरा दूहा' इस लोकप्रिय के रचयिता के नाम को हम अंधकार में रहने देना ही उचित समझते हैं। उक्त दूहे में कल्लोल का सीधा सादा अर्थ आमोद-प्रमोदपूर्ण अर्थात् उमंग के साथ कही हुई, मनोरंजक रचना लेना ही ठीक जान पड़ता है।

(५) काव्य की संक्षिप्त कथा

किसी समय पूगल में पिंगल और नरवर में नल नामक राजा राज्य करते थे। पिंगल के मारवणी नाम की एक कन्या थी और नल के ढोला या साल्ह कुमार नाम का एक पुत्र था। एकबार पूगल देश में अकाल पड़ा तो पिंगल सपरिवार नल के देश म चला गया जहाँ नल ने उसे बड़े आदर के साथ ठहराया। ढोला को देखकर पिंगल की रानी रीझ गई और उसने राजा पर जोर डालकर अपनी कन्या मारवणी का विवाह ढोला के साथ करवा दिया। उस समय ढोला की अवस्था तीन वर्ष की और मारवणी की डेढ़ वर्ष की थी। छोटी अवस्था होने के कारण पिंगल ने मारवणी को ससुराल में नहीं रखा और पूगल लौटते समय अपने ही साथ पूगल ले आया। कई वर्ष बीत गए। उधर राजा नल ने पूगल को दूर जानकर और रास्ता भयपूर्ण समझकर ढोला का दूसरा विवाह मालवा की राजकुमारी मालवणी के साथ

---

१ पाठांतर—कहति कथा कहतिग कथा, कलोल किलोल उल्लोल।
२ किल्लोल।

कर दिया और उसके पूर्व विवाह की बात उससे छिपा रखी। ढोला और माळवणी प्रेमपूर्वक बड़े आनंद से रहने लगे।

इधर मारवणी बड़ी हुई तो उसके पिता पिंगळ ने ढोला को बुलाने के लिये कई दूत भेजे, परंतु माळवणी ने सौतियाडाहवश पूगळ से आनेवाले रास्ते पर ऐसा प्रबंध कर रखा था कि जिससे दूत ढोला के पास संदेश लेकर पहुँचने से पहले ही मार डाले जाते थे। मारवणी अब युवती हो गई। एक दिन सोती हुई उसने स्वप्न में ढोला को देखा। उसकी विरहपीड़ा जागरित हो उठी। उसी समय नरवर की ओर से घोड़ों का एक सौदागर पूगळ में आया। उसने ढोला के दूसरे विवाह की बात पिंगल से कही। राजा पिंगळ ने ढोला को बुलवाने के लिये अपने पुरोहित को भेजना चाहा पर रानी के कहने से ढाढ़ियों को इस कार्य के लिये चुना। मारवणी ने भी अपना संदेश ढाढ़ियों को कह दिया।

ढाढ़ियों ने अपने गान द्वारा माळवणी के आदमियों (पहरेदारों) को प्रसन्न कर लिया और उन्होंने उन्हें निष्पाप याचक समझकर आने दिया। ढोला के महल के नीचे डेरा डालकर ढाढ़ियों ने रातभर मॉंड राग के करुण स्वर में मारवणी का प्रेमसंदेश गाया जिसको ढोला ने सुना। गान को सुनकर ढोला व्याकुल हो उठा और प्रातःकाल होते ही उसने उन्हें बुला भेजा और सब हाल मालूम करके यथायोग्य उत्तर और इनाम देकर विदा किया। ढोला के चित्त में उत्कंठा और व्यग्रता बढ़ गई। माळवणी ने चतुरतापूर्वक पति के दिल की बात जान ली। ढोला ने मारवणी को लिवा लाने की इच्छा प्रकट की परंतु माळवणी ने अनुनय-विनय करके ग्रीष्म और वर्षाभर ढोला को रोक रखा। अंत में शरद् ऋतु की एक आधी रात्रि को माळवणी को सोती हुई छोड़कर ढोला चुपके से एक तेज चालवाले ऊँट पर सवार होकर पूगळ की ओर चल पड़ा। प्रस्थान करते समय ऊँट की बलबलाहट को सुनकर माळवणी जागी और ढोला को न पाकर दुखी हुई। पीछे से उसने अपने तोते को समझाकर पति को लौटाने के लिये भेजा। तोते ने चंदेरी और बूँदी के बीच में एक तालाब पर ढोला को दँतुवन करते हुए पाया और कहा कि उसके विरह में माळवणी मर गई है। ढोला समझ गया और उसने उत्तर में तोते से कहा कि तू जाकर यथाविधि उसकी अंत्येष्टि कर दे। तोता लौटा। माळवणी निराश हो गई। ढोला आगे चला। तीसरे पहर उसने आडावळा पहाड़ को पारकर लिया। मार्ग में ढोला को ऊमरसूमरा का एक चारण मिला जो ऊमर को

ओर से मारवणी के साथ उसके विवाह का प्रस्ताव लेकर पिंगल के पास गया था, परंतु हताश होकर लौट आ रहा था। उसने ईर्ष्यावश ढोला से कहा कि मारवणी तो अब बुढ़िया हो गई है, तू जाकर क्या करेगा? यह सुनकर ढोला को चिंता और विरक्ति होने लगी। परंतु थोड़ी दूर आगे जाने पर वीसू नाम का दूसरा चारण मिला जिसने मारवणी का सच्चा सच्चा हाल बताकर ढोला की चिंता मिटाई।

अब ढोला पूगल पहुँच गया। ससुराल में बड़ा स्वागत हुआ। बधाइयाँ हुईं। पिंगल ने खूब आनंदोत्सव मनाए। मारवणी के हर्ष का पार न रहा। जिस प्रकार सूखी हुई वल्लरी समय पर वर्षाजल पा जाने से पुनः लहलहा उठती है उसी तरह मारवणी भी पुनर्जीवित हो उठी। पंद्रह दिन आनंद भोगकर—बहुत सा दहेज धन, दास दासी लेकर—मारवणी सहित ढोला नरवर को विदा हुआ। मार्ग में एक विश्रामस्थल पर सोती हुई मारवणी को पीवणे साँप (राजस्थान के एक जहरीले साँप) ने पी लिया। सबेरे जागने पर ढोला ने मारवणी को मरी पाया। वह विलाप करने लगा और चिता बनाकर साथ जलने को उद्यत हुआ। जिस समय चिताप्रवेश की तैयारी हो रही थी उस समय एक योगी और योगिन इस मार्ग पर आ निकले। योगिनी के अनुरोध से योगी ने मारवणी को अभिमंत्रित जल द्वारा जीवित कर दिया। ढोला प्रसन्न हुआ और आगे चला।

इस समय तक ढोला की यात्रा की खबर सूमरे ऊमर को हो गई थी। मारवणी को छीन लेने की इच्छा से वह फौजसहित बीच में आ डटा। ढोला से मिलने पर उसने कपटपूर्वक उसका खूब सत्कार किया। ढोला उसकी भोली की बातों में आकर उसके साथ ठहर गया। ऊमर की सेना के साथ मारवणी के पीहर की एक डूमणी (गायिका) थी। उसने गाते हुए, इशारे से मारवणी को इस धोखे और षड्यंत्र की बात समझा दी। समझकर मारवणी ने अपने ऊँट को जोर से छड़ी से मारा। ऊँट भाग खड़ा हुआ। ढोला जब ऊँट को सम्हालने के लिये भागा तब मारवणी ने उसको चुपके से षड्यंत्र की बात कह सुनाई। झटपट दोनों ऊँट पर सवार हो गए। ऊँट पूरे वेग से दौड़ पड़ा और देखते देखते कोसों दूर निकल गया। ऊमर ने सेनासहित पीछा किया परंतु उसे हताश होकर वापिस लौटना पड़ा।

ढोला मारवणीसहित सकुशल नरवर पहुँच गया। उसके पिता ने धूमधाम से दोनों का स्वागत करके महलों में प्रवेश कराया। अब ढोला

मारवणी और मालवणी तीनों आनंदपूर्वक सुख से रहने लगे। एक दिन मालवणी ने मारवाड़ देश की निंदा की। उत्तर में मारवणी ने मालवा की बुराई और मारवाड़ की प्रशंसा की। ढोला ने दोनों को समझाकर झगड़ा मिटा दिया।

(६) लोकगीत (Ballad)

ऊपर कहा जा चुका है कि ढोला मारूरा दूहा एक जनप्रिय लोकगीत है। उसके विषय के कुछ कहने के पूर्व इस बात पर विचार कर लेना उचित होगा कि लोकगीत या गीतकाव्य (Ballad) किसे कहते हैं और उसकी क्या क्या विशेषताएँ हैं। हिंदी के लिये यह एक रोचक और नया विषय है। इसकी विवेचना करने के लिये हमें पाश्चात्य विद्वानों की खोज से लाभ उठाना पड़ेगा और उनके सिद्धांतों का अनुशीलन करने से हमें इस विषय में कई नई बातें मालूम होंगी।

डाक्टर रवींद्रनाथ ठाकुर के कुछ आधुनिक गीतों की समीक्षा करते हुए एक स्थान पर भारतीय इतिहास के विद्वान् सर यदुनाथ सरकार ने लोकगीत (Ballad) की व्याख्या यों की है—

Rapidity of movemennt simplicity of diction primary emotions of universal appeal, action rather than subtle analysis broad striking character isation thumb nail sketches of backgrond and the sparest use (or rather complete avoidance) of literary artifices—these are the essential requisites of the truo ballad

(अर्थात्—प्रबंध की द्रुतगति, शब्दविन्यास की सरलता, विश्वव्यापक अपीलवाले मर्मांतिक और प्राथमिक मनोराग, सूक्ष्म मनोविश्लेषण के बजाय व्यापार की प्रधानता, स्थूल किंतु प्रभावोत्पादक चरित्रचित्रण, पीठिकाभूमि अथवा दृश्यभाग का स्थूल अंकन, साहित्यिक कृत्रिमताओं का न्यूनातिन्यून प्रयोग या उनका बहिष्कार—सच्चे लोकगीत की ये विशेष आवश्यक विशेषताएँ हैं।)

ये तो साधारण बातें हैं जो प्रत्येक लोकगीत (Ballad) में पाई जाती हैं। यदि सूक्ष्म दृष्टि से विश्लेषण करके देखा जाय तो कई विशेषताएँ

लोकगीत में दृष्टिगोचर होती हैं जो इधर साहित्य विभागों में नहीं पाई जातीं। इनमें से कुछ का उल्लेख नीचे किया जाता है—

(१) सबसे पहली जानने योग्य बात यह है कि लोकगीत को कलात्मक साहित्य (Literature) का अंग न मानकर अनुभूति (Lore) की परंपरा में समझना चाहिए। हम पहले कह आए हैं कि कलात्मक कविता (साहित्य) और लोकगीत की प्राकृतिक कविता में रात दिन का अंतर है। अँगरेजी गीतकाव्यों के अनुसंधान करनेवाले एक विद्वान्, प्रोफेसर किट्रिज, लिखते हैं—

In studying ballads then we are studying the poetry of the folk and the poetry of the folk is different from the poetry of art."

(अर्थात्—इस प्रकार, लोकगीतों के अध्ययन करने का अर्थ जनता के काव्य का अध्ययन करना है और जनता का काव्य कलापूर्ण काव्य से भिन्न है।)

इसी विषय के दूसरे विद्वान् मिस्टर सिजविक लिखते हैं—

It is older than literature, older than alphabet It is lore and belongs to the illiterate."

(अर्थात्—लोकगीत की सृष्टि साहित्य की सृष्टि से यहाँ तक कि वर्ण माला की सृष्टि से भी पहले की है; यह अनुभूति का अंग है और निरक्षर जनता की संपत्ति है।)

इन उद्धरणों का आशय यह है कि साहित्य की उत्पत्ति से बहुत पहले, जब मनुष्यों ने पढ़नालिखना नहीं सीखा था तभी से मौखिक आवृत्ति के रूप में लोकगीत हमारी पैतृक संपत्ति के रूप में अब तक चले आ रहे हैं। अतएव धारणा यह होती है कि लिखित साहित्य से पूर्वकालीन होने के कारण हम लोकगीतों को साहित्य संज्ञा में नहीं गिन सकते। परंतु पाश्चात्यों का यह विचार सर्वथा युक्तिसंगत नहीं जँचता। उनकी साहित्य की परिभाषा जितनी संकुचित है उतना ही उनका यह विचार भी संकुचित है। भारतीयों ने साहित्य और काव्य की सीमा को मानवजीवन की सीमा से मिलाकर उतना ही व्यापक और विस्तृत रखा है। कोई भी रसपरिपुष्ट मानवविचार, चाहे वह जीवन के किसी अंग संबंध क्यों न रखता हो साहित्य और काव्य का विषय बन सकता है, फिर चाहे वह लिखित रूप में हो अथवा मौखिक रूप में।

(२) गीतकाव्यों के संबंध में दूसरी स्मरण रखने योग्य बात है उनकी मौखिक परंपरा (Oral Tradition)। प्रत्येक गीतकाव्य अपना वर्तमान लिखित स्थूलरूप धारण करने से पहले मौखिक परंपरा के तरल रूप में प्रचलित रहा है और समयांतर में भूतकाल से वर्तमान में आने का उसका मार्ग मौखिक आवर्तन अवश्य रहा है। आज भी हम देहातों में जाकर देखें तो हजारों गीत आख्यायिकाएँ एवं दंतकथाएँ गाँव के अपठित लोगों के मुख से अथवा चारण भाट, बंदीजनों के मुख से सुनने को मिलेंगी। इनमें से कुछ, अधिक हृदयस्पर्शी होने के कारण विशेष प्रचलित हो जाते हैं और अंत में किसी अक्षरज्ञाता उत्साही पुरुष के हाथ में पड़कर पुस्तक के लिखित रूप को धारण कर लेते हैं। देश काल और वक्ता के भेद के अनुसार इन मौखिक परंपरागत गीतों के अनेक रूप उपलब्ध होते हैं, जिनमें से कई लोकप्रिय हो जाते हैं। इस विषय में प्रो किटरिज लिखते हैं—

"To this oral literature education is no friend, culture destroys it with amazing rapidity When a nation learns to read it begins to disregard its traditional tales it feels a little ashamed of them and finally it loses both the will and the power to remember and transmit them What was once the folk as a whole becomes the heritage of the illiterate only and soon, unless it is gathered up by the antipuary vanishes altogether

(अर्थात्—शिक्षा इस मौखिक साहित्य की मित्र नहीं होती। सभ्यता भी इसे आश्चर्यजनक शीघ्रता के साथ नष्ट कर देती है। जब कोई जाति लिखनापढ़ना सीख जाती है तो अपनी परंपरागत कथाओं की अवहेलना करने लग जाती है—उनसे वह थोड़ी बहुत लज्जा भी अनुभव करने लगती है—और अंत में वह उनको याद रखने तथा पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित करने की इच्छा एवं शक्ति से हाथ धो बैठती है। जो चीज कभी समस्त जनता की थी वह केवल निरक्षरों की संपत्ति रह जाती है और यदि पुरातत्त्व-प्रेमियों द्वारा संगृहीत न कर ली जाय तो सदा के लिये विलुप्त हो जाती है।)

संक्षेप में, लोकगीतों के वर्तमानकालीन ह्रास का यही मुख्य कारण है।

(३) तीसरी विशेषता यह है कि लोकगीतों में कवि अथवा काव्य-निर्माता के व्यक्तित्व का सर्वथा अभाव रहता है। उत्तरकालीन कलात्मक कविता में कवि का व्यक्तित्व उसकी कृति में प्रतिफलित होता रहता है। गीतकाव्यों में अव्यक्तित्व की विशेषता रहती है। लोकगीतों के सबसे बड़े पाश्चात्य पंडित और अन्वेषणकर्ता प्रोफेसर चाइल्ड (prof. F J Child) ने दोनों प्रकार के काव्यों का भेद स्पष्ट करते हुए यों लिखा है—

The historical and natural place of the ballad is anterior to the appearance of poetry of art to which it has formed a step and by which it has been regularly displaced and in some places all but extinguished.

और भी—"The condition of society in which a truly national and popular poetry appears explains the character of such poetry This is a condition in which the people are not divided by political organisation and book culture into marked distinct classes in which, consequently there is such community of ideas and feelings that whole people from one individual. Such poetry accordingly while it is in its essence an expression of our common human nature and so of universal and indestructible interest, will in each case, be differentiated by circumstances and idiosyncracy On the other hand it will always be an expression of the mind and heart of the people as an individual and never of the personality of individual men. The fundamental characteristic of popular ballads is therefore, the absence of subjectivity and of self consciousness .. The author counts for nothing and it is not by mere accident but with the best reasons that they have come

प्रोफेसर पाउण्ड की सम्मति को हमने सविस्तर उद्धृत किया है क्योंकि उपयुक्त सारी बातें ढोला मारूरा दूहा के संबंध में लागू होती हैं और आगे चलकर हम इनके सिद्धांतों के आधार पर प्रबंधसंबंधी बहुत सी उलझनों को सुलझाने की चेष्टा करेंगे।

(४) चौथी विशेषता लोकगीतों की यह है कि उनका यदि कोई रचयिता हो सकता है तो वह जन समुदाय ही हो सकता है न कि व्यक्तिविशेष। इस विषय में पाश्चात्य विद्वानों के भिन्न भिन्न मत हैं।

प्रसिद्ध कहानी लेखक जेकब ग्रिम का मत है कि लोकगीत का रचयिता व्यक्ति नहीं बल्कि जनसमुदाय (Das Volkedichter) है क्योंकि लोकगीतों में जनसमुदाय की आत्मा संपूर्ण रूप में प्रकाशित होती है। इसी से कुछ मिलती जुलती प्रो० विटरिच की राय है। मानव जातिविज्ञान (Anthropology) का आधार लेकर और मानव समुदाय के आदिम व्यवहार संबंधी घटनाओं को ध्यान में रखकर वे अनुमान करते हैं कि जन समुदाय का काव्यनिर्माता होना असंभाव्य बात नहीं है। समाज की आदिम अवस्था में जब कोई स्मरणीय घटना होती—यथा कोई व्यक्ति वीरता का कोई काम करते या समाज में कोई आनंदोत्सव का अवसर उपस्थित होता—तो समुदाय एकत्रित होकर उसमें भाग लेता होगा। उस समय उस समुदाय की मनोवृत्तियाँ और भावनाएँ करीब करीब एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर रहती होंगी। ऐसी दशा में संवेदना, सहानुभूति और एकता के भावों से प्रेरित होकर यदि उस समुदाय के सब व्यक्तियों के भाव एक ही प्रकार से प्रकाशित हों तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं है। अतएव ऐसी परिस्थिति में निश्चित रूप से काव्य का निर्माता व्यक्ति न होकर समुदाय ही कहा जायगा—The folk is the author

इस कल्पनात्मक अनुमान में तथ्यांश बहुत थोड़ा प्रतीत होता है। कल्पना में भले कुछ संभव हो सकता है परन्तु व्यवहार में [illegible] होना कौन कह सकता है। समाज में चाहे जितनी ही [illegible] [illegible], मानवसमाज की व्यापक और [illegible] साधारण [illegible] में [illegible] दुःख भय लोभ—जो [illegible] नहीं होती [illegible] और [illegible] भी है। फिर यह कैसे [illegible] कि [illegible] [illegible] होती है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं होती कि [illegible] प्रकार की [illegible]

ढो मा दू भू (११–१२)

मनोभावनाओं के गीतरूप में उद्भासित होने के अवसरों पर लोकगीत बनते हैं और उनको बनाने की प्रेरणा करनेवाला जनसमुदाय ही होता है परंतु जनसमुदाय की उर्मिल मनोवेदनाओं को एकत्र रूप में पकड़कर गीतरूप में संघटित करनेवाला जरूर कोई न कोई उसी समाज का प्रतिभासंपन्न व्यक्ति रहता होगा। यही युक्तिसंगत भी जँचता है।

इसी विषय के एक और पाश्चात्य विद्वान् प्रो. गम्मीयर (Prof Gummere) हैं, जिन्होंने लोकगीत की उत्पत्ति मानवसभ्यता के प्रारंभ काल में मानी है। संगीत और नाट्य तत्त्वों को आधारस्तंभ मानकर उन्होंने लोकगीत की व्याख्या यों की है—

"Tho popular ballad is a narrative lyric made and sung at the dance and handed down in popular tradition The making of the original ballad is a choral dramatic process and treats a situation, the traditional course of the ballad is really an epic process which tends m re to treat a seraes of events as a story

कि मानवहृदय की आदिम मनोवृत्तियों को प्रकाशित करने में संगीत ने बड़ा भारी सहयोग किया है। भारतीय सभ्यता और धर्म के आधारस्तंभ वेदों की अनंत ज्ञानराशि संगीतमय ऋचाओं के अनर्गल प्रवाह में प्रवाहित हुई और चारों वेदों म से एक प्रमुख वेद—सामवेद—गान के विशिष्ट रूप में प्रकट हुआ। किसी समय में सामगान भारतीयों को बड़ा प्रिय था।

दूसरी प्रधानता जो लोकगीतों में पाई जाती है वह है उनका नाट्य और अभिनेय गुणों से युक्त होना। नाट्य में हाव-भाव, हेला प्रदर्शन तथा नृत्य सभी प्रदर्शनीय अभिनयगुण रहते हैं। अभिनय और नृत्य द्वारा मानवअभिरुचि का आकर्षण सहज ही में किया जा सकता है। यदि भारतीय नाटकों की उत्पत्ति की ओर दृष्टिपात किया जाय तो यह बात सम्यक् प्रमाणित होगी कि धार्मिक भावनाओं से उत्साहित होकर जनता प्राचीन काल में देवमंदिर अथवा किसी अन्य पवित्र स्थान में एकत्र होकर किसी समकालीन अथवा पूर्वघटित घटना की स्मृति में कीर्तन, गुणगान नृत्य आदि किया करती थी और ऐसे ही अवसरों पर हाव-भाव अभिनय द्वारा किसी वीर अथवा धार्मिक पुरुष के कार्यों का रूपक रचकर प्रदर्शन किया करती थी। पुराणों में उल्लेख मिलता है कि श्रीकृष्ण के पुत्र-पौत्रों ने नागरिकों को एकत्रकर समारोह सहित द्वारका में इस प्रकार के रूपक का अभिनय किया था। 'नाटक' शब्द की प्रकृति नट् धातु यही प्रमाणित करती है। भारतीय नाट्याचार्यों—भरत और धनंजय—का भी यही मत है कि मानवहृदय की भावनाओं को प्रकाशित करने म नृत्य ने आदिकाल से सहयोग किया है। अतएव पाश्चात्यों का यह कहना कि संगीत और नृत्य के रूप में लोकगीतों का साहित्य के इतिहास में सर्वप्रथम विकास हुआ भारतीय आचार्यों के सिद्धांतों से बहुत कुछ मेल खाता है और यह मान्य भी होना चाहिए।

प्रो गम्मीयर ने लोकगीतों की उत्पत्ति के विषय में इस बात पर विशेष जोर दिया है कि लोकगीत के निर्माण का कार्य अचिंतितपूर्व (Improvised) रूप है अथात् किसी घटना को मानने के लिये उपस्थित जनसमूह का उत्साहित हृदय नाचते गाते हुए स्वतः ही सामूहिक प्रयास के रूप में गीत काव्य की रचना कर देता है। इस मत (Improvisation theory) को बहुत कम विद्वान् मानते हैं। प्रो किटरेज यद्यपि अभिनय और संगीत के गुणों को प्रधानता देते हैं परंतु उन्होंने नृत्य और संगीत ही से लोकगीत की निश्चित रूप से उत्पत्ति नहीं बताई है। उनके मतके अनुसार से एक

प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में चारणों अथवा भाटों की जातिविशेष में वंशपरंपरा से यह क्रम रहा होगा कि वह जनअभिरुचि के अनुरूप समय समय पर गीत काव्य बनाकर समुदाय में उनका प्रचार करे। लोकगीत साहित्य का सूक्ष्म अध्ययन करने के बाद उनकी धारणा है कि—There is the genuine ring of the best days of minstrelsy

लोकगीत की उत्पत्ति और परिभाषा के विषय पर मत मतांतर के इस झगड़े को यहीं छोड़कर लोकगीतों के विकास के रोचक विषय पर कुछ कहना उचित होगा।

गीत काव्य जनता का जनता के लिये निर्मित और जनता द्वारा निर्मित लोकप्रिय काव्य है। कलात्मक कविता के विपरीत इसकी विशेषता यह होती है कि इसमें मानवसमाज की आदिम मनोवृत्तियाँ और भावनाएँ उनके हर्ष उल्लास शोक विषाद, प्रेम ईर्ष्या भय आशंका घृणा ग्लानि आश्चर्यविस्मय भक्ति, निवृत्ति आदि भाव अपने सरल से सरल और विशुद्ध रागात्मक रूप में प्रकाशित होते हैं। इसमें सभ्य जीवन का कृत्रिम आडंबर अलंकार की अस्वाभाविक चमत्कृति और प्रपंचमय जीवन की कपटपूर्ण प्रवंचना का बहुत कम आभास मिलता है। वास्तव में सच्चा काव्य वही है जिसमें मानवजीवन का निष्कपट अभिव्यंजन होता है। सच तो यह है कि जब से मनुष्य ने अपना आपा सँभाला है जब से वह बुद्धिमत्ता का ढोंग रचने लगा है बुद्धिमत्ता की धाक में बहके उसने मस्तिष्क के सामने हृदय की सत्ता का तिरस्कार करना श्रेयस्कर समझ लिया है तभी से सच्ची हृदयस्पर्शी नैसर्गिक कविता का ह्रास होने लगा है और उसका स्थान कृत्रिम तथा भावशून्य आडंबरपूर्ण कविता ने ग्रहण कर लिया है। विशाल गगन में स्वच्छंद परों को फड़फड़ाती हुई और गाती हुई यथेच्छ पहुँचे कहीं अथवा मधुर फलों के स्वाद को चखती हुई और वन्य सरिताओं का निर्मल जल पान करती हुई वन वन में विचरण

व्यापक एकता लगभग सभी देशों और जातियों में एक सी है। यही कारण है कि लोकगीतों के अन्वेषकों ने संसार के भिन्न भिन्न भूभागों की भिन्न भिन्न जातियों के लोकगीतों में विषय और वर्णनशैली तथा अन्यान्य विशेषताओं की आश्चर्यजनक समानता पाई है। कहीं कहीं तो कथाएँ तक मिलती जुलती हैं। क्या यूरोप क्या मिस्र क्या भारत और क्या अन्यान्य देश प्रायः सभी देशों के प्राचीन गीतकाव्यों का मिलान करके हम देखें तो वही प्राकृतिक सरलता, वही आडंबरशून्यता वही श्रंगारिक भावों की बहुलता वही प्रेम, ईर्ष्या, शौर्य आदि भावों की द्योतक रोचक कथाएँ प्राप्त होती हैं। यहाँ तक कि विचारशील मस्तिष्क में यह भाव जागरित हुए बिना नहीं रह सकता कि उत्तर काल के मतमतांतरों सभ्यता और धर्मसंबंधी भेदों से विशृंखलित संसार की जनता यदि भाई भाई की तरह प्रेमपूर्वक किसी स्थान पर मिल सकती है तो इन्हीं गीतकाव्यों और परंपरागत गाथाओं के विस्तृत रंगमंच पर।

विद्वानों ने अन्वेषण करके मालूम किया है कि संसार के सभी देशों के गीतकाव्यों में विषय और शैली की समानता है। उनमें से कुछ समानताओं का यहाँ उल्लेख किया जाता है—

(१) अपने सच्चे प्रेमी को पाने के लिये प्रेमी अथवा प्रेमिका का प्राणपण से प्रयत्न करना और अनेक बाधाओं को हटाकर उसे प्राप्त कर लेना तथा आसुरी रीति से ब्याह कर लेना।

(२) सौतियाडाह अथवा सौतेली माता की ईर्ष्या के कारण प्रेममार्ग पर भयंकर दुर्घटनाओं का घटित होना।

(३) प्रेम में विश्वासघात के फलस्वरूप अनेक विषम दुर्घटनाएँ होना।

(४) आदर्श वीरता के आख्यान।

(५) पहेलियों द्वारा मानसम्मान का निपटारा किया जाना। विशेषतः पहेलियों के शुद्ध उत्तर के परिणाम में प्रेमी दंपति का मिलन होना। इसकी सभी देशों के लोकगीतों में चर्चा मिलती है।

(६) पुनर्जीवन के सिद्धांत में सर्वसाधारण का विश्वास।

(७) अलौकिक सत्ता में आस्था और विश्वास (Supernatural belief), और साथ ही भूत प्रेत, डाइन और परियों में विश्वास।

(८) कहानी का उपदेशात्मक (Didectic) न होकर सीधे और रोचक ढंग से कहा जाना।

(९) धार्मिक सिद्धांतों की दृढ़ता की प्रशस्तिस्वरूप बातें।

(१) पशु पक्षियों द्वारा मानव हित-संपादन।

ये बातें साधारणतः संसार के सभी देशों के लोकगीतों (Ballads) में पाई जाती हैं। ढोला मारूरा दूहा में इनमें से प्रायः सभी का प्रयोग हुआ है। न केवल विषय और प्रतिपादन शैली की एकता, वरन् उस काल की भी एकता पाई जाती है जब संसारभर में इन लोकगीतों की एक बाढ़ सी आ गई थी। ईसा की तेरहवीं शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी (ई १२ –१६ • तक) के बीच के युग को पाश्चात्य अन्वेषकों के आधार पर लोकगीत का संसारव्यापी युग कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी।

लोकगीतों की बनावट और आकार के संबंध में भी कुछ स्मरण रखने योग्य साधारण बातें हैं जिनसे उनकी उत्पत्ति और विशेषता के कारणों पर प्रकाश पड़ता है। उनमें से कुछ ये हैं—

(१) प्रायः देखा जाता है कि प्राचीन ढंग के लोकगीत में ध्रुवक (Refrain) का बहुधा प्रयोग मिलता है।

ध्रुवक प्रयोग के आधार पर लोकगीत साहित्य के शास्त्रीय अन्वेषकों ने यह अनुमान किया है कि यह प्रयोग उस प्राचीन प्रथा और सरल मानवप्रवृत्ति का परिचायक है जब एक जनसमुदाय एकत्र होकर किसी घटना के संबंध में गान और नृत्य करता रहा होगा और सारा समुदाय नियत समय पर ध्रुवक को उठाकर गाने में पूर्ण सहयोग देता रहा होगा। अधिकांश गीतकाव्यों में ध्रुवक मिलता है परंतु कुछ ऐसे भी हैं जिनमें इसका प्रयोग नहीं मिलता। ये रचनाएँ या तो पीछे की हैं जब ध्रुवक का प्रयोग न रहा होगा अथवा वे किसी एक व्यक्ति (चारण अथवा भाट) की बनाई हुई हैं। पीछे से ध्रुवक-प्रयोग स्थगित कर दिया गया ऐसा प्रतीत होता है।

(२) आवृत्ति (Repetition) भी साधारणतः प्राचीन गीतकाव्यों का एक प्रमुख लक्षण है। ध्रुवक भी एक प्रकार की आवृत्ति ही है परंतु वह आवृत्ति छंद के किसी विशेष स्थल पर नियमतः होती है—खासकर अंत में। ढोला मारूरा दूहा में आवृत्ति का प्रयोग स्थान-स्थान पर मिलता है।

प्रावर्तन के रूप में ये हमें उपलब्ध हुए हैं। इनमें से कुछ तो लिपिबद्ध हो गए हैं और कुछ अब भी मौखिक गान के रूप में प्रचलित हैं। इनका निर्माता कोई व्यक्ति-कवि नहीं होता। तात्कालिक समाज को ही इनका रचयिता समझना चाहिए, क्योंकि कवि के व्यक्तित्व की छाप का इनकी बनावट में सर्वथा अभाव रहता है। वर्तमान काल में इस विशुद्ध कोटि का गीतकाव्य मिलना कठिन है।

(२) चारणी लोकगीत (Minstrel Ballad)—इनकी रचना चारण भाट ढाढ़ी आदि ऐसी जातियों के व्यक्तियों द्वारा होती है जिनका काम जनता को गाकर सुनाना रहता है। इनमें और प्रथम कोटि के गीतों में स्पष्ट भेद है कि ये एक कवि की व्यक्तिगत कृति होने के कारण गीतकाव्यों के और गुण रखते हुए साथ ही व्यक्तित्व की पूरी छाप भी रखते हैं और ये उतने सरल प्राकृतिक और आडंबरशून्य नहीं होते। ये अपेक्षाकृत पीछे के काल की कृतियाँ हैं।

(३) विकृत लोकगीत (Broadside Ballad)—ये गीत आरंभ में तो परंपरा गीत ही होते हैं पर समय के बड़े अंतर से और निम्न कोटि की जनता के मुख में पड़कर वे असली गीत न केवल अपने मौलिक रूप को ही विकृत कर बैठते हैं वरन् कहीं कहीं तो मौलिक कहानी की घटनाएँ तक इतनी विकृत हो जाती हैं कि उसके असली रूप और वर्तमानरूप में आकाश पाताल का अंतर पड़ जाता है। उत्तर भारत और मध्यप्रदेश में प्रचलित आल्हा का गीत इसी कोटि का है। ढोला मारू गीत के भी कई विकृत रूप प्रचलित हैं जो देहात के ढाढ़ियों के मुख से गान के रूप में सुने जाते हैं और जिसमें स्थान स्थान पर कथा का अंगभंग करके उसे विकृत बनाया गया है।

(४) साहित्यिक लोकगीत (Literary Ballad)—पहले तीन प्रकार के लोकगीत साहित्यिक विद्वानों से भिन्न व्यक्तियों की रचनाएँ होते हैं। उनमें साहित्यिक विधानों का अभाव रहता है। ये कलापूर्ण काव्य से सर्वथा भिन्न लोककाव्य (Folk Poetry) कहे जा सकते हैं। पर साहित्यिक लोकगीतों की रचना प्राचीन लोकगीतों के ढंग पर साहित्यिक कवियों द्वारा होती है। उनमें साहित्यिक विधानों का अभाव नहीं रहता यद्यपि बाहुल्य भी नहीं होता। ये गीत अपेक्षाकृत बहुत बाद की रचनाएँ हैं। सुभद्राकुमारी चौहान का झाँसी की रानी गीत इसी कोटि का है।

प्रस्तुत ढोला मारू गीत को उपर्युक्त विभागों में से किसी भी एक के अंतर्गत नहीं किया जा सकता। प्रथम दोनों विभागों की विशेषताएँ इसमें पाई जाती हैं और किसी अंश तक तीसरे की भी। बहुत संभव है कि प्रारंभ में यह गीत किसी एक व्यक्ति की रचना हो क्योंकि हम यह कल्पना नहीं कर सकते कि किसी जनसमाज ने किसी एक स्थान पर एकत्र होकर इसके मूलरूप को निर्मित किया हो। पर आगे चलकर यह जनता की वस्तु बन गया और जनता द्वारा परिवर्तन एवं परिवर्धन उसमें बराबर होते रहे। इसके अतिरिक्त चारणी लोकगीतों में कवि के व्यक्तित्व की पूरी छाप पाई जाती है पर ढोला मारू में यह अविद्यमान है। अतः इस गीत की निर्माणी वास्तव में जनता को ही समझना चाहिए। ढोला मारू के आगे चलकर अनेक विकृत रूप भी बन गए जिनमें मूल गीत की कथा सर्वथा विकृत हो गई परंतु हमने जो प्राचीन रूप लिया है उसमें इन विकारों का कोई संबंध नहीं।

ऊपर लोकगीत की जो विशेषताएँ बताई गई हैं उनमें से प्रायः सभी ढोला मारू में पाई जाती हैं। कहानी आरंभ से इति पर्यंत बड़ी द्रुतगति के साथ दौड़ती है। कथा की गति में विघ्न डालनेवाला अंश कथाभर में नहीं मिलता। बीच बीच में संदेश, ऋतुवर्णन, मारवणी विरहवर्णन, मारवणी रूपवर्णन आदि के जो लंबे व्यापारहीन वर्णन आए हैं वे प्रारंभ में मूलकथा के भाग न थे परंतु समय समय पर बढ़ते रहे हैं। उनमें भी लोकगीत की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता आवृत्ति का प्राधान्य है। इसी प्रकार न तो कहीं क्रीड़ास्थली अथवा देशकाल का वर्णन और न कहीं मानसिक भावों का विश्लेषण ही कथा के व्यापार को शिथिल करता है। कहानी की क्रीड़ास्थली का अंकन अस्पष्ट रेखाओं के रूप में ही अंकित हुआ है। चरित्रचित्रण भी बहुत स्थूल है।

कहानी में भावसंकुलता भी नहीं मिलती। प्रेम और प्रेमजन्य विकलता, ईर्ष्या, उत्साह एवं शांति मोटे मोटे भावों का ही वर्णन किया गया है। रचनाशैली अत्यंत सरल और सीधी है। कृत्रिम शाब्दिक विधानों का सर्वथा अभाव सा है। यद्यपि मोटे मोटे अलंकार कई एक स्थानों पर आए हैं पर वे अपने आप आए हुए और तथा स्वाभाविक जान पड़ते हैं। कथा के लिए जानबूझकर किए हुए प्रयास का कहीं आभास नहीं मिलता।

लोकगीतों में मुख्यतया शृंगार या वीर या दोनों की प्रधानता होती है। अन्य रसों की व्यंजना बीच बीच में आवश्यकतानुसार होती है। ढोला मारू में शृंगार रस का प्राधान्य है, अन्य रसों की व्यंजना बहुत ही कम नाममात्र को कहीं कहीं हुई है। ऋतुओं की व्यंजना तो बिलकुल ही नहीं हुई। वस्तुवर्णन के लिये भी कहीं विराम नहीं किया गया है।

लोकगीत की कतिपय अन्यान्य विशेषतायें ढोला मारू में जहाँ जहाँ पाई जाती हैं इसका उल्लेख ऊपर उन विशेषताओं के वर्णन के प्रसंग में हो चुका है।

(७) प्रबंध कल्पना और वर्णन

किसी भी प्रबंध कविता में, चाहे वह प्रबंध के रूप में हो अथवा गति के रूप में, घटनाओं का संक्रमण साधारणतया दो रीतियों से किया जाता है। कवि या तो घटनाक्रम को आदर्श परिणाम पर पहुँचाकर कोई लोकोपकारी आदर्श उपस्थित करता है अथवा केवल कथानक की स्वाभाविक गति को ध्यान में रखते हुए मनुष्यजीवन का सच्चा निष्कपट चित्र उपस्थित करता है, जिसमें घटनाओं का क्रम आदर्शोन्मुख न रखकर केवल उनके लोकसम्मित व्यवहारशील स्वाभाविक रूप के सौंदर्य को प्रदर्शित करता है। पहले में उपदेश और नीतिपूर्ण परिणाम की प्रधानता होने के कारण वह कृत्रिम सा प्रतीत होता है दूसरा लोकसम्मित और स्वाभाविक होने से हमारे मन का अधिक अनुरंजन कर सकता है। पिछले प्रकार में यद्यपि कवि को यह स्वतंत्रता नहीं रहती कि वह जानबूझकर नीति और सत्य के आदर्श मार्ग की अवहेलना करे परंतु उसका लक्ष्य रहता है प्रबंधकल्पना द्वारा केवल उस नीति धर्म और सत्यता को सामने लाना जो लोकव्यवहृत और मनानुरंजनकारी हो। ढोला मारू का प्रबंध पिछली कोटि का है। यदि उसमें घटनाओं द्वारा किसी आदर्श परिणाम को दिखाने का लक्ष्य होता तो ऊमर सूमरा और उसके दुष्ट चारण का परिणाम अवश्य दिखाया जाता परंतु ऐसा नहीं किया गया। साथ ही नीति धर्म और सत्य की अवहेलना भी नहीं की गई है प्रेमियों को अपनी प्रेमसाधना के मार्ग में अनेक बाधायें उपस्थित होते हुए भी अभीष्ट का लाभ होता है।

प्रबंध की उत्तमता उसके दो अंगों के सम्यक् निर्वाह से की जाती है। वे दो अंग हैं—इतिवृत्त के घटनाक्रम का स्वाभाविक विकास और

रसात्मक स्थलों का मर्मस्पर्शी ढंग से वर्णन। इतिवृत्त घटना के उन्मेष मात्र को छूते हैं जैसे राम का वनवास के लिये प्रस्थान करना शुद्ध इतिवृत्त है परंतु वनवास को प्रस्थान करते हुए राम के हृदय की दशा का वर्णनकर कवि ग्रामवासी पुरुष और स्त्रियों की रागात्मक सहानुभूतियों को आकर्षित कर लेता है तब वही कथासूत्र इतिवृत्त रसपरिपुष्ट होकर काव्य का सर्वोत्कृष्ट हृदयग्राही रूप धारण कर लेता है। इस प्रकार उपर्युक्त इतिवृत्तात्मक स्थलों को रसात्मक स्थलों में परिवर्तित करके श्रेष्ठ काव्य हमारी रागात्मक प्रवृत्तियों को जागरित करता रहता है जिससे काव्यशरीर में रसात्मकता की विस्मृति नहीं होने पाती। तुलसीदासजी का काव्य सर्वोत्तम कोटि का सरस प्रबंध काव्य है। दूसरी ओर कथासरित्सागर की घटनावैचित्र्य और कुतूहल से पूर्ण कहानियाँ केवल इतिवृत्त का कथन करके हमारी जिज्ञासावृत्ति को संतुष्ट करती हैं। रसात्मक स्थलों द्वारा हृदय की रागात्मक वृत्तियों—रति, शोक, करुणा आदि—का उद्रेक होता है। मुक्तक और प्रबंध काव्य में बड़ा भारी भेद यही है कि जहाँ मुक्तक में केवल रसपद्धति का उत्तम निर्वाह ही पर्याप्त है वहाँ प्रबंध काव्य में इतिवृत्त और रस दोनों का सोने और सुगंध का सा संयोग अभिप्रेत होता है। कोई भी कथा तब तक सुंदर काव्य का रूप धारण नहीं कर सकती जब तक इन दोनों अंगों का उचित और अन्योन्योपकारी रूप में संयोजन नहीं होता। यद्यपि यह कहना अनुचित न होगा कि प्रबंध को प्रबंध काव्यगुणों से विभूषित करने का अधिक श्रेय रसात्मक स्थलों के सम्यक् निर्वाह पर ही निर्भर रहता है परंतु यदि कोई रस अथवा भाव परिस्थिति और घटना के विरुद्ध पड़ता हो तो वहाँ रस की स्थिति भोंडी ही खटकती है और प्रबंध के विकास में बाधक होती है।

अब यह देखना है कि ढोला मारू के प्रेमप्रबंध में मानवजीवन के मर्मस्पर्शी घटना स्थलों को रसात्मकरूप में प्रकट करने में कहाँ तक सफलता हुई है।

ढोला मारवणी की प्रेमगाथा एक लोकगीत है। अन्य प्रकार के प्रबंध से इस काव्य में यह विशेषता है कि इसका लक्ष्य गीत द्वारा मानव की रागात्मक वृत्तियों को आकर्षित करना होने के कारण इसमें इतिवृत्त की अपेक्षा रसात्मक स्थलों को प्रधानता दी गई है। सारे प्रबंध में रसात्मक स्थल हार के बहुमूल्य मुक्ताफलों की तरह पिरोए हुए हैं और इतिवृत्त का धागा

या एक सुवर्ण सूत्र की तरह इन मोतियों को एक लड़ी के रूप में पिरो देने के लिये व्यवहृत हुआ है। अतएव इसका काव्य में घटनाओं की संकुलता मनोरंजकता और विभिन्नता के सौंदर्य को दिखाने का इतना अवसर नहीं मिला जितना तुलसी को अपने रामचरित मानस में अथवा जायसी को पद्मावत में और यह अभिप्रेत ही था।

कथाविकास के क्रम से देखा जाय तो ढोला मारू की कहानी में निम्नांकित रसात्मक स्थल बड़ी स्वाभाविकता और हृदयस्पर्शी मार्मिकता के साथ चित्रित हुए हैं—

(१) मारवणी से प्रेम की प्रारंभिक अवस्था में उसका स्वप्न में पति-दर्शन विरहवर्णन तथा उसकी चातक, सारस और कौंच (कुरम्ह) संबंधी उक्तियाँ।

(२) ढोला के प्रति मारवणी का संदेश।

(३) मारवणी का संदेश सुनकर ढोला की प्रेमजन्य व्याकुलता।

(४) प्रस्थान करते हुए ढोला को रोकने के लिये मालवणी का प्रयत्न और दंपति का प्रेमपूर्ण संवाद।

(५) मालवणी का विरह।

(६) ढोला और मारवणी का मिलन।

(७) मालवणी और मारवणी का सवाद।

इन रसात्मक स्थलों का कवि ने बड़े सुंदर और हृदयहारी रूप में वर्णन किया है, जिसका विस्तृत विवेचन संयोग और विप्रलंभ शृंगार के प्रसंग में आगे चलकर किया गया है।

रसप्रधान होते हुए भी हम इस प्रेमकहानी की घटनाओं के संघटित आयोजन को भुला नहीं सकते। देखना यह है कि घटना का एक प्रसंग दूसरे प्रसंग से ठीक ठीक शृंखलाबद्ध हुआ है या नहीं। यदि नहीं तो हमें इस त्रुटि को अक्षम्य काव्यदूषण समझना पड़ेगा।

भारतीय आचार्यों ने कथावस्तु (Plot) के दो अंग माने हैं—आधिकारिक या मुख्य और प्रासंगिक या गौण अथवा सहायक। ढोला मारू की कहानी में इन दोनों का उचित निर्वाह हुआ है या नहीं यह देखना है। प्रासंगिक वस्तु में साधारणतः कथा के नायक और नायिका के अतिरिक्त अन्य पात्र संबंधी वृत्तांतों का विवरण होता है और वह हमेशा आधिकारिक या मुख्य वस्तु का सहायक बनकर उसकी गति को आगे बढ़ाता है अथवा

परिणाम की ओर मोड़ता है। इस कहानी में ढोला और मारवणी का, प्रेम वृत्तांत आधिकारिक वस्तु है। यह काव्य पात्रप्रधान है घटनाप्रधान नहीं। ढोला इसका नायक और मारवणी इसकी नायिका है। कथा का वास्तविक परिणाम है ढोला का मारवणी को विरहदुःख से उबारकर उसको अपने घर लाना। इस परिणाम अथवा लक्ष्य की ओर सभी प्रासंगिक वृत्तांतों का सहायक के रूप में प्रवाह होना चाहिए। ठीक ऐसा ही हुआ भी है। इस प्रेम कहानी की प्रासंगिक कथाएँ मुख्यतः ये हैं—

(१) घोड़ों के सौदागर का पूगल में आकर समाचार देना।

(२) मालवणी की प्रार्थना पर ऊँट का लँगड़ा होना।

(३) मालवणी द्वारा प्रेरित सुए का ढोला को लौटा लाने के लिये जाना।

(४) ऊमर के दूत चारण का षड्यंत्र और मारवणी संबंधी झूठी सूचना देकर ढोला को प्रयाण से विमुख करने की चेष्टा करना।

(५) ऊमरसूमरा का ढोला को धोखा देकर मारवणी का हरण करने का दुष्प्रयत्न।

अब यदि देखा जाय तो ये सभी प्रासंगिक घटनाएँ किसी न किसी रूप में सहयोग देकर अथवा संघर्ष उत्पन्न कर काव्य को अंतिम लक्ष्य की ओर प्रेरित करने में सहायक होती हैं। पाश्चात्य काव्याचार्य अरिस्टॉटल ने प्रबंध के गुणों की कसौटी कार्यसमन्वय (Unity of Action) को बताया है। उस सिद्धांत का निर्वाह इन प्रासंगिक वृत्तांतों द्वारा बड़ी अच्छी तरह से हुआ है।

अरिस्टाटल ने विस्तारित काव्य की कथावस्तु को तीन प्राकृतिक विभागों में विभाजित किया है—(१) आदि (२) मध्य और (३) अंत। यह भी लिखा है कि इन तीनों का संबंध अन्योन्याश्रित, एक दूसरे से संश्लिष्ट और स्वाभाविक रीति से जुड़ा हुआ होना चाहिए और साथ ही कथावस्तु का काम महत्त्वपूर्ण होना चाहिए। इस दृष्टि से काव्य पर ढोला मारू की कथा का काम महत्त्वपूर्ण अवश्य है। अपनी विरहिणी स्त्री के अनेक कष्टों और यातनाओं को दूर कर उसे ले आना—प्रेम उत्कट पवित्र महत्त्वशील और लोक-सम्मत स्वाभाविक दूसरा कौन सा काम होगा। काव्य के अनुरूप नायक और नायिका का प्रेमप्रसंग भी उतना ही महत्त्वशील है।

ढोला की कहानी के तीन प्राकृतिक विभाग किए जा सकते हैं—

(१) आदि भाग—मारवणी के स्वप्नदर्शन अथवा पूगल से लेकर मारवणी के ढोला को संदेश भेजने तक।

(२) मध्य भाग—ढोला की मारवणी विषयक आतुरता से लेकर उसके पूगल के पास पहुँचने तक।

(३) अंतिम भाग—ढोला के पूगल पहुँचने से लेकर अंत तक।

कहने की आवश्यकता नहीं कि तीनों विभागों का संबंधसूत्र खूब घनिष्ठता के साथ संश्लिष्ट, अन्योन्याश्रित और जुड़ा हुआ है। कथा का परिणाम सुखांत है। यद्यपि ढोला की कहानी में रसात्मक स्थलों की ही प्रधानता है, परंतु ऐसा होते हुए भी कथा में किसी स्थल पर भी इतना अनावश्यक विराम नहीं होने पाता है कि घटना का सूत्र विस्मृत अथवा विलुप्त हो जाय।

काव्य म वर्णनात्मक स्थलों का निरूपण दो प्रकार से किया जाता है—

(१) वस्तुवर्णन के रूप में।

(२) भावव्यंजना के रूप में।

ढोला की कहानी में प्रथम कोटि के वस्तुवर्णन पहले तो हैं ही बहुत कम और जो कुछ हैं वे भी भावसंश्लिष्ट रूप में हुए हैं। मानव स्वभाव और भावों का वर्णन करना ही इस काव्य का प्रधान विषय है।

ढोला की कथा में निम्नलिखित वस्तुवर्णन बहुत संक्षेप में हुए हैं—

(१) राजस्थान देशवर्णन।

(२) राजस्थान का रमणीरूप-सौंदर्य-वर्णन।

(३) ऋतु वर्णन।

(४) करहा बयान।

(५) ढोला की यात्रा का वर्णन।

इन सबके संबंध में एक बार फिर कह देना होगा कि ये वर्णन कथावस्तु के साथ इतनी घनिष्ठता से संश्लिष्ट हैं कि जहाँ जहाँ ये आए हैं, वहाँ वहाँ काव्यकर्ता ने विराम देकर स्वतंत्र रूप म वर्णन के वास्ते वर्णन नहीं किए, वरन् कथाप्रवाह के बीच में प्रसंग आ पड़ने पर संक्षेप में कुछ बयान करके वह आगे चल पड़ा है। अतएव जिस अर्थ में हम जायसी के सिंहलद्वीप वर्णन, समुद्र वर्णन विवाह वर्णन, युद्ध वर्णन इत्यादि लेंगे, उस अर्थ में लेने पर तो ढोला में कोई ऐसा विस्तृत वर्णन न मिल सकेगा जो ठीक बयान कहा जा सके।

राजस्थान देश वर्णन

पहले राजस्थान देश का प्राकृतिक वर्णन ही लीजिए। वह वर्णन किसी एक स्थान पर परंपराबद्ध वर्णन के रूप में नहीं है परंतु काव्य के भिन्न भिन्न स्थलों पर प्रसंगानुसार बिखरा हुआ मिलता है। उसी को यहाँ संकलित कर दिया गया है।

मारवणी और ढोला के संवाद में पहले पहल ग्रीष्मकाल के राजस्थान का बड़ा स्वाभाविक वर्णन हुआ है—

> धर तत्ता, लू सॉंमुही झाम्फेला पड़िहार।
> मॉंफिउ वहिसउ कउ करउ भरि बइठा रहियार ॥२४१॥

जलती हुई बालू, रेत की मार और तीव्र लू की लपटें—बस, राजस्थानी ग्रीष्म का चित्र इन दो संकेतों से ही खिंच जाता है।

वर्षाऋतु राजस्थान का प्राण है। वह इस प्रदेश की श्रेष्ठ ऋतु है और इस ऋतु में इस देश की शोभा भी निराली रहती है। मारवणी और ढोला के संवाद में वर्षाकालीन राजस्थान का वर्णन इस प्रकार हुआ है—

> प्रीतम कामणगारियाँ थळ थळ बादळियाँह।
> धण बरसंतइ सोहियाँ सूखें पाँगुरियाँह ॥२४८॥
> कामणियाँ हरियाळियाँ बिचि बिचि बेलाँ फूल।
> जइ भरि बूठउ भाद्रवउ मारू देस अमूल ॥२५ ॥
> धर नीली धण पुंडरी धरि गहगहइ गमार।
> मारू देस सुहामणउ साँवणि साँझी वार ॥२५१॥
> डूँगरिया हरिया हुआ वण झिंगोरया मोर ॥२५१॥
> नदियाँ, नाळा नीझरण पावस चढ़िया पूर ॥२५६॥
> आवि घणा ऊनमि आवियउ झाबकी धिठि झड़ बाद।
> बग ही भला त बप्पड़ा धरणि न मुक्कइ पाइ ॥२५७॥
> आसाढ़ पाथर धण पयाउ, बीजळि खिवइ अथाउ।
> हरियाळी रुति रुख भली, घर संपति पिउ पास ॥२६ ॥
> काळी कंठळि बादळी बरसि ज मेल्हइ बाउ।
> प्री बिण लागइ सूरडी आँखि कटारी घाउ ॥२६७॥

राजस्थान का यह वर्णन कितना हृदयहारी और स्वाभाविक है, इसे वही जान सकता है जिसने वर्षाऋतु में रहकर राजस्थान के सौंदर्य का अनुभव

किया है। किस प्रकार सावन और भादों की बदलियाँ, जिन्हें देशी भाषा में 'भोर' कहते हैं बरसकर सूख जाती हैं और पुनः लू की गरमी से जनसंपन्न हो जाती हैं कोसों तक विस्तृत हरेभरे बाजरे के खेत और उनमें फैली हुई ककड़ी और मतीरे की बेलें कैसा सुहावना दृश्य उपस्थित करती हैं ग्रामीण जन वर्षाऋतु में कितने मस्त रहते हैं हरे चोले को पहने हुए पर्वतों पर मोर कैसा मनोहर बोलकर नाचता रहता है; सावन के महीने में राजस्थान की संध्या कैसा स्वर्गीय सौंदर्य धारण कर लेती है और बरसाती नाले (बाहळे) और नदियाँ कैसी ललित गति से कलकल करती हुई प्रवाहित होती हैं—इन दृश्यों को आँखों से देखकर जिन्होंने अनुभव नहीं किया वे राजस्थान देश को क्या जानें।

बीसू चारण मारवणी का रूप वर्णन करते हुए समग्र राजस्थान देश और राजस्थान के लोगों का वर्णन करता है—

देस सुहावउ जळ सजळ मीठाबोला लोइ।
मारू कामण भुइँ दखिण जउ हरि दियइ त होइ॥४८५॥

यह केवल अतिशयोक्ति नहीं है। तथ्य का अनुसंधान करनेवालों के लिये वास्तविक सत्य है। इसमें संदेह नहीं कि मरुस्थल में जल का प्रायः देशों की अपेक्षा अभाव है परंतु यहाँ जल गहरे कुँओं से निकलने के कारण अधिक आरोग्यकारी (सजळ) होता है। मरुस्थल की बोली के संबंध में भी लोगों को भ्रम है कि वह कर्णकटु होती है परंतु मरुस्थल की बोली के मिठास का जिन्हें अनुभव करना हो वे जरा मारवाड़ी (जोधपुरी) भाषा का अनुशीलन कर देखें। इन्हीं कारणों से यदि स्वदेशगौरव से उत्साहित होकर कवि कह बैठे कि राजस्थान की रमणी बड़े भाग्य से अथवा ईश्वर की कृपा से ही दक्षिण देश में मिल सकती है तो इसमें अनुचित ही क्या है।

बीसू चारण फिर कहता है—

थळ भूरा वन भंखरा, नहीं सु चंपउ जाइ।
गुणे सुगंधी मारवी महकी सहु वणराइ॥४८८॥

मारवाड़ रेतीली भूमि अनुपजाऊ होने के कारण वर्ष के अधिक भाग में भूरे रंग की दिखाई देती है वहाँ के वन विधीर्ण और भंखाड़ होते हैं चंपा पैदा नहीं होता लेकिन चंपा से भी बढ़कर अपने गुणों से सुगंधित करनेवाली आदर्श रमणियाँ वहाँ उत्पन्न होती हैं।

राजस्थान के गहरे कुओं को देखकर ढोला अपने अनुभव को प्रकट करता है—

ऊँडा पाणी कोहरइ, मळ फणीवइ निट्ठ।
मारवणी कइ कारणइ देख अबीठा दिट्ठ ॥५२१॥
ऊँडा पाणी कोहरे दीसइ तारा जेम।
ऊतारउ थाकिस्यइ कहउ काम्सिइ केम ॥५२४॥

राजस्थानी कूपों का कैसा हूबहू चित्र है। कुँओं में पानी बहुत गहराई पर मिलता है और ऊपर से देखने पर नीचे पृथ्वी के गर्भ में पानी चमकते हुए तारे की तरह दिखाई देता है। उसे निकालना तो बड़ा कठिन होता है। प्रेम से प्रेरित ढोला को ऐसा देख भी देखना पड़ा बड़ा पानी इतनी कठिनाई से प्राप्त होता है।

ढोला तुष ऊमरसूमरे के कुचक्र में पड़कर उसके कपटपूर्ण आतिथ्य को स्वीकार करता है। उस स्थान पर राजस्थान की भाषा के बीच पड़ाव (Camp) की महफिल का बड़ा मनोज्ञ चित्र अंकित हुआ है—

तंत तणावइ, पिउ पिवइ, करहउ कयाइद ॥६११॥

एक ओर तंती (सारंगी) झंकार कर रही है, दूसरी ओर ढोला ऊमर सूमरे का आतिथ्य स्वीकार कर उसके साथ मदिरापान कर रहा है (जैसा कि राजपूतों का पारस्परिक शिष्टाचार होता है), दूर पर बैठा हुआ ढोला का ऊँट लंबी यात्रा के बीच में विश्राम पाकर जुगाली कर रहा है। कैसा सुन्दर और स्पष्ट चित्र है। यही नहीं ऊँट को बठाने के ढंग तक का सूक्ष्म निदर्शन किया गया है—

ऊमर साहइ ऊतारियउ, मन लोहइ मनुहारि।
पगासू ही पग जूँटियउ, मुहरी म्हली नारि ॥६२६॥

जंगल के विश्रामस्थलों पर पास में कोई वृक्ष अथवा कोई बाँधने का सम्भ न होने के कारण (क्योंकि राजस्थान में और विशेषतः पूगळ के पास की ऊबड़ वनभूमि में दरख्त कहाँ मिलते) ऊँट के पैर को उसी के मुड़े हुए स्थान पर दोहराकर रस्सी से बाँध दिया जाता है—राजस्थान में यह दृश्य रोज देखने को मिलता है। चित्र की पूर्णता प्रसंग में स्वभावोक्ति का रससिंचन करती है।

ग्रन्थ में मारू देश का विस्तृत और संपूर्ण वर्णन उस स्थल पर होता है जहाँ सौतियाडाह से प्रेरित होकर मालवणी मारू देश की निन्दा करने पर उतरती है। उस निन्दावर्णन में इतना स्वाभाविक तथ्य है कि स्थानस्तुति की

तरह पढ़ने पर यही राजस्थान की आत्मा का चित्र उपस्थित करता है। मालवणी व्यंग्य के साथ कहती है—

बाळउँ बाबा, देसड़उ, पाँणी जिहाँ कुवाँह।
आधीरात कुहक्कड़ा ज्यउँ माणसाँ मुवाँह ॥५५७॥
बाळउँ, बाबा, देसड़उ, पाँणी-संदी ताति।
पाँणी केरइ कारणइ प्री छंडइ अधराति ॥५५८॥
बाबा म देइस मारुवाँ, सूधा एवाळाँह।
कंधि कुहाड़उ सिरि घड़उ, वासउ मंझि थळाँह ॥५५९॥
बाबा म देइस मारुवाँ, वर कूँआरि रहेसि।
हाथि कचोळउ, सिरि घड़उ, सींचंती य मरेसि ॥५६०॥
मारू, थाँकइ देसड़इ एक न भाजइ रिड़ु।
ऊचाळउ क अबरसणउ कइ फाकउ कइ तिड्डु ॥५६१॥
जिण भुइँ पन्नग पीयणा कयर-कंटाळा रूँख।
आके-फोगे छाँहड़ी हूँछाँ भाँजइ भूख ॥५६२॥
पहिरण ओढण कंबळा साठे पुरिसे नीर।
आपण लोक उभाँखरा गाडर छाळी खीर ॥५६३॥

इस बयान में अतिशयोक्ति का अंश बहुत थोड़ा है। यद्यपि जिस मानसिक परिस्थिति में मालवणी के हृदय के उद्गार प्रकट हुए हैं वह निराशामूलक है परंतु इसमें किंचिन्मात्र भी संदेह नहीं है कि वस्तुवर्णन की दृष्टि से यही वर्णन राजस्थान का सच्चा परिचायक है यही उसकी विशेषताएँ हैं। मानव अभिरुचियाँ भिन्न होती हैं—भिन्नरुचिर्हि लोकः—किन्हीं के लिये यह अरुचिकर होगा, परंतु बहुतों के लिये यही भूमि 'स्वर्गादपि गरीयसी' है।

कुँओं की गड़गड़ आधी रात ही से मालियों का संगीतमय मधुर लय के साथ चड़स खींचना प्रारंभ करना, भोर में ही पनिहारिनों का मिल जुलकर राग अलापते हुए कुँओं से पानी भरने जाना, ऐसे सूक्ष्म निदर्शन हैं कि राजस्थान देश की आत्मा का चित्र स्मृति में जागरित हो जाता है—यही है संगीतमय राजस्थान की विशेषता। रंग सुगंधि और गीत की विचित्रताओं से असाधारण से साधारण कोटि का राजस्थानी जीवन अनुप्राणित रहता है। राजस्थान में गड़रिये भेड़ बकरी गाय भैंस चराने को सवेरे से ही जंगल की ओर निकल जाते हैं और किसान लोग प्रातःकाल होते ही अपने खेतों की ओर निकल पड़ते हैं। उनकी स्त्रियाँ उनके लिये भोजन

सामग्री पानी का घड़ा, कुल्हाड़ा इत्यादि खेती के औजार लेकर पीछे से जाती हैं। अवर्षा के कारण कभी कभी अकाल पड़ जाता है। उस समय निम्नश्रेणि के लोग पास ही के उपजाऊ देशों में निर्वाह (रूचाकठ) कर आते हैं। कई बार टिड्डीदल खेती को नष्ट कर देता है। जंगल में विषैले साँप बहुतायत से मिलते हैं। वृक्ष बहुधा काँटेदार ही होते हैं और उनमें भी अधिकांश छोटे पत्र के होने के कारण पथिक को दिन की धूप में पर्याप्त छाया का भी सुख नहीं मिलता। काँटेदार घास के गोखरू (भुरट) में से जो धान निकलता है उसे भी लोग रुचि से खाते हैं और भेड़-बकरी इत्यादि का दूध मजे में पीते हैं। ऊन बहुतायत से पैदा होने के कारण लोग कंबल ओढ़ते हैं और उन्हीं के वस्त्र भी बनाकर पहनते हैं।[1] ऐसे कष्टमय देश में कठोरता से जीवननिर्वाह करनेवाली जाति स्वभाव से ही साहसी सहिष्णु वीर और दृढ़ होती है। इसी कठोरता और सहिष्णुता के बल राजस्थान की वीर जातियों ने सदियों तक भारतवर्ष की स्वातंत्र्य ध्वजा को गर्व से उठाए रक्खा।

वर्णन की दृष्टि से उपर्युक्त विवरण अक्षरशः सत्य है। अब यदि मालवे के ऐशआराम में पली हुई किसी स्त्री (मालवणी) को यह देश कष्टदायक और अरुचिकर प्रतीत हो तो उससे देश की निंदा नहीं होती। यों तो दोषों से कोई स्थल खाली नहीं है। मारवणी उलटकर जब मालव देश की निंदा करती है तो उसे उस देश के प्रति भी अरुचि हुए बिना नहीं रहती। सच तो यह है कि निंदा और स्तुति आपेक्षिक गुण हैं और वैयक्तिक रुचि पर निर्भर रहते हैं। पहाड़ी मुल्क रेतीले उपजाऊ मैदान नदी तट के सुरम्य कूल समुद्र के बीच के टापू इन सब भिन्न भिन्न प्रदेशों में प्रकृति का भिन्न भिन्न प्रकार का सौंदर्य निहित रहता है। साहित्य रसिक को तो केवल वास्तविकता की निष्पक्ष दृष्टि से तथा परिचय प्राप्त करना अभीष्ट होता है न कि भले और बुरे का निर्णय करना।

रमणी-रूप-वर्णन

राजस्थान की रमणी का रूप-सौंदर्य-वर्णन हमें उस स्थल पर उपलब्ध होता है जहाँ वीर पारस शोभा से मारवणी का रूपदर्शन करता है। इस

[1] यह चित्र राजस्थान के ठेठ देहाती जीवन का है। नागरिक जीवन विशेषतः आधुनिक नागरिक जीवन पर ये बातें घटित नहीं होतीं।

वर्णन में दो विशेषताएँ हैं। एक तो यह कि रूपवर्णन साधारणतः राजस्थानी स्त्रीसौंदर्य का निजरूप में परिचायक है, दूसरा यह कि अर्वाचीन भाषा की अलंकारशास्त्र और नखशिख संबंधी रूढ़ियों से बहुत कुछ मुक्त होने के कारण स्वच्छंद और स्वाभाविक है।

मारवणी के सौंदर्य और शील के वर्णन में उपमानों की पवित्रता और उनका ऐश्वर्य सौंदर्य के आदर्श को परंपरायुक्त विषयवासना की कोटि से उठाकर अकलुषित और पवित्र सात्विक सौंदर्य के पद पर स्थापित कर देते हैं। कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

> गति गंगा मति सरसती सीता सील सुभाइ।
> महिलाँ सरहर मारवी अवर न दूजी काइ॥५५१॥
> नमणी खमणी बहुगुणी सुकोमळी सु सुकच्छ।
> गोरी गंगा नीर ज्यूँ मन गरवी, तन अच्छ॥५५२॥
> रूप अनूपम मारवी सुगुणी सघण सुचंग।
> सधण इसा परि राखिबइ, जिम सिव मस्तक गंग॥५५३॥

जिसकी पतितपावनी गंगा के समान गति है सरस्वती के समान निर्मल मति और सीता के समान शील स्वभाव है जो विनयशीला क्षमाशीला, स्वभावकोमला और आत्मगौरवशालिनी है—ऐसी श्रेष्ठ रमणी को पुरुष यदि गंगा को शिव की तरह आदरसहित मस्तक पर स्थान दे तो उसे अपना सौभाग्य ही समझना चाहिए। मारवणी के इस शीलसंपन्न सौंदर्य के विवरण के साथ उस कलुषित और वासनापरिपुष्ट सौंदर्य की तुलना करना चाहिए जिसने रीतिकाल के कवियों के हाथ में पड़कर स्त्रीसौंदर्य को पुरुष के विलास और वासनातृप्ति का साधनमात्र बना दिया था।

शील को छोड़कर अब अवयवसौंदर्य के वर्णन पर आइए। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि इस काव्य का रूप-सौंदर्य-वर्णन सर्वथा अलंकारपरंपरा से निर्मुक्त है परंतु यह निस्संकोच होकर कहा जा सकता है कि अधिकांश नवीन और स्वतंत्र है।

नीचे उद्धृत दूहों में परंपरारूढ़ उपमानों की शृंखला हिंदी के पिछले दौर के शृंगारी कवियों से किसी प्रकार कम नहीं है—

> गति गयंद जंघ केळिग्रभ केहरि जिम कटि लंक।
> हीर डसण विद्रम अधर मारू भ्रकुटि मयंक॥५५४॥

मारू-घूँघटि दिठ मइँ, एता सहित पुरिंद।
कीर, भ्रमर, कोकिल कमळ चंद मयंद, गयंद ॥४५५॥
मृगनयणी मृगपति-मुखी मृगमद-तिलक निलाट।
मृगरिपु-कटि सुंदर बणी मारू अम्हीणइ घाट ॥४५६॥

परंतु प्रचलित उपमानों का थोड़ा समावेश होते हुए भी परंपरामुक्त उपमानों से निर्मुक्त प्रत्यक्षावलोकन का वर्णन मारू-रूप-वर्णन में बहुतायत से मिलता है। इस प्रकार के वर्णन की स्पष्टता में स्वभावोक्ति और राजस्थान रमणी-सौंदर्य की विशेषता की गहरी छाप लगी होने से हम इसी को राजस्थान के स्त्री-सौंदर्य का सच्चा रूप समझते हैं—

मारू-देस उपन्नियाँ ताँह का दंत सुसेत।
कूँझ-बच्चाँ गोरंगियाँ खंजर जेहा नेत ॥४५७॥

तीखा लोयण कटि करल उर रत्ता निभीह।
ढोला बाँकी मारुई बाँथि विलूधउ सीह ॥४५८॥

कीमू लंक मराळि गय पिक सर मही बाँथि।
ढोला एही मारुई जेहा हंस निवाँथि ॥४५९॥

चंपावरनी नाक छळ उर सुचंग चिति हीया।
मींहर बोली मारवी बाधि मयाळी भीय ॥४६४॥

मारू देस उपन्नियाँ नइ जिम नीछरियाँह।
साह भया ढोला पारखी, सरि जिम पप्परियाँह ॥४८१॥

जंघ सुपत्तळ, करि कुँभळ, भींणी लंक मलंघ।
ढोला एही मारुई बाँथि क कप्पवर-कंघ ॥४७१॥

मारू-देस उपन्नियाँ सर ज्यउँ पध्धरियाँह।
कड़ुआ बोल न जाणही मीठा बोलणियाँह ॥४८४॥

आँगि अमोलख अच्छिबउ, तन जोबन कसमार।
मारू मेघा मउर जिम भर लागइ कुमळार ॥४७२॥

मारवाड़ देश की स्त्रियों की दंतपंक्ति शुभ्र और स्वच्छ होती है (इसे जलवायु की स्वास्थ्यप्रद विशेषता समझी जाय चाहे तांबूल के न्यूनतम प्रचार का फल परंतु है यह बिलकुल सत्य। आजकल दाँतों की यह स्वच्छता विलीन होती जा रही है)। कुरज पक्षी के समान लंबी सुन्दर उनकी गर्दन होती है, नेत्र तीखे होते हैं। उनी सुकुमार गर्दन की कुंज पक्षी की

गर्दन की, पयोधरों को पपीहे की, कटि को सीमू (बर्र) की, अंगयष्टि को सीधे तीर की और बंधा को कमल के कोमल गर्भ की उपमा दी गई है। इन सबमें उपमानों की नवीनता देखने योग्य है। कड़ुवा बोलना तो वे जानती ही नहीं जब बोलती हैं तब वीणा की झंकार का भ्रम होता है।

आलंकारिक सूक्ष्म की नवीनता उस स्थान पर विशेषता से देखी जाती है जहाँ मारवणी के मुख को आलंकारिक प्रथा के अनुसार चंद्रमा से समता न देकर सूर्य से उपमा दी गई है—

> मारू सी देखी नहीं अवर मुख दीम नवयांह।
> थोड़ो सो थोल पहर दणयर उगहेतांह ॥४७८॥

सूर्य से समानता स्थापित करने का कारण यह हो सकता है कि कवि का अभीष्ट मारवणी के सौंदर्य में उस विशुद्ध सात्त्विकता और पवित्रता प्रकट करने का है जो सूर्य की ओजस्विनी प्रभा द्वारा लक्षित होता है।

ऋतुवर्णन

यद्यपि राजस्थान देश के विवरण में ऋतुओं का बहुत कुछ वर्णन आ गया है परंतु उस प्रसंग में केवल वर्षा और ग्रीष्म के ही उदाहरण दिए गए हैं क्योंकि ये ही दो ऋतुएँ राजस्थान में अधिक विशेषता रखती हैं। एक अपनी सुखदता सौंदर्य और उपकारिता के लिये राजस्थान का जीवनप्राण है दूसरी अपनी विशेष उग्रता और भयंकर आतंक से राजस्थान के विशेष भयंकर रूप को सामने लाती है। इनके अतिरिक्त राजस्थानी वर्षाऋतु की कुछ और विशेषताओं का अन्य स्थलों पर वर्णन हुआ है जो संक्षेप में नीचे उद्धृत की जाती हैं। परंतु, जैसा कि आगे कहा जा चुका है, इस बात को भूलना नहीं चाहिए कि ऋतुओं का प्रसंग नायक-नायिका के विरहविलापों में और धीर न्याम से मिला हुआ है। स्वतंत्र रूप में ऋतु के लिये ऋतु का वर्णन कहीं भी नहीं हुआ है।

वर्षावर्णन—मारवणी सखियों से अपनी विरहदशा व्यक्त करती हुई कहती है—

> राजा परजा पुखिय जब कवि जन पंडित पात।
> सगळां मन उछरंग हुअउ बूठेतो बरसात ॥४ ॥
> बीजुळियाँ चहलावहलि आभय आभय कोडि।
> कद रे मिळउंली सज्जना कस कंचूकी छोडि ॥४५॥

ऊनमियउ उत्तर दिसइँ काळी कंठळि मेह।
हूँ भीजूँ घर आंगणइ पिउ भीजइ परदेस ॥ ४१ ॥
जळ थळ, थळ जळ हुइ रह्यउ बोलइ मोर किंगार।
सावण धूमर दे सखी किहाँ मुझ प्राण अधार ॥ ४२ ॥

उत्तर दिशा से काली-काली घटाएँ उमड़ आई हैं और मूसलाधार बरसने लगी हैं। चारों ओर जल ही जल हो रहा है आकाश के चारों कोनों में करोड़ों बिजलियाँ चमक रही हैं। ऐसे सुसमय में क्या राजा, क्या प्रजा, क्या गुणिजन पंडित और क्या वनस्पति सभी को आंतरिक आनंद प्राप्त होता है।

मालवणी ढोला के संवाद में वर्षा का चित्र इस प्रकार खींचा गया है—

पगि पगि पाँणी पंथसिर, ऊपरि अंबर छाँह।
पावस प्रगट्यउ पदमिणी कहउ त पूगळ जाँह ॥२४४॥
लागे ताद सुआँमयाउ नव भर कुंभळियाँह।
जळ पोइणिए छाइयउ कहउ त पूगळ जाँह ॥ २४ ॥
मेहाँ बूठाँ धन बहळ, जळ ताटा जळ रेस।
करसण पाका अन्न सिरा तद कंठ गम्मण करेस ॥२६४॥
ऊँचउ मंदिर अति घणउ आवि सुहावा कंत।
बीजळि लियइ झबूकड़ा सिहराँ रळि लागंत ॥२६८॥

रास्तों में जगह जगह पर स्वच्छ पर्याप्त जल की तलैया भरी लहराती हैं जिनके चारों ओर रातभर कुरमें कलरव करती हुई बड़ी सुहावनी प्रतीत होती हैं यह रहकर पपीहा बोल उठता है। ढोला कहता है इससे सुंदर समय प्रस्थान के लिये दूसरा कौन सा हो सकता है। परंतु मालवणी की राय में ऐसे समय म घर ही पर रहना अधिक उचित है जब खेती पक रही हो और भूमि वर्षा से तृप्त होकर जल जैसी शीतल हो रही हो। जब बिजलियाँ चमक चमककर पर्वत शिखरों से लिपट रही हों तब ऊँचे महलों म सुखपूर्वक प्रेम में मग्न रहना ही चाहिए।

हरे भरे लहराते हुए बाजरे के विस्तृत खेतों के बीच बीच में नाना प्रकार की बेलें फैल रही हैं श्रावण के महीने म मारू देश की तात्कालीन छटा बड़ी ही अनुपम हो रही है इसमें पर्वत प्रदेशों में स्थान स्थान पर मयूर नाच गा रहे हैं कहीं पर चिकनी भूमि पर ऊँट के फिसलने का भी डर रहता

है, जो रहकर वायु के शीतल झोंके हृदय में उत्साह पैदा करते हैं। सचमुच, राजस्थानी लोग इस ऋतु में स्वर्गोपम आनंद का उपभोग करते हैं। बादलों से समय समय पर बौछार होती रहती है जो वनस्पति और मानवजीवन के लिये अमृत संजीवनी का कार्य करती है। बरसाती छुद्र नदियों और नालों में जल कलकल करता हुआ प्रवाहित होता है। आकाश में जिधर दृष्टि उठाकर देखो बिजलियों की चमक दमक बड़ी ही सुहावनी लगती है। वर्षा से प्रक्षालित होकर पर्वतशिखर हरित परिधान और रंग-बिरंगे पुष्पों के आभूषण धारण कर लेते हैं सरोवर भर जाते हैं और नदी-नाले तरंगों से आंदोलित होते रहते हैं मेंढक अपनी सुमधुर रट अलग ही लगाए रहते हैं और बिजलियाँ चमक चमककर पर्वत शिखरों का आलिंगन करती हैं। क्या जड़ और क्या चेतन, प्रकृति की समस्त सृष्टि में संयोग और विश्वमैत्री का दृश्य चारों ओर दृष्टिगोचर होता है। ऐसी है राजस्थान की वर्षा ऋतु।

शीतवर्णन—शीत ऋतु के वर्णन में राजस्थान की अधिक विशेषता नहीं झलकती। यह वर्णन सार्वदेशिक और साधारण सा है। कुछ उदाहरण उद्धृत किए जाते हैं—

> जिणि रिति मोती नीपजइ सीप समंदाँ माँहि ॥२८२॥
> जिणि रीते जिल्ली भिड़इ, हिरणी मलवइ गाम ॥२८३॥
> जिणि रिव नाग न नीसरइ दाझइ वनखँड दाह ॥२८४॥
> दिन छोटा मोटी रयण पाला नीर पवन ॥२८५॥
> उत्तर आज न ऊपरइ ठिकाँ स सीत अगाध।
> ता भर सरिस हरपवउ ताकि कलइ बलिसाध ॥२९१॥

राजस्थान का शीतकाल यद्यपि अल्पस्थायी होता है परंतु प्रखर होता है। जब पाला पड़ने लगता है तो घोड़ों की रक्षा के लिये उनकी पीठ पर पाखर डाल दी जाती है। शीतकाल संयोगी प्रेमियों को सुखदायी और विरहियों को दुःखदायी होता है। समुद्रों में सीप के गर्भ में मोती पैदा होते हैं जिल्ल के पहों में बीज पड़कर हरिणियाँ चरने लगती हैं और हरिणियों की समाधान इसी ऋतु में होता है। सर्प इस ऋतु में बिलों से बाहर नहीं निकलते वन कठोर शीत के कारण झुलसकर मुरझाए हो जाते हैं। रातें बड़ी और दिन छोटे हो जाते हैं और पवन और जल का शीतलत्व

लाखी बाँधे पीढ़ुसी, ढीली मेल्हे लज्ज।
सरही पेट न सेविअइ, मूँघ न मेल्हई मज्ज ॥५० ॥
पगह ही पग झैटिअइ, मुहरी म्हाली नारि ॥१२६॥
सेत छवाकड़ पिठ पिया, करहउ सणगारेस ॥१११॥

ढोला को अपनी लंबी यात्रा के लिये ऐसे ऊँट की आवश्यकता है जो थोड़ा सा संकेत करने पर घड़ी भर में एक योजन चला जाय। वैसे थोहरे थोहरे शरीरधारी काँटेदार घास को चरनेवाले ऊँट साधारणतः बहुत मिलते हैं, परंतु जो नागरवेलि के पत्तों को चरनेवाला उत्तम जाति का ऊँट होता है वही ऊँटों में शिरोमणि गिना जाता है और वही इस यात्रा में सफल हो सकता है। यदि ऐसा ऊँट मिल जाय तो ढोला उसे आभूषणों से खूब सजावेगा गले में सुवर्णनिर्मित घुँघुरू की माला और मुख में चाँदी की नकेल डालेगा। अंत में ऐसा ऊँट मिल गया। ढोला ने उस पर चमकदार और चित्रित पलाँण सजाया और चलने को तैयार हुआ।

ढोला ने ऊँट पर पलाँण कस लिया नकेल डाल दी और चढ़ने के लिये राजद्वार के आगे आधीरात के समय उसे बैठा लिया। उठती बार जब ऊँट स्वभावतः बलबलाया तो मालवणी की नींद खुल गई। अब क्या था जैसे हवा के झोंकों से जैसे मेघखंड उड़ते जाते हैं वैसे ही ऊँट दौड़ पड़ा, नहीं हवा हो गया। बहुत सा रास्ता पार कर लेने पर एक स्थान पर ऊँट को स्वच्छ जलाशय का जल पिलाने के लिये ठहराया। समझदार ऊँट से ढोला ने कहा—'यह अच्छा मौका है, तृप्त होकर जल पी ले आगे निर्जल मरुस्थल पड़ता है कोसों तक पानी नहीं मिलेगा फिर तू तो उत्तम जाति का ऊँट है गँदले पोखरों का जल तो पिएगा नहीं और मेरे हुए स्वच्छ जलाशय मिलेंगे कहाँ!' इसके बाद सेंवणघास (घास विशेष) और फोग (पौधा विशेष) ऊँट के सामने चरने को लाकर रखा नागरवेलि वहाँ कहाँ मिलती! फिर करील की मरवी काटकर उसके सामने चरने के लिये जाली जाल (वृक्ष विशेष) के पत्ते भी डाले। ढोला का ऊँट लंबी गरदनवाला था जिसके दो दो अंगुल के छोटे छोटे कान थे। इतने में संध्या होने लगी पूगल अब भी दूर था। ढोला ने उतावला होकर ऊँट को साँटी से सड़ा सड़ पीटना शुरू किया। स्वामिभक्त पशु ने धीरज देते हुए कहा—साँटी की सड़ासड़ चोटें मेरे शरीर पर न करो। रानों के दबाव से और ठोकरों से मेरी पसलियों को चकनाचूर न करो। मुझे तो सीधी अपने कर्तव्य और

स्वामिभाव का पूरा ध्यान है। त्रैलोक्य के उस पार भी यदि जाना पड़े तो मैं निश्चय समय पर तुम्हें अपनी प्रेयसी से मिला दूँगा। ढोला ने ऊँट से कहा—'अरे कच्छ देश के काले ऊँट (जो ऊँटों की सर्वोत्तम जाति है) ! तू किस सोच में है ? सूर्य की किरणें अस्त हो रही हैं। अब तो तुम्हें (त्रिविक्रम) का रूप धारण कर दीर्घकाय होना पड़ेगा चारों कदम उठाकर, लंबी चौकड़ी भरकर पवन में उड़ जाना पड़ेगा, तभी तो रात्रि से पहले पहले पूगल पहुँच सकता है।

ऊँट को यह शासन असह्य हुआ। उसने स्वामी को चेतावनी देते हुए कहा— पगड़ी को कसकर बाँध लो, नकेल को ढीली छोड़ दो। यदि पवनवेग से चलकर तुम्हें अपनी प्रेयसी से संध्या होते होते न मिला दूँ तो उत्तम सरदी (ऊँटनी) के पेट से जनमा हुआ न समझना।

आगे चलकर एक स्थल पर ऊँट का और वर्णन हुआ है। ऊमर के कपटपूर्ण स्वागत को स्वीकार करने को ढोला तैयार हुआ। उधर आसपास में कोई खूँटा अथवा ऊँट बाँधने का स्थान न होने पर उसने ऊँट के पैर को घुटनों के पास मोड़कर रस्सी से बाँध दिया जिससे वह भाग न जाय और नकेल मारवणी को पकड़ा दी। ऊँट के पैर को ऊँटने की यह प्रथा अब तक राजस्थान में देखी जाती है। यहाँ पर ऊँट के विलक्षण होकर कुगाली करने का बड़ा स्वभाव चित्र उपस्थित हुआ है। अंत में ऊमर के षड्यंत्र से बच भागने की जल्दी में ढोला मारवणी पैर बँधे हुए ऊँट पर ही चढ़कर भाग निकले।

उपर्युक्त प्रकार वर्णन में ऊँट के स्वभाव, उसकी वेशभूषा आकृति स्वामिभक्तता आदि अनेक बातों का बड़ा ही मनोरम और स्वाभाविक निदर्शन हुआ है जो राजस्थान से थोड़ा बहुत भी परिचय रखनेवाले पाठकों को रुचिकर हुए बिना न रहेगा।

(८) ढोला मारू एक प्रेमकहानी

ढोला मारू की प्रेमकहानी हिंदी के प्रारंभिक भक्तिकाल के प्रेममार्गी कवियों की प्रेमकहानियों की परंपरा से बहुत कुछ मिलतीजुलती है। कबीर के समय के कुछ ही बाद कुछ भक्त एवं दार्शनिक कवियों की काव्यशैली का प्रभाव प्रेमकहानियों द्वारा जनता को हृदयगम्य प्रेम का दिग्दर्शन कराने की

ओर हुआ और अनेक भावुक कवि इस क्षेत्र में उतर पड़े। इनकी प्रेम की पीर की कहानियों ने बहुत शीघ्र जनता के हृदय में घर कर लिया। यद्यपि इन कहानियों के लेखक अधिकतर सूफी सिद्धांत के मुसलमान थे परंतु ये कहानियाँ हिंदुओं के गार्हस्थ्य जीवन की छाया को लेकर लिखी गई थीं। इनकी मधुरता कोमलता और मार्मिकता ने यह प्रत्यक्ष कर दिखाया कि 'एक ही गुप्त तार मनुष्य मात्र के हृदयों से होता हुआ गया है जिसे छूते ही मनुष्य सारे बाहरी रूपरंगों के भेदों की ओर से ध्यान हटाकर एकत्व का अनुभव करने लगता है। इन जनता के कवियों ने अपनी प्रेमकहानियों द्वारा प्रम का शुद्ध मार्ग प्रकट करते हुए उन सामान्य जीवनदशाओं को सामने रखा जिनका प्रभाव मनुष्य मात्र पर एक सा दिखाई पड़ता है। कबीर ने तो इस जीवन से भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता (Mysticism) का अपनी अटपटी बानी में उपदेश किया था। प्रत्यक्ष जीवन के सौंदर्य और प्रेम सुख दुख भय आशंका ईर्ष्या और सहानुभूति को हृदयस्पर्शी स्वाभाविकता के साथ प्रकट करनेवाले ये प्रेममार्गी लेखक ही थे। विक्रम की १६वीं शताब्दि के मध्य में मुसलमान कवि कुतबन ने 'मृगावती' नामक प्रेमकहानी दोहे चौपाइयों में लिखी। कहानी में प्रेममार्ग के अपूर्व आत्मत्याग कष्टसहिष्णुता और प्रेमसाधना का मर्मस्पर्शी वर्णन हुआ है। इसी समय के लगभग मंझन कवि ने 'मधुमालती' नाम की प्रेमकहानी लिखी जिसमें प्रेमनिर्वाह की कथा बड़ी सहृदयता के साथ विशद कल्पनाओं से परिपूर्ण हृदयग्राही वर्णनों द्वारा दोहा चौपाइयों में कही गई है।

तीसरी साहित्य में प्रसिद्ध पद्मावत की प्रेम कहानी है जिसे प्रख्यात कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने सं १६६० के लगभग लिखा। जायसी ने अपने महाकाव्य म अपने से पूर्व रचित प्रेमकहानियों की तालिका दी है जिससे यह प्रतीत होता है कि इस साहित्यिक परंपरा में कई उत्कृष्ट प्रेमकहानियाँ लिखी गई थीं।

> विक्रम धँसा प्रम के बारा। सपनावति कहँ गयउ पतारा ॥
> मधू पाछ मुगधावति लागी। गगन पूर होइगा बैरागी ॥
> राजकुँवर कंचनपुर गयऊ। मिरगावति कहँ जोगी भयऊ ॥
> साध कुँवर खंडावत जोगू। मधुमालति कर कीन्ह बियोगू ॥
> प्रेमावति कहँ सुरपुर साधा। उषा लागि अनिरुध बर बाँधा ॥

इससे विदित होता है कि मृगावती, मधुमालती, पद्मावती और पुराण प्रसिद्ध उषा अनिरुद्ध की कहानियों के अतिरिक्त रूपमावती, मुग्धावती और प्रेमावती की कहानियाँ भी जायसी के समय में प्रसिद्ध रही होंगी। इनमें से अधिकांश कहानियाँ पूर्वी हिंदी और अवधी में मुसलमान कवियों द्वारा दोहा-चौपाइयों के रूप में लिखी गई थीं और उनमें प्रेमकथा के मिस से सूफीमत के रहस्यमय आध्यात्मिक विचारों का खासा आभास मिलता था।

जायसी के पीछे कई शताब्दियों तक इन प्रेमकहानियों की परंपरा जारी थी। जहाँगीर के शासनकाल में उसमान कवि ने जायसी का अनुकरण कर 'चित्रावली' नामक कहानी लिखी है। इस परंपरा की अंतिम रचना दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के समय तक मिलती है जब नूरमुहम्मद कवि ने सं १७९९ में 'इंद्रावती' नामक सुंदर कहानी लिखी।

ढोला मारवणी की प्रेमकहानी भी उपर्युक्त प्रेममार्गी कवियों की कहानी से बहुत कुछ मिलती जुलती है। अब हम हिंदी प्रेमकहानियों में सर्वोत्तम जायसी की पद्मावती की कहानी से ढोला मारू की प्रेमगाथा की तुलना करके उसके सादृश्यों का सविस्तर विश्लेषण करेंगे जिससे इस गीतकाव्य के प्रमुख गुणों का पाठक के हृदय में यथोचित संस्थान हो सकेगा।

साधारणतः देखा जाय तो ऊपर उल्लेख की हुई सभी प्रेमकहानियों में कथित विषय का बहुत कुछ सादृश्य है। प्रायः सभी कहानियों में नायक अथवा नायिका को अपने सच्चे प्रेमी को पाने के लिये अनेक प्रकार के भौतिक कष्ट उठाने पड़े हैं और अंत में उनकी साधना सफल हुई है। भारतीय कहानियाँ प्रायः सुखांत ही होती हैं और उनके द्वारा इस आध्यात्मिक तथ्य की पुष्टि हो जाती है कि मायाविलास सांसारिक जीवनयात्रा में भटकते हुए जीवात्मा को प्रेम की साधना द्वारा अंत में परमात्मा की उपलब्धि और जीवन के चरमलक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। इसके विरुद्ध इसी प्रकार की पाश्चात्य कहानियों और गीतों (Ballads) का प्रवाह दुःखांत की ओर होता है और उनका आध्यात्मिक तथ्य इतना सुस्पष्ट और प्रभावमय नहीं होता है।

पद्मावत की कहानी और ढोला मारू की कहानी में बहुत कुछ सादृश्य है—

(१) पद्मावत में हीरामन सूआ और ढोला की कहानी में मारुवणी का सूआ मानवप्रेम के मार्गप्रदर्शक अथवा सहायक साधन की तरह प्रयुक्त हुए हैं। भेद इतना ही है कि पहली कथा में सूआ नायिका द्वारा प्रेरित होकर नायक को प्रेमपथ पर सफलतापूर्वक मार्ग प्रदर्शन करता है। दूसरी में विप्रयुक्त प्रेमी (नायक) के प्रेम को नायिका के लिये प्राप्त करने के लिये सूआ चेष्टा करता है परंतु असफल रहता है।

(२) जिस प्रकार पद्मावत में चित्तौड़ का पंडित पद्मावती के सूए को खरीदकर राजा रत्नसेन को देता है जिससे वह प्रिया के प्रेम का संवाद पहले पहल सुनता है, उसी प्रकार 'ढोला' में नरवर का सौदागर पहलेपहल ढोला की खबर मारवणी और उसके पिता को देता है।

(३) राजा रत्नसेन ने योगी बनकर अनेक कष्ट सहन करते हुए अपनी प्रियतमा पद्मावती को पाया। इसी प्रकार ढोला ने अपनी प्रेमसी मारवणी को बड़ी कष्टपूर्ण साधना के बाद प्राप्त किया।

(४) दोनों कहानियों में अलौकिक तत्व (Supernatural element) का सहायक के रूप में हस्तक्षेप है। सिंहलद्वीप में महादेव के मंदिर में पूजार्थ आई हुई पद्मावती का प्रथम दर्शन कर रत्नसेन मूर्छित हो गया और जब पद्मावती लौट गई तब पश्चात्ताप चिता में भस्म होने को उद्यत हुआ। तब योगी और योगिन के रूप में महादेव पार्वती ने इस सच्चे प्रेमी को मरने से रोका। इसी प्रकार ढोला के साथ नरवर को लौटती हुई मारवणी को जब जंगल में पीवणा साँप काट गया और वह मर गई तब ढोला ने उसके वियोग में चिता लगाकर जल मरने की ठानी परंतु योगी और योगिन ने आकर उसकी जान बचाई।

(५) नागमती ने अपने विरहविलाप में उपवन के पक्षियों को अपने दुखड़े का संदेश रत्नसेन तक पहुँचाने की प्रार्थना की थी। इस संदेश को पक्षियों ने समुद्र तट पर शिकार खेलते हुए रत्नसेन को पहुँचाया और नागमती और चित्तौड़ की शोचनीय दशा का हाल सुनकर रत्नसेन लौट पड़ा। परंतु उस समय तक रत्नसेन अपने प्रेममार्ग पर सिद्धि प्राप्त कर चुका था। मारवणी ने भी कुंज पक्षियों से इसी प्रकार प्रार्थना की थी और मारवणी ने तो शुक द्वारा संदेश भेज भी दिया था परंतु तब तक अपना कार्य सिद्ध न होने से ढोला लौटा नहीं।

(६) पद्मावती को सिंहल से लेकर लौटते समय समुद्र के बीच में विभीषण नामक राक्षस ने रत्नसेन को बहकाकर विकट समुद्र में डाल दिया जहाँ से उनके जीवित बच निकलने की कोई आशा न रही थी। इस समुद्र के राजपक्षी ने उस प्रेमी की जान बचाई। ढोला का भी दुष्ट ऊमरसूमरा के धोखे में आकर जीवन संकट में पड़ गया था परंतु उस समय 'पीहर संदी डूमणी' गायिका की चेतावनी से उसके प्राण बचे।

(७) दुष्ट ब्राह्मण राघव चेतन ने प्रतिशोध लेने की इच्छा से रत्नसेन को धोखा देकर बादशाह अलाउद्दीन को उसके विरुद्ध भड़काया और पद्मावती को पाने की इच्छा से बादशाह को लालायित किया। राघव की तरह ऊमर के दुष्ट चारण ने भी ढोला को धोखा देकर उसको अपने प्रेममार्ग से विचलित करने की चेष्टा की।

(८) प्रेमकहानी को काव्योपयुक्त स्वरूप देने के लिये ऐतिहासिक घटनाओं को कल्पना के रंग में रँगने की आवश्यकता कवि को बहुधा पड़ती है। इससे कथाबद्ध ऐतिहासिक तथ्य भी सरस मधुर और हृदयग्राही हो जाते हैं। इस प्रकार के अधिकार का दोनों काव्यों में उपयोग मिलता है। इतिहास और कल्पना का मनोज्ञ सम्मिश्रण दोनों में हुआ है।

इन समताओं के होते हुए भी दोनों कथाओं के परिणाम में भेद है। अलाउद्दीन और देवपाल के प्रयत्न अंत में असफल होते हैं और परिणामतः रत्नसेन देवपाल के साथ युद्ध में मारा जाता है। अलाउद्दीन चित्तौड़ ले लेता है और नागमती और पद्मावती चितारोहण कर भस्म हो जाती हैं। परंतु ढोला के विरुद्ध ऊमरसूमरा का षड्यंत्र निष्फल सिद्ध होता है और उस प्रेमकहानी का सुख में अंत होता है। दोनों कहानियों का सुखांत और दुःखांत परिणामभेद भारतीय और वैदेशिक प्रणालियों का संस्कृतिजन्य भेद है।

(९) ढोला मारू का प्रेमवर्णन

साहित्य में भारतीय पद्धति के अनुसार दांपत्य प्रेम का विकास चार प्रकार से माना गया है —

(१) पहले भेद के अंतर्गत यथाक्रम विवाह संबंध द्वारा मर्यादाबद्ध प्रेम का क्रमशः विकसित और घनीभूत होना और जीवन की जटिल समस्याओं

१ पं० रामचंद्र शुक्ल—'जायसी ग्रंथावली' की भूमिका।

(१) पद्मावत में हीरामन सुआ और ढोला की कहानी में मालवणी का सुआ मानवप्रेम के मार्गप्रदर्शक अथवा सहायक साधन की तरह प्रयुक्त हुए हैं। भेद इतना ही है कि पहली कथा में सुआ नायिका द्वारा प्रेरित होकर नायक को प्रेमपथ पर सफलतापूर्वक मार्ग प्रदर्शन करता है। दूसरी में, विमुक्त प्रेमी (नायक) के प्रेम को नायिका के लिये प्राप्त करने के लिये सुआ चेष्टा करता है परंतु असफल रहता है।

(२) जिस प्रकार पद्मावत में चित्तौड़ का पंडित पद्मावती के सुए को खरीदकर राजा रत्नसेन को देता है जिससे वह प्रिया के प्रेम का संवाद पहले पहल सुनता है, उसी प्रकार 'ढोला' में नरवर का सौदागर पहलेपहल ढोला की खबर मारवणी और उसके पिता को देता है।

(३) राजा रत्नसेन ने योगी बनकर अनेक कष्ट सहन करते हुए अपनी प्रियतमा पद्मावती को पाया। इसी प्रकार ढोला ने अपनी प्रेमसी मारवणी को बड़ी कष्टपूर्ण साधना के बाद प्राप्त किया।

(४) दोनों कहानियों में अलौकिक तत्त्व (Supernatural element) का सहायक के रूप में हस्तक्षेप है। सिंहलद्वीप में महादेव के मंदिर में पूजार्थ आई हुई पद्मावती का प्रथम दर्शन कर रत्नसेन मूर्च्छित हो गया और जब पद्मावती लौट गई तब पछताकर चिता में भस्म होने को उद्यत हुआ। तब योगी और योगिन के रूप में महादेव पार्वती ने इस सच्चे प्रेमी को मरने से रोका। इसी प्रकार ढोला के साथ नरवर को लौटती हुई मारवणी को जब जंगल में पीवणा साँप काट गया और वह मर गई तब ढोला ने उसके वियोग में चिता लगाकर जल मरने की ठानी परंतु योगी और योगिन ने आकर उसकी जान बचाई।

(५) नागमती ने अपने विरहविलाप में उपवन के पक्षियों को अपने दुखड़े का संदेश रत्नसेन तक पहुँचाने की प्रार्थना की थी। इस संदेश को पक्षियों ने समुद्र तट पर शिकार खेलते हुए रत्नसेन को पहुँचाया और नागमती और चित्तौड़ की शोचनीय दशा का हाल सुनकर रत्नसेन लौट पड़ा। परंतु उस समय तक रत्नसेन अपने प्रेममार्ग पर सिद्धि प्राप्त कर चुका था। मारवणी ने भी कुंज पक्षियों से इसी प्रकार प्रार्थना की थी और मालवणी ने तो शुक द्वारा संदेश भेज भी दिया था परंतु तब तक अपना कार्य सिद्ध न होने से ढोला लौटा नहीं।

वास्तव में मारवणी का प्रेम उसकी युवावस्था के प्रथम स्वप्नदर्शन द्वारा, उषा के प्रेम की तरह अंकुरित होता है और अंत तक इसी पद्धति में ढलकर प्रवाहित होता है—

इसइ आरत्तइ मारवी सूती सेज बिछाइ।
साल्हकुँवर सुपनइँ मिल्यउ जागि निसासउ खाइ ॥ १४ ॥

इस प्रकार के प्रेमवर्णन में एक विशेषता यह होती है कि नायक-नायिका के विरहविलाप द्वारा प्रेमी हृदय की कोमल भावनाओं का सूक्ष्म निदर्शन करने का कवि को अच्छा मौका मिल जाता है। ऐसे काव्यों में विप्रलंभ शृंगार और मानसिक भावनाओं का पक्ष प्रधान रहता है संयोग शृंगार और शारीरिक पक्ष को गौण स्थान मिलता है। यह बात ढोला और पद्मावत दोनों की कहानियों में समान रूप से सिद्ध है।

परंतु ढोला और पद्मावत की प्रेमकहानी के प्राथमिक विकास में भेद है। यद्यपि दोनों कहानियों में प्रेम का प्रथम आभास नायिकाओं के हृदय में ही होता है परंतु पद्मावत में प्रेमी को पाने का प्रयत्न नायक रत्नसेन की ओर से प्रारंभ होता है। ढोला में यह प्रयत्न नायिका मारवणी की ओर से प्रारंभ होता है। इस भेद का भी वही कारण है जो दोनों कहानियों के परिणामभेद के संबंध में हम ऊपर कह आए हैं। जायसी ने फारसी-अरबी की वैदेशिक कहानियों के आदर्श को दृष्टि में रखकर लैलामजनूँ शीरींफरहाद की तरह नायक को प्रेममार्ग पर पहले प्रयत्नशील करके कठिन साधना द्वारा उसके प्रेम की परीक्षा की है। फारस के प्रेम में नायक के प्रेम का वेग अधिक तीव्र दिखाई पड़ता है और भारतीय प्रेम में नायिका के प्रेम का। परंतु आगे चलकर दोनों कहानियों में नायक-नायिका का प्रेम सम तीव्र हो जाता है। नायक भी उतने ही उत्सुक और प्रयत्नशील दिखाई पड़ते हैं जितनी कि नायिकाएँ।

फारस की कहानियों में एक विशेषता यह भी पाई जाती है कि उनमें प्रदर्शित प्रेम एकांतिक आदर्शात्मक (Idealistic) और लोकबाह्य होता है। वास्तविक जीवन की परिस्थितियों के बीच होकर उसका प्रवाह नहीं बहता बल्कि जीवन से परे ऐकांतिक आदर्शोन्मुख होता है। इसके विपरीत भारतीय प्रेमपद्धति लोकसम्मिलित और व्यवहारात्मक होती है। इसका विकासक्रम वास्तविक जीवन के व्यवहार में बद्धमूल होता है। इस

ढा मा दू १ (११०–१२)

को कर्तव्यबुद्धि और धार्मिक आस्था के बल से सुखमय बनाकर जीवन को सफल बनाना है। यह प्रेम अत्यंत स्वाभाविक, निर्मल तथा शील और शक्ति संपन्न होता है और इसमें विलासिता और कामुकता का पूर्णतः अभाव रहता है। उदाहरणतः राम और सीता का आदर्श प्रेम।

(२) दूसरे प्रकार का प्रेम प्रथमदर्शन द्वारा प्रेरित होकर विवाह के पूर्व ही अंकुरित हो जाता है। संसार क्षेत्र में घूमतेफिरते नायक और नायिका अकस्मात् किसी उपवन तड़ाग वाटिका के पास मिलते हैं और उनका जीवन-सूत्र प्रेम की दृढ़ गाँठ में बँध जाता है। अंत में विवाह भी हो जाता है। इस प्रेम में स्वच्छंदता की मात्रा पहले प्रकार से अधिक रहती है। साहित्य में शकुंतला-दुष्यंत विक्रम-उर्वशी का प्रेम इसी कोटि का समझना चाहिए।

(३) तीसरे प्रकार का प्रेम विलासिता और कामवासना का फलस्वरूप होता है। पुराने समय के विलासी राजा अपने अंतःपुर में बैठे बैठे ही अपने विलास की सामग्री स्वरूप किसी सुंदर दासी अथवा परिचारिका को अपने प्रेम का आधार बना लेते थे। परिणाम में अंतःपुर में सपत्नी डाह कलह, ईर्ष्या इत्यादि दुर्भावनाओं का अभिनिवेश होता था। इस प्रकार के कलुषित, आडंबरपूर्ण और विलासी प्रेम का विकास उत्तर काल के संस्कृत काव्यों और नाटकों में, यथा श्रीहर्ष के नाटकों में हुआ है।

(४) चौथे प्रकार का प्रेम स्वच्छंद प्रीति का प्रेम है जो नायक नायिका के बीच एक दूसरे के गुणश्रवण स्वप्नदर्शन चित्रदर्शन द्वारा अंकुरित होकर एक दूसरे को पाने के प्रयत्नरूप में विकास को प्राप्त होता है। ऊषा ने अनिरुद्ध को स्वप्न में देखा और बाणासुर के अनेक रुकावटें डालने पर भी उसे प्राप्त करने का प्रयत्न किया और अंत में पा लिया। नल दमयंती का प्रेम भी इसी कोटि का था। इस पद्धति में विवाह प्रयत्न के परिणाम में होता देखा गया है। ढोला मारवणी का प्रेम भी इसी कोटि का है। भेद इतना ही है कि ढोला और मारवणी का विवाहसंस्कार नाम मात्र के लिये बचपन में ही हो जाता है, जो न होने के बराबर है कारण उसकी स्मृति दोनों प्रेमियों में से किसी को भी नहीं रहती—

> ढउढ बरसरी मारवी तिहुँ बरसाँरउ कंत ।
> बालकपइ परणावियाँ पहुत, अंतर पड़यउ अनंत ॥ ६१ ॥

दूसरे के द्वारा—चाहे वह चिड़िया हो या आदमी—किसी स्त्री या पुरुष के रूपगुण आदि को सुनकर मन में उसकी प्राप्ति की इच्छा उत्पन्न करनेवाला भाव लोभमात्र कहला सकता है परिपुष्ट प्रेम नहीं। लोभ और प्रेम के लक्षण में सामान्य और विशेष का ही अंतर समझा जाता है। पूर्वराग रूपगुणप्रधान होने के कारण सामान्योन्मुख होता है, परन्तु प्रेम व्यक्तिप्रधान होने के कारण विशेषोन्मुख होता है।

इस दृष्टि से पद्मावती और रत्नसेन का प्रेम पहलेपहल प्रिय पुरुष को पाने की अभिलाषा के रूप में लोभ का भाव सिद्ध होता है। यह बात मारवणी के प्रेम के संबंध में सर्वथा सिद्ध नहीं होती। दोनों में अंतर—बड़ा अंतर है। रत्नसेन के प्रारम्भिक प्रेम की तीव्र अभिव्यक्ति वास्तविकता की सीमा का उल्लंघन कर गई। इसी प्रकार पद्मावती भी शुक के सामने अपनी कामव्यथा को व्यक्त करती हुई शिष्टोचित शील और मर्यादा से बाहर निकल जाती है और उसके खुलेपन को देखकर पाठक के मन में संकोच उत्पन्न होता है। यह सब अस्वाभाविक सा जँचता है। मारवणी का प्रेम मर्यादा और शील की सीमा में सर्वथा सुरक्षित रहकर प्रकट होता है और उसका क्रमागत विकास भी मनोवैज्ञानिक और लोकव्यवहार की दृष्टि से युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

यौवन के आरंभ में मारवणी को स्वप्न में पतिदेव के दर्शन होते हैं और उसके हृदय में एक वेदना उद्भूत होती है—'साल्ह कुँवर सुपने मिल्यो जागि निसासो थाइ।' वियोग का दुःख उसके लिये अज्ञात वेदना है। उसे वेदना अवश्य होती है परन्तु वह कुलीन शील और मर्यादा को रखती हुई उसे गंभीरतापूर्वक सहन करने की क्षमता भी रखती है न तो मूर्च्छित होती है न हायतोबा मचाकर आकाश-पाताल को एक करती है। इस दशा का सूक्ष्म परिचय कवि बड़े उत्तम ढंग से यों कराता है—

> पाइ निहाळइ दिन गिणइ मारू आशाळुध्ध।
> परदेसे प्रीतम गया विम्हउ न आवइ मुध्ध ॥१७॥

'पाइ निहाळइ' में प्रतीक्षाजन्य धैर्य आशाळुध्ध में आशा और अभिलाषा विम्हउ न आवइ मुध्ध में अकस्मात् आए हुए प्रथम वियोग दुःख से अपरिचय—इन भावों को स्पष्टतया दिखलाकर कवि ने मारवणी के प्रेम को मर्यादा, शील, शक्ति और लोकव्यवहार की दृढ़ सीमा से निकलने नहीं दिया

प्रकार का प्रेम व्यवहार कर्त्तव्यमार्ग का विरोधी नहीं, बल्कि उसका संपोषक बनकर जीवन के बीच से होकर चलता है। आदिकाल में उसका यही स्वरूप रहा यथा वाल्मीकि रामायण में। परंतु पीछे से कादंबरी, नलदमयंती, मालतीमाधव माधवानल-कामकंदला आदि आख्यानों में उसका दूसरा ऐकांतिक और लोकबाह्य रूप भी प्रकट हुआ। यद्यपि पद्मावत की प्रेमपद्धति को सर्वथा लोकपक्ष-शून्य नहीं कह सकते क्योंकि इसमें प्रेम की भावात्मक और व्यवहारात्मक दोनों शैलियों का सम्मिश्रण है, परंतु इसमें कोई संदेह नहीं है कि ढोला का मारवणी के प्रेम को प्राप्त करने का प्रयत्न कर्त्तव्यबुद्धि द्वारा प्रेरित और संपोषित है अतएव सर्वथा लोकसमन्वित और व्यवहारस्थित है। यह जीवन का और जीवन से है। रामायण की तरह ढोला के आख्यान में जीवन के बहुत से इतर व्यापारों का विशेष उल्लेख नहीं मिलता और पति के सिवा जो थोड़े से इतर व्यापार और मार्गों का उल्लेख मिलता है वह भी प्रेमभाव के उपकारी मार्गों की तरह। इसका कारण यह है कि इस कहानी का केंद्र सीमित होने से सारे व्यापार प्रेमतत्त्व में केंद्रीभूत हैं।

अब यह देखना है कि मारवणी का स्वप्नदर्शन से उत्पन्न राग वास्तव में प्रेम कहलाने के योग्य है अथवा नहीं और इसी प्रकार ढाढियों से मारवणी की दशा को सुनकर ढोला का उसके लिये व्याकुल होना प्रेम की युक्तिसंगत अभिव्यंजना है अथवा नहीं।

पूर्वराग रति का अंग अवश्य है परंतु पूर्ण रति नहीं। साहित्यदर्पण में विप्रलंभ शृंगार के चार भेद किए गए हैं और पूर्वराग की परिभाषा इस प्रकार की गयी है—

(१) स च पूर्वरागः मानप्रवासकरुणात्मकश्चतुर्धा स्यात् ॥

सा द ३।२११

(२) श्रवणाद्दर्शनाद्वापि मिथः संरूढरागयोः ।

दशाविशेषो योऽप्राप्तौ पूर्वरागः स उच्यते ॥ सा द ३।२१४ ॥

तोते के मुँह से परलोकपरक पद्मावती का रूपवर्णन सुनकर रत्नसेन का अत्यंत वियोगव्यथा से व्यथित होकर मूर्छित हो जाना अस्वाभाविक सा जान पड़ता है। ऐसी दशा में पद्मावती के लिये उसका अभिलाषा मात्र करना स्वाभाविक हो सकता है। पद्मावती के पूर्वराग का विवेचन करते हुए पं रामचंद्र शुक्ल ने जायसी ग्रंथावली की भूमिका में लिखा है—

सखी सपत्त सुंदरि सुपमा उठी मदन की झाळ।
सुंदरिमूँ सकया विरह रूपाडउ ततकाळ ॥ २५॥

तदनंतर उत्तरोत्तर बढ़ती हुई यह व्याकुलता विरहविलाप के रूप में प्रकट होती है। मारवणी पहले चातक पक्षियों से अपना दुखड़ा सुनाती है फिर बादल और कौंचों के सामने विनय के रूप में अपना हृदय खोलकर अपनी वेदना सुनाती है और प्रार्थना करती है कि उसका संदेश कोई प्रिय को ले जाकर सुनावे। मारवणी के विरह की उक्तियाँ अत्यंत सरस मर्मस्पर्शी, स्वाभाविक और प्रेम की कोमल भावनाओं से भरी हुई हैं।

प्रेम विप्रयोन्मुख होता है और पूर्णता प्राप्त करने के लिये उस प्रिय के साक्षात्कार की आवश्यकता होती है। मारवणी का ढोला के प्रति राग चाहे कितना ही तीव्र और वैवाहिक संस्कार द्वारा परिष्कृत क्यों न हो जब तक उसका ढोला से मिलाप नहीं होता तब तक हम उसे पूर्वराग ही कहेंगे। विवाह संबंध पूर्वस्थित हो जाने से उसके विरहविलाप इतने आक्षेप योग्य और अस्वाभाविक नहीं कहे जा सकते जितने कि पद्मावती की पूर्वरागावस्था के तीव्र प्रलाप। ढोला से मिलने पर मारवणी का पूर्वराग पूर्वप्रेम की दृढ़ता प्राप्त कर लेता है जिसका परिचय मारवणी की उस क्षिप्र बुद्धिजन्य समयोचित चेष्टा करने में मिलता है, जो उसने ऊमरसूमरा के षड्यंत्र में पड़े हुए अपने पति को लेकर उसके प्राण बचाए थे।

अब यह देखना चाहिए कि ढोला का प्रेम पहलेपहल किस रूप में प्रकट हुआ? ढाढ़ियों के भावगर्भित संवाद को गान के रूप में रातभर ढोला ने सुना। सुनकर मन में बेचैनी तो रही परंतु उसका कारण सबेरे उनको बुलाकर सारा हाल पूछने से मालूम हुआ—

दाढी गया निसह भरि, सुणियउ सह सुजाँण।
ढोलइ पाँणी मन्ज्ञ क्यउँ बेठउ बयउ किवाँण ॥१२२॥

मारवणी का वृत्तांत सुनकर ढोला को रत्नसेन की तरह मूर्च्छा नहीं आ गई और न उसने पागल की तरह प्रलाप ही किया। एक प्रकार का क्षोभ अवश्य हुआ यह जानकर कि इतने दिन तक अपनी परिणीता प्रयसी को सुध न लेकर यौवन के दिन व्यर्थ ही गँवाए—

ढोलइ मनि आरति हुइ, साँभळि ए विरतंत।
जे दिन मारू विण गया दइ न ग्याँन गिणंत ॥१२८॥

है। *शीलशक्तिसंपन्न मर्यादित भारतीय प्रेमपद्धति का कैसा सुंदर और आदर्श चित्र है।*

दूसरी ओर इसके विपरीत ऐसे ही मौके पर पद्मावती की पूर्वरागावस्था में वियोगप्रलाप की अस्वाभाविक तीव्रता को आक्षेप से बचाने के लिये जायसी ने यह कारण दिया है— 'पद्मावती तेहि जोग सँजोगा। परी प्रेम-बस गहे वियोगा।।' परंतु इस परोक्षवाद अथवा योग के चमत्कार से वर्णन का अनौचित्य कम नहीं हो जाता।

लौकिक दृष्टि से देखनेवाली सखियों को मारवणी के आकस्मिक प्रेमोद्रेक पर आश्चर्य हुआ इसलिये नहीं कि यह कोई असंभाव्य बात थी वरन् इसलिये कि उसे अकस्मात् और अज्ञात कारणों द्वारा व्यक्त होने से सखियों को मर्यादा भंग होने की आशंका हुई और उन्होंने यह टेढ़ा प्रश्न पूछा — यदि वे न पूछतीं तो कहानी पढ़कर मनोवैज्ञानिक आलोचक तो अवश्य पूछते—

> अम्हाँ मन अचरिज भयउ, सखियाँ आखइ एम।
> तइँ अणदिठ सजणाँ किहैं करि लग्गा पेम।।२०।।

और इसके उत्तर में मारवणी क्या ही लाजवाब उत्तर देकर प्रेम के सर्वोत्कृष्ट आदर्श को व्यक्त करती है—

> जे जीवण जिम्हाँ तणाँ तन ही माँहि वसंत।
> बाराह वूठ पयोहरे चातक किम चाहंत।।२१।।

प्रेम के इस पवित्र आदर्श को जानकर—जिसका निर्वाह कहानी में सर्वत्र हुआ है—अब कुछ कहना नहीं रह जाता। सखियाँ भी निरुत्तर होकर कह उठती हैं—

> मारूर्इ आखइ सखी एह हमारी बुज्झ।
> सारदकुँवर सुहिणइ मिल्यउ, सुंदरी सउ वर तुज्झ।।२४।।

जब तक सखियों ने निश्चयरूप से मारवणी की इस भावना का—कि स्वप्न में देखा हुआ प्रिय पुरुष तुम्हारा धर्मानुसार वरण किया हुआ पति है— समर्थन नहीं कर दिया तब तक मारवणी का प्रेम एक कुलीन आर्य ललना के मर्यादोचित प्रेम के रूप में मनसा वाचा कर्मणा अकलुषित होकर प्रवाहित होता है। सखियों द्वारा प्रमाणित हो जाने पर उसे कामजनित व्याकुलता होने लगती है और यह अनुचित भी नहीं है—

अधिकारिणियाँ माळवणी और मारवणी दोनों थीं। वह किस संयोगिनी को छोड़कर वियोगदुःख से दुःखी करे और किस वियुक्ता को ग्रहणकर संयोग-सुख से सुखी करे। दोनों ओर से प्रेम और कर्त्तव्यबुद्धि की खींचातान उपस्थित हो गई। माळवणी के प्रेम का तिरस्कार भी वह आसानी से नहीं कर सकता था। माळवणी को किस किसी तरह प्रसन्न करके उसकी आज्ञा लेकर ही वह जाता है। ढोला के मारवणी के प्रति पूर्वराग को हम रत्नसेन की तरह केवल रूपलोभ नहीं कह सकते। उसमें कर्त्तव्यबुद्धि द्वारा प्रेरित प्रिय मिलनोत्साह संमिलित है। अतएव हम उसे ढोला के मन की वह उदात्त भावना कहेंगे जिसमें मर्यादापालन धर्मरक्षा और समाज के विशिष्ट उत्कार बन्य वैवाहिक प्रतिज्ञा का पालन मिश्रित है। यद्यपि मारवणी की विरहदशा अधिक शोचनीय होने के कारण हमारी सहानुभूति का खिंचाव उसकी ओर ही अधिक होता है और हम ढोला की ढील को मारवणी के प्रति क्रूरता और अन्याय कहेंगे परंतु यदि ढोला की परिस्थिति में अपने को रखकर विचार करें तो उसका व्यवहार युक्तिसंगत ही प्रतीत होगा। ढोला के राग को हम पूर्ण प्रेम की अवस्था भी नहीं कह सकते क्योंकि प्रेम में प्रेमी व्यक्तियों के साक्षात्कार की आवश्यकता होती है और अभी ढोला और मारवणी का साक्षात्कार नहीं हुआ है। पूर्वराग की यह अपूर्णता न होती तो जब रास्ते में ऊमर के धारण से मिलने पर उसे मारवणी की गलित यौवनावस्था का हाल मालूम होता है तब ढोला के मन में संशयजन्य विरक्ति का भावोदय न होता। पूर्ण प्रेम की कोटि को पहुँचे हुए प्रेमियों में प्रेमी की पतितावस्था को जानकर उसके प्रति प्रेम और घनीभूत हो जाता है और समवेदना और सहायता के रूप में प्रगतिशील होता है न कि विरक्त हो जाता है। मारवणी से मिलने पर यहाँ पूर्वराग दृढ़ और एकनिष्ठ होकर सात्विक प्रेम की कोटि पर स्थापित हो जाता है। अब संयम स्वाय और लोकजनित किसी प्रकार की क्षुद्र कमजोरी उसे प्रेम के कर्त्तव्यमार्ग से विचलित अथवा विरक्त नहीं कर सकती। मारवणी के साँप से डसे जाने पर ढोला मरने को तैयार हो जाता है और पुगळवासियों के इस प्रस्ताव पर कि—

> मारू बिहुँ बरसे बड़ी धंपारइ ठविहार।
> ता कुँमरी परणाविस्याँ बालड राजकुँमार ॥६११॥

वह ध्यान तक नहीं देता। इसी प्रकार महादेव के मंडप में पद्मावती का

ढाढ़ियों द्वारा संदेश सुनकर ढोला के मन में आनंदोत्साह हुआ, जैसे किसी को अपनी खोई अथवा भुलाई हुई बहुमूल्य निधि को पाकर आनंद होता है।

परंतु अब ज्यों ज्यों वह मारवणी की शोचनीय दशा का स्मरण करता है त्यों त्यों प्रेयसी से मिलने की उत्कंठा और उसको अपनी दुखी दशा से विमुक्त करने की चिंता और वेग का उत्साह उसके भावों को त्वरित करने लगा। कवि ने संक्षेप में ढोला के मन की दशा को यों व्यक्त किया है--

> आडा डूँगर वन घणा छाँह मिळीबइ केम।
> ऊलालीजई मूँठ भरि मग सींचावउ वेम ॥२१२॥
> इहाँ सु पंजर मन उहाँ वह आगइला लोइ।
> नयणा आडा वीझ वन मनह न आडउ कोइ ॥२१३॥
> जिउँ मन पसरइ तिउँ दिवइ जिम कउ कर पसरंति।
> दूरि पर्यां ही सज्जणों ऊठा महल करंति ॥२१४॥

मालवणी अपने सुघर व्यवस्थित प्रेम के प्रभाव से येन केन प्रकारेण एक वर्ष तक ढोला की यात्रा स्थगित कर सकती है। मालवणी को ढोला को उसकी यात्रा से विरत करने का अधिकार था और वह अधिकार उसके प्रेम की दृढ़ता का द्योतक है। सपत्नीद्वेष स्त्रीहृदय की एक स्वाभाविक कमजोरी है। कमजोरी ही नहीं वह प्रेम में एकनिष्ठता और अनन्यता की पोषकशक्ति भी है। मालवणी भी थी अतएव सपत्नी डाह के लिये हम उसे बुरा नहीं कह सकते। इसके अतिरिक्त मालवणी के प्रमगुण्य उद्गारों में एक प्रकार की शक्ति पवित्रता गंभीरता करुणा और अनुभवशीलता भरी है। वह मर्यादा से कहीं भी च्युत नहीं हुई है।

परंतु ढोला के प्रसंग में देखना यह है कि मारवणी का संदेश ढाढ़ियों द्वारा सुनकर भी ढोला तत्काल ही क्यों ना प्रेमातुर और उत्कंठित प्रतीत होता है उसका एक वर्ष तक यात्रा को स्थगित रखना या तो मारवणी के प्रति प्रेम की शिथिलता का प्रदर्शन करता है अथवा कर्त्तव्य को वात्सल्य में परिणत करने का अनुग्रह अथवा असामर्थ्य। परंतु विचार कर देखने पर ढोला पर अकर्मण्यत्व अथवा अनुदार दोनों में से एक भी आरोप का आक्षेप नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि उस समय ढोला के लिये प्रेममार्ग में कहीं भी न समस्या उत्पन्न हो गई थी। उसके प्रेम की समान रूप से

अपेक्षा यह अधिक संयत और मर्यादायुक्त अतएव अधिक परिष्कृत और परिपुष्ट कोटि का प्रेम प्रतीत होता है। मालवणी का प्रेम गार्हस्थ्यपरिपुष्ट होने के कारण गंभीर और अधिकारसंपन्न है। इसी अधिकार और गर्व की कसौटी पर मारवणी के प्रेम में आतुर प्रेमी को एक वर्ष तक रख लेती है। नागमती की तरह मालवणी भी रूपगर्विता सी प्रतीत होती है। जिस प्रकार पद्मावत में पद्मावती और नागमती के विलापों से हम उनके प्रेम-प्रवाह की तीव्रता का अंदाजा लगा सकते हैं उसी प्रकार मालवणी और मारवणी के विरहविलापों से हम उन दोनों के प्रेम के अन्तर का अनुमान कर सकते हैं।

मारवणी की पूर्वरागावस्था में प्रकट की हुई प्रेमभावनाएँ यद्यपि कोमल हृदयस्पर्शी और दर्दभरी हैं परंतु मालवणी के विलाप की तीव्रता के सामने उनकी तीव्रता कम है। इसका कारण यही हो सकता है कि मालवणी के गार्हस्थ्यप्रेम को एक प्रकार का स्थायित्व और अधिकार प्राप्त था और उसके स्थायी प्रेम ने नायक के जीवन के अनेक अंगों और विषयों को समरसता के सूत्र में बाँध रखा था। संक्षेप में यह कह सकते हैं कि मालवणी का प्रेम ढोला के जीवन के अंगों को अधिक व्यापक रूप से प्रभावित कर सका है। मारवणी का प्रेम नवस्फुरित और अपेक्षाकृत एकांत स्थायी होने के कारण उसका क्षेत्र अधिक संकुचित और अपारा संयत रहा है। जिस प्रकार पद्मावत में नागमती का विरहवर्णन काव्य का सर्वोत्कृष्ट भावुक स्थल है उसी प्रकार प्रस्तुत काव्य में मालवणी का वियोग वर्णन भी काव्य का उत्कृष्ट मर्मस्पर्शी स्थल है। पहला हिंदी साहित्य में विप्रलंभ शृंगार का उत्कृष्ट नमूना है तो दूसरा राजस्थानी विप्रलंभ शृंगार का।

बहुविवाह की प्रथा सामाजिक दृष्टि से कलहमूलक होने के कारण जितनी अनिष्टकारी रही है उतनी ही काव्य में प्रेममार्ग की व्यावहारिक कठिनाइयों के परिणामस्वरूप ईर्ष्या-डाह और प्रेमसंघर्ष की सूक्ष्म भावनाओं को सामने लाने के कारण यह कवियों की लेखनी का प्रिय और अनुरंजनकारी विषय रही है। मालवणी और मारवणी में पारस्परिक स्वाभाविक सौतिया डाह है। दोनों एक दूसरे के देश और समाज को बुरा बताती हैं। यह मीठी तकरार ज्यादा नहीं बढ़ने पाती मधुर और व्यावहारिक मैत्री में ... दोनों

साक्षात्कार प्राप्तकर रत्नसेन का रूपलोभ-जनित पूर्वराग सात्विक प्रेम की दृढ़ता को प्राप्त कर लेता है।

ऊमरसूमरा भी मारवणी के रूपकथन को सुनकर उसके प्रेम को पाने के लिये प्रयत्नशील हुआ था। देखना यह चाहिए कि एक ही प्रेयसी की प्रेमप्राप्ति के लिये प्रगतिशील हुए ऊमरसूमरा और ढोला के पूर्वराग में ऐसा कौनसा अंतर है कि एक को तो हम लंपट समझकर घृणा की दृष्टि से देखते हैं और दूसरे को सच्चा प्रेमी समझकर उसके साथ सहानुभूति रखते हैं। ऊमरसूमरा के विषय में पहली बात तो यह है कि उसने दूसरे की विवाहिता को को कलुषित दृष्टि से देखा और दूसरे उसका कोई से मय प्रयत्न हुए भय न था। यही कारण है कि वह अपने प्रयास में असफल रहा। इसी प्रकार विवाह हो जाने पर दो अवसरों पर पद्मावती के प्रेम की दृढ़ता की परीक्षा होती है और दोनों में वह उत्तीर्ण निकलती है। राजा रत्नसेन के बंदी हो जाने पर वह बड़ी दुखी और विह्वल हो जाती है परंतु बड़ी भारी विपत्ति का दृढ़ता से सामना करती हुई गोरा बादल के साहाय्य से पति को जीवनसंकट से बचाकर मारवणी की तरह अपनी स्थिर बुद्धि और साहस का परिचय देती है। राजा रत्नसेन के मारे जाने के बाद रोने और विलाप करने में वृथा समय नष्ट न करके वह नागमती सहित आनंदपूर्वक पति से परलोक में जा मिलती है। उसकी सतीत्व की दृढ़ता का प्रमाण इससे बढ़कर क्या हो सकता है कि कुंभलगढ़ के दूत दरबार देवपाल के कलुषित प्रस्ताव को वह उस आपत्तिकाल में भी घृणापूर्वक ठुकरा देती है।

इसी प्रसंग में मालवणी और मारवणी के प्रेम की तुलना कर लेना भी अनुचित न होगा। पद्मावत की नागमती और पद्मावती के प्रतिरूप ढोला की कथा में मालवणी और मारवणी हैं।

पद्मावती के नवप्रस्फुटित प्रेम को हम क्रमशः विकसित होते हुए देखते हैं। वह विपत्ति की कसौटी पर कई बार कसा गया और उन परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर उसका सोना और भी ज्यादा चमक उठा। नागमती का प्रेम गार्हस्थ्यपरिपुष्ट गंभीर प्रेम है। उसमें एक प्रकार का गर्व और अधिकार है जो दांपत्यसुख के परिणामस्वरूप होता है। इसी प्रकार मारवणी के प्रेम के आद्योपांत विकासक्रम पर जब हम मनन करते हैं तो वह हमें बड़ा स्वाभाविक मनोहर और प्रिय मालूम होता है। पद्मावती के प्रेम की

अपेक्षा वह अधिक संयत और मर्यादाबद्ध, अतएव अधिक परिपक्व और परिपुष्ट कोटि का प्रेम प्रतीत होता है। मालवणी का प्रेम गार्हस्थ्यपरिपुष्ट होने के कारण गंभीर और अधिकारसंपन्न है। इसी अधिकार और गर्व की बदौलत वह मारवणी के प्रेम में आतुर प्रेमी को एक वर्ष तक रख लेती है। नागमती की तरह मालवणी भी रूपगर्विता सी प्रतीत होती है। जिस प्रकार पद्मावत में पद्मावती और *नागमती के विलापों से हम उनके प्रेम-*प्रवाह की तीव्रता का अंदाजा लगा सकते हैं उसी प्रकार मालवणी और मारवणी के विरहविलापों से हम उन दोनों के प्रेम के अन्तर का अनुमान कर सकते हैं।

मारवणी की पूर्वरागावस्था में प्रकट की हुई प्रेमभावनाएँ यद्यपि कोमल, हृदयस्पर्शी और दर्दभरी हैं परंतु मालवणी के विलाप की तीव्रता के सामने उनकी तीव्रता कम है। इसका कारण यही हो सकता है कि मालवणी के गार्हस्थ्यप्रेम को एक प्रकार का स्थायित्व और अधिकार प्राप्त था और उसके स्थायी *प्रेम ने* नायक के जीवन के अनेक अंगों और विषयों को समवेदना के सूत्र में बाँध रखा था। संक्षेप में यह कह सकते हैं कि मालवणी का प्रेम नायक के जीवन के अंगों को अधिक व्यापक रूप में *प्रभावित कर रहा है। मारवणी का प्रेम अपरिपुष्ट* और अपेक्षाकृत एकांत स्थायी होने के कारण उसका क्षेत्र अधिक संकुचित और मर्यादा संयत रहा है। जिस प्रकार पद्मावत में नागमती का विरहवर्णन काव्य का सर्वोत्कृष्ट भावुक स्थल है उसी प्रकार प्रस्तुत काव्य में मालवणी का वियोग वर्णन भी काव्य का उत्कृष्ट मर्मस्पर्शी स्थल है। पहला हिंदी साहित्य में विप्रलंभ शृंगार का उत्कृष्ट नमूना है तो दूसरा राजस्थानी विप्रलंभ शृंगार का।

बहुविवाह की प्रथा सामाजिक दृष्टि से कलहमूलक होने के कारण *जितनी अनिष्टकारी रही है उतनी ही काव्य में प्रेममार्ग की व्यावहारिक* कठिनताओं के परिणामस्वरूप मानसिक संघर्ष और प्रेमसंघर्ष की सूक्ष्म भावनाओं को सामने लाने के कारण वह कवियों के लेखनी का प्राण और मनोरंजनकारी विषय रही है। *मालवणी और मारवणी में पारस्परिक ईर्ष्याजनित विवाद* होता है; दोनों एक दूसरे के देश और समाज को बुरा बताती हैं। यह भगड़ा भीतर बढ़कर ज्यादा नहीं बढ़ने पाता चतुर और व्यवहारदक्ष प्रेमी नायक दोनों

को प्रेमपूर्वक समझाकर शांत कर देता है। प्रेम मार्ग का इससे मिलताजुलता व्यावहारिक अभिनय पद्मावत में भी आया है और वहाँ भी चतुर नायक अपनी प्रेमपूर्ण व्यवहारदक्षता से झगड़े को शांत करता है। ये घटनाएँ दोनों काव्यों को लोकसमन्वित और व्यवहारसंबद्ध वास्तविकता का सौंदर्य देने में बहुत सफल हुई हैं।

साहित्य में शृंगार के दो भेद माने गए हैं—विप्रलंभ शृंगार और संभोग शृंगार। 'ढोला' और जायसी की पद्मावत में विप्रलंभ शृंगार प्रधान है। यह देखा गया है कि विप्रलंभप्रधान कहानियों में नायक और नायिका का प्रेमप्रवाह विषमता से समता की ओर बहता है, संभोगप्रधान वृत्तों में समता से विषमता की ओर। जायसी की 'पद्मावत' में प्रेमप्रवाह पहली कोटि का है और इसी प्रकार 'ढोला' में भी। इस प्रकार के काव्यों में एक विशेषता यह भी रहती है कि प्रेमियों का कथा के प्रारंभ में ही साक्षात् मिलन नहीं हो पाता जिससे कवि को उनके प्रेमजन्य औत्सुक्य प्रेमी को प्राप्त करने की व्याकुलता चिंता इत्यादि भावों के सविस्तर वर्णन करने का अच्छा मौका मिल जाता है और इससे काव्य में भावुकता की स्फूर्ति आ जाती है। जहाँ प्रेम समता से विषमता की ओर चलकर बहता है उन काव्यों में विप्रलंभ का अंश बीच में आता है अथवा अंत में परंतु वहाँ प्रेमी का प्रेमी को प्राप्त करने के लिये प्रेम प्रयास, आकांक्षा उत्कंठा भावुकता इत्यादि भावों की वह सहज तीव्रता नहीं रहती।

भक्तों का ईश्वरोन्मुख प्रेम भी विषमता से समता की ओर प्रवाहित होता है। अतएव यह स्वाभाविक है कि इस पद्धति की विप्रलंभप्रधान कहानी से ईश्वरोन्मुख प्रेम की व्यंजना भी की जाय। जायसी ने पद्मावत की सारी प्रेम कहानी को एक अन्योक्ति का रूपक बनाकर ग्रंथ के उत्तर भाग में चर्चा की है—

'तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल बुधि पदमिनि चीन्हा॥

यद्यपि ढोलामारू की प्रेमपद्धति भी उसी कोटि की है, परंतु इस कहानी में न तो कवि ने अन्योक्ति द्वारा ईश्वरोन्मुख प्रेम की व्यंजना करने का अपना अभिप्राय और संकल्प कहीं व्यक्त किया है और न उसका ऐसा प्रयास ही कहीं दृष्टिगोचर होता है। यह तो एक सीधीसादी प्रेमकथा है और इसी में रस का सौंदर्य भरा है। परंतु जिन लोगों को इस प्रकार की परोक्ष व्यंजना के बिना पूरा स्वाद नहीं मिलता वे चाहें तो इसमें ईश्वरभक्ति का

गंभीर आभास भी आसानी से देख सकते हैं और कहानी को जीवात्मा के ईश्वरोन्मुख प्रेम में घटा सकते हैं। ढोला अथवा मारवणी को, मारवणी अथवा ढोला के प्रेम तक, पहुँचानेवाला प्रेमपंथ जीवात्मा को परमात्मा से मिलाने वाला भक्तिमार्ग है। इस मार्ग में अग्रसर होने से रोकनेवाली मालवणी संसार की मोहमाया का आभास है। ऊमरसूमरा और उसका दुष्ट चारण शैतान है अथवा प्रेम के सच्चे पथ से विचलित करनेवाले काम, क्रोध मद मात्सर्य, ईर्ष्या आदि सांसारिक दुर्गुण हैं। इन सब अवरोधों को प्रेमसाधना के योगबल से पार कर सच्चा प्रेमी अपने प्रेमपात्र को पा लेता है। जिस प्रकार जीवात्मा को परमात्मा में लीन होने पर मोक्षप्राप्ति-जन्य ब्रह्मानंद प्राप्त होता है उसी प्रकार प्रियतम को प्राप्त कर लेने पर मारवणी के हर्षोल्लास और ब्रह्मानंद सहोदर संयोगसुख को कवि ने इस प्रकार वर्णन किया है—

> आवे रली वधामणाँ आवे नवला नेह।
> रली आमीणी गोरियाँ वूठे वूठा मेह ॥५५६॥
> साहिब आया हे सखी कज्जा सहु सरियाह।
> पूनिम केरे चंद ज्यूँ दिसि च्यारे फलियाँह ॥५२८॥

(१०) ढोलामारू का वियोगशृंगार

काव्य की मधुरता को दरसाने के लिये मारवणी और मालवणी के विरह विलापों से लेकर कुछ उदाहरण नीचे देते हैं—

वर्षाऋतु में विरहव्याकुल स्त्रियों को प्रिय की याद दिलानेवाला पपीहे का निरंतर पी कहाँ पी कहाँ पुकारना अत्यंत वेदनाजनक होता है—

> बाबहियउ नइ विरहणी दुहुवाँ एक सहाव।
> जब ही बरसइ घण घणउ तबही कहइ प्रिआव ॥ २७ ॥

पद्मावत की नागमती को भी प्रियविरह में पपीहे का पुकारना इसी तरह खलता था—

> पिउ वियोग अस बाउर जीऊ। पपिहा निति बोलै पिउ पीऊ ॥

विरहिणियों को अपने प्रेमी घन से लगकर आलिंगन करते देखकर मारवणी का अपने प्रेमी की स्मृति करना कितना स्वाभाविक है।

उत्तर में कुरझें अपना असामार्थ्य प्रकट करती हैं। फिर भी जहाँ तक बन सकता है वे मारवणी की सहायता करने को तैयार हैं—

> मैं कुरझाँ सरवर तणी, पाँखाँ किणहिँ न देह।
> मरिया पर देखी रहाँ उड़ आघेरि सदेह ॥ ५२ ॥
>
> मारवण दवाँ त मुख भलाँ मैं दाँ कुँझड़ियाँह।
> पिउ संदेसउ पाठविसु, लिखि दे पंखड़ियाँह ॥ ५५ ॥

विरहीहृदय की अभिलाषायें भी बड़ी विचित्र होती हैं। मारवणी जब अत्यंत उत्कंठित हो जाती है तो सामने के पहाड़ों को देखकर अभिलाषा करती है—

> ज्यूँ ए डूँगर सामुहा त्यूँ जइ सज्जण हुंति।
> चंपावाडी भ्रमर ज्यउँ, नयण लगाइ रहंति ॥ ७१ ॥

प्रेमीहृदय की उच्च कोटि की आत्मसमर्पण और आत्मनिष्ठा की भावनायें मारवणी की इन अभिलाषाओं में प्रकट होती हैं—

> *सिरजी देसे सज्जणाँ बसइ तिथि दिसि बगठ वाउ।*
> *उआँ लागे मो लगासी, ऊ ही लाख पसाउ ॥ ७४ ॥*

शृंगार रस की परिपुष्टि के लिये कवि लोग उद्दीपन विभाव के अंतर्गत षड्ऋतु वर्णन अथवा बारहमासे का वर्णन करते हैं। नागमती के विरह वर्णन के अंतर्गत जायसी ने बारहमासे का वर्णन किया है जो हिंदी साहित्य में अपनी कोमल मर्मस्पर्शी भावनाओं के लिये अद्वितीय समझा जाता है। प्रेम में सुख और दुःख दोनों की अनुभूतियाँ विस्तृत और घनीभूत हो जाती हैं। संयोगसुख में यही ऋतुयें आनंद सर्वस्व प्रदान करती हैं और वियोग में यही नित नूतन दुःख के साधन उपस्थित करती हैं। इस प्रकार के ऋतुवर्णनों द्वारा कवियों के प्रायः दो प्रयोजन सिद्ध होते हैं—

(१) प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों का दिग्दर्शन।

(२) सुख और दुःख के नाना रूपों और कारणों की उद्भावना और उद्दीपन।

जायसी का बारहमासा *नागमती* के विरहदुःख से *संश्लिष्ट* होकर उद्दीपन विभाव की तरह *विप्रलंभ शृंगार* की परिपुष्टि करता है। अतएव उसका प्रसंग में प्रयोग दूसरे प्रकार का है। 'ढोला' का ऋतुवर्णन भिन्न

ढाढी एक संदेसड़उ प्रीतम कहिया जाइ।
सा धण बलि कुइला भई भसम ढंढोळिसि आइ ॥१२१॥
ढाढी एक संदेसड़उ ढोलइ लगि लइ जाइ।
जोबन फटि तळावड़ी, पाळि न बंधउ काँइ ॥१२२॥

इसी प्रकार—

तन मन उपर वाल्हिमउ, दक्खिण वावइ आइ ॥१२५॥
पैंयाँ कँगलाँणी कमरवी, सिखर रूगइ आइ ॥१२६॥
पैंयाँ कँमलाँणी कँमलणी, हरिण रूगइ आइ ॥१२ ॥

मुग्धहृदय के आंतरिक विक्षोभ को शाब्दिक यथार्थता में व्यक्त करना इससे अधिक स्पष्ट नहीं हो सकता। विरहनिश्वासों से हिलोरें लेता हुआ तरंगित और क्षुब्ध यौवनसागर विरहिणी के शरीर के सीमाबंधनों को तोड़ कर निकल पड़ा, इससे बढ़कर विरह की बाढ़ का अंकन क्या हो सकता है। इस समय यदि रक्षा हो सकती है तो पाल बाँधने से और यह कार्य प्रियतम (ढोला) के बिना हो नहीं सकता।

इसी प्रकार की एक उत्तम भावप्रधान भावना जायसी ने भी नागमती के विरहाकुल हृदय के उद्‌गार के रूप में व्यक्त की है—

सरवर हिया घटत निति जाई। टूक टूक होइ कै बिहराई।
बिहरत हिया करहु पिय टेका। दीठि दवँगरा मेरवहु एका॥

दोनों विरहिणियों की दर्दभरी भावनाएँ लगभग एक सी तीव्र हैं।

मारवणी ढाढी को संदेश कहती जा रही है; हृदय व्याकुल है कंठ अवरुद्ध हुआ जा रहा है। मदाकुल हुई भावावेश में वह पैर की उँगलियों से धरती को कुरेदती जा रही है। साथ ही आँखों से आँसुओं की धारा बह रही है। इस स्वभावचित्र की कितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। ऐसी ही स्वभावोक्तियों और मर्म भावनाओं पर उत्तम का प्रासाद खड़ा होता है।

पगी दाय लेखेवार, घय विलसंती पेह।
पनहँ कागद लीहटी कर आँसुआँ भरेह ॥१२७॥

मारवणी की इस करुणदशा और दर्दभरे हृदयोद्‌गारों को जब हम पढ़ते हैं तो यह विचार आए बिना नहीं रहता कि ढोला का हृदय बड़ा कठोर है कि उसने ऐसी एकनिष्ठ पतिपरायणा प्रेयसी की अब तक सुधि नहीं ली। मगर वही व्यथित अवश्य है परंतु विरह ने उसे किंकर्तव्यविमूढ़ नहीं कर दिया

है। ढोला ने उसकी अब तक सुधि न ली तो न सही, वह स्वयं तो एक पतिप्राणा आर्य रमणी की तरह अपना कर्तव्य पहचानती है। वह झूठी धमकी नहीं है। यों मारवणी अपने पति के पास संदेश पहुँचाने की कठिन समस्या को अपनी बुद्धि से हल कर लेती वह ऐसा भी कर सकती है—

> जइ तूं ढोला नाविसइ, कइ फागुण कइ चेति।
> तउ म्हे घोड़ा बाँधिस्याँ काती कुंडियाँ खेति ॥१४५॥
> जउ तूं साहिब, नाविसउ सावण पहिली तीज।
> बीजळ तणइ झबूकडइ मूंध मरेसी खीज ॥१४६॥
> फागुण मासि वसंत रुत आयउ जइ न सुणेसि।
> चाचरिकइ मिस खेलती होळी झंपावेसि ॥१४७॥
> पावस मास विदेस प्रिय, घरि तरुणी कुळमुद्ध।
> सारंग सिखर निसंक करि, मरइ स कोमळ मुद्ध ॥१७४॥

पतिप्रेमा अबला का पतिवियोग में अंतिम कल्पपूर्ण प्रण यही है। जौहर और सती की पवित्र प्रथा ने न जाने कितनी हिंदू ललनाओं के सतीत्व और शील की रक्षा कर संसार में स्त्री हृदय की पवित्रता और दृढ़ता का आदर्श स्थापित किया है।

परंतु मारवणी के दिल की सच्ची लगन प्रियमिलन की आशा है। वह प्रिय से मिले बिना मरने को उद्यत नहीं है। प्रेम में आशा का निरंतर प्रकाश रहता है। प्रेमी का प्रेमपात्र के प्रति अटल विश्वास होता है यद्यपि विरह की तीव्र वेदना अंधकार के रूप में इस आशाजन्य प्रकाश को छाया की तरह धूमिल करती रहती है। इस आशा और नैराश्य के छायाप्रकाश की क्रिया-प्रतिक्रिया का बड़ा अच्छा निदर्शन मारवणी के संदेशों में उपलब्ध होता है। यह काव्य रचना कलात्मक दृष्टि से एक अनूठा प्राकृतिक चित्र है।

एक बार अपने अनंत विश्वास को पुनः बटोरकर मारवणी आशागर्भित भावों में संदेश का अंत करती है—

> हियडइ भीतर पइसि करि ऊगउ सज्जण रूँख।
> नित सूकइ नित पल्हवइ, नित नित नवला दूख ॥१५८॥

रोम रोम में व्याप्त प्रेम की धारा में निराशा से मुरझाती और दूसरे क्षण में आशा की दीप्ति से नवीन होती दशा का इससे बढ़कर क्या स्वरूप चित्र होगा!

ढो मा दू ० (११ -१२)

प्रकार का है। उसका उपयोग पहले प्रसंग के अनुसार वस्तु और व्यापार निदर्शन के लिये हुआ है। मारवणी के समीप जाने की तैयारी करने से ढोला को रोकने के लिये प्रत्येक ऋतु की वस्तु और व्यापार को आक्षेप रूप में आलंबन बनाकर वर्णन किया गया है। परंतु यह कहना भी सर्वथा युक्तिसंगत न होगा कि यह केवल वस्तुवर्णन ही है। मारवणी की कोमल प्रेमभावनाएँ भी परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष रूप से इसमें जहाँ तहाँ मिली हुई हैं। ग्रीष्म, वर्षा और शीत इन्हीं तीनों की व्यापक परिधि में छहों ऋतुओं का वर्णन कर दिया गया है। इन तीनों में भी वर्षा सबसे अधिक हृदयग्राही बना है। इसका कारण यह हो सकता है कि मरुस्थल में वर्षा ही सबसे अधिक आह्लादकारिणी ऋतु होती है। वस्तुवर्णन की पूर्णता की दृष्टि से इस ऋतुवर्णन का विवेचन दूसरे प्रसंग में किया जा चुका है।

मारवणी का संदेश

मारवणी का प्रेमसंदेश राजस्थान के शृंगारसाहित्य में सर्वोत्तम वस्तु है। यद्यपि हम उसको मारवणी के विरहविलाप का एक अंग ही मानते हैं तथापि संदेश होने के कारण उसमें एक विशेष तीव्रता कोमलता और मधुरता आ गई है। इस तीव्रता और कोमलता का कारण यह है कि जहाँ और और विरहविलाप प्रेमी के बिछुड़कर चले जाने पर विरहीजन की नैराश्यमयी और निरुद्देश्य भावनाओं के रूप में विक्षिप्त प्रलाप प्रतीत होते हैं और करुणा और शोक, हतोत्साह और निराशा के भार से दबे रहते हैं, वहाँ मारवणी के संदेश आशागर्भित सोद्देश्य और स्फूर्तिमय हैं। इनमें एक प्रेमी का अपने प्रेमपात्र के साथ सान्निध्य का भाव भरा हुआ है। इन संदेशों में आत्मसमर्पण का भाव कूट कूटकर भरा है—

> ढाढी जे साहिब मिलइ, यूँ दाखविया जाइ।
> आँख्याँ सीप बिकासियाँ, स्वाति ज बरसउ आइ ॥११६॥
>
> ढाढी एक सँदेसड़उ कहि ढोला समझाइ।
> जोबन आँबउ फलि रह्यउ, साख न खावउ आइ ॥११७॥
>
> ढाढी जइ साहिब मिलइ, यूँ दाखविया जाइ।
> जोबन कमल विकासियउ, भमर न बइसइ आइ ॥११६॥

इसी प्रकार—

जोबन चाँपउ मउरियउ, कली न छूटइ जाइ ॥१२ ॥
कन्या पाकउ करसण हुअउ भोग लियउ घरि आइ ॥१२१॥
जोबन खीर समुंद्र हुइ रतन ज काढइ आइ ॥१११॥

आत्मसमर्पण में त्याग की मात्रा जब और भी ज्यादा बढ़ जाती है तब उसमें 'यद् यद् श्रीमदूर्जितं सत्त्वं तत्तदेव' का भाव रहता है। प्रियतम के चरणों में अपने जीवन की सर्वोत्तम विभूति—यौवन—को भेंट करने की यह उत्सुकता, वह सर्वोत्तम सात्त्विक मानवभावना है जो मनुष्य को देवत्व की कोटि में पहुँचाती है। श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीतांजलि के भाव इसी आत्मोत्सर्ग की महान् भावना से ओतप्रोत हैं।

पत्नी के लिये पति के बिना यौवन व्याधिस्वरूप हो जाता है। उच्छृंखल स्वभाववाले यौवन पर शासन करनेवाला प्रेमी जब नहीं होता तो वह उत्पाती अवस्था को बिगाड़कर उसके सर्वस्व का हरण कर लेता है। यह सूक्ष्म भावना कैसे सुंदर ढंग से व्यक्त की गई है—

ढाढी जे राजँद मिलइ, यूँ दाखविया जाइ।
जोबण हस्ती मद चढ्यउ, अंकुस लइ घरि आइ ॥११५॥

ढाढी जइ प्रीतम मिलइ यूँ दाखविया जाइ।
जोबण खग उपाड़ियउ राव न बाहउ आइ ॥११८॥

पंखी एक सँदेसड़उ लग ढोलइ पैराइ।
बिरह महादव जागियउ, अगिन बुझावउ आइ ॥१२३॥

पंथी मनवाँ जइ मिलइ सउ भी आखे माय।
जोबण बंधन तोड़सइ बंधण पाठउ आय ॥१२४॥

मारवणी के संदेशों में उसकी जागरित मानसिक दशाओं की उथल पुथल और भावविभावों का मनोवैज्ञानिक चढ़ावउतार बड़ी मार्मिक सूक्ष्मता के साथ दिखलाया गया है। अपनी हृद्गत पीड़ा को मारवणी अनुनय विनय क्षोभ, पश्चात्ताप आशंका भय प्रार्थना इत्यादि के रूप में नाना प्रकार से व्यक्त करती है। मारवणी के विलाप और संदेशों में शृंगार के निर्वेद आदि तैंतीस व्यभिचारी भावों में से बहुतों का समावेश हुआ है।

अनुनयविनय करते करते मारवणी व्यथा उत्तेजित हो जाती है। इस दशा में क्षोभ और लाचारी का भाव कैसी मनोज्ञता के साथ व्यक्त हुआ है—

ढाढी एक संदेसड़उ प्रीतम कहिया जाइ।
सा धण बलि कुइला भई भसम ढंढोलिसि आइ ॥११२॥
ढाढी एक संदेसड़उ लोयण लागि लइ जाइ।
जोबन फाटि तलावड़ी, पालि न बंधइ काँइ ॥१२१॥

इसी प्रकार—

तन मन ऊपर खाखिसउ, दखिसण नावइ आइ ॥१२६॥
पैंथ कँमलाँणी कमलणी सिस्यर ऊगइ आइ ॥१२९॥
पैंथ कँमलाँणी कँमलणी, सूरिज ऊगइ आइ ॥१२ ॥

क्षुब्धहृदय के आंतरिक विक्षोभ को शाब्दिक यथार्थता में व्यक्त करना इससे अधिक स्पष्ट नहीं हो सकता। विरहविचारों से हिलोरें लेता हुआ तरंगित और क्षुब्ध यौवनसागर विरहिणी के शरीर के सीमाबंधनों को तोड़ कर निकल पड़ा इससे बढ़कर विरह की बाढ़ का व्यंजन क्या हो सकता है। इस समय यदि रक्षा हो सकती है तो पाल बाँधने से और यह कार्य प्रियतम (ढोला) के बिना हो नहीं सकता।

इसी प्रकार की एक उत्तम व्यंग्यप्रधान भावना जायसी ने भी नागमती के विरहाकुल हृदय के उद्गार के रूप में व्यक्त की है—

'सरवर हिया घटत निति जाई। टूक टूक होइ कै बिहराई।
बिहरत हिया करहु पिय टेका। दीठि दवँगरा मेरवहु एका ॥

दोनों विरहिणियों की दर्दभरी भावनाएँ लगभग एक ही तीव्र हैं।

मारवणी ढाढी को संदेश कहती जा रही है; हृदय व्याकुल है कंठ अवरुद्ध हुआ जा रहा है। नतमुख हुई भावावेश में पद पैर की उँगलियों से धरती को कुरेदती जा रही है। साथ ही आँखों से आँसुओं की धारा बह रही है। इस स्वभावचित्र की कितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। ऐसी ऐसी स्वभावोक्तियों और व्यंग्य भावनाओं पर उत्तम का आधार खड़ा होता है।

पंथी हाथ सँदेसड़उ धण बिलखंती देह।
पगसूँ काढ़इ लीहटी उर आँसुआँ भरेह ॥११७॥

मारवणी की इस करुणदशा और दर्दभरे हृदयोद्गारों को जब हम पढ़ते हैं तो यह विचार आए बिना नहीं रहता कि ढोला का हृदय बड़ा कठोर है कि उसने ऐसी एकनिष्ठ पतिप्राणा प्रेयसी की अब तक सुधि नहीं ली। मारवी यौवन अवश्य है परंतु विरह ने उसे किंकर्तव्यविमूढ़ नहीं कर दिया

है। ढोला ने उसकी अब तक सुधि न ली तो न सही, वह स्वयं तो एक पतिप्राणा आर्य रमणी की तरह अपना कर्तव्य पहचानती है। वह झूठी धमकी नहीं है। यों मारवणी अपने पति के पास संदेश पहुँचाने की कठिन समस्या को अपनी बुद्धि से हल कर चुकी वह ऐसा भी कर सकती है—

जइ तूँ ढोला नाविसउ, कइ फागुण कइ चेति।
तउ म्हे घोड़ा बाँधिस्याँ काती कुड़ियाँ खेति ॥१४१॥
जउ तूँ साहिब, नाविसउ सावण पहिली तीज।
बीजळ तणइ झबूकड़इ मूँध मरेसी खीज ॥१४६॥
फागुण मासि वसंत रुत आयउ जइ न सुणेसि।
चाचरि कइ मिस खेलती होळी झंपावेसि ॥१४५॥
पावस मास विदेस प्रिय घरि तरणी कुळसुध्ध।
सारंग सिखर निसद्द करि, मरइ स कोमळ मुध्ध ॥१७४॥

पतिव्रता अबला का पतिवियोग में अंतिम अनुष्ठान यही है। जौहर और सती की पवित्र प्रथा ने न जाने कितनी हिंदू रमणियों के सतीत्व और शील की रक्षा कर संसार में स्त्री हृदय की पवित्रता और दृढ़ता का आदर्श स्थापित किया है।

परन्तु मारवणी के दिल की सच्ची लगन प्रियमिलन की आशा है। वह प्रिय से मिले बिना मरने को उद्यत नहीं है। प्रेम में आशा का निरंतर प्रकाश रहता है। प्रेमी का प्रेमपात्र के प्रति अटल विश्वास होता है यद्यपि विरह की तीव्र वेदना अंधकार के रूप में इस आशाजन्य प्रकाश को छाया की तरह धूमिल करती रहती है। इस आशा और नैराश्य के छायाप्रकाश की *क्रिया-प्रतिक्रिया* का बड़ा अच्छा निदर्शन मारवणी के संदेशों में उपलब्ध होता है। यह भाव स्वयं कलात्मक दृष्टि से एक अनूठा प्राकृतिक चित्र है।

एक बार अपने अनंत विश्वास को पुनः प्रकट कर मारवणी आशागर्भित भावों में संदेश का अंत करती है—

हियड़इ भीतर पइसि करि ऊगउ सज्जण रूँख।
नित सूकइ नित पल्लवइ, नित नित नवला दूख ॥१५८॥

रोम रोम में व्याप्त प्रेम की व्यथा में निराशा से मुरझाते और दूसरे क्षण में आशा की दीप्ति से प्रदीप्त होते हृदय का इससे बढ़कर क्या सम्भव चित्र होगा!

मारवणी के एकनिष्ठ सात्विक प्रेम के आदर्श की व्यंजना इन दूहों में बड़े मार्मिक ढंग से हुई है—

> जिम सायराँ सरवराँ जिम भरणी भर मेह।
> चंपावरणी बालहा, इम पालीजइ नेह ॥१६८॥
> हूँडी न समपा, मित्र हूँ प्रीतम तूँ परिवाँण।
> हियड़इ भीतरि तूँ बसइ मारुई आँख म आँख ॥१७५॥
> हूँ बलिहारी सज्जणाँ सज्जण मो बलिहार।
> हूँ सज्जण पग पानही सज्जण मो गलहार ॥१७६॥

संदेश देकर ढाढ़ियों को विदा करती हुई मारवणी की दशा को कवि ने कुशल मनोवैज्ञानिक चित्रकार की तरह बड़ी ही सूक्ष्मता से चित्रितकर भावुकता में कमाल कर दिया है—

> सँभारियाँ सँताप वीसारिया न वीसरइ।
> कालेजा बीचि काप पड़इ तूँ फाटइ नहीं ॥१८ ॥
> मरइ पलाइइ, मी मरइ मी मरि, मी पलटेहि।
> ढाढ़ी हाथ संदेसड़ा धण बिलखंती देहि ॥१८२॥

मारवणी के संदेशों में दो एक स्थान पर कविकल्पना का अपकर्ष भी हुआ है। सूर की सूझ में कल्पना की ऊहापूर्ति यद्यपि चमत्कार अवश्य उत्पन्न करती है परंतु अंतःस्तल के सच्चे उद्गारों के बीच ये चमत्कार नकली मोती की तरह प्रतीत होते हैं। इन कलात्मक और अत्युक्तिपूर्ण वर्णनों के गर्भ में हमको मारवणी की वेदना का भाव स्पष्टतः दिखाई देता है। इस बात से संतोष होता है कि मारवणी के निष्कपट भावनारूपी सुवर्ण सूत्र ने इन बनावटी मोतियों को भी संवेदना के सूत्र में ग्रथितकर उनको काव्योपयुक्त रूप दे दिया है। वे स्थल ये हैं—

> प्रीतम तोरइ कारणइ ताता भात न खाहि।
> हियड़ा भीतर प्रिय बसइ दाझणती डरपाहि ॥१६ ॥
> राति ज रुँनी निसह भरि सुणी महाजनि लोइ।
> हाथाली छाला पड्या, चीर निचोइ निचोइ ॥१५६॥

यह कल्पना चमत्कार रीतिकाल के शृंगारी कवियों की, बाल की खाल निकालनेवाली सूझ से कम नहीं है।

माळवणी का विरह

इसी विप्रलंभ शृंगार के विषय में माळवणी के विरह का दिग्दर्शन संक्षेप में करा देना उचित होगा जिससे पाठक मारवणी और माळवणी के प्रेम का तुलनात्मक अध्ययन कर सकें। सिद्धांत रूप में दोनों के भेद का उल्लेख तो हम ऊपर कर चुके हैं। यहाँ केवल उदाहरण दे देते हैं।

माळवणी को छोड़कर मारवणी के लिये प्रस्थान करना ढोला के लिये एक विकट समस्या है। दोनों में ढोला का सच्चा प्रेम है। एक को संयोग सुख देने में दूसरी को वियोगदुःख देना पड़ता है एक के प्रेम का आदर करने से दूसरी के प्रेम का निरादर होता है। प्रेम की इस संकटावस्था में ढोला मध्यम मार्ग निकालकर अपना कार्य सिद्ध करना चाहता है। इस समय ढोला का प्रेम कसौटी पर कसा जाता है। ढोला चतुरतापूर्वक नीति की एक चाल चलता है। माळवणी को बहाने से ललचाकर यात्रा करने की अनुमति प्राप्त किया चाहता है। इससे ढोला का माळवणी के प्रति सुदृढ़ प्रेम प्रकट होता है—

> हकर की घर मउछ्याउँ वड दें कहइ तु वाँह।
> अक्षय पचाऊँ आमरन माळवणी मेलाँह ॥२२४॥

परंतु यह तुच्छ प्रलोभन माळवणी पर असर नहीं करता। उसे प्रियतम आमरणों से कहीं ज्यादा प्यारा है। उत्तर में तुरंत कहती है—

> हकर की घर मउछ्यवा हूँ तउ वाय वा पेषि।
> मरि बाठाही आमरण मोल मुहंगा लेषि ॥२२५॥

ढोला उत्तम जाति के तेज कच्छ देश के नामी ऊँट खरीदने का मिस लेता है परंतु यह दलील भी काम नहीं देती। माळवणी उत्तर देती है—

> साहिब कच्छ न जाइयइ जिहाँ परेरउ संग।
> मीमळ नयणा मुर्धक चया भूलउ जाइसि संग ॥२२६॥

बार बार यात्रा के लिये प्रस्ताव करने पर और ढोला की आंतरिक चिंता को पहचानकर चतुर माळवणी रोग का स्पष्ट निदान करती हुई पूछती है—

> कि माळवणी चौनवइ हु थी दासी तुमह।
> का चिंता चित अंतरे ला थी, वालउ मुमह ॥२२७॥
> साहिब, रहउ न राखिया कोड़ि प्रकार किवाह।
> का थाँ कोमिण मन वसी का मरों गुणविवाह ॥२२८॥

अब तो ढोला की पोल खुल गई। कहाँ तक छिपाता। जब नीति से काम न चला तो सारा हाल सच सच कह दिया और प्रियतमा से विनय करने लगा—

> सुणि सुंदरि सचउ चवाँ, माँझइ मनची भ्रंति।
> मो मारू मिळिबातणी खरी विलम्बी खंति ॥२३८॥

बस, अब क्या था। मालवणी को अब तक केवल आशंका थी। अब सच्ची बात प्रकट होने पर विरह की भावी चिंता और दुःख के कारण मन को भारी धक्का लगा। उस हार्दिक चोट की प्रतिध्वनि इस दोहे में गूँजती है—

> मालवणीकउ मन तपइ, विरह पळीतउ आगि।
> ऊभी थी लहरइ पड़ी, जाणे डसी भुयंगि ॥२३९॥

मालवणी के सामने अब एक ही प्रश्न था—किस किसी तरह प्रियतम को अपनी चातुरी से विरक्त करके यात्रा को स्थगित करवाना। यद्यपि यह विरह की पूर्वावस्था थी, पूरा विरह नहीं परंतु भावी वियोग की दारुण चिंता ने उसे साहसी बना दिया था। उस समय ग्रीष्म ऋतु का आधार लेकर उसने विदेशयात्रा संबंधी आक्षेपोक्तियाँ प्रारंभ की और जाने की अनुमति न दी—

> थळ तत्ता लू साँमुही दाझेला पहियाह।
> म्हाँकउ कहियउ जउ करउ घरि बइठा रहियाह ॥२४१॥

प्रिया को खुश करके उसकी प्रसन्नता से अनुमति लेकर ही प्रस्थान करना ढोला ने उचित समझा। वह रुक गया। ग्रीष्म के तीन मास समाप्त हुए। वर्षागम हुआ। ढोला ने फिर अनुमति माँगी। मालवणी ने इस ऋतु को भी यात्रानुकूल न बताया—

> जिण रुति बग पावस लियइ धरणि न मेल्हइ पाइ।
> तिण रुति साहिब वल्लहा कोइ दिसावर जाइ ॥२४७॥

> प्रीतम कामणगारियाँ थळ थळ बादळियाँह।
> धण वरसइ छडियाँ सूरँ पाँगुरियाँह ॥२४८॥

> कप्पड़ भीजइ कामणी गुण भीजइ तण हथियार।
> इण रुति साहिब ना चलइ, चालइ तिके गिंवार ॥२४९॥

अब तो ढोला ने भी देखा कि चुपचाप आक्षेपों को सुनते रहने से काम न चलेगा। उसने भी प्रत्याक्षेप करने शुरू किए—

बाबहियाँ हरियाळियाँ बिचि बिचि बेलाँ फूल।
अउ भरि वूठउ भाद्रवउ मारू देस अमूल ॥२५ ॥
धर नीली धण पुंडरी धरि गहगहइ गमार।
मारू देस सुहामणउ साँवणि साँझी वार ॥२५१॥

मारवणी फिर विरहिणियों के लिये वर्षा ऋतु का दुस्सह चित्र उपस्थित करती है—

कोरण मग जल दामिनी बूँद लगइ सर जेम।
पावस पिउ विण वल्लहा कहि जीवीजइ केम ॥२५५॥
काळी कंठळि बादळी वरसि ज मेल्हइ धाउ।
प्री विण लागइ यूँ दही जाँणि कटारी घाउ ॥२५७॥

इसी प्रकार जायसी ने भी विरह में वर्षा के दुस्सह दुःख को नागमती के संबंध में चित्रित किया है—

खड़ग बीज चमकै चहुँ ओरा। बुंद बान बरसहिं घनघोरा॥
ओनई घटा आइ चहुँ फेरी। कंत उबारु मदन हौं घेरी॥

वर्षा काल है। रास्तों में कीचड़ भरा होगा। ऊँट का पैर फिसल जायगा। यात्रा के लिये वर्षा ऋतु से बढ़कर तो दूसरी बुरी ऋतु नहीं होती। ढोला का उत्तर ठीक है—

नदियाँ नाळाँ नीझरण पावस चढ़िया पूर।
करहउ कादिम खिलकस्यइ पंथी पूगळ दूर ॥२५६॥

विरह की कल्पना में वर्षाकाल के सारे सुन्दर दृश्य मारवणी के लिये दुःखकर हो जाते हैं—

जिण रति बहु बादळ भरइ नदियाँ नीर प्रवाह।
तिण रति साहिब वल्लहा मो किम रयण बिहाय ॥२५९॥
मही मोराँ मंडण करइ मनमथ अंगि न माइ।
हूँ एकलड़ी किम रहूँ मेह पधारउ माइ ॥२६१॥

भादव में बिजलियों को बादलों के साथ और पृथ्वी पर बेलों को वृक्षों के साथ और संयोगिनी नायिकाओं को नायकों के साथ आलिंगन करते देखकर विरहिणी मारवणी का धैर्य नहीं रहता—

ऊँचउ मंदिर अति पवउ आवि सुहावा कंत।
बोलइ सिखइ मनूकड़ा सिहराँ गढि लाकंत ॥२६८॥
लाभइ आवउ खारिया, पगइ खिसंती गार।
अम्ब खिसंती पेलज्यों नराँ खिसंती नार ॥२६९॥

मालवणी के सुन्दर प्रेम में बँधे हुए ढोला ने वर्षाऋतु के अंत तक यात्रा को स्थगित रखा। दशहरा भी बीत गया। शरद् ऋतु का प्रवेश हुआ। लगभग एक वर्ष बीतने को आया। अब तो ढोला उकता गया। मालवणी ने शरद् ऋतु को भी यात्रा के अनुपयुक्त सिद्ध किया यही नहीं वर्ष की सभी ऋतुओं को यात्रा के लिये अनुपयुक्त प्रमाणित कर दिया। मालवणी की आक्षेपोक्तियों में उत्तम कोटि का व्यंग्य भरा है। उन पर मनन करने से सच्चे काव्यानंद की प्राप्ति होती है। शरद् ऋतु की आक्षेपोक्ति लीजिए—

जिण रितनाग न नीसरइ दाझइ, वनखँड दाह।
तिण रित मालवणी कहइ कुँण परदेसाँ जाह ॥२८४॥
सीयाळइ तउ सी पड़इ ऊन्हाळिर लू बाइ।
बरसाळइ भुइँ चीकणी चालण रुति न काइ ॥२७७॥

अब तो ढोला को साहस करना ही पड़ा। मालवणी की प्रेमपरीक्षा में वह उत्तीर्ण हुआ परंतु अब यदि मारवणी की सुधि न ले तो उसके प्रेम में शैथिल्य प्रमाणित होता है। अतएव स्पष्ट शब्दों में कह ही तो दिया—

मालवणी मो चालिस्याँ म करि हमारी तात।
कइ हसि करि म्हाँ सीख दे चालिस्याँ मौंझिम रात ॥२८८॥

कैसा मीठा कैसा सूक्ष्म परंतु दृढ़ उत्तर है। ढोला के प्रेममय चरित्र की यही कसौटी है। मेरे चलने की चिंता न करो। प्रसन्नतापूर्वक यात्रा करने की आज्ञा दो (अब भी मालवणी को प्रसन्न रखना चाहता है।) अन्यथा अर्धरात्रि को सोती छोड़कर चल देना पड़ेगा। मालवणी के प्रति अपने प्रेम में ढोला पूरा उतरता है। जागती को छोड़कर जाने से मालवणी को मर्मांतक वेदना होगी। प्रेमिका की उस असह्य वेदना को बचाकर रात्रि में चलने का प्रस्ताव किया। दूसरा कोई उपाय न था। ऐसी ही अवस्था में राजकुमार सिद्धार्थ अपने परमार्थप्रेम से उत्साहित होकर यशोधरा को रात में सोती छोड़कर निकले थे।

ऊँट के पास जाकर मालवणी विनय करती है। यह अन्योक्ति वैसी ही है जैसी प्रेमातुर अवस्था में राम का सीता की खोज में वन के मृग और वृक्षों से सीता का पता पूछना अथवा विरहविधुरा गोपिकाओं का ब्रज की लताओं से कृष्ण के विषय में पूछना।

मालवणी ने प्रियतम को यात्रा से रोकने के हजार प्रयत्न किए। अब भी हृदय से यही चाहती है कि ढोला रुक जाय तो अच्छा। परंतु जब प्रेमी प्रस्थान करने को है तो पतिपरायणा साध्वी की तरह उसकी मंगलकामना करती है। यदि सच्चा प्रेम न होता तो यह सोचती कि यात्रा असफल हो—अनिष्टकर हो। परंतु नहीं वह प्रस्थान के समय हितकामना करती हुई कहती है—

> थे खिव्यावउ, खिण करउ बहु गुणवंता नाह।
> ता बीहा छलकंत हुइ जेवा कहीजइ जाह ॥१४ ॥

दूसरी पंक्ति में सर्वोत्तम कोटि का वेदनापूर्ण आक्षेप व्यंग्य है।

ढोला चला गया। अब प्रवत्स्यत्पतिका विरहिणी मालवणी का विप्रलंभ प्रारंभ होता है। अब तक तो उसे भावी विरह की चिंता और क्षोभ था। मालवणी की वास्तविक विरहदशा का कवि इस प्रकार वर्णन करता है। मालवणी सखियों से कहती है—

> ढोलउ चाल्यउ हे सखी बाज्या विरह निसाँण।
> हाथे चूड़ी खिस पड़ी ढीला हुआ सँधाण ॥१४६॥

विरहजन्य दशापरिवर्तन का क्या ही मर्मस्पर्शी चित्रण है। मालवणी के अंग प्रत्यंग शिथिल हो गए—जड़ हो गए, हाथ की चूड़ी खसककर नीचे आ गई। यद्यपि शिथिलता की अत्युक्ति है परंतु संवेदनापूर्ण होने से यह मालवणी की तीव्र वेदना की परिचायक है। मालवणी सखियों के प्रति अपना विरहदुःख यों कहती है—

> सज्जण चाल्या हे सखी बाज्या विरह निसाँण।
> पालंगी विसहर भई मंदिर भयउ मसाँण ॥१५२॥
> उलटियाँ मउबाइ कइ मंदिर चढ़ती आइ।
> मंदिर भखउ भाग विणै हेलउ दे दे लाइ ॥१०१॥
> चंपा केरी पाँखड़ी गूँथूँ नवसर हार।
> जउ गळ पहिरूँ पीव विन तउ लागे अंगार ॥१५६॥

करना, मद का बादलों द्वारा संदेश भेजना, उन्माद नहीं तो क्या था ? परंतु यही उन्माद सच्चे प्रेम का परिचायक होता है।

प्रियतम के विरह में पत्नी को अपनी तुच्छता और हीनता का ज्ञान होना स्वाभाविक ही है—जिसकी पहले लाखों की कीमत होती अब उसे कोड़ी को भी कोई नहीं पूछता। सच है जब माली ने मरुसरी को सींचना ही छोड़ दिया तो वह सूखेगी ही—

> प्रीतम तूटी चाहिरी कबही ही न लहाँह।
> अब देखूँ भर आँगणइ लाखे मोल लहाँह ॥१७ ॥
> सजणा मरुसे गुण रहे, गुण भी मरुसायहार।
> सूकण लागी वेलड़ी गया ज सींचणहार ॥१७४॥

जायसी के नागमती विरहवर्णन में भी इसी प्रकार का वर्णन है—

> कँवल जो बिगसा मानसर, बिन जल गयउ सुखाइ।
> अबहुँ बेलि फिरि पलुहै जो पिउ सींचै आइ ॥

प्रियतम के विरह में उसके स्मारकचिह्न ही प्रेयसी के लिये जीवनाधार हो जाते हैं। उनको देख देखकर प्रियतम की याद करके वह सुख के रूप में अपने प्रियतम की स्मृतियों को हरी रखती है—

> सूँदर चीय न मोकली, कर्यों नहीं केरोंया।
> छाबनियाँ साजह नहीं साजह माही ठाँय ॥१७५॥

भारतेंदु की चंद्रावली नाटिका में कृष्ण के विरह में चंद्रावली कहती है—प्यारे ऐसो जो जो तुम्हारे मिलने में सुहावने जान पड़ते थे वही अब भयावने हो गए हैं। हा जो बन आँखों से देखने में कैसा भला दिखाता था वही अब कैसा भयंकर दिखाई पड़ता है। देखो सब कुछ है, एक तुम्हीं नहीं हो प्यारे। (दूसरा अंक)

प्रियप्रवास में विरहविधुरा गोपिकाओं की इसी प्रकार की उक्ति है—

> कुंजें वही पर वही यमुना वही है।
> बेलें वही बन वही विटपी वही है॥
> हैं पुष्प पल्लव वही, अब भी वही है।
> ए किंतु श्याम बिन हैं न वही बनाते ॥१४ १४२॥

विरहिणी की कामदशा को शास्त्र में इस प्रकार से वर्णन किया जाता है—

अभिलाषश्चिन्तास्मृति गुणकथनोद्वेग सम्प्रलापाश्च ।
उन्मादोऽथ व्याधिर्जडतामृतिरिति दशात्र कामदशा ॥

—सा द १२१४

इन दशाओं में प्रायः सभी का विकास मारवणी के विप्रलंभ में मिलता है। उन्माद स्मृति व्याधि और प्रलाप के उदाहरण ऊपर दिए जा चुके हैं। विरह जन्य जड़ता की कैसी मार्मिक व्यंजना की गई है—

पीसूं दाँ ही सज्जणा क्याँ ही कहण न लग्ग ।
तिण वेला कँठ रोकियउ आसू ठिया लग्ग ॥१८१॥

अंतर्दाह करनेवाली चिंता का चित्र इस दोहे में चित्रित किया गया है—

साजण न्यूँ न्यूँ संभरइ देखाँ आडी ठाँय ।
झुरि झुरि नइ पंजर हुआ सभर सभर सहिनाँण ॥१८२॥

विरहिणी की कामजन्य अभिलाषाएँ भी विचित्र होती हैं। विरहदुःख जब हृदय में नहीं समाता तो मारवणी अभिलाषा करती है कि पर्वत शिखर पर जाकर धाड़ मार मारकर रो ले जिससे हृदय हलका हो जाय—

जाय चढूँ देखउ विसौं डूँगर नहिं कोर ।
छिपि करि मूकउँ धाहड़ी हीयउ हलकउ होइ ॥१९१॥

मारवणी को अपने प्रलाप में चेतन और अचेतन का ज्ञान नहीं रहता। वह वन में खड़े हुए एक हरेभरे आक के दरख्त को देखकर कहती है—

पड़ मप्पड़ बड़ आहिरी नूँ कोंइ मीठी आकि ।
कंइ तूं सींची साजणे कंइ वूठउ अग्गाकि ॥१९१॥

इस पर अपनी कल्पना के बल से कवि मारवणी को आक की ओर से यह संतोषदायक उत्तर दिला देता है—

ना हूँ सींची सज्जणे ना वूठउ अग्गाकि ।
मो तलि ढोलउ रहि गयउ करहउ बाँध्यउ डालि ॥१९२॥

ढोला के चंदेरी के मार्ग में विश्राम करने पर और ऊँट को बाँधकर आक के नीचे क्षणिक विश्राम लेने पर आक की यह दशा हुई कि वह बिना वर्षा अथवा जलदान के हरीभरी हो गई। जब ढोला के क्षणिक संयोगसुख से जड़ वीरों की दशा सम्पन्न हो जाती है तब तो ऐसे प्रियतम के लिये मारवणी का विलाप करना यथार्थ है। संसार के सभी साहित्यों के गीतकाव्यों

में बढ़ और चेतन का इस प्रकार प्रश्नोत्तर द्वारा समवेदना के एक सूत्र में बँधा होना सिद्ध होता है।

मालवणी का विरह बड़ी तीव्र और करुण वेदना से भरा है; परंतु जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं, इस उन्माद और उद्वेग की विरहदशा में वह अपने कर्तव्य को भूल नहीं जाती। अपने प्रेमी को प्रवास से विरत करने में वह सदा सचेत रही और जब उसे रोक न सकी तब भी उसने बल को न छोड़ा। मालवणी का यह समप्रत्नोत्साह उसके प्रेम की दृढ़ता का परिचायक है। ढोला के चले जाने पर मालवणी ने उसे लौटाने का एक प्रबल प्रयत्न किया। इसी आशय से उसने अपने शुक को भेजा था।

यद्यपि इस काव्य में विप्रलंभ शृंगार ही प्रधान है, परंतु संभोग का भी वर्णन हुआ है। वैसे तो कहानी के इतिवृत्त की रचना ही इस ढंग से हुई है कि मालवणी और मारवणी के दैनिक के संभोग शृंगार का निदर्शन बहुत कम होने पाया है। नायक ढोला और नायिका मारवणी की प्रेमवार्ता को प्रधानता देने के लिये उन्हीं के प्रेमसूत्र के विकास का आद्योपांत और क्रमागत वर्णन किया गया है। मालवणी का पहलेपहल वर्णन दूहा ११६ में उस अवस्था में हुआ है जब ढाढ़ियों द्वारा मारवणी का संदेश ढोला को मिल जाने पर वह पति को चिंताकुल देखती है। परंतु मालवणी के उत्तरकालीन प्रौढ़ प्रेम प्रवाह की गति से हम उसके पूर्वकालीन दांपत्य प्रेम के सौख्य और अनन्य का अनुमान कर सकते हैं। जो मालवणी पति के प्रेम पर इतना अधिकार रखती है कि प्रेमातुर पति को एक वर्ष तक अपनी आज्ञा से विरत कर सकती है उसके प्रेम का संभोग पक्ष भी खूब सौख्यपूर्ण और परिपुष्ट रहा होगा।

(११) ढोलामारू का संयोग शृंगार

संभोग शृंगार का स्पष्ट निदर्शन हमको मारवणी-ढोला-मिलन के दृश्य में मिलता है। यद्यपि वह प्रसंग संक्षिप्त है, परंतु उसी का हम यहाँ उल्लेख करेंगे। यह वर्णन पद्मावती-रत्नसेन-विषयक संयोग शृंगार से बहुत कुछ मिलता जुलता है अतएव इनकी तुलना भी की जा सकती है।

ढोला के पूगल पहुँच जाने पर मारवणी के हर्ष का पारावार न रहा। मारवणी अपने आंतरिक सुख और हर्षोल्लास को सखियों पर प्रकट करती है—

साहिब आया, हे सखी, कज्जा सहु सरियाँह।
पूनिम केरे चंद ज्यूँ दिसि च्यारे पळियाँह ॥५२८॥
सखिए, साहिब आविया जाँहकी हूँती चाह।
हियडउ हेमाँगिर भयउ तन पंजरे न माइ ॥५२९॥
आसूयउ घन हीयडउ साहिब कउ मुख दिट्ठ।
माथा भार उलाथियउ आँख्याँ अमी पयट्ठ ॥५३०॥
सखी सु सज्जण आविया हुँता मुज्झ हियाइ।
सूका था सु पाल्हव्या पाल्हविया पडियाह ॥५३१॥

मारवणी के पवित्र और मर्यादित प्रेम का विकास उसके हृदय की सीमा को व्याप्तकर चारों ओर पूर्णिमा की चंद्रिका के समान छिटक गया है। उसका विरहव्याकुल हृदय अब हिमालय की तरह शीतल हो गया है। मानसिक प्रफुल्लता इतनी बढ़ गई है कि शरीर पंजर में नहीं समाती। आज मानो उसके सिर पर से विरहरूपी भारी बोझ उतर गया और उत्सुक नेत्रों में प्रिय दर्शन के कारण अमृत छलकने लगा। सूखी हुई मंजरी आज पुनः पल्लवित और पुष्पित हो गई। संयोगजनित भाव आँखों की मस्ती में झलक रहा है। मारवणी का संयोगसुख अपनी स्वाभाविक सुषमाओं के साथ उसके अंग-प्रत्यंग की प्रफुल्लित और आह्लादपूर्ण दशा से प्रकाशित हो रहा है।

इसी प्रकार पद्मावती का संयोगसुख भी उसके अंगप्रत्यंग में विकसित हुआ है—

अंग अंग सब हुलसे कोइ कतहूँ न समाइ।
ठावहिं ठाव विमोही गइ मुरछा तनु आइ॥

परंतु दोनों में भेद इतना है कि यहाँ मारवणी का संयोगजन्य हर्षोल्लास अधिक संयत और शोभा की सीमा में बद्ध है वहाँ हर्षोल्लास की बाढ़ में पद्मावती के पैर उखड़ जाते हैं वह मूर्च्छित हो जाती है। लाक्षणिक दृष्टि से यद्यपि इस अवसर पर मूर्च्छित हो जाना ठीक समझा गया है और वह भावातिशय का प्रकाशित करता है परंतु उसमें संयम और मर्यादा का अभाव अवश्य लक्षित होता है।

मारवणी के प्रथम समागम का वर्णन जहाँ हुआ है वहाँ भी इसी प्रकार की अप्रगल्भता और शीलसंपन्नता प्रकट होती है। यथा—

मोती सीसा, हंस गत पग साथंती पाठ।
रायजादी पर अंगयार छूटे पटे ईंखाड़ ।।५४ ।।
सोइ समय आविया बाँहसी खोली बाट।
पाँमा नाचइ, पर हँसर, लेखण लागी लाट ।।५४१।।

इसके विपरीत पद्मावती के शृंगार का विशद वर्णन करते हुए कवि ने बारह आभरणों का वर्णनकर अपनी बहुज्ञता का परिचय दिया है—

(१) बारह अभरन करै सो छाजू।
(२) जो न सुना तो अब सुनहु बारह अभरन नाँव।

जायसी का यह वस्तुवर्णन शृंगार रस के विकास और परिपाक में बाधक वस्तु सा प्रतीत होता है। इससे रस की परिपुष्टि और सम्यक् आस्वादन नहीं होता। भावुकता और संवेदना का स्पर्श इनमें नहीं के बराबर है, अतएव प्रस्तुत विषय के साथ इनका बहुत थोड़ा और निर्जीव संपर्क रह जाता है।

इसी प्रकार सोलह शृंगार पारा गंधक, हरताल सिंगरफ़ और रासायनिक क्रियाओं और पदार्थों का अनवसर पर वर्णन करके कवि ने बहुज्ञता और वस्तुज्ञान का पूरा परिचय तो दिया है परंतु इनसे काव्य का बहुत थोड़ा उपकार सिद्ध होता है।

शृंगार के उद्दीपक साधनों में जिस प्रकार यथावत् षट्ऋतु वर्णन किया जाता है उसी प्रकार प्रेमियों का पारस्परिक विनोद हास्य, कुतूहल क्रीड़ा आदि साहित्य में बताए गए हैं। मारवणी के संयोग शृंगार के अंतर्गत ऋतु वर्णन के स्थान पर 'सुरवाम' का वर्णन हुआ है। इससे पहले प्रथम समागम के उपयुक्त प्रसंगों में कुछ विनोद और क्रीड़ा भी होती है। 'मान' का भी संक्षेप में दिग्दर्शन होता है।

ढोला हँसी ही हँसी में एक मीठी चुटकी लेता हुआ मारवणी से कहता है—

काया म्हारइ कनक जिम, सुंदर केरे सुरंग।
वैद सुरंगा किम हुवई किण केरा बहु कुरंग ।।५५५।।

इस विनोदमयी परंतु तीखी व्यंग्योक्ति को सुनकर मारवणी को संकोच होता है कि 'सुपरह सम्मर कंत'—पति के मन में शुबहा बैठ गए हैं। वह उसी समय फिर उपा और सावधान उत्तर देती है—

पहुर दुरुह च पथारियाँ मो चाहंती चित्त।
केहरिया चित्त मह हुवह मैंय कुठार करंभि ॥५४८॥

ढोला का संदेश 'दुरुहस्त' बतलाती था। उसे मजाक करना था। क्या उत्तर देता? यदि देता तो इस उत्तर के सामने वह ठहर न सकता। जब निम्न सृष्टि के जीवों—मेंढकों—तक में प्रेम की संजीवनी शक्ति इस विलक्षणता के साथ प्रकट होती है तो मानव का तो कहना ही क्या है।

पद्मावती भी प्रियसमागम के अवसर पर व्यंगविनोद और परिहास करती है परंतु उनसे वह शिष्टता और शील व्यंजित नहीं होते जो ढोलामारू के वचनों में होते हैं। पद्मावती खिजकर रत्नसेन से कहती है—

'ओहट होसि जोगि तोरि चेरी। आवै बास कुरकुटा केरी॥
देखि भभूति छूति मोहि लागे। काँपै चाँद सूर तौं भागे॥
जोगि तोरि तपसी कै काया। लागि चहै मोरे अंग छाया॥
बार भिखारि न माँगसि भीखा। माँगै आइ सरग पर सीखा'॥

यद्यपि ये प्रेम की झिड़कियाँ हैं और कहने को इनमें 'तोरि चेरी' शाब्दिक *विनम्रता भी है परंतु भाव का उतना संयत गठन नहीं है कि शीलसाधन की* सीमा में रह सके।

संयोग शृंगार की प्रेमपद्धति में वाक्चातुर्य वचनविलास और परिहास का मनोहर आयोजन रहता है। 'ढोला' के प्रेम में ऐसा आयोजन है और जायसी में भी। पाश्चात्य गीति काव्यों (Ballads) में भी पहेलियों और अनेक ढंग की वचनचातुरी का विशद साहित्य उपलब्ध होता है। कभी कभी एक पहेली के ठीक ठीक उत्तर दे देने पर ही प्रेमी नायक अथवा नायिका को अपने प्रेमी के प्रेम का पूर्ण लाभ होता है। प्रेम में साधारणतया वाग्विलास और परिहास की रुचि का स्फुट होना स्वाभाविक ही होता है।

अँगरेजी के प्रमुख लोक गीतों में (I) TheElfin Knight, (2) Captain Wedderburn's *Courtship* (3) King John and the Bishop ऐसे गीत हैं जिनमें विनोद और परिहास द्वारा प्रेमी अपने भावों को परस्पर व्यक्त करते हैं। प्रथम और द्वितीय में प्रेमी कठिन पहेली का उत्तर देने के परिणाम में अपने प्रेमपात्र का प्रणयलाभ करते हैं। तीसरे में पहेलियों द्वारा दो व्यक्तियों का भाग्यनिर्णय किया गया है। किंवदंती के अनुसार महाकवि कालिदास को भी अपनी प्रियतमा का प्रेम इसी प्रकार वाक्चातुर्य द्वारा प्राप्त हुआ था।

प्राचीन प्रेम कहानियों में पहेलियों के विश्वव्यापी प्रचार और महत्त्व के विषय में गीतकाव्यों के सर्वश्रेष्ठ आचार्य प्रो॰ चाइल्ड लिखते हैं—

"Riddles play an important part in popular story and that from remote times. No one needs to be reminded of Samson Oedipus, Appolonius of Tyre Riddle tales which if not so old as the oldest of these, may be carried in all likelihood some centuries beyond our era, still live in Asiatic and European tradition and have their representatives in popular Ballads."

प्राचीन भारतीय कहानियों में और विशेषकर प्रेम कहानियों में वाक्चातुर्य और विनोद वृत्ति का बहुत सा साहित्य भरा पड़ा है। प्राकृत और अपभ्रंश भाषा के गाथा और दूहा साहित्य में इस प्रकार के विनोदपूर्ण साहित्य का कुछ अंश अब भी सुरक्षित मिलता है। 'ढोला' का यह विनोदपूर्ण साहित्यांश अपभ्रंश साहित्य पर बहुत कुछ आश्रित है। नंबर ५७५ और ५७७ की दोनों गाथाएँ प्रसिद्ध प्राचीन प्रहेलिकाएँ हैं जो लोभी अपभ्रंश साहित्य से लेकर कथा में ऊपर से मिला दी गई हैं। माधवानल कामकंदला की प्रमकथा में भी ये मिलती हैं।

मारवणी प्रेम की उद्भावना में पति से साहित्यिक मनोविनोद करने का प्रस्ताव करती है क्योंकि ऐसा करना समयोपयुक्त ही होगा—

मारवणी इम वीनवइ, प्रिय आपूणी वात।
गाहा-गूढ़ा-गीत गुण कहि का नवली भाति ॥५६७॥
क्योंकि—गाहा-गीत-विनोद रस सगुणाँ दीह लियंति।
कइ निद्रा कइ कलह करि, मूरख दीह गमंति ॥५६८॥

हितोपदेश के निम्नलिखित श्लोक का भाव इस अंतिम दूहे में बड़ी सुंदरता के साथ प्रकट किया गया है—

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा॥

इस प्रसंग में साहित्यिक विनोद की यही उपयोगिता है कि इससे रति-भाव का उद्दीपन होता है। अधिकांश पहेलियाँ साहित्यनिष्ठ हैं। इनमें

दो॰ मा॰ दू॰ ८ (११००—१२)

नायिका की मौलिक कल्पना को ढूँढ़ना व्यर्थ है क्योंकि ऐसे अवसरों पर साहित्यप्रसिद्ध परंपरागत पहेलियों का प्रयोग ही पर्याप्त समझा जाता है। आजकल के हिंदू विवाहों में भी मनोविनोद की यह प्रथागत पद्धति कहीं कहीं देखी जाती है।

वाग्विनोद के सिवा प्रेमियों की पारस्परिक क्रीड़ा और विलास आदि भी शृंगार के उद्दीपक की तरह कवियों द्वारा प्रयुक्त होते हैं। 'ढोला' में इस प्रेमक्रीड़ा का बहुत संक्षेप में वर्णन हुआ है—

मैंने ढोलो मूँकिया हूँगे लालविणेह।
म्हाँने मिठबी मारिया चंपारे कळियेह ॥५९१॥
मैंने ढोलो मूँकिया म्हाँनूँ आपी रीस।
चोवा केरै कूँपडै ढोली साहिब सीस ॥५९२॥

जायसी ने प्रथम समागम के पूर्व पद्मावती और रत्नसेन में वाक्चातुर्य और परिहास की जो नोकझोंक दिखाई है उसका ऊपर वर्णन कर आए हैं। दोनों में जो अंतर है उसका भी उल्लेख कर दिया गया है। रतिभाव की पुष्टि के लिये यह आवश्यक होता है कि प्रेम में आत्मीयता के भाव की रक्षा करने के लिये दोनों प्रेमियों को भाव की समतल भूमि पर रहकर पारस्परिक विनोद में लीन होना चाहिए, क्योंकि यह मार्ग प्रेमोत्कर्ष के लिये अधिक सहायक होता है। ढोला मारवणी के विनोद परिहास में भाव की यह समता मिलती है। परंतु पद्मावती रत्नसेन के विनोद व्यवहार में एक प्रकार की विषमता आ गई है। नीचे कुछ उदाहरण देते हैं—

पद्मावती और उसकी सखियाँ रत्नसेन का परिहास करती हुई नाना प्रकार से उसका मजाक उड़ाती हैं परंतु इन सबके उत्तर में रत्नसेन को अपनी गंभीर प्रेमनिष्ठा की दुहाई देते हुए देखकर हमको उसकी निस्सहायता पर दया आती है।

जिस प्रकार मारवणी के भावी विरह के संबंध में कवि ने आक्षेपोक्तियों में ऋतुओं का वर्णन विप्रलंभ शृंगार के उद्दीपन की तरह किया है उसी प्रकार संभोग शृंगार में मारवणी के संबंध में अष्टयाम वर्णन की कल्पना की है। जायसी में इनके स्थान पर क्रमशः बारहमासा और षट्ऋतुओं का बयान उद्दीपन की तरह किया गया है।

अष्टयाम में साहित्यिक प्रथानुसार एक रूढ़िविशेष का अनुसरण किया गया है। दिन के आठ पहरों में प्रेमियों की संपूर्ण दिनचर्या का विशद

करके संयोग शृंगार की पुष्टि की गई है। यह प्रसंग प्राचीन कथा का भाग नहीं क्योंकि प्राचीन प्रतियों में यह नहीं मिलता। यह प्रकरण पढ़ने पर कुछ फीका सा भी जान पड़ता है। वह सरसता वह स्वाभाविकता, वह सरलता और स्वच्छंदता नहीं प्रतीत होती जो इस काव्य में प्रायः सब स्थलों में मिलती है। यह वर्णन इतना साधारण रीति से हुआ है कि किसी भी पद्यमय प्रेमकहानी में ऊपर से बैठाया जा सकता है। इसमें नायक नायिका का न तो कहीं प्रत्यक्ष नाम निर्देश ही किया गया है और न परोक्ष रीति से ही इसका किसी प्रकार का घनिष्ठ संबंध उनके व्यक्तित्व के साथ दिखाया गया है। यही नहीं ढोला मारवणी के प्रेम में जिस पवित्रता शीलसंपन्नता और सात्त्विकता के आदर्श का सर्वत्र निर्वाह हुआ है वह आदर्श उच्चता से भ्रष्ट होकर मध्याम के निकृष्ट विवरण में कुछ अश्लीलता नीरसता गँवारूपन और साधारण तुच्छता धारण कर लेता है। किसी सर्वसुंदर आभरण के मढ़े मोरचे की तरह यह प्रसंग कथा में खटकता है काव्य के आदर्श से मिलान नहीं खाता। कहाँ तो मारवणी को शील शांति सात्त्विक प्रेम की प्रतिमा बनाकर खड़ा किया गया—

'गति गंगा मति सरस्वती सीता सील सुभाइ' ॥४५१॥

और कहाँ—

दूबे पोहरे रयणके मिळिया गुम्फा गुम्फ।
मय पाळी पिउ पाखरयो पिडूँ मर्यां मग कुम्प ॥५८१॥

वहीं आवती के काम संग्राम ग्रामी बात कही है। एक ही काव्य के दो स्थलों में आदर्श का इतना भारी अंतर शोभा नहीं देता। ५८०–५८८ राजस्थान की इतर कथाकहानियों में अनुगामत से उद्धृत किए हुए मिलते हैं अतएव साधारण प्रक्षिप्त की तरह प्रचलित हैं। इनमें किसी प्रकार की काव्यगत विशेषता भी नहीं है।

इस काव्य के वस्तुवर्णनों का संक्षेप में निदर्शन कर अब निष्कर्ष रूप में यही कहना बाकी रह जाता है कि इन वर्णनों में राजस्थान देश की आत्मा का स्वाभाविक स्थूल चित्र चित्रित हुआ है। इस धारणा के आधार पर यह कहने में संकोच नहीं होता कि 'ढोलामारूरा दूहा' में राजस्थान की जातीय कविता (National Poetry) केंद्रीभूत है। क्या देशवर्णन क्या रमणीसौंदर्य वर्णन क्या ऋतुवर्णन क्या करुण वर्णन—सभी में राजस्थान की जातीयता की गहरी छाप लगी हुई है।

(१२) यात्रावर्णन और भौगोलिक स्थिति

ढोला मारवणी की प्रेमकहानी का नायक ढोला नरवर देश के राजा नळ का पुत्र था और मारवणी पूगळ के पिंगळराव की पुत्री थी। नरवर का प्राचीन राज्य राजस्थान प्रांत के पूर्व कोण में पुष्कर से लगाकर वर्तमान ग्वालियर राज्य की पूर्वीय सीमा तक विस्तृत था। इसे नळवाड़ा भी कहते थे। इधर राजस्थान के पश्चिम म पूगळ परमार क्षत्रियों की प्राचीन राजधानी थी। वतमान पूगळ नगर बीकानेर के अंतर्गत राजधानी बीकानेर के पश्चिमोत्तर मे लगभग २५ कोस की दूरी पर स्थित है। पूगळ और नरवर के बीच में लगभग २ कोस का अंतर है।

ढोला के बचपन म अकाल पड़ने पर पिंगळराव नरवर राज्य मे संभवतः पुष्कर तीर्थ पर, आकर रहा था वहाँ नळ राजा भी सपरिवार आया था। वहीं दोनों राजाओं का प्रथम मिलन हुआ—

पिंगळ ऊचाळउ कियउ नळ नरवरचइ देसि ॥ २ ॥

मारवणी के प्रेम से आकर्षित होकर ढोला ने नरवर से पूगळ की यात्रा की थी। इस यात्रा का स्पष्ट निर्देश दूहों में मिलता है। यात्रा किस मार्ग से की गई थी इस विषय के कुछ अवतरण नीचे उद्धृत किए जाते हैं—

(१) चंदेरी बूँदी किची सरवर केरइ तीर।
ढोलइ दीठउ फाहर्तौ आइ पुहच्चइ भीर ॥४ ॥

(२) अति आतुर ऊमाहियउ वहइ च पूगळ वाइ।
बीचइ पुहरि उलांघियउ, आखमळराउ मारइ ॥४२४॥

(३) करहउ पाँणि खिल्लइयउ, आवउ पुहकर तीर।
ढोलइ ऊतर पाइयउ निरमळ सरवर नीर ॥४२५॥

(४) सामी वेळा सामहति कंठळि थई प्रगासि।
ढोलइ करह कँकाइयउ आवउ पूगळ पासि ॥५२२॥

इन अवतरणों से अनुमान होता है कि ढोला मळवणी को आधी रात के लगभग सोती(छूटाँ पाठांतर—१ ५ छोड़कर ऊँट पर नरवर से विदा हुआ था। नरवर से वह चंदेरी के मार्ग होकर बूँदी की ओर मुड़ा था दोहा नं ४ से यह स्पष्ट विदित होता है। ढोला नरवर से पुष्कर के सीधे पश्चिमी मार्ग को छोड़कर चंदेरी की ओर दक्षिण को क्यों गया और वहाँ से बूँदी की ओर की पश्चिमोत्तर राह को पकड़कर पुष्कर पहुँचने में उसका क्या आशय था,

यह बात दूहों से प्रकट नहीं होती। परंतु अनुमान किया जा सकता है कि विरह विधुरा मालवणी के प्रपंच से बच निकलने के लिये उसने ऐसा किया होगा अथवा सीधे पश्चिम के मार्ग में घना जंगल अथवा दुर्गम पहाड़ पड़ते होंगे जिनके बीच में से कोई सुगम और सुरक्षित राह उन दिनों न रही होगी। इस उलटे मार्ग से यात्रा करने से उसे लगभग २५–३ कोस का चक्कर पड़ गया। यदि वह नरवर से पश्चिम के मार्ग होता हुआ सीधा पुष्कर को जाता तो केवल १ कोस के लगभग मार्ग तय करना पड़ता। इसके विपरीत नरवर से चंदेरी अनुमानतः १ कोस दक्षिण में, चंदेरी से बूँदी अनुमानतः ८ कोस पश्चिमोत्तर म और बूँदी से पुष्कर लगभग ४५ कोस उत्तर पश्चिम में—इस प्रकार लगभग १५ कोस का फासला हो गया।

यहाँ पर एक बात का ध्यान रखना चाहिए। दोहा ४ में निर्दिष्ट 'चंदेरी और 'बूँदी' से केवल इन नामोंवाले नगरों का ही आशय नहीं है वरन् चंदेरी और बूँदी राज्यों का आशय हो सकता है, जो उस समय में पर्याप्त विस्तृत राज्य रहे होंगे। इस दृष्टि से विचार करने पर, ढोला नरवर से प्रस्थान कर चंदेरी और बूँदी राज्यों की भूमि म से होता हुआ गया था और जिस स्थान पर वह प्रातःकाल के समय मालवणी के शुक को ढूँढ़ता करते मिला था वह बूँदी और चंदेरी राज्यों का मध्यवर्ती सीमाप्रदेश रहा होगा। इस *विस्तृत दृष्टि से विचार करने पर १५ कोस का चक्करदार फासला घटकर १२५* कोस के ही लगभग रह जाता है।

पुष्कर स पश्चिमोत्तर मरुस्थल के रेतीले और शुष्क निर्जन मार्ग को पार करता हुआ वह पूगळ पहुँचा। पुष्कर और पूगळ के बीच में लगभग ८ कोस का अंतर है। इस प्रकार ढोला की समस्त यात्रा का फासला लगभग २२५ कोस हुआ। इसमें उसे अनुमानतः २५–३ कोस का चक्कर खाना पड़ा। यदि वह नरवर से पुष्कर होता हुआ सीधा पूगळ को जाता तो अनुमानतः २ कोस की यात्रा करनी पड़ती।

अब यह देखना है कि समय और दूरी की आपेक्षिक दृष्टि से ढोला के लिये यह २२५ कोस की यात्रा एक दिन और आधी रात अर्थात् १ –२१ घंटों के समय म संपूर्ण करना संभव था या असंभव ?

ढोला का वाहन उत्तम जाति का तेज ऊँट था जिसकी चाल के विषय में
[illegible] योजन जाय अर्थात् एक घड़ी म योजन भर चला [illegible]

(१२) यात्रावर्णन और भौगोलिक स्थिति

ढोला मारवणी की प्रेमकहानी का नायक ढोला नरवर देश के राजा नळ का पुत्र था और मारवणी पूगळ के पिंगळराव की पुत्री थी। नरवर का प्राचीन राज्य राजस्थान प्रांत के पूर्व कोण में पुष्कर से लगाकर वर्तमान ग्वालियर राज्य की पूर्वीय सीमा तक विस्तृत था। इसे नळवाड़ा भी कहते थे। इधर राजस्थान के पश्चिम में पूगळ परमार क्षत्रियों की प्राचीन राजधानी थी। वर्तमान पूगळ नगर बीकानेर के अंतर्गत राजधानी बीकानेर के पश्चिमोत्तर में लगभग २५ कोस की दूरी पर स्थित है। पूगळ और नरवर के बीच में लगभग २ कोस का अंतर है।

ढोला के बचपन में अकाल पड़ने पर पिंगळराव नरवर राज्य में संभवतः पुष्कर तीर्थ पर, आकर रहा था वहाँ नळ राजा भी सपरिवार आया था। वहीं दोनों राजाओं का प्रथम मिलन हुआ—

पिंगल ऊचाळउ कियउ, नळ नरवरचइ देसि ॥ २ ॥

मारवणी के प्रेम से आकर्षित होकर ढोला ने नरवर से पूगळ की यात्रा की थी। इस यात्रा का स्पष्ट निर्देश दूहों में मिलता है। यात्रा किस मार्ग से की गई थी इस विषय के कुछ अवतरण नीचे उद्धृत किए जाते हैं—

(१) चंदेरी बूँदी मिची सरवर केरइ तीर।
   ढोलइ दाँख्या फाबर्यो आइ पुहुत्तउ कीर ॥४ ॥

(२) ऊति आयौ ऊमाहियउ वरह न पूगळ वह।
   बीचइ पुहरि ऊगमियउ, आडावळरउ मह ॥४२४॥

(३) करहइ पाँणि रिस्लाइयउ आयउ पुहकर तीर।
   ढोलउ ऊतर पाइयउ निरमळ सरवर नीर ॥४२५॥

(४) सांझी वेळा सामहलि कठकि पइ प्रगाति।
   ढोलइ करइ कैंबाइयउ आयउ पूगळ पाशि ॥५१२॥

इन अवतरणों से अनुमान होता है कि ढोला मारवणी को आधी रात के लगभग सोती(सूतों पहराखेह—२ ५ छोड़कर ऊँट पर नरवर से विदा हुआ था। नरवर से वह चंदेरी के मार्ग होकर बूँदी की ओर मुड़ा था दोहा नं ४ से यह स्पष्ट विदित होता है। ढोला नरवर से पुष्कर के सीधे पश्चिमी मार्ग को छोड़कर चंदेरी की ओर दक्षिण को क्यों गया और वहाँ से बूँदी की ओर की पश्चिमोत्तर राह को पकड़कर पुष्कर पहुँचने में उसका क्या आशय था,

पीथू, बुधि, दोलड कहइ हिव लहि पूगळ जात ।
रेह गमाई दिन थकइ, मे आपस्याँ रात ॥५६ ॥

इससे तो ढोला का कुछ रात बीते पूगळ पहुँचना निश्चित होता है। साथ ही इसमें भी कोई सन्देह नहीं है कि अपनी यात्रा के अंतिम भाग में—अर्थात् पुष्कर से पूगळ की राह में—उसने बहुत तेजी की थी; ऊँट को जगह जगह फटकारा भी था और सड़सड़ बेंतों से मारा भी था। इससे उसके मन की यह व्यग्रता कि संध्या होते होते पूगळ पहुँच जाय, अवश्य विदित होती है। परंतु ऐसा अनुमान होता है कि वह कुछ रात्रि बीतने पर पूगळ पहुँचा होगा पहले नहीं।

गया है। एक घड़ी २४ मिनट के बराबर होती है और योजन वर्तमान-कालिक गणना के अनुसार कम से कम ४ कोस के बराबर। इस रफ्तार से ढोला का ऊँट घंटे में १ कोस की चाल से चलता रहा होगा। एक उत्तम जाति के ऊँट के लिये यह चाल असंभव नहीं है असाधारण अवश्य कही जा सकती है। राजस्थान में इस गए-गुजरे जमाने में अब भी ऐसे ऊँट मिलते हैं जो घंटे में ७–८ कोस चल सकते हैं। ऊँट की चाल के संबंध में साधारण किंवदंती प्रसिद्ध है कि दिनभर में (अर्थात् सूर्योदय से सूर्यास्त तक) जो बिना रुकावट के १ कोस की यात्रा कर सके उसे ही ऊँट समझना चाहिए।

ढोला की यात्रा आधी रात के समय से अथवा उससे कुछ पहले आरंभ होकर दूसरे दिन की संध्या के लगभग ६ बजे समाप्त हुई होगी जैसा कि दूहा ५२२ से ज्ञात होता है। संक्षेप में ढोला ने लगभग २२५ कोस की यात्रा २०—२१ घंटों में समाप्त की थी। यह असंभव नहीं कठिन अवश्य है।

यात्रा के वर्णन को बीच बीच में से उठाकर क्रमशः जाँच करने पर भी यही प्रतीत होता है कि उसमें वास्तविक तथ्यता प्रचुर कुछ है। आधी रात को रवाना होकर ढोला प्रातःकाल के समय चंदेरी और बूँदी के सीमाप्रदेश पर सरोवर के तीर दंतधावन करने को ठहरा जहाँ मालवणी का भेजा हुआ शुक उससे मिला था। यह फासला लगभग ९ —९५ कोस का था और सूर्योदय के समय तक ढोला लगभग ७ घंटे की यात्रा कर चुका था। इससे एक घंटे में १ कोस की रफ्तार का अनुमान पुष्ट होता है। यात्रा के क्रमविकास में दूसरा प्रमाण 'चींचड़ पुहरि उताँभियउ आडवलअरठ मह' (४२४) में मिलता है। चंदेरी और बूँदी राज्यों के सीमाप्रदेश से अरावली पर्वतमाला की घाटी अर्थात् पुष्कर के आसपास के भाग तक ढोला ने प्रातःकाल से लगाकर दिन के तीसरे पहर अर्थात् ३–४ बजे तक यात्रा की थी। सारांश लगभग १० कोस की यात्रा ढोला ने ६—९ घंटों में संपन्न की। इससे भी घंटे में १ कोसवाले औसत की पुष्टि होती है।

पुष्कर से पूगल का फासला लगभग ८ कोस का है। उसे ढोला ने दिन के तीसरे प्रहर से रात के पहले प्रहर के बीच में पार किया होगा। यद्यपि इस बात का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता कि ढोला पूगल में ठीक किस समय पहुँचा परंतु उसने चींचड़ चारण के द्वारा मारवणी को निम्नांकित संदेश पहले ही भेज दिया था—

उत्तरार्ध—भाषा और व्याकरण का विवेचन

(१) प्राक्कथन

ढोला मारूरा दूहा काव्य की भाषा राजस्थानी हिंदी है। यहाँ पर राजस्थानी भाषा के विकास का संक्षिप्त इतिहास दे देना अनुचित न होगा।

राजस्थानी राजस्थान प्रांत की भाषा है। राजस्थान केवल आधुनिक राजपूताना प्रांत तक ही परिमित नहीं है किंतु मालवा और हिसार का भी बहुत सा भाग राजस्थान के ही अंतर्गत समझा जाना चाहिए। राजस्थानी इस समस्त भूखंड की भाषा है। भाषाविज्ञान के विद्वानों ने राजस्थानी को हिंदी से स्वतंत्र एवं सर्वथा भिन्न भाषा गिना है पर जब ब्रज और अवधी एवं खड़ी बोली तथा बिहारी जैसी विभाषाएँ हिंदी के अंतर्गत गिनी जा सकती हैं तो राजस्थानी को भी हिंदी की विभाषा माना जा सकता है। हम आधुनिक हिंदी भाषा के दो मोटे विभाग करके उसकी विभिन्न विभाषाओं को इस प्रकार विभक्त करेंगे—

उत्तरार्ध—भाषा और व्याकरण का विवेचन

(१) प्राक्कथन

ढोला मारूरा दूहा काव्य की भाषा राजस्थानी हिंदी है। यहाँ पर राजस्थानी भाषा के विकास का संक्षिप्त इतिहास दे देना अनुचित न होगा।

राजस्थानी राजस्थान प्रांत की भाषा है। राजस्थान केवल आधुनिक राजपूताना प्रांत तक ही परिमित नहीं है किंतु मालवा और हिसार का भी बहुत सा भाग राजस्थान के ही अंतर्गत समझा जाना चाहिए। राजस्थानी इस समस्त भूखंड की भाषा है। भाषाविज्ञान के विद्वानों ने राजस्थानी को हिंदी से स्वतंत्र एवं सर्वथा भिन्न भाषा गिना है पर जब ब्रज और अवधी एवं खड़ी बोली तथा बिहारी जैसी विभाषाएँ हिंदी के अंतर्गत गिनी जा सकती हैं तो राजस्थानी को भी हिंदी की विभाषा माना जा सकता है। हम आधुनिक हिंदी भाषा के दो मोटे विभाग करके उसकी विभिन्न विभाषाओं को इस प्रकार विभक्त करेंगे—

राजस्थानी का विकास अपभ्रंश से हुआ है। अपभ्रंश से विकसित प्राचीन राजस्थानी से ही आधुनिक राजस्थानी ब्रजभाषा और गुजराती का जन्म हुआ है। अपभ्रंश काल के पश्चात् एक जमाने तक उस समस्त भूखंड में जो आजकल पश्चिमी हिंदी राजस्थानी और गुजराती का अधिकारक्षेत्र है, बोलचाल एवं साहित्य की भाषा राजस्थानी रही है।

राजस्थानी हिंदी की समस्त शाखाओं में प्राचीनतम है। यह अपभ्रंश की बेटी है। जिस समय भारतीय जनता की साधारण भाषा प्राकृत थी उस समय कतिपय आमीर आदि निम्नकोटि की जातियाँ उसे बिल्कुल उस रूप में न बोलती थीं जिसमें कि अन्य लोग उसे बोलते थे। जो रूप उनमें प्रचलित था वह अशुद्ध था अपभ्रष्ट था। प्रारंभ में उन्हीं की बोलचाल की भाषा अपभ्रंश कहलाती रही होगी। भाषा सदा बदलती रहती है, इस नियम के अनुसार प्राकृत भाषा विकृत होने लगी। प्राकृत का यह विकृत रूप आगे चलकर अपभ्रंश नाम से प्रसिद्ध हुआ। अनुमानतः विक्रम की पाँचवीं छठी शताब्दी के लगभग प्राकृत संस्कृत की भाँति केवल साहित्यिक भाषा रह गई और उस समय अपभ्रंश जनसाधारण की बोलचाल की भाषा बन चुकी थी। जब अपभ्रंश जनता की भाषा हुई तो साहित्यसेवी भी उस ओर झुके और अपभ्रंश ने साहित्य में भी पैर रखा। साहित्य में आकर अपभ्रंश का रूप स्थिर हो गया जनसाधारण की भाषा कभी स्थिर रूप में नहीं रह सकती। उसमें परिवर्तन होना शुरू हुआ। विकृत होकर वह नवीन रूप धारण करने लगी। धीरे धीरे बाद की अपभ्रंश पहले की अपभ्रंश से दूर जा पड़ी और अन्त में वर्तमान काल की देशभाषाओं में परिवर्तित हो गई। इस प्रकार आधुनिक हिंदी गुजराती राजस्थानी बँगला मराठी आदि देशभाषाओं का अपभ्रंश से विकास हुआ।

अपभ्रंश का युग कब समाप्त होता है और देशभाषाएँ कब से आरंभ होती हैं यह बतलाना बहुत कठिन है। अपभ्रंश धीरे धीरे विकृत होती हुई इन भाषाओं में परिवर्तित हुई है और इस कार्य में कई शताब्दियाँ लगी हैं। इस बीच के विकास के समय को हम परिवर्तन काल (Transition Period) कहेंगे। इस काल की भाषा शुद्ध अपभ्रंश न होते हुए भी अपभ्रंश से विशेष विभिन्न नहीं है। यह परिवर्तन युग विक्रम की दसवीं शताब्दी से बारहवीं

शताब्दी के अंत तक माना जा सकता है[1]। तेरहवीं शताब्दी में राजस्थानी आदि देशभाषाएँ अपभ्रंश से स्पष्टतया भिन्न हो चुकी थी।

इस परिवर्तनकाल की भाषा को सुप्रसिद्ध विद्वान् चंद्रधर शर्मा गुलेरी पुरानी हिंदी का नाम देते हैं। गुजराती भाषा के विद्वान् मोहनलाल दलीचंद देसाइ ने उसे जूनीहिंदी-जूनीगुजराती कहा है। अन्य विद्वान् इसे प्राचीन राजस्थानी कहते हैं। हमारी समझ में ये नाम उपयुक्त नहीं हैं। उक्त भाषा कुछ थोड़े बहुत फेरफार के साथ समस्त उत्तरी भारत में प्रचलित थी और उसी से वर्तमान देशभाषाओं का विकास हुआ है। वह केवल हिंदी और गुजराती की ही जन्मदात्री नहीं है किंतु उससे अन्य भाषाओं का भी जन्म हुआ है। वास्तव में उसे उत्तरकालीन अपभ्रंश कहना चाहिए। अतः हम इन प्रांतीयता सूचक नामों को ग्रहण न करके इस भाषा को लोकभाषा कहेंगे।

(२) अपभ्रंश का विकास

अपभ्रंश शब्द आरंभ में किसी भाषा के लिये प्रयुक्त नहीं होता था। निरक्षर या साधारण जनता शिष्ट भाषा के शब्दों का उच्चारण कुछ विकृत रूप में करती थी। शब्दों के इन्हीं विकृत रूपों को आरंभ में अपभ्रंश कहा जाता था। पतंजलि ने अपने महाभाष्य में इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया है। जैसे—

एकैकस्य हि शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशाः। तद् यथा—गौरित्यस्य शब्दस्य गावी गोणी गोता गोपोतलिकेत्येवमादयोऽपभ्रंशाः। शिष्ट और साक्षर लोग भाषा की शुद्धता का ध्यान रखते हुए गौ शब्द का प्रयोग

---

1 यह बात साहित्य की भाषा के लिये ही कही जा सकती है। बोलचाल की भाषा का परिवर्तन काल तो विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी से ही आरंभ हो जाता है।

साहित्यिक लोग बोलचाल की भाषा के पर्याप्त प्रचार हो जाने के बाद ही उसका प्रयोग साहित्यरचना में करते हैं। कोई भी भाषा साहित्यिक भाषा होने के पूर्व बहुत काल तक बोलचाल की भाषा रहती है। परंतु कभी कभी महात्मा बुद्ध, रामानंद, कबीर जैसे संत महात्मा जन्म लेते हैं जो साहित्यिक भाषा की पर्वाह न करके लोकभाषा को ही अपनाते हैं और उसी में अपने अमूल्य उपदेशों को ग्रथित करते हैं। ऐसे कई सिद्ध महापुरुष बारहवीं एवं उसके बाद की शताब्दियों में हुए और उन्होंने लोकभाषा में ही रचना की जो कुछ ग्रंथों में प्राप्त हुई है। श्रीयुत हरप्रसाद शास्त्री ने ऐसी कतिपय रचनाओं को संगृहीत करके बौद्धगान और दोहा नाम से प्रकाशित करवाया है। (इनके उदाहरण आगे चलकर दिए जायँगे)

करते थे पर निरक्षर और साधारण लोग गावी गोणी आदि शब्दों का प्रयोग करते रहे होंगे जिस प्रकार आजकल भी पढ़ेलिखे लोग सूर्य या सूरज शब्द का प्रयोग करते हैं और निरक्षर लोग सुरुज, सूरज, सुरिज, सुरिज आदि अपभ्रष्ट रूपों को काम में लाते हैं।

अपभ्रंश भाषा का सबसे पहले पता भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में चलता है जिसका समय विक्रम की दूसरी एवं तीसरी शताब्दी के अनंतर नहीं हो सकता। उसमें अपभ्रंश नाम तो नहीं आया है पर संस्कृत और प्राकृत के अतिरिक्त देशभाषा का उल्लेख किया गया है—

एवमेतत्तु विज्ञेयं संस्कृतं प्राकृतं तथा ।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि देशभाषा प्रकल्पनम् ॥

आगे चलकर सात भाषाओं और सात विभाषाओं का उल्लेख किया गया है। इनमें सातों भाषाएँ तो सात प्राकृत भाषाएँ हैं। विभाषाओं में शबर आभीर चांडाल चेर (आधुनिक केरल) द्रविड़ ओड्र इन कुछ जातियों की तथा जंगली जातियों की बोलियों को गिनाया गया है।

नाट्यशास्त्र के जमाने के आसपास प्राकृतें शिष्टसमुदाय की ही भाषाएँ रह गई होंगी और निरक्षर लोग उसी का अपभ्रष्ट रूप काम में लाते होंगे जिस पर धीरे धीरे उक्त आभीर आदि जातियों की बोलियों का प्रभाव अवश्य, पड़ा होगा।

नाट्यशास्त्र म यह भी कहा गया है कि सिंधु (आधुनिक सिंध) सौवीर (आधुनिक पश्चिम दक्षिणी पंजाब) और उनके आसपास के पहाड़ी प्रदेश में उकारबहुल भाषा प्रयुक्त होती है जो अपभ्रंश का एक मुख्य लक्षण है। आगे चलकर बत्तीसवें अध्याय में जो उदाहरण दिए गए हैं वे अपभ्रंश से मिलते जुलते या बिलकुल अपभ्रंश ही हैं। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि नाट्य शास्त्र के जमाने म प्राकृत के अतिरिक्त देशभाषा का प्रचार था पर उसका कोई अलग नाम अभी तक नहीं पड़ा था। यह देशभाषा केवल निम्नकोटि की जनता की बोलीमात्र थी एवं साहित्यरचना इसम नहीं होती थी।

इसके बाद सातवीं शताब्दी मे अपभ्रंश के उल्लेख मिलते हैं और इस समय यह केवल बोलचाल की भाषा ही नहीं थी किंतु उसमें साहित्यरचना भी होने लगी थी। वलभी क राजा दूसरे धरसेन का एक शिलालेख मिला है जिसमें उसने अपने पिता गुहसेन के लिये लिखा है—

संस्कृत प्राकृतापभ्रंश भाषात्रय प्रतिबद्ध
प्रबंधरचना निपुणतरांतः करणः ।

(संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश इन तीन भाषाओं में काव्यरचना करने में अति चतुर अंतःकरणवाला ।)

इस राजा गुहसेन के शिलालेख सं ५५९ से ६२९ तक के मिलते हैं जिससे उसका समय सातवीं शताब्दी के प्रारंभ में सिद्ध होता है ।

इसी समय के आसपास प्रसिद्ध विद्वान भामह हुआ जो काव्य के तीन विभाग करता है—

संस्कृतं प्राकृतं चान्यदपभ्रंश इति त्रिधा ।

महाकवि दंडी का समय भी इससे बहुत दूर नहीं है । उसने अपने काव्यादर्श में भारतीय साहित्य को चार भागों में बाँटा है—

तदेतद् वाङ्मयं भूयः संस्कृतं प्राकृतं तथा ।
अपभ्रंशं च मिश्रं चेत्याहुरार्याश्चतुर्विधम् ॥

इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि विक्रम की छठी सातवीं शताब्दी में अपभ्रंश साहित्य में पैर रख चुकी थी और उसका इतना आदर हो गया था कि एक राजा उसमें काव्यरचना कर सकने को अपने लिये गौरव की बात समझे । भामह और दंडी के जमाने तक उसका साहित्य इस योग्य हो गया था कि काव्य का विभाजन करते समय उसका नाम लिया जाय ।

इस समय वह साधारण निम्न जातियों की ही बोलचाल की भाषा नहीं थी किंतु समस्त जनता की बोलचाल की एवं जीवित साहित्य की भाषा हो चुकी थी और प्राकृत केवल मृत भाषा ही रह गई होगी या अधिक से अधिक उसका प्रयोग बहुत थोड़े विद्वानों में ही होता रहा होगा ।

राजशेखर के जमाने तक अपभ्रंश खूब साहित्यसंपन्न भाषा हो गई थी । साहित्य में अपभ्रंश का एकच्छत्र राज्य कोई ग्यारहवीं शताब्दी तक रहा । ग्यारहवीं शताब्दी से देशभाषा प्रधानता प्राप्त करने लगी और बारहवीं शताब्दी के बाद तो अपभ्रंश का साहित्यिक महत्व भी बहुत कुछ जाता रहा ।

इस प्रकार अपभ्रंश का काल विक्रम की दूसरी शताब्दी से ग्यारहवीं शताब्दी तक माना जा सकता है ।

अपभ्रंश का मुख्य स्थान राजस्थान मालवा, गुजरात सिंध और पश्चिमी पंजाब था । प्रारंभ में इसका विकास संभवतया वहीं हुआ धीरे धीरे

समस्त भारत में उसका प्रचार हो गया। प्रांतीय भेद उसमें अवश्य रहे होंगे पर परस्पर का अंतर इतना नहीं रहा होगा कि एक प्रांत के निवासियों को दूसरे प्रांतवालों की बोली को समझने में कठिनता हो।

ऊपर हम भरत नाट्यशास्त्र के इस कथन का उल्लेख कर चुके हैं कि उकारबहुला भाषा सिंध और पश्चिमी पंजाब में बोली जाती थी। दंडी अपभ्रंश को आभीर आदि जातियों की भाषा कहता है। आभीर जाति का प्रारंभिक निवास सिंध पंजाब और बाद में राजस्थान गुजरात आदि का भूभाग ही था। आभीर आदि निम्न जातियाँ शिष्ट भाषा का शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकती थीं जिससे उनकी भाषा को अपभ्रंश नाम दिया गया होगा और बाद में जब प्राकृत अपभ्रष्ट होने लगी तो यह नाम व्यापक होकर समस्त जनता की बोलचाल की भाषा के लिये प्रयुक्त हो गया। राजशेखर ने काव्य मीमांसा में लिखा है कि अपभ्रंश का प्रयोग समस्त मरु (आधुनिक मारवाड़ या पश्चिमी राजस्थान), टक्क (आधुनिक पूर्वी पंजाब का कुछ भाग) और भादानक प्रदेशों में होता है। एक अन्य स्थान पर वह लिखता है कि सौराष्ट्र (आधुनिक काठियावाड़) और त्रवण आदि देशों के लोग संस्कृत को सौष्ठव के साथ पढ़ते हैं पर अपभ्रंश के मिश्रण के साथ। भोजराज अपने सरस्वती कंठाभरण में लिखते हैं—

अपभ्रंशेन तुष्यंति स्वेन नान्येन गुर्जराः।

इन सब कथनों से स्पष्ट होता है कि अपभ्रंश मुख्यतया राजस्थान मालवा गुजरात और सिंध तथा पंजाब की भाषा थी और वहीं से धीरे धीरे उसका सर्वत्र प्रचार हुआ। *कम से कम साहित्यरचना तो विशेषतया इन्हीं प्रदेशों* में हुई है। अपभ्रंश के मुख्य भेद नागर, उपनागर और व्राचड़ इन्हीं प्रांतों में प्रचलित थे एवं आधुनिक देशभाषाओं में राजस्थानी मालवी एवं गुजराती ही अपभ्रंश के सबसे अधिक सन्निकट भाषाएँ हैं।

इन प्रांतों की अपभ्रंश ने साहित्य में इतनी श्रेष्ठता प्राप्त कर ली थी कि अन्यान्य प्रांतीय भेद उसके सामने दब गए। उनमें या तो साहित्य रचना हुई ही नहीं या बहुत कम हुई और उसका भी अधिकांश भाग नष्ट हो गया।

इसके अतिरिक्त यह संभावना भी हो सकती है कि जिस प्रकार आधुनिक हिंदी की बोलियों में खड़ी बोली को ही साहित्यिक भाषा होने का गौरव

प्राप्त है एवं अन्यान्य बोलियाँ केवल बोलचाल के ही काम में आती हैं, उसी प्रकार उस जमाने में भी पश्चिमी अपभ्रंश ही साहित्यरचना के लिये प्रयुक्त होती थी और अन्य प्रांतों की अपभ्रंशें केवल बोलचाल की भाषाएँ रही होंगी। इसके अलावा उस जमाने में पढ़ेलिखे हिंदू विद्वान् अपनी संस्कृत में ही मस्त थे और साहित्यरचना उसी में करते थे। जैन विद्वान् ही प्राकृत और अपभ्रंश की ओर ध्यान देते एवं उसमें साहित्यरचना करते थे। ये जैन विद्वान् विशेष करके पश्चिम भारत के ही रहनेवाले थे अतः अपभ्रंश साहित्य की रचना उधर की ही अपभ्रंश में हुई होगी एवं बाकी अपभ्रंशें बोलचाल में ही काम आती होंगी[1]।

(३) उत्तरकालीन अपभ्रंश अथवा लोकभाषा (पुरानी हिंदी या जूनी गुजराती) का विकास

आधुनिक देशभाषाओं का विकास अपभ्रंश से हुआ है। अपभ्रंश भाषा प्रायः समस्त उत्तरी भारत की भाषा थी। उसमें प्रांतीय भेद अवश्य थे जिनके कारण लोगों ने कई अपभ्रंशें मानी हैं पर प्राकृतों की भाँति इन भेदों में बहुत ही कम अंतर था। पर अपभ्रंश के बाद जिस भाषा का विकास हुआ वह भिन्न भिन्न प्रांतों में भिन्न भिन्न प्रकार की हो गई। अवश्य ही आरंभ में इतना भेद नहीं था पर यह भेद धीरे धीरे बढ़ता गया जिससे देश में एक भाषा के स्थान पर कई भाषाओं का जन्म हो गया। सम्राट् हर्षवर्धन (सं ६६३–७०४) के जमाने तक उत्तरी भारत एक ही शासन के नीचे रहा पर उसके बाद देश की राजनीतिक एकता छिन्नभिन्न हो गई। विभिन्न प्रांतों का पारस्परिक आवागमन और भिन्नताजुसना धीरे धीरे कम होता गया। इस प्रकार पारस्परिक व्यवहार नष्ट हो जाने से भाषा की एकता भी धीरे धीरे नष्ट हो गई।

अपभ्रंश से वर्तमान देशभाषाओं का जन्म हुआ। पर यह विकास आकस्मिक नहीं किंतु शताब्दियों का काम था। ये भाषाएँ आरंभ में अपभ्रंश से बहुत कुछ मर्यादित रहीं और अंत में देशभेद से भिन्न भिन्न रूपों में विकसित हुई। इनके स्पष्ट विकास के पूर्व का जो परिवर्तन काल है उसकी

[1] दक्षिण निवासी पुष्पदंत कवि के जो मान्यखेट के राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तीसरे के समय में हुआ है अपभ्रंश में लिखे हुए कई ग्रंथ मिले हैं। उनकी भाषा हम मुख्य अपभ्रंश से प्रायः सर्वांश में मिलती जुलती है और हमारे कथन को सिद्ध करती है।

भाषा को हमने लोकभाषा का नाम दिया है। आधुनिक देशभाषाओं के पूर्व यह लोकभाषा थोड़ेबहुत अंतर के साथ समस्त उत्तरी भारत की भाषा थी। बाद में पारस्परिक व्यवहार टूट जाने के कारण यह अंतर विभिन्न भागों में बढ़ता गया और इस प्रकार बंगाली हिंदी राजस्थानी, गुजराती आदि देश-भाषाओं का जन्म हुआ।

इस लोकभाषा का बीजारोपण विक्रम की आठवीं शताब्दी के लगभग हुआ होगा। उस समय शिष्ट जनों एवं साहित्य की भाषा अपभ्रंश थी पर साधारण जनता संभवतया अपभ्रंश के विकृत रूप का ही प्रयोग करती होगी। इसके अतिरिक्त ग्रामीण कविता की रचना भी इस लोकभाषा मे होने लगी होगी। पूर्व भारत म नालंदा और विक्रमशिला से संबद्ध वज्रयानी बौद्ध सिद्धों की कतिपय रचनायें प्राप्त हुई हैं जो इसी लोकभाषा म हैं। उनका समय लगभग नवीं शताब्दी के आरंभ से लेकर तेरहवीं शताब्दी के पूर्व भाग तक है।

जब अपभ्रंश के साहित्य का ही पता अभी बहुत कम लगा है तो फिर लोकभाषा के साहित्य की बात तो जाने ही दीजिए। इस काल म भी साहित्यिक लोग अपनी रचनाएँ अपभ्रंश म ही लिखते होंगे क्योंकि यह शिष्ट भाषा समझी जाती थी। फिर वैदिक मतानुयायी विद्वानों ने तो जनता की भाषा की कभी पर्वाह नहीं की उन्होंने जो कुछ लिखा प्रायः सब का सब संस्कृत में लिखा। प्राकृत और अपभ्रंश भी जब उनकी कृपादृष्टि के बाहर रहीं तो बेचारी लोक भाषा की क्या कथा ! दूसरे लेखक प्रधानतया जैन आचार्य आदि थे। ये भी बहुत दिनों तक प्राकृत और बाद मे अपभ्रंश के—तत्कालीन शिष्ट भाषाओं के—फेर म पड़े रहे। एकाध रचना हुई भी होगी तो कहीं किसी पुस्तक भंडार मे अंधकार के गर्त मे छिपी पड़ी होगी।

अब रहीं असाहित्यिकों की रचनायें। बौद्ध सिद्धों की कृतियों का उल्लेख ऊपर हो चुका है। साधारण जनता में जो गीत, दोहे आदि निर्मित होकर प्रचलित हुए वे लेखबद्ध न होने के कारण बहुत कुछ तो नष्ट हो गए होंगे और जो थोड़े बहुत बचे वे परिवर्तित होते हुए आगे की पीढ़ियों तक पहुँच गए[1]।

---

1 सरह पा आदि वज्रयानी बौद्ध सिद्धों की रचनाओं को डाक्टर हरप्रसाद शास्त्री और उनके सुपुत्र डाक्टर विनयतोष भट्टाचार्य प्राचीन बँगला बतलाते हैं। डाक्टर विनयतोष एक स्थान पर लिखते हैं—

हेमचंद्र सोमप्रभ सूरि और मेरुतुंगाचार्य ने अपनी कृतियों में इन प्रचलित गीतों और दोहों को उद्धृत किया है। इन उदाहरणों में शृंगार, वीरता नीति सभी प्रकार के नमूने मिलते हैं। हेमचंद्र ने जो उदाहरण दिए हैं उनसे ज्ञात होता है कि उसके समय में लोकभाषा में रामकथा, कृष्णकथा, महाभारत आदि ग्रंथ बन चुके थे। मुंज और भ्रम इन दो कवियों के नाम भी उसमें पाए जाते हैं। मुंज के संबंध के और भी कई दोहे मेरुतुंग ने उद्धृत किए हैं। संभव है ये सब मुंज ही की रचनाएँ हों। मुंज धारा का सुप्रसिद्ध विद्वान् राजा है जिसका एक विरुद वाक्पतिराज भी है। यह भोज के पिता सिंधुराज का बड़ा भाई था। इसका समय ग्यारहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध है। आगे इस लोकभाषा की रचनाओं के कतिपय उदाहरण दिए जाते हैं—

(१) सिद्धों की रचनाएँ

१—सरहपा

जह मन पवन न संचरइ, रवि ससि नाह पवेस।
तहि वट चित्त विसाम करु सरहे कहिअ उवेस ॥ १ ॥
घोरंधारे चंद मणि जिमि उज्जोअ करेइ।
परम महासुह एकु खणे दुरिआ अशेष हरेइ ॥ २ ॥
जह नमा विअ होइ मुत्ति, ता सुनह सिआलह।
लोमोप्पाटनें अत्थि सिद्धि ता जुवइ नितंबह ॥
पिच्छीगहणे दिट्ठ मोक्ख ता करिह तुरंगह।
उम्में मोक्खे होइ जाव ता ॥

Thus the time of the earliest Doha in Bengali goes back to the middle of the seventh century when Saraha flourished and Bengal may be justly proud of antiquity of her literature.

पता नहीं डाक्टर साहब ने इन दूहों की भाषा को बँगला क्यों मान लिया। जिस भाषा में ये दूहे लिखे गए हैं वह उस समय प्रायः समस्त उत्तरी भारत में कुछ हेरफेर के साथ प्रचलित थी। फिर सरह न तो बंगाली था न बंगाल के साथ उसका कोई संबंध था। चौरासी सिद्धों का संबंध नालंदा और विक्रमशिला के प्राचीन विश्वविद्यालयों से रहा है अतः वे बिहारी तो कहे जा सकते हैं। अब विद्वानों का यह मत होता जा रहा है इन दोहों की भाषा बौद्ध पश्चिमी अपरकालीन अपभ्रंश है।

बौ गा दू ४ (११०—१२)

एक सरह भणइ खमनान मोक्ख महु कोप न भावइ।
तत्तरहि अभ्रमया ण तव पर केवल ताहइ॥ ३॥

पंडिअ सअल सत्त बक्खाणइ।
देहहि बुद्ध वसंत न जाणइ॥
अमणागमण ण तेन विखंडिअ।
तो वि णिलज्ज भणइ हउँ पंडिअ॥ ४॥

२—कण्हपा

आगम वेअ पुराणे पंडिअ मान वहंति।
पक्क सिरीफल अलिअ जिम बाहेरि त भमयंति॥ १॥
वर गिरि सिहर उत्तुंगमुणि सबरेँ जहिँ किअ वास।
नउ सो लंघिअ पंचाननेहिँ करिवर दूरिअ आस॥ २॥
जिम लोण बिलिज्जइ पाणि एहि तिम घरणी लइ चित्त।
समरस जाई तक्खणेँ जइ पुणु ते सम नित्त॥ ३॥

३—महीपा

जर रवि किरण संतापे रे गअणांगण गइ पइठा।
भणंति महीता मइ एथु बुडंते किंपि न दिठा॥

४—कमानंदपा

पेक्खु सुअणे अदस जइसा। अंतराले मोह तइसा॥
मोह विमुक्का जइ मणा। तबे टुटइ अवणागमणा॥

(२) संयममंजरी—इसके कर्त्ता महेश्वर सूरि नामक श्वेताम्बर जैन हैं। इनका समय ग्यारहवीं शताब्दी का अंतिम अथवा बारहवीं शताब्दी का पूर्व भाग माना जाता है। इस पुस्तक में ३५ दोहे हैं। उदाहरण—

संजमु सुरसरिमाहिँ सुअउ संजमु मोक्ख दुआरु।
जेहिँ न संजमु मणि धरिउ तह दुत्तर संसारु॥
संजम भार धुरंधरह अज्जुअसुक्खिउ न जाइ।
निय चरणी तुम्हवारणु चम्मु निरुत्तउ ताइ॥
इक्कि वि इंदिय मुक्कलिउ तम्भइ दुक्ख सहस्स।
जसु पुण पंचइ मुक्कला कह कुसलत्तणु तस्स॥

बरिस सहस्सिहिं वि किवउ तवु संजमु उववास।
पेम्मसहायह संगमिया सो रहि किज्जइ णद्दास॥

(३) उक्त संजम मंजरी की टीका—इसका कर्ता कोई हेमहंस सूरि का शिष्य है। समय बाद नहीं पर १६ वें से पूर्व का है।

दिट्ठि जो नवि झालवइ, कुसल न पुच्छइ बत्त।
तासु तणइ नवि जाइय, रे हिवडा नीसत्त॥
रामहु कंध बकावियइ, सम्माइ हरइ सहस्स।
आपहत्थे करि कम्मडाँ, रिवा, विसूरहि कस्स?॥

(४) सत्यपुरमंडन महावीरोत्साह—यह १५ गाथा का एक स्तोत्र है। इसका कर्ता धनपाल है। मालवाधिपति मुंज एवं भोज के दरबार में धनपाल नामक कवि था। यदि यह वही है तो इसका समय ग्यारहवीं शताब्दी है।

एसि सामि पसरंतु मोहु नेहुडु म तोडहि।
गुम्म दंसिवि नाणु चर महु कोडु विहोडहि॥
करि पसाउ सवलहरि वीर वड तुहुँ मयि मावइ।
तउ गुइइ भयपाल चाउ अहि गयउ न आवइ॥

(५) तिसहि महापुरुष गुणालंकार महापुराण—इसका कर्ता पुष्पदंत नामक जैन कवि है जो मान्यखेट राष्ट्रकूट नरेश कृष्णराज तीसरे का समकालीन था (समय ग्यारहवीं शताब्दी का प्रथमार्द्ध)। उदाहरण—

महु समयागमे जायहँ ललियइँ। कोइल कोमल संकयकलियइँ।
भमरमेवे पंचरीउ पगुरंतइ। कीर किएय हरिसेया विखइ॥
कमलंपु पिम्मइँ सारंगें। बाउ लासूरें पीसरंगें।
गमयालीसि वा कम सारंगें। ता किं वाहिज्जइ सारंगें॥

(६) जसहरचरिउ—

विणु भवजल्प समयु कि हज्जइ। विणु जीवेय दंदु कि मज्जइ॥१॥
विणु जीवेय मोक्खु को पावइ। तुम्हारिसु कि भव्वउ आवइ॥२॥
माणुस सरीर दुहु पीड्डउ। थापउ चीयउ मइ विडुवउ॥

चारिउ चारिउ वि पाउ करइ। हेरिउ पेरिउ किन धम्म धरइ॥
धम्में अप्पु वि अवलि धरइ। रक्खिउ धम्म सुह पयइ॥१॥

(७)[1] नायकुमारचरिउ—

सो पंडउ जो पढइ पढावइ। सो पंडउ जो लिहइ लिहावइ॥
सो पंडिउ जो विरुई विवाइइ। सो पंडउ जो मार्गे मयइ॥

(८) हेमचंद्र—यह प्रसिद्ध जैन विद्वान् विक्रम की बारहवीं एवं तेरहवीं शताब्दी में विद्यमान था। गुजरात नरेश सिद्धराज जयसिंह और कुमारपाल इसके आश्रयदाता थे। इसने संस्कृत और प्राकृत का एक बड़ा व्याकरण सिद्ध-हैम शब्दानुशासन नाम से लिखा। उसके अंतिम अध्याय के १२९ से ४४८ नंबर के कुल (१२) सूत्रों में अपभ्रंश का व्याकरण दिया है एवं उदाहरणार्थ उस समय के प्रचलित अनेक दोहों को उद्धृत किया है। देशीनाममाला नामक देशभाषा के शब्दों का एक कोष भी इसने बनाया है।

व्याकरण में उद्धृत दोहों के उदाहरण

जे महु दिण्णा दिअहडा दइएँ पवसंतेण।
ताण गणंतिए अंगुलिउ जज्जरियाउ नहेण॥१॥

सायरु उप्परि तणु धरइ तलि घल्लइ रयणाइँ।
सामि सुभिच्चु वि परिहरइ सम्माणेइ खलाइँ॥२॥

अग्गिएँ उण्हउ होइ जगु वाएँ सीअलु तेवँ।
जो पुणि अग्गि सीअला तसु उण्हत्तणु केवँ॥३॥

भल्ला हुआ जु मारिआ बहिणि महारा कंतु।
लज्जेज्जंतु वयंसिअहु जइ भग्गा घर एंतु॥४॥

वायसु उड्डावंतिअए पिउ दिट्ठउ सहसत्ति।
अद्धा वलया महिहि गय अद्धा फुट्ट तडत्ति॥५॥

जहिं कप्पिज्जइ सरिण सरु छिज्जइ खग्गिण खग्गु।
तहिं तेहइ भड-घड-निवहि कंतु पयासइ मग्गु॥६॥

जइ भग्गा पारक्कडा तो सहि मज्झु पिएण।
अह भग्गा अम्हहं तणा तो तें मारिअडेण॥७॥

---

1 अंतिम (५ ६ ७ संख्यक) तीनों ग्रंथ अपभ्रंश में हैं परंतु इनमें भी कहींकहीं तत्कालीन लोकभाषा के उदाहरण मिल जाते हैं।

गयण-मग्ग-संलग्ग लोल कल्लोल परंपर ।
निवडइ गुरुकठ नक्क चक्क चंकमण-दुरंकर ॥
उच्छलंत-गुरु पुच्छ मच्छ रिंछोलि-निरंतर ।
विल्लसमाण घणाघडाल वडवानल दुत्तर ॥
आवत्त व्यावडु जइहि लहु गोपउ जिम ते नित्थरहिं ।
नीसेस सत्थ-गय-निम्मणु पासनाहु जे संभरहिं[1] ॥२॥

(११) प्रबन्धचिन्तामणि में उद्धृत मुंज की रचनायें—

मुंज भणइ मुणालवइ जुव्वण गयउ न झूरि ।
जइ सक्कर सय खंड किय तोइ स मीठी चूरि ॥१॥
झोली तुट्टी किं न मुउ किं न हुयउ छारपुंज ।
हिंडइ दोरी बंधियउ जिम मक्कडु तिम मुंज ॥२॥
भोली मुंध म गव्वु करि पिक्खिवि पंगुरणाइं ।
चउदहसइ छहुत्तरइं मुंजह गयह गयाइं ॥३॥
जा मति पच्छइ संपजइ सा मति पहिली होइ ।
मुंज भणइ मुणालवइ, विघन न वेढइ कोइ ॥४॥
सायर खाई, लंक गढ गढवइ दससिरि राउ ।
भग्गक्खय सो भंजि गय मुंज, म करे विसाउ ॥५॥
जाइ विवेकवि जाहि तहुं, हउं देवउं को दोसु ।
हियडइ जइ नीसरइ आवइ मुंज करोसु ॥६॥
मुंज सडक्का दोरडी पेक्खेसि न, गम्मारि ।
आसाढिइ घण गज्जीइं चिक्खिल्लि होसे वारि ॥७॥

(१२) प्रबन्धचिन्तामणि में उद्धृत अन्य दूहे—

नव जल भरीया मग्गडा गयणि धडक्कइ मेह ।
इत्थंतरि जइ आविसिइ, तउ जाणीसिइ नेह ॥
राणा सव्वे वाणिया जेसल वड्डउ सेठि ।
काहूं वणिजडु मांडियउ अम्मीणा गढ हेठि ॥
तईं गरुआ गिरनार, काहूं मणि मत्सर धरिउ ।
मारीतों खंगार एकइ सिहर न ढालिउँ ॥

1 इस रचना में उत्तरकालीन हिन्दी भाषा का पूर्वाभास मिलता है ।

क—प्राचीन राजस्थानी

प्राचीन राजस्थानी का नाम हमने ऊपर लोकभाषा लिखा है। उस समय लोकभाषा थोड़ेबहुत रूपांतर के साथ समस्त उत्तर भारत में प्रचलित थी। राजस्थान गुजरात एवं ब्रज प्रांतों में लोकभाषा का जो रूप प्रचलित था वही प्रचलित राजस्थानी है। इस काल में राजस्थानी अपभ्रंश से अलग हुई पर अपभ्रंश का प्रभाव उस पर पर्याप्त था। इस प्राचीन राजस्थानी के कुछ उदाहरण हम ऊपर दे चुके हैं।

ख—माध्यमिक राजस्थानी

माध्यमिक राजस्थानी का काल संवत् १२ से १६ तक माना जा सकता है। इसमें राजस्थानी अपभ्रंश से स्वतंत्र भाषा हो गई। इस काल में भी (अंतिम डेढ़ दो शताब्दियाँ छोड़कर) राजस्थानी का क्षेत्र समस्त राजस्थान गुजरात एवं ब्रज तथा उसके आसपास का प्रांत था। संभव है बोल चाल की भाषा में कुछ अंतर रहा हो पर साहित्यिक भाषा इन प्रांतों में एक ही थी। यह बात इन प्रांतों की तत्कालीन रचनाओं पर ध्यान देने से स्वतः सिद्ध हो जाती है।

इस समय में लोकभाषा का पूर्वी रूप पश्चिमी रूप से बहुत कुछ भिन्न हो गया था जैसा मैथिल कवि विद्यापति की रचनाओं से प्रकट होता है[1]। पर फिर भी माध्यमिक राजस्थानी के रूप में पश्चिमी रूप साहित्य में प्रधानता प्राप्त किए रहा। अपभ्रंशकाल में भी साहित्य का प्रधान क्षेत्र पश्चिम ही था एवं इस उत्तरकाल में भी यही बात रही। पश्चिमी हिंदी के अधिकारक्षेत्र से बाहर रहनेवाला कबीर जैसा कवि इस भाषा में रचना करता है इससे बढ़कर इसकी जनप्रियता का प्रमाण क्या हो सकता है। आगे चलकर इसी काल के अंत में जब ब्रज राजस्थानी से पृथक् हुई तो उसने भी साहित्य में अपनी पैतृक प्रधानता को कायम रखा। उसकी रचनाओं का प्रचार ऐसे प्रदेशों में भी हुआ जहाँ सर्वथा भिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं।

इस काल में लगभग कबीर के जमाने तक तो राजस्थानी प्रधानता प्राप्त किए रही पर उसके अंत में ब्रज ने एकाएक उन्नत होकर उसको दबा दिया।

---

१ पर उनकी कीर्तिलता की भाषा राजस्थानी या पश्चिमी हिंदी से किसी प्रकार भिन्न नहीं है केवल उस पर अपभ्रंश का कुछ विशेष प्रभाव लक्षित होता है पर वह विद्यापति के काल में बोलचाल की भाषा नहीं रह गई थी।

आरंभ में दोनों भाषाएँ एक ही थीं पर सूरदास एवं अन्यान्य वैष्णव कवियों ने जब अपना संगीत छेड़ा तो उन्होंने साहित्यिक भाषा को आदर न देकर ब्रज प्रांत की ठेठ बोलचाल की भाषा को अपनाया। अब तक साहित्यिक राजस्थानी में जो कविता हुई उसके रचयिता या तो चारण भाट थे या जैन ऋषि या जनता में गान-बजानेवाली ढोली ढाढी आदि जातियाँ। संस्कृत से इन लोगों का संबंध नहीं के बराबर था पर वैष्णव कविगण संस्कृत के धुरंधर विद्वान् थे। उन पर संस्कृत का प्रभाव पड़ना अनिवार्य था। अतः उनकी रचनाओं में संस्कृत शब्द प्रचुरता से पाए जाते हैं। प्रचलित तद्भव शब्द भी बहुत कुछ तत्सम हो गए हैं। इसी तत्समता के कारण ब्रज तत्कालीन राजस्थानी से जो अब तक साहित्यिक भाषा थी भिन्न हो गई।

यही नहीं राजस्थानी केवल प्रांतीय भाषा मात्र रह गई। वैष्णव कवियों की भक्तिधारा ने ब्रज को एकाएक बहुत ऊँचा उठा दिया और न केवल ब्रज प्रांत में किंतु अन्यत्र भी उसका संमान होने लगा। इन कवियों की रचनाओं ने जनता के जीवन को बहुत प्रभावित किया और धीरे धीरे साहित्य की प्रभुता राजस्थानी से छूटकर ब्रज को प्राप्त हुई। ब्रज हिंदी की समस्त शाखाओं में प्रधान हो बैठी और उसकी यह प्रधानता अब भी सर्वथा नष्ट नहीं हो पाई है।

इन वैष्णव कवियों की भक्तिधारा ने राजस्थानी जनता को भी आकृष्ट किया। उसका प्रचार राजस्थान म भी खूब हुआ। सूर और तुलसी के भजन घर घर गाए जाने लगे और आज भी गाए जाते हैं। हाँ इतना अवश्य हुआ कि बहुत से भजनों की भाषा गाते गाते राजस्थानी बन गई।

राजस्थानी में इस समय मुख्यतया तीन प्रकार की रचनाएँ होती थीं—

१—चारण भाटों की रसपूर्ण कविता—आरंभ में ये लोकप्रिय हुईं परंतु अंत म जब वीरता के लिये अवकाश न रह गया तो ऐसी रचनाएँ धीरे धीरे कम लोकप्रिय होने लगीं। फिर इनके लेखक इनको एक बँधी हुई भाषा में जो आगे चलकर *डिंगल कहलाई* लिखने लगे जिससे वे जनता के लिये धीरे धीरे कम बोधगम्य होती गईं। अतएव ऐसी रचनाओं का समादर राजदरबारों तक ही सीमित रह गया।

२—जैन लेखकों की रचनाएँ—ये विशेषकर जैन धर्म से संबंध रखती थीं अतएव साधारण जनता में इनका विशेष प्रचार नहीं हुआ।

१—लौकिक कविता—इसकी रचना करनेवाली या तो जनता स्वयं ही होती थी या ढोली दाढी ढमामी आदि लोग होते थे जिनका काम गानाबजाना तथा लोकप्रिय कविताओं और गीतों को जनता में गाकर सुनाना था। ऐसी कवितायें बहुत लोकप्रिय होती थी तथा साक्षर एवं निरक्षर जनता में उनका खूब प्रचार होता था।

जब ब्रज की भक्तिधारा प्रवाहित हुई तो जनता उधर आकर्षित हुई और अन्यान्य रचनायें उसके सामने दब गईं। साहित्यिकों पर भी उसका प्रभाव पड़ा। राजस्थान एवं गुजरात के लेखक भी ब्रज की ओर झुके और शुद्ध ब्रज में या ब्रजमिश्रित राजस्थानी में रचना करने लगे। इस नवीन भाषा का नाम पिंगळ पड़ा और आगे चलकर इसके साम्य पर चारणी कविता डिंगळ कहलाने लगी। बोलचाल की राजस्थानी की लौकिक रचनायें तथा जैनों की रचनायें न तो डिंगळ है और न पिंगळ। जिस समय ये नाम पड़े उस समय राजस्थान के साहित्यज्ञ विद्वानों के ध्यान में ये दो ही प्रकार की रचनायें थीं। जैन रचनायें तो जैनों तक ही परिमित रहीं, बाहर उनकी पहुँच नहीं हुई। रही साधारण जनता की देहाती रचनायें, सो साहित्यिक विद्वान् उसे साहित्य ही क्यों मानने लगे! आज भी ग्रामीण कविता साहित्यज्ञों द्वारा साहित्य में परिगणित नहीं की जाती। तेजेरो गीत, डूँगजी-जवारजीरो गीत आदि लोक-गीतों की ओर आज भी किस साहित्यिक की दृष्टि जाती है! यह तो गँवारों की कविता है! इस ढोला मारू काव्य को ही न लीजिए। कितनी सुंदर रचना है पर किसी साक्षर राजस्थानी के आगे उसका नाम तो लीजिए। फिर देखिए, वह किस बुरी तरह नाकभौं सिकोड़ता है। आपको गँवार समझे यह तो निश्चित ही है।

इस प्रकार ये दोनों प्रकार की रचनायें विद्वानों से दूर रहीं। बाकी रह गई ब्रजभाषा की रचनायें या चारणों की कृतियाँ। इनके पिंगळ और डिंगळ नाम रखकर साहित्य के दो विभाग कर दिए गए। जो पिंगळ नहीं सो डिंगळ जो डिंगळ नहीं सो पिंगळ।

परंतु हमें यहाँ बाकी दो प्रकार की राजस्थानी रचनाओं को भी नहीं भूलना चाहिए। हम समस्त राजस्थानी साहित्य को दो विभागों में बाँटेंगे—
(१) डिंगळ (२) साधारण राजस्थानी।

(१) डिंगळ का विकास उस राजस्थानी से हुआ जिसका प्रयोग चारण भट्ट अतिशयोक्ति क... जो विशे... ...त्मक होती थी।

शब्दों के साधारण रूपों की अपेक्षा द्वित्व वर्णवाले रूपों का विशेष प्रयोग होता था। प्राचीन राजस्थानी में डिंगळ के बीज पाए जाते हैं।

प्रारंभ में साधारण राजस्थानी और डिंगळ में कोई अंतर न था पर बाद में जाकर डिंगळ स्थिर या Stereotyped हो गई। कवि लोग जान-बूझकर द्वित्व वर्णवाले शब्दों का प्रयोग करते थे और साधारण शब्दों की भी इस प्रकार कपालक्रिया होने लगी साथ ही उनके कई शब्द भी बँध गए जिनका वे बारबार प्रयोग करते थे। बोलचाल की राजस्थानी में ऐसे शब्दों का प्रयोग नहीं होता था या उठ गया था जिससे डिंगळ जनता के लिये धीरे धीरे कम बोधगम्य होती गई और अंत में उसका समझ लेना बड़ा टेढ़ी खीर हो गया। प्रारंभ में डिंगळ बोलचाल की राजस्थानी से नाम मात्र की ही भिन्नता रखती थी पर अब तो वह सर्वथा भिन्न भाषा सी हो गई है। फिर राजस्थान में राजस्थानी साहित्य के अध्ययन का प्रबंध न होने से लोग इस कविता से सर्वथा पराङ्मुख हो गए हैं यहाँ तक कि इसका अर्थ निकालनेवाले अब विरले ही मिलते हैं।

डिंगळ नाम बहुत पुराना नहीं है। जब ब्रजभाषा साहित्यसंपन्न होने लगी एवं सूरदास आदि ने उसको ऊँचा उठाकर हिंदी क्षेत्र में सर्वोच्च आसन पर बिठा दिया तो उसकी मोहिनी राजस्थान पर भी पड़ी। राजस्थान की कविता पर ब्रज का प्रभाव पड़ने लगा यहाँ तक कि बहुत से लोग ब्रज में रचना करने लगे। इस प्रकार ब्रज या ब्रजमिश्रित भाषा में जो रचना हुई वह पिंगळ कहलाई। आगे चलकर उसके नामसाम्य पर पिंगळ से भिन्न (अर्थात् चारण भाटों की वीररसात्मक) रचना डिंगळ कहलाने लगी।

(२) साधारण राजस्थानी में हम बोलचाल की राजस्थानी की रचनाओं जैन लेखकों की रचनाओं तथा ब्रजमिश्रित पिंगळ की रचनाओं को स्थान देंगे।

प्राचीन और माध्यमिक राजस्थानी की अधिकांश रचनाएँ जैन लेखकों की कृतियाँ हैं। राजस्थानी साहित्यनिर्माण का श्रेय अधिकांश में इन्हीं लेखकों को देना चाहिए। अवश्य ही इनकी भाषा पर प्राकृत और अपभ्रंश का पूर्ण प्रभाव है फिर भी तत्कालीन भाषा के अध्ययन के लिये इन्हीं की कृतियाँ सबसे अधिक उपयोगी हो सकती हैं। पिंगळ रचनाओं और लौकिक कविता की भाषा उनके जनता में प्रचलित होने के कारण धीरे धीरे

आधुनिक होती गई है, जिससे कविता की भाषा आगे चलकर स्थिर हो गई परंतु जैन रचनाएँ इन दोषों से बहुतकुछ मुक्त हैं। इनमें भाषा का तत्कालीन रूप बहुतकुछ सुरक्षित है। यह साहित्य बहुत विस्तृत है पर अप्रकाशित है।

माध्यमिक राजस्थानी की वर्तनी अपभ्रंश से मिलती हुई थी। उसमें ह्रस्व ए और ओ वर्तमान थे जो आधुनिक राजस्थानी में भी पाए जाते हैं। ये ए और ओ अइ और अउ के रूप में लिखे जाते थे[1]। जैसे—

मरइ पचइइ भी मरइ भी मरि भी पच्छेहि।
ढाढी हाथ संदेसड़उ धण विलखंती देहि॥

—ढोला मारूरा दूहा

तउ पाडइ सु भावकु भावमाड हूँतउ प्रतिष्ठिउ हुयउ।

—तरुणप्रभ सूरि (सं १४११)

पाछइ राजा आपणपउँ राखिइँ नीलउ पटकूलउ पहिरी, फिरतउ चोर जोअउ एकइ स्थानकि बइ सउउ॥

—सोमसुंदर सूरि (सं १४५७–९६)

एकि घोडे चडइँ एकि ऊलावल चडइँ।
कायर रडइँ सुभट भिडइँ, चोब वुडइँ॥

—पृथ्वीचंद्र चरित्र (सं १४७८)

अलीक वचन म बोलिसि बाली तात अम्हारउ साचउ।
दशरथराइ सर से मेंटी जे रखि ताहरउ बाचउ॥

सीताहरण (सं १५२१)

ढमढमइ ढमढमाकार ढ कर ढोल ढोली जंगिया।
सुर करहि रणसरणाइ समहरि सरस रसि समरंगिया॥
कलकलहि काहल कोडि कलरवि कुमल कायर थरथरइ।
संचरइ शाकसुरताण साहस साहसी सवि संभरइ॥

—रणमल्ल छंद (सं १४५५ के लगभग)

जसी दीह दुख अनीठड़उँ दीन्हउँ गमइ न चीर।
भोजन भाव वल्लीऽउँ मीठउँ लगइ न नीर॥

—वसंतविलास (सं १५०८ के पूर्व)

---

१ अपभ्रंश के अइ और अउ उत्तरकालीन राजस्थानी में ऐ और औ बन गए।

ख्यातों के अतिरिक्त बात-साहित्य भी महत्व पूर्ण है। बात राजस्थानी में कहानी को कहते हैं। यह साहित्य बहुत विस्तृत है और इन बातों का संग्रह किया जाय तो कई कथासरित्सागर और सहस्ररजनी चरित्र बन सकते हैं।

डिंगल रचनाओं में गीत महत्त्वपूर्ण हैं। इन गीतों में राजाओं एवं अन्य वीरों के वीर कार्यों तथा गुणों का उल्लेख होता था एवं उनकी प्रशंसा होती थी। इनसे साधारण छोटीमोटी और महत्त्वपूर्ण सभी प्रकार की ऐतिहासिक बातों एवं घटनाओं पर बड़ा प्रकाश पड़ सकता है। ये गीत हजारों की संख्या में उपलब्ध होते हैं। आवश्यकता है इनको उचित रूप से संग्रहीत संपादित और प्रकाशित करने की। राजाओं के दरबारों में रहने वाले चारण भाटों ने अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में या उनके नाम पर बहुत से ग्रंथों की इस काल में रचना की। राजा लोग भी कभी कभी काव्य-रचना करते रहे हैं। इस काल की डिंगल रचनाओं में सबसे अधिक प्रसिद्ध एवं महत्त्वपूर्ण बीकानेर के सुप्रसिद्ध राठोड़ महाराज पृथ्वीराज की 'क्रिसन-रुकमणीरी वेलि' और मिश्रण चारण सूर्यमल्ल रचित 'वंशभास्कर' हैं। वेलि साहित्यिक डिंगल का सर्वोत्तम उदाहरण है। इस काव्य की राजस्थानी में, कई टीकाएँ हुई। यही नहीं राजस्थानी में यही एक ऐसा ग्रंथ है जिसे संस्कृत में टीका होने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वंशभास्कर पृथ्वीराज रासो का बड़ा भाई है। इतिम डिंगल का यह चरम उदाहरण है। अन्य डिंगल रचनाओं का वचनिका राठोड़ रतन सिंहजीरी विशेष प्रसिद्ध है।

पिंगल साहित्य में भी अच्छी रचनाएँ हुई एवं वे लोकप्रिय भी खूब रहीं। पिंगल साहित्य के लेखक मुख्यतया जैन कवि हैं। इनमें बाबा हरिदास दयालजी दादूदयाल चंद्रसखी पद्माकर आदि कवि महत्त्वपूर्ण हैं। चंद्रसखी और पद्माकर बड़े ही भावुक कवि थे एवं इनकी रचना का माधुर्य अपूर्व है। सूर और तुलसी के पद भी राजस्थानी रूप धारण करके जनता में खूब फैल गए।

शुद्ध ब्रज के भी कई कवि इस काल में हुए। बिहारीलाल ने जयपुरनरेश के आश्रय में बिहारी सतसई लिखी। मतिराम और पद्माकर हिंदी के प्रथम श्रेणी कवि समझे जाते हैं।

बोलचाल की राजस्थानी में जो लोकप्रिय रचनाएँ इस काल में हुई उनमें दो बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। एक का नाम रुकमणीमंगल है जिसे पद्म

भक्त नामक कवि ने सत्रहवीं शताब्दी में बनाया था। इसकी शैली बड़ी सुंदर, सरस सरल और घरेलू है। वर्णन बड़े ही सजीव हैं। दूसरे का नाम मेहता नरसीजीरो मायेरो है। इसका रचयिता एक लकड़हारा था। इसमें गुजरात के प्रसिद्ध भक्त नरसी मेहता की पुत्री नानीबाई की और नरसी मेहता के भात भरने की कथा का बड़ा रोचक वर्णन है। जनता में इनका बहुत प्रचार है और लोग रात्रि को एकत्र होकर इनकी सुंदर कथाओं को गायकों के मुँह से सुनते और आनंदलाभ करते हैं। गाते गाते इनकी भाषा प्रायः ही बहुतकुछ आधुनिक हो गई है।

बोलचाल की भाषा में भी अनेक लोकगीत ballads बने जिनमें तेजेरो गीत और डूंगजी जवारजीरो गीत आज भी लोगों के कंठहार हो रहे हैं। इन गीतों को गाकर सुनानेवाली एक अलग जाति ही हो गई है।

बोलचाल की राजस्थानी के साहित्य का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंग दूहा साहित्य है। कबीर आदि भक्त कवियों की साखियों का तो खूब प्रचार हुआ ही किंतु इस काल में राजिया मैरिया किसनिया चींवरा नाथिया, नोपला जेठवा नागजी[1] आदि के दूहे बने जिनका राजस्थानी जनता में खूब प्रचार है[2]।

खेद है कि राजस्थानी का यह विस्तृत साहित्य अभी तक अंधकार में पड़ा है और राजस्थानी विद्वानों का ध्यान इसके संपादन एवं प्रकाशन की ओर अभी तक नहीं गया।

घ—आधुनिक राजस्थानी—अब हम आधुनिक राजस्थानी काल की ओर आते हैं। इस समय राजस्थानी का गौरवपूर्ण काल हो चुका है। अब राजस्थानी केवल बोलचाल की भाषा रह गई है। राजदरबारों में अब तक फारसी की तूती बोलती थी अब उर्दू का राज है। प्रायः राज्य में हिंदी को स्थान मिला है

---

१ इनमें से कुछ स्वयं कवि थे और कुछ के नाम के दूहे उनको संबोधन करके दूसरों द्वारा लिखे गए।

२ इन दूहों का एक सुंदर वृहत् संग्रह 'राजस्थानरा दूहा' नाम से इस ग्रंथ के अन्यतम संपादक नरोत्तमदास स्वामी एम॰ ए॰ द्वारा संपादित होकर रिसर्च-राजस्थान ग्रंथमाला में प्रकाशित हुआ है। प्रस्तावना में राजस्थानी भाषा और साहित्य का परिचय भी दिया गया है।

अतः उनमें और कबीर की भाषा में विशेष अंतर होने की संभावना नहीं। फिर यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि यह प्रति काशी में लिखी गई थी। यदि लेखक द्वारा परिवर्तन होता भी तो उलटा होता यानी राजस्थानी पूर्वी हिंदी में परिवर्तित होती न कि पूर्वी हिंदी राजस्थानी में। पद गाने की चीज होते हैं। उनमें परिवर्तन संभव है जैसा संभवतः हुआ भी है परंतु साखियाँ तो (बहुत थोड़े अपवाद के साथ) पुस्तकों की चीज हैं जो पुस्तकों में ही लिखी रहती हैं। अतः उनमें इतना शीघ्र ऐसा परिवर्तन हो जाना कि भाषा ठेठ राजस्थानी हो जाय संभव नहीं।

ढोला मारू काव्य की भाषा कबीर की भाषा से बहुत अधिक मिलती है। अनेक शब्द, वाक्यांश और वाक्य तो ज्यों के त्यों मिलते हैं। भावसाम्य तथा भाषासाम्य कहीं कहीं इतना अधिक है कि यह प्रतीत होने लगता है कि अवश्य ही एक का दूसरे पर प्रभाव पड़ा है।

अब नीचे हम कतिपय समानतावाले पद्यों को उद्धृत करके अपने कथन को स्पष्ट करेंगे—

(१) कबीर—अंबर कुंजाँ कुरलियाँ गरजि भरे सब ताल।
जिनि थैं[1] गोविंद बीछुटे तिनके कौण हवाल ॥ ३ ॥ १ ॥
ढोला—राति ज सारस कुरलिया गुंजि रहे सब ताल।
जिणकी जोड़ी बीछड़ी तिणका कवण हवाल ॥ ५२ ॥

(२) कबीर—यहु तन जालौं मसि करौं ज्यूँ धूँवा जाइ सरग्गि।
मति वै राम दया करै बरसि बुझावै अग्गि ॥ ३ ॥ ११ ॥
कबीर—यहु तन जालौं मसि करौं लिखौं राम का नाउँ ॥ ३ ॥ १२ ॥
ढोला—यहु तन जारी मसि करूँ, धूँआ जाहि सरग्गि।
मुझ प्रिय बद्दल होइ करि बरसि बुझावइ अग्गि ॥१८१॥

(३) कबीर—कबीर सुपनैं रैनि कै पारस जीय मैं छेक।
जे सोऊँ तौ दोइ जणा जे जागूँ तौ एक ॥ १२ । २१ ॥
ढोला—सुपिना तोहि मराविस्यूँ हियइ दिराऊँ छेक।
जद सोऊँ तद दोइ जण जद जागूँ तद ऐक ॥५१४॥

---

१ कबीर के उदाहरण आचार्य श्यामसुंदरदास द्वारा संपादित और काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'कबीर ग्रंथावली' के प्रथम संस्करण से लिए गए हैं।

साखियों में पहला अंक अंग को और दूसरा साखी को सूचित करता है। पदों में अंक पदसंख्या का सूचक है। प०—परिशिष्ट।

पर नाममात्र को। स्कूलों में हिंदी-उर्दू पढ़ाई जाती है। राजस्थानी और उसका साहित्य दिनोंदिन विस्मृति के गर्त में जा रहा है। सौ पौन सौ वर्ष पहले हिंदी जिस प्रकार गँवारू बोली समझी जाती थी वही हालत आज राजस्थानी की होने लगी है। 'हम तुम' में जो शान समझी जाती है वह 'म्हे थे' में नहीं।

आधुनिक राजस्थानी के सबसे बड़े लेखक शिवचंद्र भरतिया हैं। आपने अनेक उपयोगी गद्य-पद्यात्मक पुस्तकें लिखीं। आपकी शैली बड़ी ही सरल एवं स्वाभाविक है। आपने राजस्थानी में नवीन ढंग के नाटक तथा उपन्यासों का सूत्रपात किया और साहित्य में वर्तमान जगत् के भावों को भरने का प्रयत्न किया। एक दूसरे लेखक श्रीयुत् कचरदास कलंत्री हैं जिन्होंने दक्षिण भारत से पंचराज नामक एक बड़ा ही सुंदर मासिक पत्र राजस्थानी में निकाला था। राजस्थानी में ऐसा उपयोगी महत्त्वपूर्ण और साहित्यिक पत्र दूसरा नहीं निकला[1]।

खेद की बात है कि राजस्थानी लोग अपनी मातृभाषा और उसके साहित्य की ओर से सर्वथा विमुख हो गए हैं। अपने साहित्य का उन्हें ज्ञान ही नहीं, उसके महत्त्व को समझें तो क्यों कर समझें! मातृभाषा का अनादर ही हमारी निर्जीवता का कारण है। जाति की जीवनी शक्ति उसकी भाषा है। यदि राजस्थानी भाषा नष्ट हो गई तो राजस्थानी जाति और राजस्थानी गौरव नष्ट हो गया—इसमें तनिक भी संदेह नहीं। कब तक हम अपने साहित्यिकों और लेखकों की उपेक्षा करते रहेंगे!

(५) ढोलामारू की भाषा

'ढोला मारूरा दूहा' काव्य की भाषा माध्यमिक राजस्थानी है जो तेरहवीं शताब्दी से पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी तक पश्चिम भारत की प्रधान भाषा थी। यह अनुमान होता है कि उस काल में इस भाषा का समादर साहित्य रचना में खूब था और यह पश्चिम भारत की सर्वप्रमुख साहित्यिक भाषा थी। कबीर जैसे कवि की जो इस प्रदेश के बाहर पूर्वी हिंदी के क्षेत्र का निवासी

---

1 डिंगल भाषा और साहित्य तथा व्याकरण के विस्तृत परिचय के लिये इसी लेखक द्वारा लिखित राम लछमीरद पंद नामक ग्रंथ की प्रस्तावना देखिए।

थ भाषा का राजस्थानी होना यही सिद्ध करता है कि उस काल में उत्तर भारत की भाषाओं में इसका स्थान बहुत महत्वपूर्ण था और इसका प्रचार भी सबसे अधिक था जिसके कारण कबीर जैसे कवि की कविता जो सर्व साधारण के लिये लिखी गई थी इसी में लिखी गई। परंतु यहाँ पर यह न भूलना चाहिए कि उस समय राजस्थान एवं ब्रजभूमि की भाषा एक थी और इस भाषा को ब्रजभाषा भी वैसे ही कहा जा सकता है जैसे कि राजस्थानी। अवश्य ही जो साहित्यिक ब्रजभाषा बाद में विकसित हुई वह संस्कृत के प्रभाव के कारण इस राजस्थानी भ्रम से काफी दूर थी। इसके कारण कबीर की भाषा आज जितनी राजस्थानी जान पड़ती है उतनी ब्रजभाषा नहीं जान पड़ती। आधुनिक राजस्थानी कबीर की इस भाषा से इतनी मिलती है कि राजस्थानियों को कबीर की भाषा समझने में ब्रजभाषा-भाषियों और पूर्वी हिंदी बोलनेवालों की अपेक्षा बहुत कम कठिनाई पड़ती है। जो कुछ कठिनाई पड़ती है वह इसी कारण कि कबीर की कविता आज से कोई चार साढ़े चार सौ वर्ष पूर्व लिखी गई थी।

इसके अतिरिक्त उस काल में इस माध्यमिक राजस्थानी के उत्तर भारत की साहित्यिक भाषा होने का दूसरा प्रमाण यह है कि जायसी की रचनाओं में अनेक ऐसे शब्द और वाक्यांश पाए जाते हैं जो उस काल की राजस्थानी में मिलते हैं एवं आज भी राजस्थान में समझे जाते हैं लेकिन जो बाद की ब्रजभाषा के लिये, जो अवधी एवं राजस्थानी की मध्यवर्ती भाषा है सर्वथा नवीन हैं।

विषयांतर होने पर भी हम यहाँ पर यह कहने का साहस करते हैं कि कबीर की भाषा राजस्थानी है एवं कबीर को वैसा ही राजस्थानी का कवि कहा जा सकता है जैसा कि ढोलामारू काव्य के कर्ता को।

यह कहा जा सकता है कि कबीर की भाषा वास्तव में ऐसी नहीं थी जैसी कि बाद की हस्तलिखित प्रतियों में मिलती है तथा तुलसी एवं सूर के पदों की भाँति वह भी बाद में राजस्थानी बना ली गई है। परंतु कबीर की हस्तलिखित प्रति, जो नागरीप्रचारिणी सभा को मिली है एवं जिसके आधार पर कबीरग्रंथावली का संपादन आचार्य श्यामसुंदरदास ने किया है कबीर के समय के बहुत बाद की नहीं है। कबीर ग्रंथावली के संपादक तो इसे कबीर के जीवनकाल की ही मानते हैं।

डो मा दू १ (११०-११)

अत: उनमें और कबीर की भाषा में विशेष अंतर होने की संभावना नहीं। फिर यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि यह प्रति काशी में लिखी गई थी। यदि लेखक द्वारा परिवर्तन होता भी तो उलटा होता यानी राजस्थानी पूर्वी हिंदी में परिवर्तित होती न कि पूर्वी हिंदी राजस्थानी में। पद गाने की चीज होते हैं। उनमें परिवर्तन संभव है, जैसा संभवतः हुआ भी है परंतु साखियाँ तो (बहुत थोड़े अपवाद के साथ) पुस्तकों की चीज हैं जो पुस्तकों में ही लिखी रहती हैं। अतः उनमें इतना भीषण ऐसा परिवर्तन हो जाना कि भाषा ठेठ राजस्थानी हो जाय संभव नहीं।

ढोला मारू काव्य की भाषा कबीर की भाषा से बहुत अधिक मिलती है। अनेक शब्द, वाक्यांश और वाक्य तो ज्यों के त्यों मिलते हैं। भावसाम्य तथा भाषासाम्य कहीं कहीं इतना अधिक है कि यह प्रतीत होने लगता है कि अवश्य ही एक का दूसरे पर प्रभाव पड़ा है।

अब नीचे हम कतिपय समानतावाले पद्यों को उद्धृत करके अपने कथन को स्पष्ट करेंगे—

(१) कबीर—अंबर कुंजाँ कुरलियाँ गरजि भरे सब ताल।
जिनिपै[१] गोविंद बीछुटे तिनके कौण हवाल ॥ ३ ॥ १ ॥

ढोला—राति जु सारस कुरलिया गुंजि रहे सब ताल।
जिणकी जोड़ी बीछड़ी तिणका कवण हवाल ॥ ५१ ॥

(२) कबीर—यहु तन जालौं मसि करौं ज्यूं धूँवा जाइ सरग्गि।
मति वै राम दया करै बरसि बुझावै अग्गि ॥ १ ॥ ११ ॥

कबीर—यहु तन जालौं मसि करौं लिखौं राम का नाउँ ॥ १ ॥ १२ ॥

ढोला—यहु तन जारी मसि करूँ, धूँआ जाहि सरग्गि।
मुझ प्रिय बद्दल होइ करि बरसि बुझावइ अग्गि ॥१८१॥

(३) कबीर—कबीर सुपनैं रैनिकै पारस जीयमैं छेक।
जे सोऊँ तो दोइ जणा जे जागूँ तो एक ॥ १२ । ११ ॥

ढोला—सुहिणा तोहि मराविसूँ हियइ दिराऊँ छेक।
जद सोऊँ तद दोइ जण जद जागूँ तद एक ॥५१४॥

---

१ कबीर के उदाहरण आचार्य श्यामसुंदरदास द्वारा संपादित और काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'कबीर ग्रंथावली' के प्रथम संस्करण से लिए गए हैं।

साखियों में पहला अंक अंग को और दूसरा साखी को सूचित करता है। पदों में अंक पदसंख्या का सूचक है। [२] अपरिचित।

दोहा—ग्रीष्म, तोरइ ग्ररवाइ पाव्य मात न जाइ।
हियडा भीतर भी जल दामज्वती जरपाहि ॥१६ ॥

(११) कबीर—ऊँनमि आई बादली, बरसण लगे अंगार ।४।१।२।

दोहा—ऊँनमि आई बदली, दोलउ आयउ चित ।४१।

(१२) कबीर—चुगे चितारे भी चुगे चुगि चुगि चितारे।
जैसे बच्च रहि कुंज मन माया ममतारे ॥ (प) ५ ॥

दोहा—चुगइ, चितारइ भी चुगइ, चुगि चुगि चितारेह।
कुरझी बच्चा मेल्हिकर दूरि थलाँ पाख्ह ॥२ १॥

(१३) कबीर—जे दिन गये भगति बिन ते दिन सालै मोहि।

दोहा—जे दिन मारू बिण गया दई न ग्याँन गिणांव ॥२ ८॥

(१४) कबीर—अकथ कहाणी प्रेम की कह्याँ न को पत्याय ।४१।११।
कबीर—अकथ कहाँणी प्रेम की कछू कही ना जाई।
गूँगा केरी सरकरा बैठे मुसकाई ॥१५१॥

दोहा—अकथ कहाणी प्रेम की किणसूं कही न जाइ।
गूँगा का सुपना भया सुमर सुमर पिछताइ ॥१५६॥

अब कतिपय राजस्थानी शब्दों को देखिए जिनका प्रयोग कबीर और दोला मारू काव्य में हुआ है—

कबीर	ढोला मारू
१ कवल करत पवन है घेरे मार्वै साग्या म जास्सी। ३१७	१ हियडइ भीतरि हूँ कवइ, मावर्इ चाँख म चाँख। १७५
२ अमा भंजन क्या करे कम्पम चोइ म चोइ।१२।५१	२ चय चय साथ म बोलही मारू थकुव गुवोइ। ४८२
३ तावें विधि ऐसी पाइये जिमा होइ म होइ। ५	३ मरम म दाखिव कोइ। ४१७
४ एक ज्योति एक मिली जिमा होइ म होइ। ११ परि	४ दगाँ देर म चूरि। ४९२ म करि पराई वाव। ६१९
५ रहु, रे थल, म भूरि। ३।७४	५ वारि वारि, म वारि, म भूरि। ४१४
६ रहि रहि, दिया म लीजि। ५५।७ टि	६ दह, दह दहव म मारि। ४८ रहि, रहि सुंदरि माठ करि १२१

बाधा, लहुरी लाहे, बाह्या (=चलाना), भाभा, बागे बैसणो, बहोरि बेवड़, विहाया, नाव बभावया बावै (बोता है), वरेस, वीर, वागड़, वीम्ह, विरोलै करणह मावसिया बखही पानी, हंसो, दूँ, साव, हथाळी, साले, कैठ, सहनाँण सम्म, छोरय सैंध, साटे, हैंवळ स्याबस मुख्य, सेती, खसिया हैंगाती, हुवा, हूँवा, होसी हंता, हूँ, हेला इत्यादि इत्यादि।

इनके अतिरिक्त कारकों तथा क्रियाओं के राजस्थानी रूप तो जगह जगह पर भरे पड़े हैं।

अब हम अपने प्रकृत विषय पर आते हैं। ढोलामारू काव्य की भाषा के संबंध में यह ध्यान रखना चाहिए कि वह एक काल की अथवा एक कवि की कृति नहीं है। इसलिये इस काव्य की भाषा भी सर्वत्र एक सी नहीं है। कहीं प्राचीनता है तो कहीं नवीनता। कहीं पुरानी वर्तनी है तो कहीं नवीन। इसी प्रकार गुजराती सिंधी पंजाबी आदि के प्रयोग भी यत्रतत्र पाए जाते हैं। राजस्थानी में भी कहीं मारवाड़ी रूप हैं तो कहीं ढूंढाड़ी, कहीं जैसलमेरी हैं तो कहीं मालवी। खड़ीबोली और ब्रज के रूप भी एक आध जगह पाए जाते हैं।

इस समस्त भाषाभेद का कारण इसकी सर्वप्रियता और निरंतर सुनने-सुनानेवालों की जबान पर रहना ही है। इन लोगों के हाथों में पड़कर बहुत से प्राचीन रूप नवीनता के साँचे में ढल गए। बहुत से प्राचीन दूहे लुप्त हो गए तथा नए दूहे जुड़ गए। पुरानी प्रतियों में इतने दूहे नहीं मिलते जितनी बाद की प्रतियों में; यहाँ तक कि कुछ प्रतियों में तो काव्य एवं उसकी कथा का रूप ही सर्वथा पलट गया है। सैकड़ों नए दूहे दृष्टिगोचर होते हैं और पुराने दूहे बहुत कम। कई दूहों का रूपांतर इतना अधिक हो गया है कि उनको पहचानना कठिन हो जाता है।

कबीर के कुछ दूहे ढोलामारू काव्य में प्रायः ज्यों-के-त्यों मिलते हैं। संभव हो सकता है कि क्या ये दूहे ढोलामारू में कबीर की रचना से लेकर संमिलित कर लिए गए हैं। ऐसा होना असंभव नहीं। हमारी जो सबसे प्राचीन प्रति है वह १५५१ की है जो कबीर के समय के सौ डेढ़ सौ वर्ष बाद की है। उतने समय में कबीर की कविता का इतना प्रसिद्ध हो जाना कि वह जनसाधारण की जिह्वा पर रहने लगे असंभव नहीं (आज तो कबीर के सैकड़ों दूहे लोगों की जबान पर हैं)। उधर हमारे कतिपय मित्रों का कहना है कि ये दूहे ढोलामारू के ही हैं और जनसाधारण में प्रचलित थे।

या तो कबीर उनके द्वारा इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने प्रायः वैसी ही साखियाँ कह डालीं या उनके शिष्यों ने इन दूहों को कबीर की साखियों में मिला दिया। हमें दोनों मत ठीक नहीं जान पड़ते। ये दूहे जिन विषयों पर लिखे गए हैं उन पर केवल कबीर ने ही नहीं किंतु अन्य संत कवियों ने भी रचना की है। उनके भाव और शब्द प्रायः परस्पर मिलते हुए हैं। जिस भाव ने ढोलामारू के इन दूहों के निर्माता को प्रभावित किया उसी भाव ने इन संत महात्माओं को भी। यही साम्य का कारण है।

आगे हम ढोलामारू की भाषा का व्याकरण देते हैं।

(६) ढोला मारूरा दूहा काव्य का व्याकरण

(१) राजस्थानी की वर्णमाला

(क) स्वर

ह्रस्व—अ इ उ ऋ ए̀ ओ̀

दीर्घ—आ ई ऊ ए ओ ऐ[2] ऐ́ औ औ́[3]

(ख) अतिरिक्त स्वर (जो प्रायः कविता में आते हैं) ह्रस्व—ओ̀[4] ऐ̀ औ̀

(ग) व्यंजन

क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	व	व̃[5]
श	ष	स	ह	ळ[6]	ड़	ढ़	ड़	+	:

---

(१) ए̀—ह्रस्व ए (या इ)। ओ̀—ह्रस्व ओ।

(२) ऐ—हिंदी ऐ (जैसे 'पैसा' में)। ऐ́—संस्कृत ऐ (जैसे 'दैव' में)। ऐ̀—ह्रस्व ऐ।

(३) औ—हिंदी औ (जैसे 'और' में)। औ́—संस्कृत औ (जैसे 'कौआ' में)। औ̀—ह्रस्व औ।

(४) ओ̀—ह्रस्व ओ।

(५) व—संस्कृत व और राजस्थानी व̃—राजस्थानी व।

(६) ळ—मूर्धन्य ल। ड़—मराठी ड़। ढ़—मूर्धन्य ढ़।

(४) लिंग

१—ढोलामारू की भाषा में दो लिंग पाए जाते हैं। नपुंसक लिंग के रूप भी एकाध स्थान पर मिलते हैं पर यह पुराना प्रभाव है। वास्तव में नपुंसक लिंग और पुंल्लिंग में कोई अंतर नहीं है। नपुंसक लिंग के रूपों के कुछ उदाहरण—

पूगळ देश दुकाळ थियुँ। २। (थियुँ = थियउ)
ऊ ही लाल पलाउ। ७४। (ऊ = ओ)
पावस मास प्रगट्टियुँ। २५८। (प्रगट्टियुँ = प्रगट्टियउ)
निकस्यूँ जाव न तोहि। १०१। (निकस्यूँ = निकस्यो)
म्हारे मनर न ऊतर्यु। ५६। (ऊतर्यु = ऊतरियउ)

२—स्त्रीलिंग बनाने का मुख्य प्रत्यय ई है—

पुत्र—पुत्री सुंदर—सुंदरी
तरुउ—तरुी हेकलउ—हेकली

३—कहीं कहीं स्त्रीलिंग शब्दों का अंत्य स्वर लुप्त, और दीर्घ हो तो ह्रस्व हो गया है—

सुंदरी—सुंदर, सुंदरि मुग्धा—मुग्ध।
मातुंगी—मातुंगि

(५) बहुवचन प्रत्यय

१—आ—ओकारांत शब्दों के लिये—

राजक
राजकउ } राजका १

परठियउ } परठिया १

२—आँ (अकारांत भी शब्दों के लिये) भेरव—भेरवाँ ८
३—इयाँ (ईकारांत भी शब्दों के लिये) सखी—सखियाँ २
सखिए (संबोधन) २९

(६) विभक्ति और कारक

राजस्थानी में छः विभक्तियाँ और आठ कारक होते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

१—विभक्तियाँ—

सं	विभक्ति	चिह्न	किस कारक में आती है	हिंदी चिह्न
१	पहली	×	अप्रत्यय कर्ता और अप्रत्यय कर्म	×
२	दूसरी	*	सप्रत्यय कर्ता और संबोधन	ने
३	तीसरी	सूँ आदि†	करण और अपादान	से
४	चौथी	नै आदि	सप्रत्यय कर्म और संप्रदान	को
५	पाँचवीं	में, पर आदि	अधिकरण	में, पर
६	छठी	रो (री, रा, रे) आदि‡	संबंध	का (की, के)

२—कारक—

सं	नाम	विभक्ति
१	कर्ता	पहली, दूसरी तीसरी
२	कर्म	पहली चौथी
३	करण	तीसरी
४	संप्रदान	चौथी
५	अपादान	तीसरी
६	अधिकरण	पाँचवीं
७	संबंध	छठी
८	संबोधन	दूसरी§

* इसके प्रयोग आगे विकारी रूप शीर्षक के नीचे देखिए।

† तीसरी से छठी विभक्तियों के चिह्न विकारी रूप के आगे जोड़े जाते हैं। पर कविता में (कभी कभी गद्य में भी) ऐसा नहीं भी होता है और शब्द के सामान्य रूप के आगे ही ये चिह्न जोड़ दिए जाते हैं।

‡ छठी विभक्ति के चिह्नों में हिंदी की भाँति विशेष्य का भेद के अनुसार परिवर्तन होता है। पुंलिंग एकवचन—रो। पुं बहु०—रा। पुं विकारी रूप—रे। स्त्रीलिंग—री।

§ ओकारांत शब्द के संबोधन के एकवचन में ओ का आ हो जाता है।

नोट—उल्लिखित विभक्तियों के अतिरिक्त अन्य विभक्तियाँ भी कभी-कभी आ जाती हैं।

३—विकारी रूप—

शब्द	लिंग	वचन	प्रत्यय	उदाहरण
ओकारांत	पुं	एक	अइ, ऐ ए	ढोलइ घोड़इ
	"	बहु	आँ	घोड़ाँ
अन्य शब्द	पुं	एक	×	
अकारांत	पुं	बहु	आँ	मर्दाँ समदाँ
आकारांत	पुं स्त्री	बहु	आँ आवाँ	
ईकारांत	पुं, स्त्री	बहु	इयाँ याँ	रामकियाँ
उकारांत	पुं स्त्री	बहु	वाँ	मारुवाँ

नोट (१) ढोलामारू में स्त्रीलिंग के विकारी रूप और साधारण रूप में कोई भेद नहीं किया गया है।

(२) राजा वर्ग के शब्दों को छोड़कर बाकी सब आकारांत हिंदी शब्द राजस्थानी में ओकारांत हो जाते हैं।

४—ढोलामारू के विभक्ति चिह्न—

विभक्ति	चिह्न	उदाहरण
पहली	×	
दूसरी	(देखो विकारी रूप	
	ए, इए	सज्जणे सखिए
	इ	मुधमि
तीसरी	एँ इं, इँ स्यउँ	मारवणीएँ, दाइईं, कॉमस्यउँ
	ती थी	मन-ती हम-थी
	हुंती हूंती	
	आँ	नयणाँ, हथाँ

नोट—कविता में (और कभी कभी गद्य में भी) शब्द के सावयव या विकारी रूपों से ही विभक्तियों और कारकों का काम निकाल लिया जाता है और विभक्तिचिह्न लुप्त कर दिए जाते हैं।

(७) सर्वनाम

(१) हूँ = मैं

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
पहली	हूँ = मैं, मुझे	म्हे, हम, हैं = हम
दूसरी	मरॉं = मैं मैंने मुझसे	म्हाँ = हमने
तीसरी	मोसी = मुझसे	
चौथी	मोहि, म्हाँमे म्हानूँ म्हैंने, मुमक=मुझे	
छठी	म्हारउ (म्हारी =मेरा री मेरो (मेरी)=मेरा री मो, मूँ=मम, मेरा री मुमक=मेरी-री-रे	म्हाँरउ (म्हाँरी)=हमारी री म्हाँकउ (म्हाँकी)=हमारा री हमारउ (हमारी)=हमारी री म्हाँबी=हमारी अमीयाइ=हमारे (विकारी) अमीणी=हमारी अम्हाँ=हमारा-री-रे

(२) तैं = तू

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
पहली	तैं=तू, तुझे	थे, तुम = तुम थे, राव, रावि = आप
दूसरी	तईं=तूने, तुझसे, तेरा	थाँ=आपने तुमने
तीसरी	तुमम्ह=तुझसे	
चौथी	तोनइ, तोनूँ, तोइ } =तुझे तोहि=तुझे, तुझमें तुमम्ह=तुझे	
छठी	थारउ (थारी थारा) =तेरा (तेरी तेरे) थाहरइ तोरइ } =तेरे तुम, तुमम=तेरा, री, रे	थाँरउ (थाँरी थाँरा)= आपका इ तुम्हारउ (री रा) तुम्हारा इ थाँकउ (की-का) = आपका इ थाँके=आपके (विकारी)
विकारी रूप	तो = तुझे, तुझसे, तेरा इ, तुझमें	थाँ = आपने आपको, आपसे आपमें, आपका इ

(३) सो सो = वह

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
पहली	सो सउ, स सोइ उ ऊ = वह पुं) सो से ते वा उवा = वह (स्त्री)	ते ते तू सोइ, ते तेइ तिके, वे तवे = वे

रा मा इ ११ (११ -१२)

(५) जो, जको = जो, जौन

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
पहली	जो जठ, ज्यठ, जे, जिके } = जो (पुं) जो, जठ, जे, जिका = जो (स्त्री)	जे जिका, जे = जो
दूसरी	जिण जिणि, जेण, जाँ ज्याँ, ज्याँह, जाँह, जे } = जिसने, जिसको, जिससे, जिसमें, जिसका,	(एकवचन की भाँति)
चौथी		जिणनूं = जिनको
छठी	जास = जिसका जिणरी र जिणको र } = जिसका ज्याँरो र ज्याँहंदर = जिसके (वि रूप) जिए = जिसके	जिन्हाँ-ज्याँ = जिनके जिणको र जाँको र } = जिनका र ज्याँका र

(६) कुण = कौन

विभक्ति	उदाहरण
पहली	कुँण कूण क्वण कोण को का (स्त्री) } = कौन
दूसरी	किण किणि केण कवण किम } किसने किसको किससे = किसमें, किसका र

(७) कोई

विभक्ति	उदाहरण
पहली	कोई, कोइ, को कउ कोइक काइक (की) काइ (की)
दूसरी	काइ, किसी, कहीं = किसी ने किसी से इ

(८) आप = आप (स्वयं)
आपन = अपना हम लोग
आपयउ = अपना
मोहि = स्वयं (मैं)

(९) सार्वनामिक विशेषण

एतउ, केतउ केतउ, तेतउ = इतना कितना कितना, जितना। इसउ एसउ = ऐसा इतना। अइसउ, एसउ = ऐसा। एहउ एहउ = ऐसा। अइहउ = ऐसा। एसउ = ऐसा। अपयउ = अपना। सो = समान। सभउ, सबु सबि तउ सो सब, सब = सब। का, कहा = क्या। कछु = कुछ। किंछे = कुछ। कौंद = क्या कुछ। के = कई।

(८) क्रिया रूप

(१) इस ग्रन्थ की भाषा में निम्नलिखित आठ काल पाए जाते हैं—(१) सामान्य वर्तमान (२) तात्कालिक वर्तमान (३) संभाव्य भविष्यत्, (४) सामान्य भविष्यत्, (५) प्रत्यक्ष विधि (६) परोक्ष विधि (७) सामान्यभूत, (८) हेतु हेतुमद्भूत।

(२) सामान्य वर्तमान के रूप प्रायः संभाव्य भविष्यत् जैसे ही हैं; केवल कहीं वर्तमान कृदंत से बने सामान्य वर्तमान रूप आए हैं वहीं फर्क पड़ता है।

(३) तात्कालिक वर्तमान केवल दो तीन जगह आया है—
(१) मज्ज रहिआइ = मज्ज रहे हैं।
(२) पढि रहउ = पढ़ रहा है।

	एक	इउ इसु, (अथवा प्रथम अन्य पुरुष की भाँति)	हुइस	पाठभिन्नु				देइस
मध्यम	बहु	स्यउ इस्यउ		जागस्यउ जागिस्यउ	चाँपस्यउ चाँपिस्यउ	आवस्यउ आविस्यउ	आइस्यउ	
उत्तम		इसुँ इस्यउँ इसि एस एसि एस्यउँ		जागिसुँ जागिस्यउँ जागिसि जागेस जागेसि जागेस्यउँ	चाँपिसुँ चाँपिस्यउँ चाँपिसि चाँपेस चाँपेसि चाँपेस्यउँ	आविसुँ आविस्यउँ आविसि आवेस आवेसि	आइसुँ आइस्यउँ आइसि आएस आएसि आएस्यउँ	
		स्याँ इस्याँ एस्याँ एस		जागस्याँ जागिस्याँ जागेस्याँ जागेस	चाँपस्याँ चाँपिस्याँ चाँपेस्याँ चाँपेस	आवस्याँ आविस्याँ आवेस्याँ आवेस	आइस्याँ आस्याँ आएस्याँ आएस	

(८) परोक्ष विधि

प्रत्यय	उदाहरण
ए	करे, मारे, मारए
इया	करिया
इयाह	करियाह रहियाह
इयौंह	दालकियौंह
इयठ	करियठ

(९) 'चाहिए' बोधक विधि

प्रत्यय	उदाहरण
इयर	मेलियर हँसियर, चाहयर
इयर	पालियर
ईंयर	
ईयर	होटीयर भीयर पानीयर,
इयइ	

(१२) सामान्य भूत के अनियमित रूप

(१) सीधे संस्कृत या प्राकृत के भूत कृदंत से बने हुए—

उपजवो—ऊपनउ (उत्पन्न)। पहुँचवो—पहुत, पहुँतउ (प्रभूत)। देववो—दीध, दीधउ दीन्ह दीन्हउ (दिण्ण)। लेववो—लिद्ध, लीध लद्ध लीधउ लीन्ह लीन्हउ। पीववो—पीध, पीधउ। लाववो—लद्ध, लाधउ। करवो—किद्ध, कीध किद्धउ, कीधउ, कीन्ह, कीन्हउ, किन किमउ, कीयउ। देखवो—दिट्ठ दीठ, दिट्ठउ, दीठउ। बँधवो—बध्ध। सिद्ध हुववो—सीधो। मरवो—मुवउ, मुई। दाझवो—दग्ध। सूववो—सुती। रोववो—रुँनी।

(२) आवी प्रत्यय लगाकर—

सँभवो—सँभावी। बिकवो—बिकावी। मरवो—मरावी। लागवो—लगावी। उठवो—उठावी। सम (झ) वो—समझावी। कुँमला (य) वो—कुँमलावी।

(३) अन्य—

बूही (बहवो)। गाय (गाववो)। छाँडि (छडवो)। विणाम (सं. विनष्ट)। पयह (सं. प्रविष्ट)।

(१३) हेतुहेतुमद्भूत

लिंग	वचन	प्रत्यय	उदाहरण
पुं	एक	तउ	रहतउ
	बहु	ता	हूँता

लिंग	वचन	प्रत्यय	उदाहरण
स्त्री	एक	ती	जोती, देखती
	बहु	अंती	
		अत	
पुं	एक	अंत	करंत, रहंत
स्त्री	बहु	अंति	रहंति, हुंति बंति, पसरंति

(१४) कर्मवाच्य भाववाच्य

प्रत्यय उदाहरण

(१) ईअ पढीअइ = पढ़ा जाता है।
लीअइ = ली जाती है।

(२) इअ कहिअइ = कहा जाता है।

अन्य प्रत्यय—इज्ज, ईअ इअ (छंडिअइ मेल्लिअइ)।

नोट—कर्मवाच्य और चाहिए अर्थ की विधि के रूप एक से होते हैं। पालीअइ = पाला जाता है पाला जाय और पालना चाहिए (हिं० पालिए)।

(१५) सकर्मक और प्रेरणार्थक बनाना

(क) अकर्मक से सकर्मक

(१) आव प्रत्यय से—जागणो—जगावणो
मिलणो—मिलावणो

(१) आड प्रत्यय से—सीखणो—सीखाडनो

(१२) सामान्य भूत के अनियमित रूप

(१) सीधे संस्कृत या प्राकृत के भूत कृदंत से बने हुए—

उपजबो—ऊपन्नउ (उत्पन्न)। पहुँचबो—पहुत्त पहुँतउ (प्रभूत)। देबो—दीध दीधउ दीन्ह दीन्हउ (दित्त)। लेबो—लिद्ध, लीध, लद्ध लीधउ लीन्ह लीन्हउ। पीबो—पीध पीधउ। लाबो—लद्ध लाधउ। करबो—किध्ध, कीध किध्धउ कीधउ, कीन्ह, कीन्हउ, किय, कियउ कीयउ। देखबो—दिट्ठ दीठ, दिट्ठउ, दीठउ। बैठबो—बध्ध। ठिउ हुवबो—हीण। मरबो—मुअउ, मुई। दाबबो—दद्ध। सुवबो—सुत्ती। रोवबो—रूँनी।

(२) आवी प्रत्यय लगाकर—

सैंचबो—सैंचावी । बिकबो—बिकावी । मरबो—मरावी । लागबो—लगावी । उठबो—उठावी । नम (ब) बो—नमावी । कुँभलाँ (ब) बो—कुँभलाँवी ।

(३) अन्य—

मूरी (मरबो)। माम (मामबो)। काढ़ि (कढ़बो)। विगड़ (सं विनष्ट)। पयठ (सं प्रविष्ट)।

(१३) हेतुहेतुमद्भूत

लिंग	वचन	प्रत्यय	उदाहरण
पुं	एक	तउ	रहतउ
	बहु	ता	हुँता

स्त्री	अंती	बिलसंती
	अंदी	चाइंदी
	अती	कहती, देखती
	अत	
	अंत	

(२) भूत कृदंत[1]—

पुं एक	अउ	लागउ बूठउ बिलसउ
	यउ	आयउ,
	इयउ	कूटियउ ऊमाहियउ
पुं बहु	आ	बिलसया अहिठा, तुध
	या	पिया
	इया	भरिया
स्त्री एक	ई	बिआपी माँगीतांगी
बहु	इयाँ	छाकुड़ियाँ उपराठियाँ

(३) कृदंत क्रियाविशेषण—

प्रत्यय—याँ, इयाँ— कह्याँ = कहने पर, परस्या, किन्याँ कुडियाँ

ए कहे = कहने से

अंतइ बरसंतइ = बरसते हुए, आवंतइ ऊगंतइ।

(४) तुमर्थ प्रत्यय—

अण—बोलण (= बोलने को) मिलण

इवा / इव } —कहिवा (= कहने को।

(५) पूर्वकालिक क्रिया—

इ—जागि चढि आवि आइ देइ, लइ दइ, होय, हुइ

ई—कंपी, अवकंपी, पूछी करी

---

[1] भूत कृदंत और सामान्य भूत के प्रत्यय एक से होते हैं। अनियमित रूपों के लिये ऊपर सामान्य भूत के रूप देखो।

(३) धातु के उपांत्य स्वर में परिवर्तन—चलनो—चालनो
उतरणो—उतारणो
उखरणो—उखारणो
पटणो—पाटणो
मिलनो—मेलनो
(४) धातु बदलकर— टूटणो—तोड़नो
(५) बिना परिवर्तन के— भरणो—भरणो
(६) अन्य रूप— भागणो—भागवणो
रहणो—राखवणो

(ख) प्रेरणार्थक

(१) आव प्रत्यय से—कटणो—कटावणो।
मारणो—मरावणो
आवनो—अ-आवावणो
(२) आड़ प्रत्यय से—बाँधणो—बँधाड़नो
काढ़णो—कढ़ाड़नो
(३) धातु के स्वर में परिवर्तन—पीवणो—पावणो।
(४) अन्य रूप—देवणो—दिरावणो।

(ग) प्रत्यय

(१) वर्तमान कृदंत[1]—

पुं एक	अतउ	पढ़तउ
	अंतउ अंदउ	खावंतउ चलंतउ उबंदउ
	अत	बैठत
	अंत	
	एत	पूछेतो
पुं बहु	अता	मनगमता वाजता
	अतां	नीपजतांइ
	अंता	ऊसारंता भमंता
	अत	
	अंत	

१ वर्तमान कृदंत और हेतुहेतुमद्भूत के प्रत्यय एक से होते हैं।

ए—लगे

अ—कर

इन प्रत्ययों के आगे के, कर, करि, गइ, नई (= कर, करके) प्रत्यय भी आगे जोड़ दिए जाते हैं।

(६) वाला अर्थ के प्रत्यय—

अय—मरय पच्चालय, रंजय उस्सरय

अयउ—रक्खया (मदु)

इस प्रत्यय के आगे कहीं कहीं 'हार' प्रत्यय जोड़ दिया गया है जैसे—मणोक्खहार।

(७) कुछ अन्य कृदंत प्रत्यय—

१—अय = ना

हल—हल्लय (चलाना)

चल—चलय (चलना जाना)

२—आमणउ = आवना

सोह—सुहामणउ

भय—भयामणउ

३—आवउ = आवा

सोह—सुहावउ

४—आलू = आलु

भंभो—भंभालू

५—हार = हार वाला

मुँच्यो—मुँच्याहार

बन्नो—बन्नणहार

(८) कुछ तद्धित प्रत्यय

१—डउ (डी)—स्वार्थ में और अनादर तथा अल्पतासूचक

संदेसउ—संदेसडउ

गोरी—गोरडी

गाम—गामडउ

कंठ—कंठडी

२—लउ—डउ की भाँति

दीहउ—दीहलउ

(३) समुच्चयबोधक

अर = और। ने नइ, नईं, अनइ = और। च = और। मावइँ = चाहे। रूहा = चाहे। नवि = नहीं तो। किनों = या। अह = या तो, या। कइ = या तो, या। क = कि, या। कि = कि, या।

(४) विस्मयादिबोधक

रे = रे, अरे। इ = हे। हइ हइ = हे हे अरे अरे, हाय हाय। हउ हउ = हो, हो अरे अरे, हाय हाय। हय हय = हे हे, हाय हाय। रह रह = चुप चुप। परिहाँ = पर हाँ एक अर्थहीन अव्यय जो चांद्रायणा छंद के चौथे चरण के पूर्व जोड़ दिया जाता है।

राति दिवसि = रात दिन। निच, निचु, नित = नित्य। पाछइ, पाछे = पीछे बाद में। वलि, वळे, भी फिरि = फिर। पुणोवि = पुनरपि, फिर भी।

इम इमि एम, यूँ = ऐसे, यों। जिम जिमि, जेम = जैसे। किउँ कउँ कुं क्यूँ कूँ = क्यों। किम, किमि केम = कैसे। किउँ, कयउँ, क्यूँ = क्यों। किउँकरि = क्योंकर, कैसे। जं = ताकि। जेण, जेणि = जिससे, जिस कारण से। जेण जेणि = जिसलिये। तेण, तेणि तिणि = इसलिये। तिम = त्यों, त्योंही। जिमही = जिसी तरह।

जे, जै, जइ जो, जउ जऊ जब = यदि, जो। तो तउ, तु, तूँ, त = तो। तोइ = तो भी। पिण = भी। ही, हीं, हि हूँ, ह, ह, ई, य = ही। न, नहि, नहिं, नही, नहीं, नाही, नवि, नय ना, नि, ण, म = न, नहीं। म, मा मत, मति जिन = मत। मातही, मतिहि, मति = कहीं न।

अधिक, बहु = बहुत। जाँण, जाँणि, जाँणे जाँणक = मानो। नहिं = मानो। किर = किस निश्चय ही मानो। भीठ = कठिनता से। मटक = तुरंत। झवकि = तड़ता। साचोई = सचमुच। अपूठा = वापिस। भठी = मजबूती से। ओळगा = अलग, दूर, अभाव में। भला = भले ही, चाहे। अठम्भार = अचानक। लोळी लोळी = धीरे धीरे (?)।

य त, क, ह = जोर देने के लिये या पादपूर्त्यर्थ प्रयुक्त होनेवाले अर्थहीन अव्यय।

(२) संबंधबोधक

माँहि माँह माँहि माँही, मही मंझ मंझि, मँझार, मँझारि = भीतर, में। कन्हा = पास, प्रति, लिये को से में का। सनमुख = सामने। सध्य, साथि, साथइ = साथ। विन, विना विण = बिना। अठम = पास। ऊपर, ऊपरइ = ऊपर। आगलि = आगे। अंतरे = भीतर, में। ओले = आड़ में। कज, काजि = लिये। कन्हे, कनइ कन्हाँ = पास प्रति, से। कारणइ = कारण लिये। ढूकड़ा = पास। हिव = ओर। नेड़े = पास। परइ = परे। पछइ = पीछे। पाखइ = पास। परि = भाँति। भँति = भाँति। मत = भाँति। भर भरि = भर। लग, लगि, लगइ = तक। विच विचि = बीच। पाँछइ = पीछे। साम्हा = सामने। तारइ = तरफ। सिरि = पर। लियइ = लिये, कारण से।

पुरसंबंध के बाकी दूहे (छ) प्रति में पाए जाते हैं पर वे सब लोगों को याद नहीं थे। कुशललाभ को भी केवल वे ही दूहे मिले जो इस (क) प्रति में हैं।

२—(ख) प्रति—यह प्रति (क) प्रति से बहुत कुछ मिलती है पर कहीं कहीं अंतर है—कुछ दूहे न्यूनाधिक हैं। इसका लिपिकाल सं० १७५५ के लगभग है। अक्षर बहुत सुंदर और पाठ शुद्ध है।

३—(ग) प्रति—इसका लिपिकाल सं० १७५२ है। इसका पाठ साधारणतया शुद्ध है। कथानक में यह अधिकांश में जोधपुरीय कथानक का अनुसरण करती है। पाठ भी जोधपुर की प्रतियों से मिलता है। पर जोधपुरीय प्रतियों की भाँति यह दूहा-चौपाइयों में नहीं किंतु केवल दूहों में है।

४—(घ) प्रति—इसका लिपिकाल सं० १८१८ है। इसका पाठ बहुत भ्रष्ट है। यह साधारणतः (ख) प्रति का अनुसरण करती है।

५—(च) प्रति—इसकी वरतनी आधुनिक है। इसका लिपिकाल डाक्टर टैसीटरी ने संवत् १७०१ से १७०२ के बीच में निश्चित किया है।

उक्त सब प्रतियाँ बीकानेर राज्य के राजकीय पुस्तकालय में वर्तमान हैं।

६—(छ) प्रति—यह विशेषतः (क) से मिलती है यद्यपि दूहे न्यूनाधिक हैं। इसका लिपिकाल लिखा नहीं है। पाठ शुद्ध है। इसकी विशेषता यह है कि इसके प्रारंभ में रूपांतर नं० २ की भाँति पुरसंबंध या प्रस्तावना भी है जो असली कथाभाग से बिलकुल अलग जान पड़ती है। यह पुरसंबंध रूपांतर नं० २ की प्रतियों की भाँति दूहा चौपाइयों में नहीं किंतु केवल दूहों में है। जान पड़ता है कि कुशललाभ को ये दूहे पूरे नहीं मिल सके तभी उसने कथासूत्र मिलाने के लिये चौपाइयाँ जोड़ीं। इस पुरसंबंध में कुल १०८ दूहे हैं परंतु बीच का एक पृष्ठ नष्ट हो जाने से नं० ५१ से नं० ७६ तक के दूहे नष्ट हो गए हैं। पूरे दूहों का यह पुरसंबंध और किसी प्रति में नहीं मिलता।

यह प्रति हमें बीकानेर निवासी बाबू जयपालसिंह से प्राप्त हुई।

७—(ज) प्रति—यह केवल दूहों में है परंतु इसका कथानक मुख्यतया रूपांतर नंबर २ से मिलता है। इसका प्रारंभ भी ग्यारह से नहीं होता। आरंभ में पुरसंबंध है जो केवल दूहों में है परंतु जो (छ) के पुरसंबंध से बहुत कम समानता रखता है। इसमें मध्य और बाद के जोड़े हुए दूहे बहुत से हैं। इसका लिपिकाल संवत् १७०१ है।

वर्तमान संस्करण

इस काव्य का वर्तमान संस्करण निम्नलिखित १७ प्रतियों के आधार पर तैयार किया गया है।

जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं इस काव्य के चार रूपांतर मिलते हैं जिनमें नंबर १ और नंबर २ महत्त्वपूर्ण हैं। रूपांतर नंबर १ केवल दूहों में है और उसकी प्रतियाँ हमें बीकानेर राज्य में मिलीं। नंबर २ में कुशललाभ की चौपाइयाँ भी हैं। इसकी प्रतियाँ हमें विशेषतः जोधपुर से प्राप्त हुईं।

एकाध स्थान को छोड़कर हमने कथानक का क्रम बीकानेरीय क्रम के अनुसार रखा है। वही हमें युक्तियुक्त तथा प्राचीन ज्ञात हुआ।

प्रतियों का विवरण नीचे दिया जाता है—

(१) रूपांतर नंबर १

१—(क) प्रति—यह प्रति सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि रूपांतर नंबर १ की यह सबसे प्राचीन प्रति है। हमारे संस्करण का मुख्य आधार यही प्रति है। इसका लिपिकाल ठीक निश्चित नहीं पर जिस हस्तलिखित ग्रंथ में यह पाई गई है उसमें इसके पहले और बाद में लिखे हुए ग्रंथों का समय संवत् १७१ के आसपास का है। अतः इसका समय भी संवत् १७२ से १७१ के बीच का है। प्रति विशेष प्राचीन न होने पर भी इसमें पुराना केवल दूहों का रूप पूरा सुरक्षित है यही इसका महत्त्व है। इसकी वर्तनी पुराने ढंग की नहीं किंतु उत्तरकालीन राजस्थानी की है। इसका पाठ बहुत शुद्ध है। इसमें कुल दूहों की संख्या ११५ है।

इसके विषय में यह ध्यान देने योग्य है कि इसमें पुरसंबंध या प्रस्तावना के वे दूहे जो रूपांतर नं० २ में मिलते हैं आरंभ में दिए हुए हैं। बीच में चौपाइयाँ न होने से उनका कथासूत्र बराबर नहीं मिलता।

असली कथा रूपांतर नं० १ की भाँति गाहा से ही आरंभ होती है। इसलिये ये पुरसंबंधवाले दूहे असंगत और अस्थानस्थित out of place जान पड़ते हैं।

(४) रूपांतर नंबर ४

१७—(म) प्रति—यह प्रति गुजराती में आनंद काव्य महोदधि भाग ७ नामक पुस्तक में छप चुकी है। इसका लिपिकाल सं० १८ १ है। पाठ बहुत अशुद्ध है।

विशेष—इस संस्करण में केवल (क ख ग घ ब फ) प्रतियों के ही पूरे पाठांतर लिए गए हैं। अन्य प्रतियों के विशेष महत्त्वपूर्ण न होने से उनके केवल महत्त्वपूर्ण पाठांतर ही लिए गए हैं। (थ) प्रति के—महत्त्वपूर्ण होने पर भी, देर से मिलने के कारण—सब पाठ नहीं लिए जा सके।

इस संस्करण की वर्तनी हमने (क) प्रति के अनुसार सर्वत्र प्राचीन रखी है। जो पूरे प्राचीन वर्तनी में नहीं मिले उनकी वर्तनी भी प्राचीन कर दी गई है। छंद की मात्राएँ पूरी रखने के लिये आवश्यकतानुसार दीर्घ स्वर को ह्रस्व कर दिया गया है (उस समय भी वह बोला ह्रस्व ही जाता था पर लेखक लोग प्रमाद एवं प्राचीनता प्रेम के कारण दीर्घ ही लिखते रहे)। ष अक्षर को उच्चारण के अनुसार सर्वत्र ख कर दिया गया है। पाठांतरों में ये परिवर्तन नहीं किए गए हैं।

नोट—यह संस्करण सब छप जाने पर और प्रस्तावना लिख जाने के बाद रूपांतर नं० १ की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रति प्राप्त हुई। अब तक प्राप्त प्रतियों में यह सबसे प्राचीन है। इसका लिपिकाल सं० १६२१ है। खेद है कि हम इस प्रति का उपयोग नहीं कर सके। आगामी संस्करण में इससे काम उठाया जायगा और परिशिष्ट में इसे उद्धृत कर दिया जायगा। [यह प्रति (ख) और (ग) प्रतियों से बहुत अधिक समानता रखती है और पाठ में बहुत ही कम स्थानों पर परिकिंचित् भेद पाया जाता है।]

यह प्रति नागौर (मारवाड़) के एक श्वेतांबर जैन उपाश्रय की निजी ग्रंथशाला में वर्तमान है।

(२) रूपांतर नंबर २

८—(च) प्रति प्राप्त प्रतियों में यह सबसे प्राचीन है। इसका लिपिकाल संवत् १६६६ है। इसका पाठ बहुत शुद्ध और वर्तनी प्राचीन तथा उत्तरकालीन दोनों प्रकार की है, फिर भी प्राचीन वर्तनी की ओर अधिक झुकाव है। इसमें दूहे कम नहीं हैं। बीच बीच में कथासूत्र अनवच्छिन्न रखने के लिये कुशललाभ की चौपाइयाँ हैं। जो दूहे हमने अन्य प्रतियों से लिए उनकी वर्तनी हमने इसी के अनुरूप कर दी है। इसके बीच के २५ से ३ तक के ६ पृष्ठ नष्ट हो गए हैं।

यह प्रति जोधपुर की सुमेर-पब्लिक-लाइब्रेरी में वर्तमान है।

९—(छ) प्रति—यह (च) से मिलती हुई है पर नए दूहे भी बहुत से हैं। इसका पाठ शुद्ध है। इसका लिपिकाल सं० १७८१ है।

यह प्रति जोधपुर के पुस्तकप्रकाश नामक राजकीय पुस्तकालय में वर्तमान है।

१०—(ज) प्रति—यह (च) से मिलती जुलती है। इसका पाठ शुद्ध है। लिपिकाल नहीं दिया गया है पर वर्तनी आदि को देखते हुए सं० १० के आसपास की होगी।

यह प्रति बीकानेर के राँगड़ी नामक मुहल्ले के बड़े जैन उपाश्रय के महिमाभक्ति भंडार में वर्तमान है।

इस रूपांतर की अन्य प्रतियाँ निम्नलिखित हैं—

११—(झ) प्रति—यह (च) से नकल की गई जान पड़ती है पर इसका पाठ सदोष है। संपादन के लिये यह किसी काम की नहीं।

१२—(ट) प्रति—यह बहुत आधुनिक है।

१३—(ठ) प्रति
१४—(ड) प्रति } —ये दोनों भी बहुत आधुनिक हैं। इनमें सैकड़ों दूहे नए हैं।

(३) रूपांतर नंबर ३

१५—(ढ) प्रति—यह प्रति अधूरी है। इसका आरंभ का कुछ भाग नष्ट हो गया है।

१६—(ण) प्रति—यह भी विशेष प्राचीन नहीं।

(१८) रामनारायण दूगड़ और ओझा—मुंहणोत नैणसी की ख्यात, भाग १—२।

(१९) महाराज जगमालसिंहजी, ठाकुर रामसिंह और सूर्यकरण पारीक—वेलि क्रिसन रुकमणीरी राठौड़राज प्रिथीराजरी कही (हिंदुस्तानी एकेडेमी प्रयाग)।

(२) नरोत्तमदास स्वामी—राजस्थान रा दूहा (पिलाणी राजस्थानी सीरीज)।

21 F J Child—English & Scottish Ballads.

22 Sargent & Kittredge—F J Child's English & Scottish Ballads, Students' Cambridge Edition (Harrap)

23. T F Hendersom—The Ballad in Literature (Cambridge Manual Series)

24. L Abercrombie—Essay on Epic (Art & Craft Series)

25 F Sidgwick—Essay on Ballad (Art & Craft Series)

26 Article on Epic in Encyclopaedia Britannica.

27 Article on Ballad in Encyclopaedia Britannica.

28 Dr L. P Tessitori—Progress Reports on the Work done in connection with the Bardic & Historical Survey of Rajputana for the years 1914 to 1918 (Published by the Asiatic Society of Bengal.)

पत्रिकाएँ

(१) सुधा।

(२) वीणा भाग १ अंक ४ (पौष १९८४)।

(३) नागरीप्रचारिणी पत्रिका भाग २ में श्री चंद्रधर गुलेरी का पुरानी हिंदी नामक निबंध।

(४) जैन-साहित्य-संशोधक, भाग २।

(५) वाक् सौरभ (गुजराती)—संवत् १९७१।

(६) साहित्य (गुजराती)—सन् १९१४-१९१५।

(७) लीडर (अँगरेजी)—५ एप्रिल सन् १९३१ का अंक।

(८) मॉडर्न रिव्यू (अँगरेजी)—एप्रिल सन् १९३१ का अंक।

(९) हिंदुस्तानी, भाग ४ अंक (अक्टूबर १९१४), में नरोत्तमदास स्वामी द्वारा लिखित डिंगळ और काव्यदोष नामक निबंध।

पुस्तिकायें, विवरण इत्यादि

(१) विश्वेश्वरनाथ रेउ—ढोला मारवणी की कथा का और उसके आधार पर बने चित्रों का खुलासा (जोधपुर)।

(२) रामकर्ण आसोपा—एकादश हिंदी साहित्य संमेलन का कार्य विवरण, भाग १ में डिंगल कविता नामक निबंध।

(३) मुंशिफ देवीप्रसाद—गोविंद गिल्लाभाई के साथ ढोला मारवणी की कथा के संबंध में पत्रव्यवहार (हस्तलिखित)।

मूल पाठ

(हिंदी अनुवाद और पाठांतर सहित)

मूल पाठ

(हिंदी अनुवाद और पाठांतर सहित)

ढोलामारूरा दूहा

(कथारंभ)

गाहा

पूगळि पिंगळ राऊ, नळ राजा नरवरे नयरे।
अदिठा दूरिठ्ठा ये सगाई दईव संजोगे ॥१॥

दूहा

पूगल देस दुकाळथियुं किणहीं काळ विसेसि।
पिंगळ ऊचाळउ कियउ गउ नरवरपइ देसि ॥२॥
नळराजा आदर दियउ जउ राजवियाँ जोग।
देस वास सवि रावळा, अन घोड़ा नइ लोग ॥३॥

१—पूगल नगर में पिंगल और नरवर नगर में नल राजा (राज्य करते) थे। (यद्यपि) एक ने दूसरे को नहीं देखा था और दूर दूर रहते थे (फिर भी) दैवयोग से (उनमें) संबंध हुआ।

२—पूगल देश में किसी समय विशेष में अकाल पड़ा। (इसलिये बाध्य होकर) राजा पिंगल ने नरवर के राजा नल के देश को प्रयाण किया।

३—राजा नल ने (उनका) ऐसा आदर किया जो राजाओं के योग्य हो और उनके देश में निवास (के लिये) महल घोड़े और नौकर चाकर आदि) सब दिए।

१—पूगळ (क. ख ग)। नर (ख)। नरवरे (ख) नरवरे (ह)। दिट्ठे (ग) दूरिय (ख ह) दूरठाय (क)। सगाई। दइव। दैव (ग) दैइ (ह)। संयोगे (ख)।

२—पूगल (ह)। थयो। किणही (ग)। विसेषि (ख)। ऊचाळउ (क. ह)। कीधा (क ह.)। गउ (ग)। गैं (ह)। देस।

३—जिणु राजाकुवार राजवियाँ (ह)। सहि (क. ख ह)। अनु (ख)। घो। घे (ख)। दैवजोग (ख)। लोग (ग. ख)।

(ढोला-मारू-विवाह)

नरवर नळराजा तणउ, ढोलउ कुँवर अनूप।
रांणि राउ पिंगळ तणी रीझी देखे रूप॥४॥
पिंगळ पुत्री पदमिणी, मारवणी तिणि नाँम।
जोड़ी जोइ विचारियउ, धन्न विधाता कांम॥५॥
सारीखी जोड़ी जुड़ी आ नारी यउ नाह।
रांणी राजासूं कहइ कीजइ अब वीवाह॥६॥
राजा रांणीनूं कहइ बात विचारउ जोइ।
आव विखइ यौं दीकरी, हाँसउ हसिसी लोइ॥७॥

४—नरवर के राजा नल के ढोला नामक अनुपम कुमार था। राजा पिंगल की रानी उसके रूप को देखकर रीझ गई।

५—पिंगल के एक पद्मिनी कन्या थी। मारवणी उसका नाम था। (उसकी और ढोला का अनुरूप) जोड़ी देखकर (रानी ने) विचारा कि विधाता की यह रचना धन्य है।

६—रानी राजा से कहती है—यह अनुरूप जोड़ी बनी है—यह वधू और यह वर। अब विवाह कीजिए।

७—(उत्तर में) राजा रानी से कहता है—देखभालकर यह बात विचारो। आव विपत्ति के समय में (यदि) कन्या को दें तो लोग हँसी करेंगे।

४—नरवर (ग घ)। तणौ (क)। ढोलौ (ग) ढोलो (घ)। कुमर (क, ग) कुमर (ख)। रांणी (क ख ग घ)। राव (ख, ग) राव (ङ) राणी पिंगल तणरी (ङ)। देखै रीझी (क) सुदेखे रीझी (ख) रीझै देखी (ग) देखै रीझी।

५—पुत्रि (क, घ)। पदमणी (घ) मारवणि (ङ)। तिण (ग, घ)। तिण (ग) तिणै (ङ)। धन मारवणी (ङ)। देखनजोइ (ङ)। विचारियौ (क) विचारियो (घ) विचार कर (ङ)। धन्य (ख) धन (ग घ)।

६—अनूपम (क, ख, ग, ङ) पुह (ग)। वीवाह (क, घ) वैसांथि (घ)।

७—रांणी राजा (ग)। सु (क, ख ग, घ ङ) सूं (ग)। विचारी (क, घ ङ) विचारै (ख)। जोय (ङ)। हसौ (घ)। हससी (ग)। लोक (घ)।

आंब तजइ नहिं कोइलाँ, सरवर सालूराह ।
राजा हिवइ म पाँगुळउ, आ धण पात अवरांह ॥८॥
ज्यूँ थे जाणउ त्यूँ करउ, राजा आयुस दीध ।
राँणी राजान् कहइ ओ म्हाँ नाळेर कीध ॥९॥
ढोलउ मारू परणिया वरतउ हुवउ उछाह ।
आ पूगळरी पदमिणी, अउ नरवररउ नाह ॥१०॥
पिंगळ पूगळ आविया, देसे वरतउ सुगाळ ।
तेयि न राखी सासरइ जाणे स मारू बाळ ॥११॥

८—(रानी कहती है—) कोयलें आम वृक्ष को नहीं छोड़तीं और मेंढक सरोवर को नहीं छोड़ते। हे राजन्, अब पागलपन मत करो यह कन्या दूसरों को दो।

९—राजा ने आज्ञा दे दी कि जैसा तुम (उचित) समझो वैसा करो। (इस पर) रानी राजा से कहती है कि हमने यह संबंध किया।

१०—ढोला और मारू का परिणय हुआ। विवाह उत्सव धूमधाम से हुआ (या, दो श्रेष्ठ कुलों में संबंध हुआ)—यह पूगल की पद्मिनी है तो वह नरवर का अधिपति।

११—राजा पिंगल पूगल को लौट आया। देश में सुभिक्ष हुआ। अभी तक मारवणी बालिका ही है (यह समझकर) उसे ससुराल में नहीं रखा।

८—कोइली (क ठ) कायली (ख)। सारूराह (ख)। मत राजा थे पावरो (ख) मत राजा थे पंवरो (ग) मत राजा थे पंवरे (घ) थे राजा मत पावरो (घ) धन (ग) ऐ (ख) यौ (ठ)।

९—ज्यो (ख)। आदेश (क) आदेस (ग) आदेस (घ)। दिव (ग)। कीयो (क. ख ग घ)। राजानूँ रानी (घ) नाळो (ख)। किय (ग)।

१०—हूवो (ख) हुओ (ग)। पिण्ड (क)। परमणी (ग घ)। धोळ्यल (घ)।

११—पूंगळपूगळ (ठ)। आविया (क. ख)। आविय (ख ग)। हूमी (क) हूओ (ग) हुवो (घ)। सुकाळ (क. ख घ)। तेह (क) तैयें (घ) तिण (घ)। ऐसे (क. ख) दियो (घ)जाणे स।

ढो मा दू १६ (११ ०—१२)

अम्हाँ मन अचरिज भयउ, सखियाँ आखइ एम ।
तइँ अणदिट्ठा सज्जणाँ, किवँ करि लग्गा पेम ॥२०॥
जे जीवण तिम्हाँ-तणाँ तन ही माँहि वसंत ।
धारइ दूध पयोहरे बालक किम कार्डत ॥२१॥
ससनेही समदाँ परइ वसत हिया मंझार ।
कुसनेही घर आँगणइ जाँण समंदाँ पार ॥२२॥
सखिए सज्जण आपणा, जइ अणदिट्ठा होइ ।
खिण खिण अंतर संभरइ, नही विसारइ सोइ ॥२३॥
मारुनूँ आखइ सखी यह हमारी सुज्झ ।
साल्हकुँवर सुहिणइ मिल्यउ, सुंदरि, सउ वर तुज्झ ॥२४॥

२०—सखियाँ इस प्रकार कहती हैं—हमारे मन में आश्चर्य हुआ कि तूने प्रियतम को नहीं देखा (फिर) तेरा प्रेम उनसे क्योंकर हुआ ।

२१—मारवणी उत्तर देती है—जो जिनका जीवन है वह उनके तन में ही बसता है । पयोधरों में से दूध की धाराओं को (जो उसका जीवन है) बालक किस प्रकार निकाल लेता है ?

२२—सच्चा प्रेमी समुद्र पार होने पर भी हृदय में बसता है और कम स्नेही घर के आँगन में होते हुए भी मानो समुद्र के पार है ।

२३—हे सखियो प्यारा साजन यद्यपि नहीं देखा हुआ है तो भी उसे मेरा हृदय क्षण क्षण में स्मरण करता है और उसे नहीं भूलता है ।

२४—मारवणी से सखियाँ कहती हैं कि हमारी समझ में तो यह आता है कि साल्हकुमार तुझे स्वप्न में मिला है । हे सुंदरी वह तुम्हारा पति है ।

२०—अम्हाँ (क. ग) अम्हाँ (ग) । अचिरज (घ) । हुओ (ख) । ते (क. घ) तै (ग) । सजणाँ (ग) सज्जणा (घ) । क्युँ (क ग. घ) । कर (घ) । लगा (ग) लगी (घ) । प्रेम (ग) ।

२१—जीवन (क. ख ग) । जेन्हाँ (घ) । ते तन=तन ही (ख ग) । मांह (घ) । वसंति (ख) । पयोधरे (ख) पयोहराँ (ग) । केम (क. ख) । काढंति (ख) ।

२२—सखी (ख) सखी हे (ग)=सखिए । सजण (ख ग. घ) । आपणा (ख घ) जो (घ) । अदिठा (ख) अणदीठी (घ) । होइ=होय (ख) । खणखणि (घ) । संभरई (ग) । नह (घ) । विसारई (क. ग. घ) विसारै (ख) सोइ (क. ख घ) ।

२४—यूं (घ) । अम्हीणी (घ) । सुझ (ख घ) । साल्ह (घ) । कुमर (ग) । सुपन (ख घ) । सुंदर (क. घ) । तुझ (क. ख. घ) ।

सखीवयण सुंदरि सुणया, ऊठी मयन की झाळ।
सुंदरिनूँ सज्जण विरह ऊपन्नउ ततकाळ॥२५॥
हे सखिए परदेस प्री, तनइ न जावइ ताप।
बाबहियउ आसाढ जिम विरहणि करइ विलाप॥२६॥
बाबहियउ नइ विरहणी, दुहुवाँ एक सहाव।
जब ही बरसइ घण घणउ, तबही कहइ प्रियाव॥२७॥
बाबहिया, चढि गउखसिरि चढि ऊँचेरी भीत।
मत ही साहिब बाहुडइ करउ गुण आवइ चीत॥२८॥
बाबहिया, चढि डूगरे चढि ऊँचेरी पाल।
मत ही साहिब बाहुडइ, सुणि मेहाँरी गाज॥२९॥

२५—सुंदरी (मारवणी) ने सखियों के वचन सुने तो (हृदय में) काम की ज्वाला उठ खड़ी हुई और उस सुंदरी को तत्काल प्रियतम का विरह उत्पन्न हुआ।

२६—हे सखियो प्यारा परदेश में है शरीर का ताप नहीं जाता। जैसे पपीहा आषाढ़ में विलाप करता है वैसे ही विरहिणी विलाप करती है।

२७—पपीहा और विरहिणी दोनों ही का एक स्वभाव है। जब जब मेघ बरसता है तभी वे दोनों 'पी आव' 'पी आव' पुकारते हैं।

२८—हे पपीहे गोखे पर चढ़ या ऊँची भीत पर चढ़ (और टेर लगा) प्रियतम को स्यात् कोई गुण (बात) याद आवे और आते हुए वे कहीं लौट न जायँ।

२९—हे पपीहे, पहाड़ी पर चढ़ या सरोवर की ऊँची पाल पर चढ़ (और बोल) जिससे मेघों की गर्जना सुनकर प्रियतम कहीं लौट न जायँ।

२५—सुंदर (ख)। नू (क ख)=नूँ।

२६—हे सखी (क) सखी हे (ख)=हे सखिए। जीव (क) बाबीहो (ख)। ज्यूँ (ख)।

२७—बाबहिये (क) बाबीहे (ख) बाबीहो (ग)। मैं (ग) विरहिणी (क ग)। दोनूँ (क) दुवाँ हुइ (ग) दोन्युँ (ख) समाव (क, ग) सुभाव (ग)। जब (क ग)। तबजनबही (क ख)। पुकारै (क, ख)। पीव (क, ख) पी आव (ख) पीव आव (ग)।

२८—बाबीहा (क, ख)। चढ (ग)। ऐगर्तौ (ग)=गउख सिरि। गोख (ख)। सिर (क ख-ग)। चढ (ग)। मतिजनमत ही (ग)। मति ही (ख ग)।

२९—बाबीहा (क ख)। डूँगरौं चढि (क)। डूँगरौं (ख) चढ (ग)। ऊचेरी (ग)। सुणा (ग)। की (क ख) कोइ (ग)=री।

बाबहिया रतपंखिया बोलइ मधुरी बाँणि।
कइ सर्वसुह मेल्हि करि, परदेसी प्रिव आँणि ॥२४॥
बाबहिया प्रिव प्रिव न कहि, प्रिव को नाम म लेह।
काइक जागइ बिरहणी प्रीव कहाँ सिर देह ॥२५॥
बाबहिया डूँगर-वहण छाँडि हमारउ गाँम।
सारी रात पुकारियउ लइ लइ प्रिउकउ नाँम ॥२६॥
[चहुँ दिस दामिनि सघन घन पीउ तज्यो तिण बार।
मारू मर चातग भए, पिउ पिउ करत पुकार ॥ २७ ॥
पावस आयउ साहिबा, बोलण लागा मोर।
कंथा तूँ घरि आव मति जोबन कीयउ जोर ॥२८॥

२४—हे लाल पंखोंवाले पपीहे तू मीठी वाणी बोलता है। तू या तो बोलना बंद कर दे या मेरे परदेशी प्रियतम को यहाँ ला दे।

२५—हे पपीहे तू पिउ 'पिउ' न कह पिउ का नाम मत ले। कोई विरहिणी जाग रही होगी। वह तेरे 'पिउ' कहने से माथा देगी।

२६—पर्वत (जैसे कठोरहृदय) में भी कंपन उत्पन्न करनेवाले पपीहे, हमारा गाँव छोड़ दे। तू रातभर प्रियतम का नाम ले लेकर पुकारता रहा है (क्या तो भी नहीं अघाया!)।

२७—चारों दिशाओं में बादलों में घनी बिजली (चमक रही) है। ऐसे समय में प्रियतम ने (मारवणी को) छोड़ दिया। वही मारवणी मानो मरकर चातक हो गई और अब 'पिउ पिउ' की पुकार कर रही है।

२८—हे *प्रियतम वर्षा ऋतु आ गई* मोर बोलने लगे। हे कंथ, तू अब घर आ यौवन ने जोर किया है।

२४—बाबीहा (ग) बाबीहड (ख) बाबीहा (घ)। निपखरत (क. ख)। बग पंखड़ी (ख) बग पखड़ी (ज) बांगी पंखड़ी (घ)=रत पंखिया। बाच (ग) बाणि (ख)। का (ख ग.) काइ (ख) क (ख)। बोलंती (क ख) लयई तू (घ)। मिलि (ख) महकि (ख) मुकि (ख)। कइ (ग ख) परि राखंइ (क) राखिइ पर (ख) परि राखिइ (ग)। मी परदेसी (ख)=परदेसी प्रिउ। परदेस प्रिवाण (ख) आँण (ख. ग)।
२५—केवल (ग) में है।
२६—बाबीहा (ख)। डूंगर (ख) पंखर (ख)। हमारा (ख)। मीव (क) मीपु (ख)।
२८—केवल (म) में।

[गिरिवर मोर गहक्किया, तरवर मूँकया पात।
पंथियाँ पंख साहण लगा, वूठैवो बरसात ॥३९॥
राजा परजा सुखियजण, कविजण, पंडित, पात।
सगळाँ मन उच्छाव हुवइ, वूठैवो बरसात ॥४०॥
ऊनमि आई बादळी ढोलउ आयउ चित्त।
वो बरसइ रितु आपणी, नइण हमारे नित्त ॥४१॥
ऊनमियउ उत्तर दिसइँ मेढी ऊपर मेह।
ते बिरहिणि किम जीवसे, ज्याँरा दूर सनेह ॥४२॥
ऊनमियउ उत्तर दिसइँ काळी कंठळि मेह।
हूँ भीजूँ घर आँगणइ पिउ भीजइ परदेस ॥४३॥
बीजुळियाँ चहळावहळि आभइ आभइ एक।
कदी मिळूँ उण साहिबा कर काजळ की रेख ॥४४॥]

३९—पावस के बरसते ही पर्वतों पर मोर उल्लास में भर उठे। (वर्षागम में) तरुवरों को पत्ते दिए। (और) विरहिणी स्त्रियों को पथिकों की याद सताने लगी।

४०—वर्षा के बरसते ही राजा प्रजा सुखी, कविजन पंडित और हाथियों के पत्ते—इन सबके मन में उत्साह हुआ।

४१—बादल उमड़ आया (और) ढोला हमारे चित्त में (उमड़) आया। बादल तो अपनी ऋतु में ही बरसता है (परंतु) हमारे नेत्र नित्य बरसते रहते हैं।

४२—उत्तर दिशा की ओर अटारी पर मेह उमड़ आया। अब वह विरहिणी जिसका प्रेमी दूर है किस प्रकार जियेगी?

४३—काली कंठुली (कैसी कोर) वाला मेघ उत्तर दिशा की ओर उमड़ आया है। मैं घर के आँगन में भीग रही हूँ (और मेरा) प्रियतम परदेश में भीग रहा है।

४४—बादल बादल में एक एक करके बिजलियों की चहलपहल हो रही है। मैं भी नेत्रों में काजल की रेखा लगा करके प्रियतम से कब मिलूँगी?

३९—केवल (म) में।
४०—केवल (म) में।

बीजुळियाँ चहलावहलि आभइ आभइ च्यारि।
कद रे मिळउँली सज्जना लाँबी बाँह पसारि ॥४५॥
बीजुळियाँ चहलावहलि आभय आभय कोडि।
कद रे मिळउँली सज्जना कस कंचुकी छोडि ॥४६॥
गिरइ पखाळण, सर भरण, नदी हिंडोळणहारि।
सूती सेजाँ एकली, हइ हइ दइव म मारि ॥४७॥
दादुर मोर टहक्क घण बीजळहो तरवारि।
सूती सेजाँ एकली, हइ हइ दइव म मारि ॥४८॥
जळ थळ, थळ जळ हुइ रह्या, बोलइ मोर किंनार।
सावण दूभर हे सखी, किहाँ मुझ प्राण अधार ॥४९॥

४५—बादल बादल में चारों ओर बिजलियों की चहलपहल हो रही है। अरे मैं भी (इनकी तरह) लंबी भुजा पसारकर अपने प्रियतम से कब मिलूँगी?

४६—बादल बादल की कोर पर बिजलियों की चहलपहल हो रही है। अरे, मैं भी कंचुकी के बंधन खोलकर अपने प्रियतम से कब मिलूँगी?

४७—पर्वतों को प्रक्षालन करनेवाली सरोवरों को भर देनेवाली और नदियों को झकझोरनेवाली इस ऋतु में मैं अकेली सोई हुई हूँ। अरे दैव! अरे दैव! मैं हा हा खाती हूँ मुझे मत मार।

४८—दादुर और मोर का घना शब्द हो रहा है। बिजली तलवार है। मैं अकेली सेज पर सोई हुई हूँ। अरे दैव अरे दैव मैं हा हा खाती हूँ, मुझे मत मार।

४९—(इतना जल बरस रहा है कि) जलाशय स्थल (जैसे) और स्थल जल (जैसे) हो रहे हैं (अर्थात् दोनों एकाकार हो गए हैं) और (तालाब के) कगारों पर मोर बोल रहे हैं। हे सखी, यह श्रावण का मास (मेरे लिये) दुस्सह हो रहा है मेरा प्राणाधार कहाँ है?

४५—सज्जनी (च)। मलूकियाँ (ग)। जाइ मिलोजै (ग)।
४६—सज्जणों (च)।
४७—नदीखोलण (ह)—हिंडोलण।
४८—सेजइ सूती धण परजळइ तर्इ तर्इ दइव म मारि (च)।

विज्जुलियाँ नीलज्जियाँ, जलहर तूँ ही लज्जि।
सूनी सेज, विदेस प्रिय, मधुरइ मधुरइ गज्जि ॥५०॥
राति सखी इणि ताल मईं काइ ज कुरली पंखि।
उवै सरि हूँ घरि आपणइ, बिहूँ न मेल्ही आंखि ॥५१॥
प सारस कहियइ पसू पंखी केरा राव।
उवे बोल्या सर ऊपरइ, थाँ कीधी अणुराव ॥५२॥
राति जु सारस कुरलिया, गुंजि रहे सब ताल।
जिणकी जोडी बीछडी तिणका कवण हवाल ॥५३॥

---

५ —बिजलियाँ तो निर्लज्ज हैं। हे जलधर तू ही लज्जित हो। मेरी शय्या सूनी है मेरा प्यारा विदेश में है (इसलिये) मधुर मधुर शब्द से गरज।

५१—हे सखी, रात को इस सरोवर में किसी पक्षी ने कलरव किया। वह सरोवर में और मैं अपने घर में—हम दोनों ही की आँख नहीं लगी।

५२—सखी कहती है—ये पक्षियों के राजा सारस आखिर पशु ही कहलाते हैं। वे सरोवर पर बोले और तुमने उनके शब्द का अनुकरण किया।

५३—रात को जो सारस कुरलाए (करुण स्वर में बोले) तो सब सरोवर गूँज उठे। भला जिनकी जोड़ी बिछुड़ गई है उनकी क्या दशा होती होगी!

---

५ —मेहा थारी निलज्ज—जलहर इ (घ)। सुंदर—सूती (क)।

५१—इण (क) माँइ ज (क)। कुरलड़ियाँ कुरलाइयाँ पंखड़ बरवी पंखि (ख) कुरलड़ियाँ (ख ग) पंखड़ (ख च) बरवी (घ च)। थवा (ग) ज (च च) था (ड)। पर (क) सिर (च)। था हूँ (क)। घर (क)। बेहूँ (ड) मिलिया (ख) मिलिसी (च) मिलिसै (ख)। आंख (क)। वेह न दीधी अंख (च)।

५२—उवे (क) थे (ग)। कहीजै (ग)। राजि (ख)। केन्हीरा (क)। थवे (क) उवे (ख)। सिर (ग) सिरि (घ)। ऊपरै (क)। कीधी अनराव (ख) थांही की अनराव (क)।

५३—ज (क)। कुरलियाँ (क)। गूँजि (क) गूँज (ग) गाजि (ग) रही (ग) रहत (ख) सिर—सब (ख)। कुंझडियाँ कुरलावीया (ग) कुंझडियाँ कुरलावीयाँ (ख) कुरझीयाँ कलियाँ किया (ग)—राति जु सारस कुरलियाँ। साँची जेते तह—गुंजि रहे सब ताल (ग)। जिणकी (क) जाकी (ख)। बीछड़ै (ग) बिछुड़ इ (ख)। ताकी (क)। कुंवण (ख)। हवाल (ग)।

कुंझड़ियाँ कळिअळ कियउ, सुणी ज पंखाँ वाउ ।
ज्यांकी जोड़ी वीछड़ी, त्यां निसि नींद न आइ ॥५८॥

कुंझड़ियाँ कळिअळ कियउ, सरवर पइलइ तीर ।
निसिभरि सज्जण सल्लियाँ, नयणे बूठा नीर ॥५९॥

सोरठा

मारवणी मनि रंगि, वाटइ तिणि आवी वहइ ।
कुँझाँ पळसि संगि, तासि चरती दिट्ठियाँ ॥६०॥

दूहा

आडा डूँगर, दूरि घर, पलइ न आवण भत्त ।
सजण सम्हूँ कारणइ हियउ हिलूसइ नित ॥६१॥

५८—कुररी पक्षियों ने करुण रव किया और मैंने उनके पंखों की वायु (पंख फड़फड़ाने की ध्वनि) सुनी। जिसकी जोड़ी बिछुड़ गई उसको रात्रि में नींद नहीं आती।

५९—सरोवर के उस पार तीर पर, कुररी पक्षियों ने करुण रव किया। रात भर (विरहिणी के हृदय में) सज्जन खलते रहे और उसके नेत्रों से जल बरसता रहा।

६०—प्रेम से रँगे हुए मनवाली मारवणी चलती चलती उस मार्ग पर आ निकली और वहाँ उसने बहुत सी कुररों को (सरोवर के किनारे की) समतल भूमि पर एक साथ विचरण करते हुए देखा।

६१—बीच में पर्वत हैं और घर दूर है। आना किसी भाँति नहीं बनता। प्रियतम के लिये हृदय नित्य ही लालायित रहता है।

५८—क्षेपक (ख. ग) में।

५९—क्षेपक (ख. ग) में।

६०—आवी (ग)=आयी। कुंझाँ (ख)। प तिणि रंगि (ग)=पुलकि घणि।

६१—डोंगर रही घर दूंगरी (क) डाम रही घर दूलह भ (ख)=आडा डूंगर दूरि घर। व (ख ग)=न। आवण (ख, ग)। मोति (ख)। सज्जन (ख)। हीया (क)। उलसी (क)। रच (क) मिति (ख)=नित।

कुंझाँ, द्यउ नइ पंखड़ी, थाकउ विनउ बहेसि।
सायर लंघी प्री मिलउँ, प्री मिलि पाछी देसि॥६२॥
म्हे कुरझाँ सरवर तणी पाँखाँ किणहि न देस।
भरिया सर देखी रहाँ, उड़ आगेरि बहेस॥६३॥
उत्तर दिसि उपराठियाँ, दखिण साँमहियाँह।
कुरझाँ एक संदेसड़उ ढोलानइ कहियाँह॥६४॥
माणस हुवाँ त मुख चवाँ, म्हे छाँ कुंझड़ियाँह।
प्रिउ संदेसउ पाठविसु लिखि दे पंखड़ियाँह॥६५॥

६२—मारवणी कुरझी पक्षियों को संबोधन करके कहती है—हे कुंझो, मुझे अपनी पाँखें दो मैं तुम्हारा बाना बनाऊँगी और सागर को लाँघ करके प्रियतम से मिलूँगी और मिलकर तुम्हारी पाँखें लौटा दूँगी।

६३—कुंझों का उत्तर— हम सरोवर की कुंझें हैं। हम अपनी पाँखें किसी को नहीं देंगी। भरे हुए सरोवर देखकर हम ठहर जाती हैं नहीं तो उड़कर दूर चली जाती हैं।

६४— मारवणी कहती है— हे कुंझो उत्तर दिशा की ओर पीठ किए हुए, दक्षिण दिशा के संमुख चलकर, ढोला को एक संदेशा कहना।

६५—कुंझों का उत्तर—मनुष्य हों तो मुख से कहें हम तो बिचारी कुंझें हैं। यदि प्रियतम को संदेशा भेजना हो, तो हमारी पाँखों पर लिख दो।

६२—कुंझड़ियाँ (क) कुंझी (ग) कुरझा (घ)। दिइ न (क) द्यो (ग)। पाँखड़ी (ख)। पांखा दियउ (क) बहेस (क ख ग)। कुरझड़ियाँ म्हारी पाँखड़ियाँ पंख उधारी देह (ग) लंघूं (क. ख) प्रीय (क. ख) प्रिय (ग घ)। मिलूँ (क. ख) मिलू (ग) मिलो (घ)। देस (क)।

६३—केवल (ग) में।

६४—दक्षिण दिशि (घ)। सांमुहियाँह (घ)। कुंझी (घ)।

६५—हुवां (क) हुँ (ग)। तो (ख ग)। मुह (क)। चवो (ग)। माणस म्हे मानुस नहीं (क)। तो (ग) छा (ख. घ)=थाँ। कुरझड़ियाँह (ख)। प्रिय (ग. घ) प्रीउ (ख)। पाठविसि (क) पाठवीस तउ (ग) पठवो (घ)। ढोला म्हारा संदेसड़ा (क ख. ग)=प्रिउ संदेसउ पाठविसु। मुखिपट (क)। पांखड़ियाँह (घ)।

पाँखड़ियाँ ई किउँ नहीं, दैव अभागू ज्याँह।
चकवीकइ हइ पंखड़ी, रयणि न मेळउ त्याँह ॥७१॥

आडा डूँगर, भुइँ घणी, तियाँ मिळीजइ एम।
मनिहूँ खिणइ न मेल्हियइ चकवी दिणियर जेम ॥७२॥

ज्यूँ ए डूँगर संमुहा त्यूँ जइ सज्जण हुंति।
चंपावाड़ी भमर ज्यउँ, नयण लगाइ रहंति ॥७३॥

जिणि देसे सज्जण वसइ, तिणि दिसि वज्जउ वाउ।
उवाँ लगे मो लग्गसी, ऊ ही लाख पसाउ ॥७४॥

कागा दिउँ बधाइयाँ प्रीतम मेळइ मुज्झ।
काढि कळेजउ आपणउ भोजन दिउँसी तुज्झ ॥७५॥

७१—जिनका भाग्य उलटा है उनके पंख (होने से) भी कुछ नहीं। चकवी के पंख हैं, परंतु उसका भी रात्रि में (प्रिय से) मिलन नहीं होता।

७२—(उनके) बीच में पहाड़ और बहुत सी भूमि (दूरी) है, उनसे इसी प्रकार मिलन हो सकता है कि उनको एक क्षण के लिये भी मन से नहीं हटाना चाहिए जिस प्रकार चकवी सूर्य को (नहीं हटाती)।

७३—जैसे ये पर्वत सामने हैं वैसे ही यदि प्रियतम भी होते तो जिस प्रकार भ्रमर चंपा के बाग की ओर दृष्टि लगाए रहते हैं उसी प्रकार मैं भी उन पर नयन लगाए रहती।

७४—हे वायु, जिस दिशा में प्रियतम बसते हैं उसी दिशा की ओर से चलो। उनका स्पर्श करके मुझे छुओ। वही मेरे लिये लाख पसाव होगा।

७५—हे कौवे, यदि तू मुझे प्रियतम से मिला दे तो मैं तुझे बधाइयाँ दूँ और अपना कलेजा निकालकर तुझे भोजन को दूँगी।

७१—अभागु (ख)। पुंखड़ी (ख)।

७२—डूंगर (ख)।

७३—डूंगर (ख)।

७४—तु मीअसीलम (ख)। लीजम (ग)=मीजम।

जब सोऊँ तब जागवइ, जब जागूँ तब जाइ।
मारू ढोलउ संभरइ इणि परि रयण विहाइ ॥७६॥

(राणी का मारवणी की दशा जानना)

सखियाँ रांणीसूँ कहइ मारू मनमांणी।
साल्हकुँमर पासइ बिना पदमिणि कुँमळांणी ॥७७॥
सखियाँ रांणीसूँ कहइ, तनइ न जावइ ताप।
साल्ह बिरह तिल तिल मइँ, मारू करइ बिलाप ॥७८॥
इणि परि उमा देवड़ी जाणी मारू बात।
सु प्रभाति कहिवा भणी, पिंगळ पासि पहुत्त ॥७९॥
आखय उमा देवड़ी, संभळि पिंगळ राइ।
बिरह बियापी मारुई नहिं राखणकउ दाइ ॥८०॥

७६—जब सोती हूँ तब (स्वप्न में आकर) जगा देता है। जब जाग उठती हूँ तब चला जाता है। (यों करती हुई) मारवणी ढोला को याद करती है और इस प्रकार रात्रि बिताती है।

७७—(मारवणी की यह दशा देखकर) मारवणी की मनमानती सखियाँ रानी से कहती हैं—साल्हकुमार (रूपी सूर्य) के पास न होने से यह पद्मिनी कुम्हला गई है।

७८—सखियाँ रानी से कहती हैं—तन का ताप नहीं जाता। रोम-रोम में साल्हकुमार का विरह छा गया है और मारवणी विलाप करती है।

७९—इस प्रकार उमा देवड़ी ने मारवणी की बात जान ली और प्रातःकाल ही सब हाल कहने के लिये राजा पिंगळ के पास पहुँची।

८०—उमा देवड़ी कहती है—हे पिंगळ राजा सुनो। मारवणी विरह से व्याप्त हो गई है। उसे बचाने का कोई उपाय नहीं (सूझ पड़ता) है।

७७—राणी रायसूँ (क)। राजा कहै राणी (ख)। साल्हबिरह हिमत ज्युं—साल्ह''' बिना (ख)। मारू (ग) पदमण (ग)।

७८—साल्हकुँवर तब मन में (क)।

७९—पहुत (ख) पहुत्त (क)।

८०—आखइ (ख)। उमा (ख)। मा कम्मानै बीनवै (ग)। राय (ग)। मारवी (ग)। राय (ग)।

नितु नितु नवला साँढ़िया, नितु नितु नवला साथि ।
पिंगळ राजा पाठवइ, ढोला तेड़ण काजि ॥८१॥
ज को आवइ पूगळइ सहु को नरवर जाइ ।
मारू तणा सँदेसड़ा वगइ विचाहू जाइ ॥८२॥

(सौदागर द्वारा ढोला के समाचार मिलना)

एक दिवस पूगळ सहर, सउदागर आवंत ।
तिणपइ घोड़ा अति घणा वेच्या लाख लहंत ॥८३॥
पिंगळ राजानूँ मिल्यउ सउदागर तिणि वार ।
राय दुवारइ तेड़ियउ, आदर करे अपार ॥८४॥
सउदागर पिंगळ मिल्यउ, बहुत दियउ सनमान ।
रात दिवस प्रेमइ मिल्यउ, इम पिंगळ राजान ॥८५॥

८१—प्रतिदिन नए नए साँढनी सवारों को नए नए साज सामान के साथ पिंगळ राजा ढोला को बुलाने के लिये भेजता है ।

८२—सब कोई नरवर को जाते हैं परंतु पूगळ को लौटकर कोई नहीं आता । मारवणी के संदेशों को कोई बुरा बीच ही में हड़प जाता है ।

८३—एकदिन पूगळ नगर में एक सौदागर आता है, उसके पास बहुत से घोड़े हैं जिनको बेचने से एक एक के लाख लाख रुपए मिलते हैं ।

८४—उस समय सौदागर पिंगळ राजा से मिला । राजा ने बहुत आदर करके उसको राजदरबार में बुलाया ।

८५—पिंगळ सौदागर से मिला और उसका बहुत संमान किया । इस प्रकार वह सौदागर पिंगळ राजा से दिन रात प्रेमसहित मिलता रहा ।

८१—संढिया (ग) सांढीया (ब) । साज (ब) ।
८१—राजा चाल्य (क ख) राणी चाल्य (ब ग) ।
नरवरी (क) पूगळी (ग) । ज को—सहु को (ख ग) इहांसु (क)—नरवर । ढोलै—मारू (क. ब) ढोला (ग) । को वगइ (ख) वगय (ग) कोई (ब) । विचाहूँ (ख) विचाळ (क. ग) विचाळइ (ब) विचाई (ब) । जहाँरा को आवइ नहीं इहाँ सहू को जाइ मारू तणा संदेसड़ा को विसुव विचाळ जाय (ब) ।
८३—इक (ख) । सहिर (ग) ।
८४—केवल (क. ख ब) में ।
८५—केवल (ग) में ।

एकज बरसरी मारवी, त्रिहुँ बरसाँरउ कंत ।
बाळपणइ परण्यौं पछइ, अंतर पड़यउ अनंत ॥११॥
सउदागर राजा कन्हे अरज करइ एकंति ।
साल्हकुँवर सूँ बीनती कहि किण दाखूँ भंति ॥१२॥
साल्हकुँवर सुरपति जिसउ रूपे अधिक अनूप ।
लाखाँ बगसइ माँगण्याँ, लाखाँ भड़ाँ सिर भूप ॥१३॥
माळवगढ़ राजा सुपू, कुँवरी माळवणीह ।
ढोलइ तिण बहु प्रीति छइ अति रंग नेह घणीह ॥१४॥

नाम है और पुष्कर नाम के स्थान पर नरवर गढ़ के राजकुमार ढोला के साथ इसका विवाह हुआ है।

११—उस समय मारवणी डेढ़ वर्ष की थी और उसका पति तीन वर्षों का था। बालपन में विवाह हो जाने के पश्चात् दोनों के बीच में बहुत भारी अंतर पड़ गया।

१२—सौदागर राजा से एकांत में अर्ज करता है कि बताइए, मैं साल्ह कुमार से किस भाँति विनती कर सुनाऊँ।

१३—साल्हकुमार इंद्र जैसा रूप में अतीव अनुपम है। वह याचकों को लाखों का दान देता है और लाखों योद्धाओं का अधिपति है।

१४—मालवगढ़ के राजा की सुंदर कन्या राजकुमारी मालवणी (उसकी स्त्री) है। ढोला का उससे अति अनुराग और स्नेहपूर्ण घनिष्ठ प्रेम है।

(घ)। नळवर (क ग घ) गढि (घ)। ढोला तणी (ग) ढोला वणी (ख-घ)। परण्या (ख)। पुकर (ख) पुष्करि (ख)। गाँम (क. ख ग) ग्रामि (ख-घ)।

११—डोढ (क)। मारवी (ख)। त्रिह (ग)। कत पुत्री सोदागर आलयो सहु वृत्तंत (ग. घ)। बात सुण सउदागरइ आलयउ सहु वृत्तंत (ख) बाळपणे (क. ख ग)। परणी (क ग) परण्या (ख)। त्रिन्हे (ख) त्रिन्हइ (ख)-अवई। पड़यो (क. घ ग)।

१२—कन्हैं (ख)। एक करंत-अर्ज एकंति (क ख)। सों (ख)। किम (ख)। भंति (क)।

१३—रूप अनूपम रूप (ख) रूप अमर सरूप (ग)। लाख (क. ख)। बोलयाँ (क. ग)। भड़ाँ (ग)।

१४—सपू (ग)। प्रीत (ख. ग)।

मइँ घोड़ा मेल्ह्या घणा, रहियउ मास चियारि।
राति दिवस ढोलइ कन्हइ, रहतउ, राज दुवारि ॥९५॥
राजा, कब जण पाठवइ, ढोलइ निरति न होइ।
माळवणी मारइ तिणउ, पूगळ पंथ जिकोइ ॥९६॥
सउदागर राजासूँ कहइ, सुणउ हमारी कथ्थ।
मारवणी छानी रही, से माळवणी तथ्थ ॥९७॥
सुणी सखोंणी साथि करि मंदिरकूँ मल्हपंथ।
सउदागर नेडी वहइ, सुणिवा प्रीतम वत्त ॥९८॥

९५—मैंने वहाँ बहुत घोड़े भेजे और चार मास तक रहा। तब मैं रात दिन ढोला के पास राजद्वार में ही रहता था।

९६—हे राजन् आप कोई आदमी भेजते हैं पर ढोला को खबर नहीं होती। जो कोई पूगल के मार्ग पर होता है उसको मालवणी मरवा देती है।

९७—सौदागर राजा से कहता है—हमारी बात सुनिए। जो मारवणी ढोला से अब तक छिपी रही उसका रहस्य मालवणी है।

९८—समवयस्का सखियों को साथ लेकर मंदिर को जाती हुई मारवणी प्रियतम की बातें सुनने के लिये सौदागर के पास से निकलती है।

९५—चीयार (क)। दुवार (क)।

९६—जब (ग)। पाठवे (क ख. ग)। पिंगळ निगमति (ख. घ) पिंगळ राजा (ज)=राजा कब जण। ढोला (च ज घ)। निरत (ज)। होय (ज)। मारि (क ख ग)। तिहाँ (च घ)। तठा मारही=मारइ तिणउ (ख) पूगळि (घ)। व (च ज) न (घ)=नि।

९७—कहइ (क. ख ग)। कथ (ग)। माळवणी (क ख ग)। छानी=से (क)। तथ (क)।

९८—सखि सगी (क ख) सखि सगी (ख) सइ सामहणी (च)। साथे करे (क. ख) साथ कर (घ)। साथ (च)। कर चाव मगमत (ग) करि चावइ मयमत (च ज)= मंदिर कूँ मल्हपंत। सोदागर (क. ख) सोदागर (ग)। नडी (ग) साथी (ग)। वह (क ख ग)। कामण संभाळाजत (ग) का पछि संभळि वत्त (च. ज) = सुणिवा प्रीतम वत्त।

सउदागर संदेसड़ा सांभळिया स्रवणेहि ।
मारवणी रै मन दहइ मूक्यउ जळ नयणेहि ॥९९॥
सउदागर राजा कन्हइ, कहियउ एह विचार
रांणी राय विमासियउ, तेड़इ साल्हकुमार ॥१००॥
राजा प्रोहित तेड़ियउ, तूँ जाइ ढोलउ ल्याव ।
सखियाँ मारूनूँ कहइ, हुवउ वधांव उछाव ॥१०१॥
रांणी राजानूँ कहइ, मेल्हउ मांगणहार ।
मांगणगारा रीझवइ ल्यावइ साल्हकुमार ॥१०२॥
राजा प्रोहित राखिजइ, जिण की उत्तिम जाति ।
मोकळि मरता मंगता, विरह जगावइ राति ॥१०३॥

९९—सौदागर के संदेशों को मारवणी ने कानों से सुना । उनसे मारवणी का मन संतप्त हो उठा और नयनों से आँसू बह चले ।

१००—सौदागर ने राजा के आगे ये समाचार कहे । (इसके पीछे) रानी और राजा ने परामर्श किया कि साल्हकुमार को बुला भेजें ।

१०१—राजा ने पुरोहित को बुलाया और कहा कि जाकर ढोला को ले आओ । यह सुनकर सखियाँ मारवणी से कहती हैं कि अब आनंदोत्सव हुए ।

१०२—रानी राजा से कहती है कि याचकों को भेजो, याचक लोग साल्हकुमार को रिझा लेंगे और उसे ले आवेंगे ।

१०३—हे राजा पुरोहित को रहने दो जिसकी जाति उत्तम है । पर के याचकों को भेजिए जो रात्रि में विरह को जागरित करेंगे ।

९९—सोदागर (क ख)। संभळीया (ख)। स्रवणेह (क, ख)। मारवणी प्रिय संभर्‍यो (ख) मारवणी मनमथ हुई (क) मारवणी मनि संदेह थयी (ग) मारवणी मनि ऊमह्यो (घ)।

१००—तेड़्यो (ख) तेडो (घ)।

१०२—मेल्हे (क)। गाईणगारा (घ)। ल्यावो (ग) सुख पावै (क)=ल्यावइ। कुमार (ग)।

१०३—राजा विप्र म मोकळे (ग घ) राजा विप्र म मोकळे (ख) ब्राह्मण जात म मोकळो (क)। जोइ (क ख ग)। उत्तिम (ग) सूधी (ख) सीतळ (घ)। जात (ग)। मेल्हे (क) मूके (ग घ)। कामणा (ख घ)। मागणा (क) मंगिणा (घ)। पुरवे (क ख)। रात (ग)। जगावै विरह=विरह (घ)।

पाछइ प्रोहित राखियउ, तेड्या मांगणहार ।
जे भेदग गीताँ तणा, बात करइ सुविचार ॥१०४॥
ढाढी गुणी बोलाविया राजा तिणही ताळ ।
नरवरगढ़ ढोलइ कन्हइ जावउ वागारवाळ ॥१०५॥
सीख करे पिंगळ कन्हाँ, घर आया तिणि वार ।
मेल्हि सखी तेडाविया मारू मांगणहार ॥१०६॥
मारू सनमुख तेड़िया, दियण सँदेसा काज ।
कहउ कदे थे चालिस्यउ कांइ सिताबइ आज ॥१०७॥
आज निसइ म्हे चालिस्याँ, धरिस्याँ पंथी वेस ।
जउ जीव्या तउ आविस्याँ, मुया त परिहरि देस ॥१०८॥

१०४—पीछे राजा ने पुरोहित को रख लिया और याचकों को बुलाया जो संगीत के भेद जाननेवाले और खूब विचारकर बातें करनेवाले थे।

१०५—राजा ने तत्काल गुणी ढाढियों को बुलवाया और कहा कि हे याचको, नरवरगढ़ ढोला कुमार के पास जाओ।

१०६—ढाढी पिंगळ से विदा लेकर उस समय घर लौट आए। मारवणी ने सखी को भेजकर याचकों को बुलाया।

१०७—मारवणी ने (प्रियतम का) संदेश देने के लिये ढाढियों को सम्मुख बुलवाया और कहा—कहो तुम लोग कब प्रस्थान करोगे? सवेरे या आज ही?

१०८—ढाढियों ने उत्तर दिया—आज रात्रि को हम चल देंगे और पथिक के वेश में चलेंगे। यदि जीते रहे तो आवेंगे और मर गए तो उसी देश में (रह जावेंगे)।

१०४—प्रोहित घर या राखिया (ख)। भेद (ग)। गीता (ख)। बता (ग)।

१०५—गुणौ ढाढी (क)। तिणही ज (ग)। नरवर (क. ख ग)। कुँवर=कन्है (क)। मौंगणहार (ख)।

१०७—सनमुखो (क. ख)। कारण=दियण (क. ग)। आज (ख) अब (ग)। करि (ख) का (क. ग)। आज (ख) अब (ग)।

१०८—हूँ (क. ख)। पंथी (क ख)। जो (क. ख)। जीवीया (क. ख. ग) जीवीया (ख)। आइस्याँ (ख) आवस्याँ (ग)। मुआँ (ख) मुआ

ढाढी, जइ प्रीतम मिळइ, यूँ दाखविया जाइ।
जोबण छत्र उपाड़ियउ, राज न बइसउ काइ ॥११८॥

ढाढी, जइ साहिब मिळइ, यूँ दाखविया जाइ।
जोबण कमळ विकासियउ, भमर न बइसइ आइ ॥११९॥

ढाढी एक सँदेसड़उ ढोलइ लगि लइ जाइ।
जोबन चाँपउ मउरियउ, कळी न चुंटइ आइ ॥१२०॥

ढाढी, एक सँदेसड़उ ढोलइ लगि लइ जाइ।
कण पाकउ, करसण हुअउ भोग लियउ घरि आइ ॥१२१॥

११८—हे ढाढी, यदि प्राणाधार मिलें तो जाकर इस प्रकार कहना—यौवन ने छत्र उठाया है, हे राजन् (उसकी छाया में आकर) क्यों नहीं बैठते !

११९—हे ढाढी यदि स्वामी मिलें तो जाकर यों कहना—यौवनरूपी कमल खिल गया है, हे भ्रमर, तुम आकर क्यों नहीं बैठते !

१२०—हे ढाढी, एक सँदेसा ढोला तक ले जाओ—यौवनरूपी चंपा मौरयुक्त हो गया है। तुम आकर कलियाँ क्यों नहीं चुनते !

१२१—हे ढाढी एक सँदेसा ढोला तक ले जाओ—खेती हो गई, अन्न पक गया तुम घर आकर अपना भोग लो।

(ख)। चाँपि (घ) भच्यो (ग)। लोबी (ग)। विकसीयो (ग)। बइसीयों (ग)। स्वाति = स्वाविउ (ख ग)।

११८—जउ (क)। ढाढी एक संदेसड़उ (ग घ)। इउँ कहि दाख-बीयाइ (ख) प्रीतम लगि पहुँचाइ (ग) कहि ढोला समझाइ (घ)। योवन (क) जोबन (ख)। जोवन (घ) छांह (ख, ग)=राज न। बयसो (क ख ग)। आइ (क, ख ग)।

११९—ढाढी एक संदेसड़उ प्रीतम कहियो जाइ (ग)। इउँ कहि दाख बीयाइ (ख)। योवन (क) जोबन (ख)। विकस्यीयो (ग)। बयसइ (क) बयसइ (ख)=न बइसइ। कळीयाँ मउरीयाँ (घ)=कमळ विकासियउ।

१२०—केवल (घ) में।

१२१—केवल (घ) में।

पंथी, एक संदेसड़इ लग ढोलइ पैहच्याइ ।
विरह महाविस तन बसइ, ओखद विपइ न आइ ॥१२७॥
पंथी, एक संदेसड़इ लग ढोलइ पैहच्याइ ।
विरह बाघ बनि तनि बसइ, सेहर गाजइ आइ ॥१२८॥
पंथी एक संदेसड़इ लग ढोलइ पैहच्याइ ।
चँपा कँमलाँणी कमदणी, सिसहर ऊगइ आइ ॥१२९॥
पंथी एक संदेसड़इ लग ढोलइ पैहच्याइ ।
चँपा कँमलाँणी कँमलणी सूरिज ऊगइ आइ ॥१३०॥
पंथी, एक संदेसड़उ लग ढोलइ पैहच्याइ ।
जोबन खीर समुंद्र हुइ, रतन स काढइ आइ ॥१३१॥

१२७—हे पथिक एक सँदेसा ढोला तक पहुँचाओ—विरहरूपी महाविष शरीर में व्याप रहा है, आकर औषधि क्यों नहीं देते ?

१२८—हे पथिक, एक सँदेसा ढोला तक पहुँचाओ—विरहरूपी बाघ तनरूपी वन में बसता है तुम शिखर पर आकर गर्जन करो।

१२९—हे पथिक एक सँदेसा ढोला तक पहुँचाओ—प्रमदारूपी कुमुदिनी कुम्हला गई है हे चंद्र तुम आकर उदय होओ।

१३०—हे पथिक, एक सँदेसा ढोला तक पहुँचाओ—प्रमदारूपी कमलिनी कुम्हला गई है हे सूर्य तुम आकर उदय होओ।

१३१—हे पथिक एक सँदेसा ढोला तक पहुँचाओ—यौवन क्षीरसागर हो रहा है तुम आकर रत्न तो निकालो।

१२७—संदेसडौ (क)। महा (क)। अपद (क)। वीर्य (क)। आव (क)।

१२८—संदेसडै (क)। विरहि (क)। में सेहर=सेहर (क)। गाजै आव (क)।

१२९—कमोदिनी (क)। सीसहर य उगै आय (क)।

१३०—संदेसडै (क)। चंपि (क)। सूरज उग (क)।

१३१—संदेसडौ (क)। सुमुंद्र (क)। हुय (क)। ये रतन न काढै आव (क)।

पंथी एक संदेसड़इ लग ढोलइ पैहच्याइ ।
चंपा केळिनि फळि गई स्वाद मु, बरसउ आइ ॥११२॥
पंथी एक संदेसड़उ लग ढोलइ पैहच्याइ ।
साजन सबळ तोइस्यइ, वैसासणइ न आइ ॥११३॥
पंथी, एक संदेसड़उ लग ढोलइ पैहच्याय ।
जोबन आयइ माहुणउ पेमकरि घरि आय ॥११४॥
पंथी, मनंतउ जउ मिलइ, कहे अम्हीणी बत्त ।
धण कँणयररी कंब ज्यउँ सूकी तोइ सुरत्त ॥११५॥
पंथी एक संदेसड़उ कहिज्यउ साउ सलाँम ।
अबकी हमतुम बीछड़े, नयणे नींद हराँम ॥११६॥

११२—हे पथिक, एक संदेशा ढोला तक पहुँचाओ—चंपारूपी कदली फल गई है हे प्रियतम तुम आकर आस्वादन करो ।

११३—हे पथिक एक संदेशा ढोला तक पहुँचाओ—स्वाद पाथेय (भोजन) से ही मिलता है विश्वास से नहीं ।

११४—हे पथिक, एक संदेशा ढोला तक पहुँचाओ—यौवनरूपी अतिथि (घर आकर निराश) लौटा जा रहा है । जल्दी घर आओ ।

११५—हे पथिक यदि बूझते हुए तुम ढोला से मिलो तो हमारी यह बात कहना—प्रेयसी तुम्हारी सुरत (याद) में कनेर की डाली के समान सूख गई है ।

११६—हे पंथी मेरा एक संदेशा है । मेरे प्रियतम को साउ सलाम

११२—चंप (क) । आय (क) ।

११३—संबळ (क) । तोइसे (क) । आव (क) ।

११५—पहो (ग) । मनंतो (ग) । जो मिले (ग) । आवी वे एहंसि मिले (ख) । आवी वे तोहे मिले (क) । है कहो अम्हीणी बत्त (क) कहिवा इह सुबत्त (क) कहिवा बत सुबत्त (ग) । तो कहे (ग) कहे (ख.घ)—कहिया । बत (ग) बत्त (ख) । कणीयर (क) कणयर (ख) । की—री (ख) । कंब (ख. घ) । ज्यु (ख) । सुसी (ख.) ग । सोहि (क) तोही (ख) । सुरत (ग) । (ख. में यह दोहा दो स्थान पर आया है—सं ११३ और ३ ८ में 'कणयर' के स्थान पर 'केसर' है) ।

११६—आपी एक संदेसौ (क) । विस सजणां सलाम (क) तिस सजणां सलाम (ख) । पंथी इक विसि सजणां कहियौ साउ सलाम (ख) । हम (ख. घ) । पी बिछुड़ता (अ)—बीछड़े । बोछड्या (क) । अब हमि तुम्हि पी बीछड़े (घ) । दर की नींद हराम (क) ।

पंथी हाथ सँदेसड़उ, धण विलखंती देह।
पगसूँ काढइ लीहटी उर आँसुआँ भरेह ॥१३७॥
ढोला ढीली हर किया, मूँक्या मनह विसारि।
संदेसउ इन पाठवइ, जीवाँ किसइ अधारि ॥१३८॥
ढोला ढीली हर मुक्क, पीठउ परणी अजेह।
थोड़ अरज्ने कप्पड़े, साथर घण अथेह ॥१३९॥
कागळ नहीं, क मस नहीं नहीं क लेखणहार।
संदेसा ही नाविया, जीवूँ किसइ आधार ॥१४०॥
कागळ नहीं क मसि नहीं लिखताँ आळस थाइ।
कइ उण देस सँदेसड़ा, मोंघइ मूलइ विकाइ ॥१४१॥

कहना और कहना कि जब से हम तुम बिछुड़े हैं तभी से आँखों की नींद हराम है।

१३७—मारवणी विलाप करती हुई पथिक के हाथ संदेसा देती है, पैर से (पृथ्वी पर) रेखा खींचती है और अपना हृदय आँसुओं से भर लेती है।

१३८—हे ढोला तुमने प्रेम को शिथिल कर दिया और मुझे मन से बिसार दिया है। संदेसा तक नहीं भेजते बताओ किस आधार पर जिऊँ।

१३९—हे ढोला मेरी प्रेमस्मृति को शिथिलकर, मजीठ रंग के कपड़ों में (अर्थात् दूल्हे की पोशाक में) उस अन्य पत्नी को ब्याहकर लाते हुए तुमको बहुत से लोगों ने देखा है।

१४०—कागज नहीं है या स्याही नहीं है या लिखनेवाला नहीं है? तुम्हारे सँदेसे नहीं आए, मैं किस आधार पर जिऊँ।

१४१—कागज नहीं है या स्याही नहीं है या लिखते हुए आलस्य होता है। या उस देश में सँदेसे बड़े मूल्य पर बिकते हैं।

१३७—सँदेसडे (क) संदेसडो (ख)। विलखंती (ग)। लीहँ (ख) लोहटी (ग)। पु भरेव (क)=अभय भरेह।

१३८—हर (ग) मन (छ) बर (ग)=हर। कीया (घ)। वीसारि (च)। नन (छ)। आधारि (च)।

१३९—ढीलू (च) ढोली (ट)। ढीली (च)। ढाली (ट)। हरके (च) हारके (छ)=हर मुक्क। पीठि (ट)। अथाहि (ग)। साथ सुरंगे कपडे (ट)। सापरते नयसेहि (च)।

१४०—ज (क. ग)=क। मिस (ग)। लिखणहार (क. ग. घ)। जीवैं. किस (ख क. ग)। अधार (क)।

१४१—कइ लिखतांभलिखतां। मोंघ (क. ख)। विकाइ (ग)।

वायस बीजउ नाँम, ते आगलि कागळ ठवइ।
जइ तू हुई सुजाँण, तउ तूँ वहिलिउ मोकळे ॥१४२॥
सँदेसउ बिन पाठवइ, मरिस्यउँ हीया फूटि।
पारेवाका भूल जिउँ पड़िसइँ आँगणि त्रूटि ॥१४३॥
संदेसा मति मोकळउ, प्रीतम, तूँ आवेस।
आँगुळड़ी ही गळि गयाँ, नयण न बाँचण देस ॥१४४॥
फागुण मासि वसंत रुत आयउ जइ न सुणेसि।
चाचरिकइ मिस खेलती, होळी झंपावेसि ॥१४५॥
जइ तूँ ढोला नावियउ, कइ फागुण कइ चेत्रि।
तउ म्हे घोड़ा बाँधिस्याँ, काती कुंझियाँ खेत्रि ॥१४६॥

१४२—वायस का जो दूसरा नाम (अर्थात् काग) है उसके आगे रखकर—अर्थात् कागल (पत्र)—यदि तुम सुजान हो तो तुरंत भेज देना।

१४३—(निठुर) सँदेशा भी नहीं भेजते मैं हृदय फटकर मर जाऊँगी कबूतर का चूजा जैसे आँगन में गिरकर टूट जाता है।

१४४—हे प्रियतम, सँदेशा मत भेजो तुम्हीं आ जाओ। मेरी अँगुलियाँ भी गल गई हैं और मेरी आँखें मुझे बाँचने नहीं देतीं।

१४५—वसंत ऋतु के फाल्गुन मास में यदि मैं तुमको आया हुआ नहीं सुनूँगी तो चर्चरी नृत्य के मिस खेलती हुई होली की ज्वाला में कूद पड़ूँगी।

१४६—हे ढोला यदि तुम या तो फाल्गुन में या चैत्र में नहीं आए तो हम ही कार्तिक में फसल कट जाने पर, घोड़ों पर जीन कसेंगी।

१४२—वायस (ख)। ठवि (ख)। तु हुई (ख)।

१४३—भूल=भूलि (ख)।

१४४—सँदेसउ मत पाठवइ (ख)। मत=मति (क)। पीतम (क)। आवेइ (ख)। जब कागळ लिखि देई (ख)=प्रीतम। कागळ ही (क. ख. ग)। आँगळ का ही गळ गया (म)। न=न (ख) वाचण देइ (ख)। देइ (ख)। आप सँदेस= आँचण देण (क)।

१४५—मास (क. ख. ग. घ)। रितु (ख. ग. क. घ)। जो प्रीतम आवेस (क) जउ तूँ ढोला आवेसि (ख)। जउ ढोला आवेसि (घ)। ती (ग)। चाचर कै (क ख) तो चाँचर (ग) तउ चाचरि (ख)। मिसि (ख)। झंप मरेस (क) झंप मरेसि (ख) झंप मरेस (ग)।

१४६—जे (ख)। तुं (ख)। नावीये (क. ग)। कइ (ग क)। फागुण=

जाखस बीजउ नाँम, ते आगळि लखर ठवइ।
जइ तूँ हुई सुजाँण, तउ तूँ वहिलउ मोकळे ॥१४२॥
संदेसउ विन पाठवइ, मरिस्यइँ हीया फूटि।
पारेवाका मूझ जिउँ पड़िसइँ आँगणि त्रूटि ॥१४३॥
संदेसा मति मोकळउ, प्रीतम, तूँ आवेस।
आँगुलड़ी ही गळि गयाँ, नयण न बाँचण देस ॥१४४॥
फागुण मासि वसंत रुत आयउ जइ न सुणेसि।
चाचरिकइ मिस खेलती, होळी झंपावेसि ॥१४५॥
जइ तूँ ढोला नाविस्यउ, कइ फागुण कइ चेत्रि।
तउ म्हे घोड़ा बाँधिस्याँ, काती कुंझियाँ खेत्रि ॥१४६॥

१४२—जाखस का जो दूसरा नाम (अर्थात् आग) है उसके आगे लखर रखकर—अर्थात् आगल (पत्र)—यदि तुम सुजान हो तो तुरंत भेज देना।

१४३—(निठुर) संदेशा भी नहीं भेजते; मैं हृदय फटकर मर जाऊँगी, कबूतर का बच्चा जैसे आँगन में गिरकर टूट जाता है।

१४४—हे प्रियतम, संदेशा मत भेजो तुम्हीं आ जाओ। मेरी अँगुलियाँ भी गल गई हैं और मेरी आँखें मुझे बाँचने नहीं देतीं।

१४५—वसंत ऋतु के फाल्गुन मास में यदि मैं तुमको आता हुआ नहीं सुनूँगी तो चर्चरी नृत्य के मिस खेलती हुई होली की ज्वाला में कूद पड़ूँगी।

१४६—हे ढोला यदि तुम या तो फाल्गुन में या चैत्र में नहीं आए तो हम ही कार्तिक में फसल कट जाने पर घोड़ों पर जीन कसेंगी।

१४२—जाखर (ख)। ठवि (ख)। तू हुई (ख)।

१४३—मूझ=मूझ (ख)।

१४४—संदेसउ जम पाठवइ (ख)। मत=मति (क)। पीतम (क)। आवेह (ख)। जब कागळ लिखि देई (ख)=प्रीतम। कागज ही (क, ख ग)। कागळ का ही गळ गया (ग)। न=न (ख) बांचण देह (ख)। देइ (ग)। नार लीसम= पाँचण देह (क)।

१४५—मास (क, ख ग, घ)। रितु (ख ग, घ, घ)। जो मीतम आवेस (क) जउ तूँ ढोला नावसि (ख)। जउ ढोला नावेसि (ख)। जे (ग)। चाचर कै (क ख) तो चाँचर (ग) तउ चाचरि (ख)। मिसि (घ)। झाँप मरेस (क) झाँप मरेसि (ख) झाँप मरेस (ग)।

१४६—जे (ख)। तूं (ख)। नावीयें (क, ग)। का (ग, घ)। फागुण=

बहिलउ आप वखूहा, नागर चतुर सुजाँण ।
तुम्हविण धण बिलखी फिरइ, गुणबिन खाली कमाण ॥१५५॥
राति ज रूँनी निसह भरि सुणी महाजनि लोइ ।
हाथाळी छाला पड़्या, चीर निचोइ निचोइ ॥१५६॥
ढोला मिळिसि म वीसरिसि, नवि आविसि ना लेसि ।
मारू तणइ करंकड़इ बाइस ऊडावेसि ॥१५७॥
हियड़इ भीतर पइसि करि ऊगउ सज्जण रूख ।
नित सूकइ नित पल्हवइ, नित नित नवला दूख ॥१५८॥
अकथ कहाणी प्रेमकी किणसूँ कही न जाइ ।
गूँगाका सुपना भया, सुमर सुमर पिछताइ ॥१५९॥

१५५—हे नागर चतुर सुजान प्यारे शीघ्र आना । तुम्हारे बिना प्रेयसी उदास फिरती है जिस प्रकार प्रत्यंचा के बिना खाली कमान ।

१५६—कल वा म रात भर रोई तो गुरुजनों (तक) ने सुना । (और) साड़ी को निचोड़ते निचोड़ते मेरी हथेलियों में छाले पड़ गए ।

१५७—हे ढोला न तो मिलते हो न आते ही हो और न ले जाते हो । (फिर आकर) मारवणी के अस्थिपंजर पर कौवों को उड़ाओगे ।

१५८—मेरे हृदय में प्रविष्ट होकर साजन रूपी वृक्ष उगा है । वह नित्य सूखता है और नित्य पल्लवित होता है जिससे नित्य नए नए दुःख देखने पड़ते हैं ।

१५९—प्रेम की अकथनीय कहानी किसी से नहीं कही जाती । वह गूँगे के स्वप्न की भाँति हो गई है जिसे वह याद करके पछताता है (क्योंकि किसी से कह नहीं सकता) ।

१५५—वँगो (क. ख घ) वहिलो (ग) । आप (ग) आवे (च ज) आवि (च) । वाल्हा (च) । नागरि (ग) । तौ=तुम्ह (क. ख घ) । धन (ग) । फिरे (क ख. ग घ) । गुँ गुण (क. ख ग घ) । ग्यान गुण (च. ज)=गुण ।
१५६—महाजन (ख. घ) । हथाळी (घ) । छाल्या (च) । निचोय निचोय (च) ।
१५७—साहिब (क ख ग) साहिब (म) । मिळसि (क ग. घ) मिलस (म) । म (क ख) = म । पीसरसि (च ज) बीसरिस (म) । न (क. ख घ) ना (घ) । आइसि (ग) आवस (क) आवसि (घ) आवस (ज म) । न लेस (क ख म) ल्यौं (क ख म) लराय (च ज) पापस (च ज) ।
१५८—हीया (ख म) हीये (क घ) । मांही (ख म) । क (ज)=करि ।

पीतम, तोरह कारणइ ताता भात न खाहि।
हियड़ा भीतर प्रिय वसइ दाझणती डरपाहि॥१६०॥
चंदणरेह कपूररस सीतळ गंगप्रवाह।
मनरंजण, तनप्रहवण, कदे मिळेसी नाह॥१६१॥
मत जाणे प्रिय, नेह गयउ दूर विदेस गयाँह।
बिमणउ वाधइ सज्जणाँ थोड़उ थोहि खळाँह॥१६२॥
हूँ कुंमळाणी कंत विण, जळह विहूणी वेल।
मिसवारारी भाइ जिउँ गया मुकंती मेल्ह॥१६३॥
म्हाँ नइ डूँगर, धन वसा, म्हाँ नइ घणा पलास।
सो साजण किम वीसरइ, बहु गुणवन्ता निवास॥१६४॥

१६०—हे प्रियतम, तुम्हारे कारण मैं गर्म भात नहीं खाती। हृदय में प्यारा निवास करता है उसको जला देने के भय से डरती हूँ।

१६१—हे मन को रंजन करनेवाले, शरीर को स्पर्श से प्रफुल्लित करनेवाले और चंदन कपूर रस तथा गंगा के प्रवाह के समान शीतल प्राणनाथ, कब मिलोगे?

१६२—हे प्यारे, यह मत जानना कि दूर विदेश में जाने से स्नेह भी चला गया। बिछुड़ने पर सज्जनों का प्रेम दुगुना बढ़ता है और दुष्टों का थोड़ा होता जाता है।

१६३—मैं कंत के बिना कुम्हला गई जिस प्रकार जलविहीन लता। मेरा प्यारा मुझे बंजारे की भट्ठी के समान सुलगती हुई छोड़कर चला गया।

१६४—हमारे बीच में बहुत से पर्वत और वन हैं तथा बहुत से खल (दुर्जन) बीच में हैं। तो भी वे सज्जन किस प्रकार मुझे भूल सकते हैं जो अनेक गुणों के घर हैं।

कला (ख ग)। जिम (क ख. ग. घ)। जाइबे (ख. ङ) जाइबै (घ)। मिम (ख. ग) मिय (क) मिलु (ङ)=मिल मिळा। जयाे (घ)। पूग (ग)।

१६०—जाय (क)। री (ख. ग)। मे = री (क)। डरपाव (घ)।

१६१—चंदन (ग)। कामनेर (ग)। उलहसण (ख. ग) [illegible] (ङ)। मिलेस्यो (ख. ग)।

१६२—केवल (ख) में।

१६३—केवल (ख) में।

१६४—केवल (ग) में।

सोरठा

जेती करा मनमाँहि, पंजर जइ तेती पुजइ।
मनि वइराग न थाइ, वालंभ वीछुड़ियाँ तणो ॥१७१॥

दूहा

फूलाँ फलाँ मिषड़ियाँ, मेहाँ धर पड़ियाँह।
परदेसाँका सज्जणा पतीजूँ मिळियाँह ॥१७२॥
सालूरा पाँणी बिना रहइ बिकळा जेम।
ढाढी, साहिबसूँ कहइ, मो मन तो विण एम ॥१७३॥
पावस मास, विदेस प्रिय घरि तरुणी कुळमुग्ध।
सारँग सिखर, निसद करि, मरइ स कोमळ मुग्ध ॥१७४॥

बात चित्त में नहीं आती। यदि मर नींद सोती हूँ तो स्वप्न में भी नहीं दिखाई देते हैं।

१७१—जितनी (अभिलाषाएँ) मन में हैं उतना अगि शरीर होवे तो प्राणवल्लभ से बिछुड़ने की मन म विरक्ति न हो।

१७२—फूलों में फलों के लगने पर और मेहों के पृथ्वी पर पड़ने पर प्रतीति होती है उसी प्रकार हे परदेशी प्यारे तुम्हारे मिलने पर ही मैं पतियाऊँगी।

१७३—मेंढ़क जिस प्रकार पानी के बिना विकल रहते हैं हे ढाढी तू स्वामी को कहना कि उसी प्रकार मेरा मन तुम्हारे बिना व्याकुल है।

१७४—वर्षा का महीना है प्रियतम विदेश में है और शुद्ध कुलवाली प्रिया घर म है। शिखर पर मोर शब्द करता है यहीं कोमलांगी मुग्धा मर जायगी।

१७१—तेती (क) जेती (ख)। थाइ=माँहि (क)। तो=जइ (क ख)। वेदन न हुवै (क. ख ग)=मनि वैराग न। काय (क) कांई (ख)=थाइ। वल्लहां (क)।

१७२—मिसरीमाँ (क) बाफलीया (ग) मवारीयाँ (ख)। मिठड़ियाँ (ख)। मेह (ख)। धरि (ख) पड़ियाँ (ग)। साज्जणा (ख)। पतोजुं (ग) पतीजूं (ख)।

१७३—सालरा (ग) बिकपी (ग)।

१७४—विदिस (ख)। मी (ग)। घर (ख)। मसंद (ख) बसइ (ख)। मुग्धस (क)। मूंघ (ग) मुंध (ख)।

तुँही ज सज्जण, मित्त तूँ, प्रीतम तूँ परिलोय।
हियडइ भीतरि तूँ वसइ भावईं जाणि म जाँण ॥१७५॥
हूँ बलिहारी सज्जणाँ, सज्जण मो बलिहार।
हूँ सज्जण पग पानही, सज्जण मो गलहार ॥१७६॥
लोभी ठाकुर आवि घरि, काँई करइ विदेसि।
दिन दिन जोवण तन खिसइ, लाभ किसाकउ लेसि ॥१७७॥
बहु धंधाळू आव घरि, काँइ करइ वदेस।
संपत सघळी संपजे, श्रा दिन कदे सुदेस ॥१७८॥
अवसर जे नहिं आविया, वेळा जे न पहुत्त।
सज्जण तिण संदेसडइ करिज्यउ राज बहुत्त ॥१७९॥

१७५—तू ही सज्जन है तू ही मित्र है, तू निश्चय ही प्रियतम है। मेरे हृदयके अंदर तू बसता है, इस बात को तू चाहे मान या न मान।

१७६—मैं प्रियतम पर बलिहारी हूँ और प्रियतम मुझ पर बलिहार हैं मैं प्रियतम के पावों की जूती हूँ और वे मेरे गले का हार हैं।

१७७—हे लोभी स्वामी घर आओ। विदेश म क्या करते हो? दिन दिन यौवन और शरीर गल रहा है। कौन से लाभ प्राप्त करोगे?

१७८—बहुत धंधोंवाले (प्रियतम) घर आओ किसके कारण विदेश वास करते हो? यौवन की सब संपत्ति इसी समय संचित हो रही है। यह सुदिन फिर कब पाओगे?

१७९—जो अवसर पर नहीं आए और समय पर जो नहीं पहुँचे सो—उन सज्जन से संदेश कहना कि तुम फिर बहुत दिनों तक राज्य करते रहना।

१७५—तू ही (ग)। मित्र (क. ख घ)। परमाण (क) परतीय (ख)। हीयँ (क)। भीतर (ग)।

१७६—केवल (ख) में।

१७७—केवल (ख) में।

१७८—केवल (ख) में।

सोरठा

संभारियाँ सँताप, वीसारिया न वीसरइ।
काळेजा विचि काप, परहर तूँ फाटइ नहीं ॥१८०॥

दूहा

यहु तन जारी मसि करूँ, धूँआ जाहि सरग्गि।
मुझ प्रिय बद्दळ होइ करि, बरसि बुझावइ अग्गि ॥१८१॥
मरइ, पळट्टइ, भी मरइ भी मरि, भी पळटेहि।
दाढी हाथ संदेसडा, धण विलवंती देहि ॥१८२॥
दूहा दीसा मिसरइँ ढींघा दियाँ सिखाइ।
प्रीतम आगळि बीनती करिया इणि विधि जाइ ॥१८३॥

१८०—स्मरण करने से संताप होता है भुलाने से नहीं भूलते। कलेजा भीतर से कट रहा है। तुमने छोड़ दिया है पर वह तो भी नहीं फटता।

१८१—यह तन जलाकर मैं कोयला कर दूँ और उसका धुआँ स्वर्ग तक पहुँच जाय। मेरा प्रियतम बादल बनकर बरसे और बरसकर आग को बुझा दे।

१८२—मारवणी सँदेसे को कहती है बदलती है फिर कहती है, बदलकर फिर बदल देती है। इस प्रकार वह प्रियतमा विलाप करती हुई ढाढी के हाथ सँदेसे देती है।

१८३—उसने संदेसे के मिस उन ढाढियों के दोहे सिखा दिए और कहा कि प्रियतम के आगे इस प्रकार जाकर विनती करना।

१८०—केवल (ख) में।
१८ —केवल (ख) में।
१८१—मरै (क. घ) लवै (ख) मरि (ग. ख)। पलटै (क. ख ग) पलटी (ख)। मरै (क. ख ग घ ख)। मरि मरि (क) भी मर (ख)। पलटेइ (क. ख)। पंथी = ढाढी (ख) हाथि (ख)। सदेसडो (क) संदेसडो (ख)। बिलवंती (क. ख. ग. ख)। देइ (क. ख ग घ)।
१८३—दीसा (क. घ) दीसा (ग)। लखी (ख) लिया (ग)। सिखाय (ग)। आगळ (ख)। वेनती (ख)। कहिया (ग)। इण (ग)।

(ढाढ़ियों का नरवर आना)

श्रवण संदेसा साँभळे ढाढी किया प्रयाँण ।
मागणहार ज्युं आविया देसे साल्ह सुजाँण ॥१८४॥
पूगळसूँ तौ पुहकरा ढाढी कीया प्रयाँण ।
माळवणीका माणसाँ आप मिल्या अजाँण ॥१८५॥
ढाढी रातूँ चालिया, गाया बहु बहु भंत ।
माँगण-पंथी जाँणि कर, तब छाँडिया निचंत ॥१८६॥
मागणहार विचारियउ, ए मति उत्तिम कीध ।
साल्ह-महलाँ ढूकड़ा ढाढी डेरउ कीध ॥१८७॥
ढाढी गाया निसह भरि राग मल्हार निवाज ।
च्यार पहर मेहा मंडियउ, घण गुहिरउ सुरगाज ॥१८८॥

१८४—कानों से संदेशों को सुनकर ढाढ़ियों ने प्रयाण किया । इसके बाद वे याचक सुजान साल्ह कुमार के देश में आए ।

१८५—ढाढ़ियों ने पूगल से पुष्कर की ओर प्रयाण किया और मालवणी के मनुष्यों से छिपे हुए आ मिले ।

१८६—ढाढ़ी रातोंरात चल करके (नरवर में) पहुँचे और उन्होंने बहुत भाँति के गीत गाए । तब रक्षकों ने उन्हें याचक पथिक जानकर निश्चिंत होकर छोड़ दिया ।

१८७—याचकों ने विचारा—यह विचार उत्तम किया । साल्हकुमार के महल के नजदीक ढाढ़ियों ने डेरा किया ।

१८८—ढाढ़ियों ने रात्रिभर मल्हार राग रचकर गाया । चार पहर तक वर्षा की झड़ी लगी रही और बादल गंभीर स्वर से गरजते रहे ।

१८४—देसह (क) में ।

१८५—हुंता (ख) हुता (ग) । पहकरै (ख) । ढोला दिसै=ढाढी कीध (ग) । प्रयाण (क) प्रमाण (ख) ।

१८६—रातै (क) रातै (क ख)=रातूँ । चालिया (क ख) चाल्या (ग) । गावै (क ख) । बहु बहु (क ख) भाँति (ख) भाँति (ग) । पंथी (क) । जब तब (क ग) । छाँडीया (ख) छोड्या (क) । निश्चंत (ग) ।

१८७—विचारीय (ग) । उत्तम (ख) । ढाढियाँ=ढूकड़ा (ख) । डेरउ=ढाढी (ख) डेरा (क) डेरा (ग) ।

१८८—गाय (क ख) । निसाउ=निवाज (क ख) । झुहर (ग) । घवि (ग) । सु=सुर (क) । सिर गाज=सुर गाज (ख) ।

(ढोला से ढाढियों का मिलना)

मंदिरहूँती ऊतरया रवि ऊगंतइ वार।
माँगणहार बोलाविया पूछण तास विचार ॥१६४॥
कवण देसतइँ आविया, किहाँ तुम्हारउ वास।
कुँण ढोलउ, कुँण मारवी, राति मल्हाया जास ॥१६५॥
पूगळहूँता आविया, पूगळ म्हाँकउ वास।
पिंगळ राजा तास धू मेल्या थाँकइ पास ॥१६६॥
मारवणी पिंगळ सुधू, अपछरकइ उणिहार।
बाळपणइ परणी पछइ, भूल न कीन्ही सार ॥१६७॥

१६४—सूर्योदय के समय वह महलों से नीचे उतरा और याचकों को उनका विचार जानने के लिये बुलाया।

१६५—ढोला का प्रश्न—

तुम कौन से देश से आए हो? तुम्हारा निवास कहाँ है? कौन ढोला है और कौन मारवी है जिनके विषय में रात में तुमने गाया था।

१६६—ढाढियों का उत्तर—

हम पूगल से आए हैं। पूगल में हमारा निवास है। वहाँ पिंगल नाम के राजा हैं। उनकी पुत्री ने हम आपके पास भेजा है।

१६७—मारवणी पिंगल राजा की सुपुत्री है। वह अप्सरा के समान सुंदरी है। बचपन में विवाह होने के पीछे भूल करके भी आपने उसकी सुधि न ली।

१६४—मंदिर (ख)। हुआ (ख)। ऊगतै (ग)। सु वार (ख) माँगणहार (घ)। तेडाविया (ख)।

१६५—काची समसुध वेगोपा कहो बात सु प्रकास (ग)=कवण । किस दिसा सुं आवया (ख)। तुम्हारा (ख)। तास=वास (क ग. ख)।

१६६—हुंता (ग)। हुतो (ख)। आवीयो (ख)। वासु (क)। मेल्या (ख)।

१६७—कुमरी=मारवणी (ग)। राजवी=सुधू (ग)। री (ख)। अणुहार (ख) उणहार (ग)। बाळापणै (ख)। भूल=भूल (क)। न=न (क)।

दुज्जण वयण न संभरइ, मनाँ न वीसारेह।
कूँझाँ लाल बचाँ ज्यउँ, खिण खिण चीतारेह ॥१९८॥
सज्जण, दुज्जण के कहे भंजिक न दीजइ गालि।
हळिवइ हळिवइ छंडिवइ जिम जळ छंडइ पालि ॥१९९॥
संदेसे ही घर भरयउ कइ आँगणि कइ बार।
आवसि न आगम दीहड़ा, सोई गिणइ गँवार ॥२००॥
जळमाँहि वसइ कमोदणी, चंदउ वसइ आगासि।
ज्याह ज्यौँहीकइ मनि वसइ, सउ त्यौँही कइ पासि ॥२०१॥

१९८—दुर्जनों के वचनों को न सुनो और मन से मारवणी को मत बिसारो। कुंझ पक्षी जिस प्रकार (अपने) लाल लाल बच्चों को क्षण क्षण में याद करते रहते हैं उसी प्रकार (मारवणी तुमको) याद करती है।

१९९—हे सज्जन दुर्जनों के कहने से एकदम परित्याग नहीं कर देना चाहिए। यदि छोड़ना ही हो तो धीरे धीरे छोड़ना चाहिए जैसे पानी किनारे को छोड़ता है।

२००—क्या आँगन और क्या दरवाजे—सारा घर मारवणी ने संदेशों से भर दिया है। दिन अगणित लग गए हैं पर उनकी गणना गँवार (को छोड़ कर और कौन) करता है।

२०१—कुमुदिनी पानी में रहती है और चंद्रमा आकाश में रहता है परंतु फिर भी जो जिसके मन में बसता है वह उसके पास ही होता है।

१९८—पिसुणां चीनो वनि करसु-दुज्जण॰ (ख)। संभइ न (ग घ)। वीसारेहि (ख)। कूँझो (ग) कुंझी (ख)। चीतारेहि (ख)।

१९९—केवल (ख) में।

२००—संदेसा (ख)। आँगण (ख)। आवस (ख) लगै (ख)। से गिण (ख)। गर्वे (ख)।

२०१—मैं (ग)। कमोदिनी (ख ग)। आगळ कमोदिक जळ वसइ (ख) सोम कमोदणि जळ वसइ (ख)। चन्दा (ग) चन्दो (क, ख)। वसै (क, ख ग)। गगाह (ख) आकास (क, ग, घ) आकासि (ख)। जे (क ख ग घ) ज्याह (क, ख, ग) जीयाँ रै (ख)। मन (ख, ग, घ ख) वसी (क, ख ग)। [illegible] ख)। त्यह (क ख ग ख)। तीयाँ रै (ख)। पास (क ख ग घ ख, ख)।

चुगइ, चितारइ भी चुगइ, चुगि चुगि चितारेह।
कुरझी बच्चा मेल्हिकइ, दूरि थकाँ पाळेह ॥२०२॥

चीतारंती चुगतियाँ कुंझी रोवडियाँह।
दूराहुँता भुख पलइ, जऊ न मेल्हइ हियाँह ॥२०३॥

दिसि चाहंती सज्जणा, नेहाळंती मुख।
सा धण कुरझि बचाह ज्यउँ लंबी थई छै कुंख ॥२०४॥

चीतारती सज्जणाँ, जोहाळती मग्ग।
धण कुरझाइ बचाहि जिउँ लाँबा हुयापग्ग ॥२०५॥

आसालुब्धी हूँ न मुई सज्जन संगा सेह।
मारू सेकइ हत्थड़ा झोपे अंगारेह ॥२०६॥

२ २—कुंझ चुगती है फिर अपने बच्चों की याद करती है और चुग चुगकर फिर याद करती है। इस प्रकार कुंझ अपने बच्चों को छोड़कर भी (चुगने के लिए दूर जाने पर भी) दूर रहती हुई पालती है।

२ ३—चुगती हुई कुंझें अपने बच्चों की याद करके रो उठती हैं। दूर होते हुए भी (वे) तभी पाल सकते हैं जब कि उन्हें हृदय से न भुला दिया हो।

२ ४—वह मुग्धा प्रेयसी प्रियतम (के आने) की दिशा देखती हुई और प्रतीक्षा करती हुई कुंझ के बच्चे की तरह लंबी गर्दनवाली हो गई है।

२ ५—प्रियतम की याद करती हुई और उसका मार्ग देखती हुई प्रियतमा मारवणी के पैर कुंझ के बच्चे की भाँति लंबे हो गए हैं।

२ ६—प्रियतम के स्पर्शों द्वारा मिलन की आशा से लुब्ध हुई मारवणी

२ २—चीतारे (क ग)। कुंझी (ख) कुरझ (घ)। मेल्हीया (क) मेल्हपा (घ)।

२ ३—चुगंतीयां (ख) चुगति चढ (ग)। कुरझी (ग)। रोरवीयाह (ग घ) रोइबोयाह (क) रोइबियाह (ग)। दूरो (घ)। हुंत (घ) हुती (ख)। जो=जउ (ग ख) जउ (घ) मिळै (ग) मिळइ (घ) पुळे (ख)। तो (ग) तो (ख) तउ घ)=जऊ। मन मेल्हइ याद (ग)। मेल्हियाहियांह (घ)। दूर थकांही पलइवे को पण मेल्ही जाइ (?)।

२ ४—दिस (ख)। सज्जना (ख)। नेहाळती (क)। नेह उळंभा पंथ (घ)। सा धण (ख)। बचाह (ख)। कुंझ न पंख ज्युंज्यु मि (ग)। लांबी (घ)। भई (ख)। कुबंध=तुं कंध (घ)।

२ ५—केवळ (घ) में।

२ ६—केवळ (घ) में।

चंदमुखी हंसा गमणि, कोमळ दीरघ केस।
कंचन वरणी कामणी वेगउ आवि मिळेस॥२०७॥
ढोलइ मनि आरति हुई, सामळि ए विरतंत।
जे दिन मारू विण गया, दई न गीणै गिणंत॥२०८॥
मौंगणहारौं सीख दी ढोलइ विणहि स ताम।
सोवन मढ़ित सिंगार दे नौंख्यउ दळिद्र उधाम॥२०९॥
मौंगणहारौं सीख दे, आयउ मंदिर मौंहि।
ढोलइ मन आणंद भयउ मारूवणइ उछाहि॥२१०॥

नहीं मरी। इस प्रकार वह अपने हाथ मानों आधे बुझे हुए अंगारों में सेक रही है।

२०७—चाँद जैसे मुखवाली हंस जैसी गतिवाली, कोमल और लंबे केशोंवाली और स्वर्ण जैसे रंगवाली कामिनी से शीघ्र आकर मिलो।

२०८—यह वृत्तांत सुनकर ढोला के मन में लालसा उत्पन्न हुई और सोचने लगा कि मेरे जो दिन मारवणी के बिना गए विधाता उनको मेरे जीवन में न गिने।

२०९—ढोला ने उसी समय याचकों को विदा दी और सुवर्ण जड़े हुए शृंगार देकर उनका दारिद्र्य नष्ट कर दिया।

२१०—ढोला ने याचकों को विदा दी और महल में आया। ढोला के मन में मारू के मिलन के उत्साह से आनंद हुआ।

२०७—चन्दमुखि (ख)। गमण (ख)। कमळि=दीरघ (ग)। कंचण (ग)। वरणा (ख ग)। कामहा (क ग) कामणा (ख)। आव (ग) आई (ख)। मिळेसि (ख ग)।

२०८—मन (क ग)। आवर (ग) आरति (ख)। सांभळ (ख)। बिन (ग)। गणंत (क) गिणंत (ग)।

२०९—सोवण (ख)। जड़त (क)। सणगार (ख) सिणगार (क) सिणगरि (ख)। नौंख्यौ (क) नांख्या (ख) दळद्र (क ख) दलिद्र (ग)।

२१०—दुवौ (ख)। पछे (ख)। उछाह (ख)।

(ढोला की आतुरता)

मन सींचाणउ जउ हुवइ, पाँखाँ हुवइ त माँण ।
जाइ मिलीजइ साजणाँ, डोहीजइ महिराँण ॥२११॥
आडा डूँगर वन घणा, ताँह मिलीजइ केम ।
ऊछाळीजइ मूँठ भरि, मन सींचाणउ जेम ॥२१२॥
हउँ सु पंजर मन उहाँ, जय जाणइस्यइ कोइ ।
नयणाँ आडा वींझ वन, मनह न आडउ कोइ ॥२१३॥
जिउँ मन पसरइ चिहुँ दिसइ, तिम जउ कर पसरंति ।
दूरि थकाँ ही सज्जणाँ, कंठा ग्रहण करंति ॥२१४॥

(ढोला मारवणी संवाद)

मारवणी सिणगार सजि, आई वालँभ पास ।
मन संकोची पदमिणी, प्रीतम देखि उदास ॥२१५॥

२११—यदि मन बाज पक्षी हो और मान पाँखें हों तो महासमुद्र को उलाँघा जाय और प्रियतमा से जा मिला जाय ।

२१२—बीच में बहुत से पर्वत और वन हैं उस (प्रियतमा) से कैसे मिला जाय । बाज की भाँति मन को मूँठ भरकर उड़ा दिया जाय ।

२१३—मेरा शरीरपिंजर तो यहाँ है और मन वहाँ है । वास्तव में यदि लोग समझें तो यद्यपि आँखों के अवरोधी घने जंगल हैं परंतु मन का अवरोधी को नहीं ।

२१४—जिस प्रकार मन चारों दिशाओं म प्रसरित हो जाता है उसी प्रकार यदि हाथ भी प्रसरित होते तो दूर बसती हुई प्रियतमा को गले से भेंटता ।

२१५—शृंगार सजाकर मारवणी प्रियतम के पास आई परंतु प्रियतम को उदास देखकर वह पद्मिनी मन में संकुचित हो गई ।

२११—जौ (क य) । हुवै परांप) घ) । सज्जनां (ख) । डोकहीज (क) ।
२१२—वीच वन = वण घणा (क) । बीम बीम (घ) । तिहीं (ख) ।
२१३—कैवक (ख) में ।

२ ४—जै (ग) जिम (क) । चहुँ दिसां (घ) । त्युं (क) ज्यां (ख) जिम (घ)=जिम । कै=अर (क, ख) । पसरंत (क, ख) । दूर (क) । वसंता=वकी ही (क, ख) । साजन्या (ख) । ग्रहण न (क) । करन्त (क) ।
२१५—सजि (ख) । प्रिय पास म=सिणगार सजि (ग) । देखी प्रीय उदास (ख) देखी पिय उदास (ग) ।

> चिंता बंध्यउ सयल जग, चिंता किणहि न बद्ध।
> जे नर चिंता वस करइ, ते माणस नहिं सिद्ध ॥२२०॥
> मारवणी, तूँ मन-समी, जाणइ सहु विवेक।
> हिरणाखी हसिनइ कहइ, करउँ दिसावर एक ॥२२१॥
> गढ नरवर अति ओपता ऊँचा महल अवास।
> घरि कामिणि हरणाखियाँ किसउ दिसावर तास ॥२२२॥
> तंती नाद तँबोल रस, सुरहि सुगंधा चोह।
> आसण तुरि घरि गोरड़ी, किसउ दिसावर त्योंह ॥२२३॥

२२०—दोहा—

सारा जगत् चिंता से बँधा हुआ है पर चिंता को किसी ने नहीं बाँधा। जो मनुष्य चिंता को वश में कर लेते हैं वे मनुष्य नहीं किंतु सिद्ध हैं।

२२१—हे मारवणी तू मेरे मन में समा गई है तू सब बातों को समझती है। हे हरिणाक्षी, यदि तू हँसकर कहे तो मैं एक (बार) परदेशाटन करूँ।

२२२—मारवणी—

जिनके नरवर जैसा प्रसिद्ध गढ़ है, ऊँचे ऊँचे महल और घर हैं और घर में हरिणाक्षी कामिनी है उनके लिये देशाटन कैसा!

२२३—जिनको तंत्री का नाद, तांबूल का रस, सुरभित सुगंधि, घोड़े की सवारी और घर में सुन्दरी स्त्री (उपलब्ध है) उनके लिये देशाटन कैसा!

२२१—मारवणी—मरवी (ख. ग.)। मनि सूं साही (च) मनि सोसुही (ग) मनि संमुही (घ)—तूं मन समी। जाणई (क ख. ग। विवेक (क. ख ग घ. च)। हरिणाखी (क ख. ग घ. च) हिरणंखी (ख)। हसनें (ग)। करो (ग. घ. च) दिसावर (क. ख ग. घ. च छ)।

२२२—नरवर (ग)। हीमती (क) हीरनी (ख)। आवास (क. ग. ख)। घर (क ख ग.)। हरिणाखियां (ग) हरिणखीयां (घ)।

२२३—सुरह (ख) सुगंधी (ग)। त्याह (ख) त्याह (घ) आसणि (ख.घ.)। तुरीय (ख)। तुरी (ग)। पग मोजड़ी (ख. ग. घ)। करई (ग) दिसावर (ख) देसावर (ग)। तोह (ग)।

घरि बइठा ही आविस्यइ लाखे लियाँ तुरंग।
तिणिमाँहे लेस्याँ टालिमा, बाँका मुहाँ विरंग॥२२७॥
काछी करह विधूँभिया पड़ियउ मोहण आइ।
हरियाळी, जउ हसि कहइ आणिसि पवि विसाइ॥२२८॥
साहिब कच्छ म जाइयइ तिहाँ परेरउ संग।
भीमळ नयण सुरंग धण, भूलउ जाइसि संग॥२२९॥

२२७—मालवणी—

घर बैठे ही (व्यापारी) लाखों घोड़े लिए आ जायँगे। उनमें से हम चुने हुए बाँके मुँहवाले घोड़े लेंगे।

२२८—ढोला—

कच्छदेश के बड़ी पूँछवाले ऊँट घड़ी भर में मोहन आते हैं। हे हरियाली यदि तू हँसकर कहे तो उनको मोल लेकर यहाँ लाऊँ।

२२९—मालवणी—

हे स्वामिन् कच्छ मत जाइए, वहाँ पराया दुग (रास्य) है। वहाँ कजरारे नयनोंवाली सुंदरी स्त्रियाँ हैं जिनके साथ भूले हुए तुम चले जाओगे।

२२७—घरि (क) घर (ख. ग.) घूम (घ)। बैठा ही (क. ख ग घ च)। आविसी (ख घ) आवसी (अ) आवसी (ग. ज)। तुरै (क ख ग च)=लियाँ। तिण मैं (क. ख) तोहमि (ग) ताहि मैं (घ) त्याँ माहि (ज तिणि माँहें च)। लेमाँ (ख) लीमाँ (च) टालिवा (ख) टालमा (च)। चुणवा मोलसी (क चुणि मोलस्यइ (च)। बंक (च) बांक (घ) मुख (ग)।

२२८—काछीया (ग)। कर (ग) करहा (च) रह (च)। वे धूंभिया (ग) विधुंमीया (ख)। पड़ीया (च) पड़िया (ख)। आव (ख)। आइच (ग) लोपच (च)। हरियाली (ग)। जो (ख)। हसिन=जउ हासि (च)। मालवणी जइ तू प्रथम (च) हरयाली। आवा (क. ख ग. च) आयो (घ) आपो०य (घ)। (ख. ग. च)। पूप (च) विसाव (ग. ज.)।

२२९—सोवा (ख. च)=साहिब। कठि (ख) कच्छ (ग)। म जाइसि कछ दिसि (च) म जाइसि कच्छ देसि (घ)। वार्ळम म जाए कछचूरे (च)। ताह (क. ख ग घ) त्याह ज (अ)। परेर (क) परेरा (ख) परेहरा (म) प्रहरें (अ)। संगि (ख. च. ज. म)। सामल (ग) संगळ (ख) मिमळ (घ)। नैण (च) नयणि (म)। सुरंग (क ख ग घ च म)। धी (ग) धी (क) धीय (ग)=धण। भूली (क ख. ग घ. म)। जाइस (क. ख ग च. ज म)। संगि (च. घ)। जाइस भूली संग (ग च)।

सब सहसे एकोतरे सिरि मोतीहरि सुच्च।
मही निवासउ ऊतरइ, आणूँ एक अविंघ ॥२१०॥

मरजीवउ पाँणि थयउ सालूँ, ऊपटनइ जाइ।
दुख सहणा पुहरा दियण कंत, दिसावरि जाइ ॥२११॥

गयगामणी गूजर धरा आणौं दखणी चीर।
मनइ संकोडी मालवी सोहइ तुम्भ सरीर ॥२१२॥

सहसे लाखे साटविसु परिघल आणौं वेसि।
घरि बइठा ही प्रीतमा, पहिरेसि पहिरेसि ॥२१३॥

२१०—दोला—

समुद्र में उतरकर एक लाख एक सौ एक का एक अबिंध सुमेर का गुरु मुक्ताफल लाऊँगा।

२११—मारवणी—

हे साल्ह कुमार पानी के पनडुब्बे की कोई जीव उतरकर ला सकता। हे कंत, दुख सहने और पहरा देने के लिये क्या कोई परदेश जाता है!

२१२—दोला—

हे गजगामिनि, मैं गुजरात से तुम्हारे लिये दक्षिणी चीर लाऊँगा। हे मन में संकुचित होनेवाली मारवणी वह तुम्हारे शरीर पर शोभा देगा।

२१३—मारवणी—

हजारों लाखों के पहिनने के वस्त्र मैं इकट्ठे ही मँगा लूँगी और हे प्रियतम मैं घर बैठे ही पहनूँगी पहनूँगी।

२१०—सौ सहस्से (ख)। इकोतरें (ख)। सिर (ख)। सुधि (ख)। निवासो (ख)। उतरी (ख)। आण (ख) अबिधि (ख)।

२११—सान्हो पय (ग)-साल्ह कुमर। जाय (ख)। सहिया (ख) पोहर (ख)। करण दिसावर जाय (ख)।

२१२—गुजर (ख)। आणा (ख) आणी (प)। दिखदण (ख)। मालवणि (ख, म)। सोह (ख)। तुम्ह (ख)।

२१३—लाखरे (प)। सारविस (ख)। पखि सु बिच (ख)। बहोली (ख) पहिरूँ (प)।

गाहा

दीसइ विविहचरीयं जाणिज्जइ सयण दुज्जण सहावो।
अप्पाणं च कलिज्जइ, हिंडिज्जइ तेण पुहवीए ॥२१४॥
साहिब, रहण न राखिया कोड़ि प्रकार कियाह।
का थाँ कामिणि मन वसी, का म्हाँ सूँ रूसियाह ॥२१५॥
बलि मालवणी वीनवइ हूँ प्री, दासी तुज्झ।
का चिंता चित भाँतरे सा प्री, दाखउ मुज्झ ॥२१६॥

२१४—दोहा—

विदेशों में भ्रमण करने से अनेक प्रकार के चरित्र दिखाई पड़ते हैं सज्जनों और दुर्जनों के स्वभाव मालूम होते हैं और मनुष्य अपने आपको पहचान जाता है—इसलिये पृथ्वी पर भ्रमण करना चाहिए।

२१५—मालवणी—

स्वामिन्, तुम रोके नहीं रहते मैंने करोड़ों उपाय कर लिए। या तो कोई अन्य सुंदरी आपके मन में बसी है या हमसे नाराज हो गए हो।

२१६—फिर मालवणी विनय करती है—हे प्रियतम मैं तुम्हारी दासी हूँ। हे प्रिय तुम्हारे मन में क्या चिंता लगी है वह मुझसे कहो।

२१४—विवहचरीयं (क) चरीयं (ख) चरित्र (घ)। सै (ख) सजण (ग) सजणा (घ)। दुज्जण (ख) दुजन (ग. घ)। विसेसो (क. ग. घ)=सहावो। अपाणं (ख) अप्पाणं (ग)। आपाण (घ)। च (ख)=न। कलिजै (क. घ) कलिज्ज (ग)। हिंडीजै (क) हंडजै (ख)। पहवेण (ख ग)।

संस्कृत छाया—

दृश्यते विविधचरितं ज्ञायते सज्जनदुर्जनस्वभावः।
आत्मानं च कलय्यते हिण्ड्यते तेन पृथिव्याम् ॥

२१५—रही न पाखिया (ख)। कीया (क. घ) का कामिणयाम (क. घ) कामिण थारे (ग)। कै (ख)। मै (क. घ) कहीं (ख)। दुहवीया (घ)।

२१६—मालवणी इम (क. ख ग घ)=बलि मा । प्रीय (ग. घ) प्रीतु (घ)। तुज्झ (क ख. ग घ म)। जीव बसतरि (घ)=चित भं । चिंता चित भाँतरि वसइ (ग) चिंता चित भीतरि वसइ (घ) चिंता चित भांतरी चढ़ै (घ)। सो (घ)=सा प्री (क. घ) सोई (ग)। मै (क. ग. घ)=दाखउ (क. ख) कही दाखव। मुझ (ख. ग. घ)।

ढोला आमण दूमणउ, मरू तो सुहइ मीति।
हमथी कुण छइ आगळी, वसी तुहारइ चीति ॥२१७॥
सुणि सुंदरि, साचउ कहाँ, भाँजइ मनकी भ्रांति।
मो मारू मिळिवातणी खरी बिलग्गी खंति ॥२१८॥
माळवणीकउ तन तप्पउ, विरह पसरियउ अंगि।
ऊभी थी कड़ड़ह पड़ी, खाधी जाणि भुयंगि ॥२१९॥
छांटी पाँणी कुमकुमइँ चोळ्या वीझ्या वाइ।
हुई सचेती माळवी प्री आगळि बिललाइ ॥२४०॥

२१७—हे ढोला तुम उदास हो रहे हो मानो मित्र को खोज रहे हो। हमसे बढ़कर कौन है जो तुम्हारे चित्त में आ बसी है!

२१८—ढोला—

हे सुंदरी सुनो सच्ची बात कहते हैं कि जिससे तुम्हारे मन की भ्रांति दूर हो—मुझे मारवणी से मिलने की बड़ी अभिलाषा लगी है।

२१९—यह सुनते ही मालवणी का शरीर संतप्त हो उठा और उसके अंगों में विरह व्याप्त हो गया। वह खड़ी थी यह सुनकर धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ी मानो साँप ने काट खाया हो।

२४०—तब ढोला ने उसे गुलाब जल के छींटे दिए और पंखे से हवा की। मालवणी होश में आई और फिर प्रियतम के आगे कातर होकर रोने लगी।

२१७—केवल (ख) में।

२१८—सुंदर (ग)। सुंदरि सुणि (ग)। साचो (क) चोखउ (ख, घ) साचो (ख)। कहइ (ख, घ) कहीं (क)=कहाँ। भाजै (क ख) भाजै (ग) भांजी (ख) भाजो (घ)। की (क घ) रा (ग) नी (ख) री (अ घ)=की। भाँत (क) भांति (ख) भाँति (ख घ) भ्रांति (ग)। मारवणी (घ)=मो मारू। मिलवा (क ख घ)। विलग्गी (क) विलागी (ख) विलग्गी (ग)। खाँत (क) खांति (ख, घ)।

२१९—मनि विकळणी (ख घ) मनि विकळियइ (ग)=कउ तन तप्यो। पसरियो (क) पसरयो (ग) पसरायो (ख) पसारइ (घ) पसरियौ (ख) पसारयउ (घ)। अंग (क, ग घ)। कडइ (क) कांपि हुवि (ख) कड़इध (ग)। डसीय (ख) भुयंग (क, घ) भुयंग (ख)।

२४०—सीतल पाणी छंटि (घ) सीतळ पाणी छांटिया (अ घ) ताको वीझ्या वाउ (क) वाजी ढ़ली वाइ (ग) ढंढी वाढै वाय (घ) ताढो वीझो वाय (ख) वीझै वीझण वाय (ख) वीझ्यउ वीझइ वाइ (ख)। वाउ (ख) सचेतन (घ)। माळवणि (ख)। आगइ (ख घ) आगे (ख घ)। बिललाय (ख)।

(ग्रीष्म वर्णन)

मळ तत्ता लू सौंमुही जाम्भेला पंथियाह।
म्हाँकउ कहियउ जउ करउ घरि बइठा रहियाह ॥२४१॥
कहिय मालवणी तणइ रहियउ साल्ह बिमास।
उन्हाळउ ऊतारियउ, प्रगट्यउ, पावस मास ॥२४२॥

(वर्षा वर्णन)

गउखे बइठा एकठा मालवणी नइ ढोल।
अंबर दीठउ ऊनयउ, तिम संभार्यउ बोल ॥२४३॥

२४१—भूमि तपी हुई है लू सामने है हे पथिक, (यदि मारवणी के देश को गए तो) तुम जल जाओगे। जो हमारा कहना करो तो घर ही पर बैठे रहना।

२४२—मालवणी के कहने से साल्हकुमार दो मास तक रुक गया। ग्रीष्म ऋतु बीत गई है और वर्षा का महीना आया।

२४३—मालवणी और ढोला दोनों एक साथ झरोखे में बैठे हुए थे। उस समय ढोला ने आकाश (में बादलों) उमड़ा देखा त्यों ही मालवणी का वचन याद किया।

२४१—सामुहा (ग) सामुही (ष)। दाभे सु पहीवा (च) पहुचो मति पहियाउ (घ)। म (क)। तो घरि (क) तो घर (ख)—घरि (ग-ड) रह जुमह घरि बाउ (च घ)।

२४२—कहीयै (क ख ग घ)। रहियो (क. ख. ग. घ) बोलउ रहउ (च. ड)—रहियउ साल्ह। उन्हालो (क. ख) उन्हालो (ग)। ऊतारियो (क. ख. ग) ऊतरि गयो (ड) प्रगट्यो (क. ख. ग)।

२४३—गोख (क. ख. ग. घ) गोखॅ (ड) गोखइ (च)। सम (क. ग घ) बेठा (ख)। एकठे (ख)। न (क. ग. घ)। ने (ख)। आंबर (ख)। दीठो (क) देख (ख) देख्यो (ग) दिख्यो (घ) दीठी (च) दीठे (ड)। ऊनम्यो (क. ख. ग. घ. ड. च) ऊनवत (च) ऊँनम्यो (क-ग) तब (क. ख ग. घ ड) मनि (घ)—तिम। चितारयो (क. ख) चीतारयो (ग. घ)।

पगि पगि पाँणी पंथसिर, ऊपरि अंबर छाँह।
पावस प्रगट्यउ पदमिणी, कहउ त पूगळ जाँह ॥२४४॥
लागे सदा सुहाँमणउ, नस भर कुंभड़ियाँह।
जळ पोइणिए छाइयउ, कहउ त पूगळ जाँह ॥२४५॥
जिण रुति बग पावस लियइ धरणि न मेल्हइ पाइ।
तिण रुति साहिब वल्लहा काइ दिसावर जाइ ॥२४६॥
जिण रुति बहु पावस भरइ, बाबहियउ बासंत।
तिण रुति साहिब वल्लहा, को मंदिर मेल्हंत ॥२४७॥

२४४—ढोला—

पग पग पर मार्ग में पानी भर गया है, ऊपर आकाश में बादलों की छाया हो गई है। हे पद्मिनी वर्षा ऋतु प्रकट हुई अब कहो तो पूगल जावें।

२४५—रात भर कुंजों का शब्द सुहावना लगता है। सरोवरों का जल कमलिनियों से छा गया है। अगर कहो तो अब पूगल जावें।

२४६—मालवणी—

जिस ऋतु में बगुले भी वर्षा के कारण धरती पर पैर नहीं रखते हे प्यारे स्वामी भला उस ऋतु में कोई घर छोड़ता है।

२४७—जिस ऋतु में वर्षा खूब झड़ी लगाए रहती है और पपीहे बोलते हैं उस ऋतु में हे प्रिय स्वामिन् बताओ भला कोई घर को छोड़ता है?

२४४—पग पग (क ख ग घ)। मारगड़ा (ख, घ)=पंथ सिर। भरी बादल (क) बादल भरी (ख) बादलि छाँही (ग) गाढी बादल (घ ज, म)= ऊपरि अंबर। आयो (क ख ग घ ध) आयी (ज)। पदमिनी (ग) पदमणी (घ)। कहो (क ख ग घ) पूंगलि (ज)। जाँहि (घ)।

२४५—दोहाँ भर सुहामणा सरवर कुरझड़ियाँह।
जळ में पाइया छाइयाँ । (ग)

२४६—ण (घ) रित (ड)। पग (ग) धरण (ग घ ड)। मेले (ग ग)। जाय (क)। जिम (ग)। वाल्हिदा (ग)। को मन्दिर मेल्हइ जाइ (ग)। जिण रित मांभे मालवणि भी धरती न जाय (ड) जिण रुति बूँदाँ री सुर लागी केम रहाइ (घ)।

२४७—मुर (क)। बापीहा (ग) बोलंनि (ग)। बल्लहा (ग)। कोई मंदिर री (क, ख) (क) मंदिर री (ब)।

नदियाँ, नाळा नीझरण पावस चढिया पूर।
करहउ कादिम तिलकस्यइ, पन्थी पूगळ दूर ॥२५६॥

घति घण ऊनिमि आवियउ, झब्बूके रिठि झड़वाइ।
बग ही मला त बप्पड़ा धरणि न मुक्कइ पाइ ॥२५७॥

पावस मास प्रगट्टिर्इ, जगि आणंद विहाय।
बग ही मला जु बापड़ा धरण न मेल्हइ पाय ॥२५८॥

जिण रुति बहु बादळ झरइ नदियाँ नीर प्रवाह।
तिण रुति साहिब वल्लहा मो किम रयण विहाय ॥२५९॥

२५६—वर्षा ऋतु में नदियाँ नाले और झरने पानी से भरपूर चढ़े हुए हैं। ऊँट कीचड़ में फिसलेगा। हे पथिक पूगल बहुत दूर है।

२५७—घने बादल उमड़ आए हैं। अत्यंत शीत झड़ी की वायु चल रही है। बेचारे बगुले ही भले जो पृथ्वी पर पैर नहीं रखते।

२५८—वर्षा ऋतु का महीना आ गया जगत् आनंदपूर्वक कालयापन करता है। (इसमें तो) बेचारे बगुले ही भले जो इन दिनों पृथ्वी पर पैर नहीं रखते।

२५९—जिस ऋतु में बहुत से बादल झरते हैं नदियों में पानी वेग से बहता है उस ऋतु में हे प्रिय नाथ तुम्हारे बिना मेरी रात कैसे बीतेगी?

२५६—पावी (च) पांणी (छ)=पावस। चढीयौ (क. ग. घ) चढीया (च)। करहो (क ख ग घ)। कागद (ख) कादम (क ग घ) कादे (छ) मधु चलै (क ग) किम चलै (ख घ) किम हिसै (छ)=तिलकस्यइ। साहिब (क ख ग घ) पाल्ही (छ)=पंथी। पंथव (छ)=पूगळ। दूरि (च)।

२५७—घन (ख)। ऊँनमि (ख)। घणघ (घ)। रिति (छ) रितु (घ)। झड़पड़ (?) वाव (ख)। ति (छ)। मूक (छ)। पाव (च)।

२५८—प्रगटीयौ (क ग. घ)। जग (घ) जग (ग)। आनंद (ग)। ज (क घ)। भला=भलाइ (ग)।

२५९—बरस (क घ)=बहु। झुरै (क. ग घ)। वल्हा (ग घ) रयण विहाई (च)।

च्यारइ पासइ घण घमुह, बीजळि खिवइ अगास ।
हरियाळी रुति तउ भली, घर संपति, पिउ पास ॥२६०॥
जिण दीहे पावस झरइ बाबीहउ कुरळाइ ।
तिणि दिन कउ दुख वल्लहा, मइँ क्यउँ सहणउ जाइ ॥२६१॥
जिण दीहे पावस झरइ, समनेहाँ सुख होइ ।
तिणि दिन वयरी वल्लहा सेज न मुक्कइ कोइ ॥२६२॥
महि मोराँ मंडव करइ मनमथ अंगि न माइ ।
हूँ एकलड़ी किम रहउँ मेह पधारउ माइ ॥२६३॥

२६०—चारों ओर घने बादल हैं। आकाश में बिजली चमकती है। ऐसी हरियाली की ऋतु तभी भली है जब कि घर में संपत्ति हो और प्रियतम पास न हो।

२६१—जिन दिनों वर्षा की झड़ी लगी रहती है और पपीहा करुण शब्द करता है, हे प्रियतम, उस दिन का दुःख मुझसे कैसे सहा जाय?

२६२—जिन दिनों वर्षा की झड़ी लगी रहती है और समान प्रेमवाले प्रेमियों को सुख होता है उन दिनों हे वैरी प्रियतम सेज को कोई नहीं छोड़ता।

२६३—पृथ्वी पर मोर मंडप बनाकर (पिच्छ फैलाकर) नाच रहे हैं और काम अंगों में नहीं समाता। मैं अकेली कैसे रहूँगी—अरी माँ! आप मेह के इन दिनों में पधार रहे हैं।

२६०—घन (ग)। बीजळ (ग, घ)। आकास (क घ)। अंगास (ग)। मीय (क) मीउ (ग)।

२६१—जिण रुति पावस बहु बरसै (क ग) जिण रुति बहु पावस झरै (ग) जिण रुति बहु पावस बरसै (घ) झरइ (ख)। बाबहिया (क, ग, घ) बाबीहा (क ग घ)। करळाय (ख)। दिन का (क, ग घ) दुख का (घ)=दिन कउ। वाल्हा (घ) वहला (ग) मे (क) मो (ग ग, घ) को (ख)=मइँ। सहण (क, ग घ) सहिणा (ग)। जाय (ख)।

२६२—पावस झरइ (ख)। सुखइ (घ)। सनेहां (ख)। होय (ख) तिणि (घ)=दिन। बैरिर (ख घ)=वैरी। कोय (ख)।

२६३—मोर मंडा (घ) मंड मार (ख)। तोडव (घ) मंडप (ग)। मन्मथ (घ)। अंग (ख)। एकली (घ) एकेली (ख) एकली (घ)। रहूँ (ख)=रहउँ।

मेहाँ वूठाँ मन बहळ थळ वाळा जळ रेस।
करसणपाका कण खिरा तद कुण चलण करेस ॥२६४॥
जिण दाहे वण हर धरइ नदी खळक्कइ नीर।
तिण रिति ठाकुर किम चलइ धण किम बाँधइ धीर ॥२६५॥
जिण दीहे पावस झरइ वाजइ ठाढा वाय।
तिण रिति मेल्हे मारुवणि प्री परदेस म जाय ॥२६६॥
काळी कंठळि वादळी वरसि ज मेल्हइ वाव।
प्री विण लागइ बूँदड़ी जाँणि कटारी घाव ॥२६७॥
ऊचउ मंदिर अति घणउ आवि सुहावा कंत।
बीजळि खिवइ झबूकड़ा सिहराँ गळि लागंत ॥२६८॥

२६४—मेह बरसने से मन बहुत हो गया है। पृथ्वी जल के कारण शीतल हो गई है। खेती पक गई। अन्नकण पककर गिरने लगे। बताओ ऐसे समय में कौन गमन करेगा।

२६५—जिन दिनों वन हरियाली धारण करते हैं और नदियों में पानी खळखळ करता हुआ बहता है उन दिनों स्वामी कैसे चलेंगे? और प्यारी कैसे धैर्य धारण करेगी?

२६६—जिन दिनों में वर्षा की झड़ी लगी रहती है और ठंडी हवा चलती है उस ऋतु में मारवणी को छोड़कर हे प्रिय परदेश मत जाओ।

२६७—काली कठुलीवाली बदली बरसकर हवा को छोड़ रही है। प्रियतम के बिना बूँदें ऐसी लगती हैं मानो कटारी के घाव हों।

२६८—यह महल अत्यंत ऊँचा है हे सुहावने कंत आओ (बैठो)-(रहो) बिजली झबक झबककर शिखरों के गले लग रही है।

२६४—केवल (ट) में।
२६५—केवल (ट) में।
२६६—केवल (ट) में।

२६७—काळी (घ ज)। वाव (क ग. ब)। र—व (ब)। मेल्हे (ब) वाय (ग. ब ज)। आज धराऊ ऊमट्यो वाग्यो सीयळ वाय। पुस्तक ब वाली पीव बिण (ब)। बूँद ज वाली प्रीय बिय—थी बूँदड़ी (ग)। बूँद ब वाली प्रिय बिना (ब)। मारी (ब)। जाँण (ज)। घाव (ग घ ज)। केवल (क, ग ब ज) में।

२६८—ऊँचा (क)। घणा (क)। आव (क, ग. ब)। बीजळि (क, घ)। खिवै—खिवइ (क)। सेहरां (क, ब)। सिहरा (ग)। गळ (ग. ब ज)।

मालवणी, म्हे चालिस्याँ म करि हमारा ताव।
का हसि करि म्हाँ सीख दे, चालिस्याँ-मौंझिम रात॥२७८॥
जिणि दीहे पाळउ पड़इ, टापर तुरी सहाइ।
तिणि रिति बूढी ही कुरइ, तरणी केम रहाइ॥२७९॥
जिणि दीहे पाळउ पड़इ टापर पड़ तुरियाँह।
तिणाँ दिहाँरी गोरड़ी दिन दिन लाख लहाँह॥२८०॥
जिणि रिति मोती नीपजइ सीप समंदाँ माँहि।
तिणि रिति ढोलउ उम्महइ ईम को माणस नाहि॥२८१॥

२७८—ढोला—

मालवणी (अब) हम चलेंगे। हमारी चिंता मत करो। या तो हँसकर हमें विदा दो या हम आधी रात को चल पड़ेंगे।

२७९—मालवणी—

जिन दिनों पाला पड़ता है और घोड़ों की रक्षा टापर ही से होती है, उस ऋतु में बूढ़ा भी (पति बिना) विकल हो जाती है। भला युवती कैसे रह सकती है!

२८०—जिन दोनों पाला पड़ता है घोड़ों पर टापर पड़ता है उन दिनों की प्यारी प्रति दिन लाखों (का लाभ) पाती है।

२८१—जिस ऋतु में समुद्रों के अंदर सीपों में मोती निपजते हैं, उसी ऋतु में ढोला (चलने की) उमंग युक्त हो रहा है। भला ऐसे भी कोई मनुष्य जाता है!

२७८—चालस्याँ (ग)। न=म (क. घ)। हसि करि सीख दे=हसि करि म्हाँ सीख दे (क)। माझिम (ख)। रासि (घ)। केवल (क. ख ग. घ) में।

२७९—पाळि (च)। सदे तुरियाँह=तुरी सहाई (ख) तुरी सुहाय (च)। रित (ज)। रहाय (ज)। नवि रहइ (घ) किम रहवाय (च)।

२८०—जिण (क. ख ग घ)। दति=दीहे (क. ख) दतिदी=दीहे (ग घ)। पी वाळो पड़ै=पाळउ पड़इ (क. ख)। पाला पड़इ (क. ख)। पाला पड़इ (च. ब)। तुरी सहाइ=पड़ तुरियाँह (ख. ब)। सदे तुरियाँह (घ) तुरी सहाय (क) तुरी सहाइ (ग)। लाँह (क. ख ग. घ)। तियाँ (ब) दीहा री (च)। दिहाड़ा (क) दिहाँकरि (घ)। अहाय (क) लहाह (ग)।

२८१—जिण (क. ख घ. ज)। जिम (ग)। रुति (क. ख ब) रुत (ग) रित (ज)। सीपाँ (च)। समुंदाँ (क. ग घ) समुंद्राँ (च)। तिण (ज)। रिन (ज)। कोई=को (ज)। मीतम=माणस (ज)। जाव (ज)। तिण रुति साहीब चलाइ कोइ मंदिर मैरिह आइ (क. ख. ग. घ में तृतीय पंक्ति)। ईम=मैरिह (क) मेरहै (ग)।

जिणि दीहे तिली त्रिफुइ, हिरणी म्हालइ गाभ ।
तींह दिहाँरी गोरड़ी पहरव म्हालइ आभ ॥२८२॥
जिणि दीहे पालउ पड़इ मायल त्रिफइ तिलाँह ।
तिणि दिन आए प्राहुणा कळियळ कुरझड़ियाँह ॥२८३॥
जिण रित नागन नीसरइ दाझइ वनखंड दाह ।
जिण रित मारवणी कहइ कुँण परदेसाँ जाह ॥२८४॥
दिन छोटा, मोटी रयण खाटा नीर पवन्न ।
तिण रित नेह न छोडियइ हे वाल्हम वडमन ॥२८५॥

२८२—जिन दिनों तिल की फली फटने लगती है और हरिणियाँ गर्भ धारण करती हैं उन दिनों की (प्रिय वियोगिनी) नारियाँ मानो गिरते हुए आकाश को झेलती हैं ।

२८३—जिन दिनों कड़ाके का पाला पड़ता है और तिलों की फलियाँ फटने लगती हैं तथा कुंझ पक्षी करुण शब्द करते हैं (क्या) उन दिनों पाहुने होकर (कहीं) जाया जाता है ।

२८४—जिस ऋतु में साँप भी (बिल से) नहीं निकलते और दावानल वनखंड को जला देता है मारवणी (अपने प्रिय से) कहती है कि उस ऋतु में कौन विदेश जाता है ।

२८५—मारवणी कहती है कि हे उदारचित्त वालम, जिस ऋतु में दिन छोटे और रातें बड़ी होती हैं तथा पानी और पवन ठंडे हो जाते हैं उस ऋतु में स्नेह नहीं छोड़ना चाहिए ।

२८२—तिली (क ख ग)। तिरै (क) कोरह कुई=तिही त्रिफइ (ग)। हरिणी (क ग)। गब्भ (ग)। कामिनी=गोरड़ी (क) कामणी (ग)। पड़े ती (ग)। अब्भ (ग)। केवल (क. ख. ग म) में।

२८३—मापा (ग)। तिरै (ग)। कळोमळ (ग) कुंझड़ीयांह (ग)। केवल (ग ख) में।

२८४—रत (ट)। साप (ट)। दाझ=दाह (ट)। तिण=जिण (ट)। सजण विदेस म जाय=कुँण परदेसाँ जाह (ट)। (ख. ट) में।

२८५—खाटो (ख)। पवन (ख)। तब (ट)। छोडीए (ट)। सुण=हे (ट)। वालंभ (ट)। मन (ख)। केवल (ख. ट) में।

उत्तर आज स उत्तरउ, पल्लांखियाँ दरक्क।
दहिसी गात कुँवारियाँ, थळ आळो बळि भक्ख ॥२८९॥
उत्तर आज स उत्तरउ, सीय पड़ेसी भट्ट।
सोहागिणि घर आँगणइ, दोहागिणियाँ घट्ट ॥२९०॥
उत्तर आज स उत्तरउ पाळउ पड़िसी रीठ।
दोहागिणि घट सौंमुहउ, सोहागिणियाँ पीठ ॥२९१॥
उत्तर आज स उत्तरउ पाळउ पड़इ असेस।
दहिसी गात नु विरहिणी जाका प्री परदेस ॥२९२॥

२८९—आज उत्तर (पवन) शुरू हो गया है—प्रवास को जाते हुए (प्रेमियों का हृदय) फट जायगा। यह स्थल को जलाकर और आक को जलाकर कुमारिकाओं का गात जला देगा।

२९०—आज उत्तर (का पवन) चलने लगा है—खूब शीत पड़ेगा—सुहागिनी (पतिसंमुखा) के आँगन में और दुहागिनी (पतिविहीना) के शरीर में।

२९१—आज उत्तर (का वायु) उत्तर आया है—खूब कड़ाके का पाला पड़ेगा—पतिविहीना के हृदय के सामने और पतिसंयुक्ता के पीठ पीछे।

२९२—आज उत्तर उत्तर आया है घना पाला पड़ रहा है। आज जिसका पति परदेश है (ऐसी) विरहिणी का शरीर जल जायगा।

२८९—उत्तरो (क)। बळिसौ (ख) बळिसौ (ग)। पलांखीया (क.ख.ग)। दरक (क. ख ग) दरक (म) ऊपडिया सी दरक (न)। दहसै (क) दहिसै (ख) दहिस्ये (ग)। गात (क)। विरहणी-कुँवारियाँ (ग)। कुवारीयाँ (ख)। थळि बेकी पळ=थळ आळो बळि (क)। थिड=बळि (ख)। बळि=बळि (ख)। भख (क. ख ग)। पर्यो जखेसो भख (ख)।

२९०—बळिसो (ख)। घर=घट (ख)। घट (ख ग)। सौहागण (ख)। रे=वर (क. ख)। दोहागण (ख)। घर (ख)।

२९१—पड़सी (ख)। समहड (ग) सौमुहो (ख)। सी=री (ख)। रीठ=पीठ (ख)।

२९२—बळीसो (क)। बळिसौ (ख)। पड़सी (ख)। दहिस्यो (क) दहिसै (ख)। गात=गात ह (ख) विरहिणी ख)। कुँवारियाँ=विरहिणी (ख)। जाको (क)। प्रीय (क)।

उत्तर आज स उत्तरउ, पाळउ पडइ तरत ।
मारूवणी इम वीनवइ, हूँ किम जीयूँ कंत ॥२६३॥
उत्तर आज स उत्तरउ, पाळउ पडइ रवंद ।
का वासंदर सेविपइ, कइ तरुणी, कइ मंद ॥२६४॥
उत्तर आज स उत्तरउ ढूकटिया सारेह ।
बेहाँ बेहाँ परहरउ एकलाँ मारेह ॥२६५॥
उत्तर आज स उत्तरइ, झूपडिया सी कोट ।
काय वदेसइ पोयणी, काय कुँआरा पाट ॥२६६॥
उत्तर आज स वजियउ ढूकठियइ केकाँण ।
कौंमिण कौंम कमंडि ज्यउँ हर लागउ सींचाण ॥२६७॥

२६३—आज उत्तरी हवा चलने लगी है। चोरों का पाला पड़ रहा है। मारवणी इस प्रकार विनय करती है कि हे प्रियतम, (ऐसी ऋतु में तुम्हारे वियोग में) मैं कैसे जिऊँगी?

२६४—आज उत्तर का पवन उत्तर आया है। चोरों का पाला पड़ रहा है। (इस समय) या तो अग्नि का सेवन करना चाहिए या तरुणी का या मद्य का।

२६५—आज उत्तर का पवन उत्तर आया है। शिरीषों को सुखा दिया है। जो दो दो हैं उनको छोड़ देता है परंतु जो अकेले हैं उनका वध करता है।

२६६—आज उत्तरी पवन चलता है। शीत के गढ़ के गढ़ उमड़ आए हैं (अर्थात् कड़ाके का शीत पड़ रहा है)। या तो कमलिनी को जला देगा या कुँआरे युवाओं को।

२६७—आज उत्तरी पवन चला है—(नायकों के) घोड़े निकल पड़े हैं (?)—जो (उत्तरी पवन) बाज की पिंडुकी (पक्षी) के समान कामिनी पर बाज होकर झपटेगा।

२६३—मारवणी (ख) जीवसो (ख)। जीवो (ग)।
२६४—रवद (ख)। वैसानर (ख)। कै = कै (ख)। केवल (ख. ग) में।
२६५—ढूकटा (क ख)। सरोस (ख) सारै (क)। बेहा बेही (क)। परहरी (क ख)। एकेलाँ (ख)। मारेस (ख) मारै (क)। केवल (क.ख ग) में।
२६६—केवल (क) में है।
२६७—उत्तरी (ग) वजियो (ख)। ढूकटीया (ग) ढूकठीया (ख)।

उत्तर आज स उत्तरइ, आमइ लहर असाधि।
संजोगणी सोहामणइ विजोगणी अंग दाधि ॥२९८॥
उत्तरदो भुईं जु उपडइ, पाळइ, पवन भयाँह।
हरणाखी, हस नइ कहइ, सौम्हो साजे आइ ॥२९९॥
माह महारस समय सब, अति उलटइ अनंग।
मा मन लागा मारवण, देखण पूगळ अंग ॥३००॥
उत्तर आज न जाइयइ, जिहाँ स सीत अगाध।
ता भइ सूरिज दरपतउ ताकि चलइ दखिणाध ॥३०१॥

२९८—आज उत्तरी पवन उत्तर आया है। (उसकी) अथाह लहरें चल रही हैं। (वे) संयोगिनी को सुहावनी लगती हैं, (परंतु) विरहिणी के अंगों को जला देती हैं।

२९९—ढोला—

उत्तर दिशा की भूमि की ओर को अत्यंत पाला और पवन उमड़ रहा है; हे मृगनयनी मालवणी! तुम हँसकर कहो तो उस शत्रु (की भाँति तीखे शीत और वायु) के सामने जावें।

३००—आज माघ में सबको मदन का महारस (अर्थात् नया छाया हुआ) है और (हृदयों में) काम खूब उमड़ रहा है। मेरा मन मारवणी में तथा पूगल नगर को देखने में लगा (लालायित) है।

३०१—मालवणी—

आज उत्तर दिशा की ओर न जाइए जहाँ अत्यन्त शीत पड़ता है। सूर्य भी उसके डर से संभला हुआ दक्षिण की ओर बल करके चलता है।

केकाण (क)। कीकाण (ग)। कमीज (क. ग)। च (घ)। हुइ=हर (ग)। ही=हर (ग)। जाती (ग)।

२९८—केवल (क) में।

२९९—केवल (क) में।

३०—माहा (ज)। मास कामिय अर्बे=महारस समय सब (ट)। अत (ट)। उलटि (ट)। पुगल (ट)। अंग (ज)। केवल (ज. ट) में।

३०१—जाइजो (क. ख)। जिह (ज)। पड़ सिल (ख. ग) अर्थो त (ख)=जिहाँस। ता तै (ज)। सूरज (ख)।

सुणि करहा, ढोलउ कहइ, साची आखे जोइ।
आगर जेहा झूँपड़ा तउ आदरिजे मोइ॥३१४॥
सुणि ढोला, करहउ कहइ, साँमि-तणउ मो काज।
सरखी-पेट न लेटियइ मूँध न मेळूँ आज॥३१५॥

(मारवणी-करहा-संवाद)

मारवणी मनि ऊमणी आयो करह विमासि।
रइबारी पूछी करी आई करहा पासि॥३१६॥
मारवणी करहइ कन्हइ ए वीनती करेइ।
साहिब मारू ऊमह्या, खोड़उ होइ रहेइ॥३१७॥

३१४—ढोला कहता है—

हे ऊँट सुन सोच विचार कर सच कहना यदि (तू) झोंपड़ी को भी महलों जैसा मानता है (कष्टों को भी सुख मानने के लिये प्रस्तुत है) तो मुझे अंगीकार करना (मेरे साथ चलना)।

३१५—ऊँट कहता है—

हे ढोला सुनो यह मेरे मालिक का काम है जो आज तुम्हें मुग्धा से न मिला दूँ तो मैं ऊँटनी के पेट में नहीं लेटा।

३१६—मन में उदास हुई मारवणी विचारकर ऊँटशाला में आई और रैबारी से पूछकर ऊँट के निकट आई।

३१७—मारवणी ऊँट के आगे यह विनती करने लगी कि (हे ऊँट) मेरे स्वामी मारवणी के लिये उमंगयुक्त हो रहे हैं तू लँगड़ा होकर रह जा।

३१४—सुण (प)। झोंपे (ख)। मोह = कोइ (प)।

३१५—सुण (प)। साँम (ख)। लेटियै (क ग ख. म) मेरा (ग) मेल्हूँ (ख)।

३१६—आई (ग)। मभारि=विमासि (प)।

३१७—करहा प्रेम समीपगत्ता (ख) करहा तो कोड मरो (ग)=मारवणी करहइ कन्हइ। ए मारवणी=मारवणी (ग)। करहा (प)। यह (क)। करीं (क) करेस (म)। म्हाँ को म्हारो कोड (ग) कहीपड हुइ कोड (ख) करज एक करीं (ख)=ए वीनती करेइ। ढोला=साहिब (ग) ढोलउ (ग) मारौ=मारू (ग)। ऊमह्यो (ग) ऊमहयो (ख) ऊमाहियो (क) ऊमाहयउ (ख) उमाहीयो (ख)। खोड (ख)। हाथ (ग)। रहइज (ख) रहेइ (ग) रहन (क-ख) रहेस (म)।

जोकइ हूँ तउ डाँमिस्यउँ, बाँध्यउ मूआ मरेसि।
मे बिहुँ सज्जण रळि मिलसउ, हूँ किम दुक्ख सहेसि ॥११८॥
जोकइ हउँ तउ डाँमिस्यउँ बँधियउ मूआ मरेह।
जाउँ ढोला-रइ सासरइ सफळा मूँग चरेह ॥११९॥
बाँधसूँ बडरी छाँहड़ी, मीरूँ नागरबेल।
डाँम सँमाळूँ करहला, चोपड़िसूँ चपेल ॥१२०॥

११८—ऊँट जवाब देता है—

लँगड़ा बन जाऊँ तो दागा जाऊँगा। (फिर एक स्थान पर) बँधा हुआ मूआ मरूँगा। तुम दोनों प्रेमी तो हिलमिल जाओगे। बीचमें पड़नेवाला मैं दुःख सहूँगा।

११९—यदि लँगड़ा बन जाऊँ तो दागा जाऊँगा। (फिर एक जगह) बँधा बँधा मूआ मरूँगा। यदि ढोला के ससुराल जाऊँगा (तो वहाँ) फलियों सहित मूँग चरूँगा।

१२—मालवणी कहती है—

(यदि तू दागा जायगा तो) तुझे बड़ की छाया में बाँधूँगी नागरबेल खाने को दूँगी हे ऊँट, तुम्हारे दाग (के घाव) को (अपने हाथ से) सम्हालती रहूँगी और उसपर चमेली का तेल लगाऊँगी।

११८—खोडो (क ख ग घ)। खोडो (च)। हुवाँ—हूँ (क. ख. घ च)। तौ (क. ख ग. घ) तो (च)। डांमिजां (ख) डांमिस्युं (च) डांमिज्यां। (क. ग) डंमिसूं (घ)। बाधो (क ख. घ) बांधो (ग) बाधा (च)। मुआ (च)। मरीस (क ख ग घ च) मरांड (घ)। बेहुं (घ) बैठ (ग) बे (च)। साहिब बेहुं (क)—बिहुं सज्जण। साहिब बैठ (घ)। सजन (च) इसि मिळी (क. ख ग.) इस मिल्यो (च)। बिचिबिच (क ख ग च)=बिचि। मैं बिच (ज)। दूख (घ)। सहां (ग) सहांह (क ख ज च) बिहुं बिचि दूख सहड (घ)।

११९—जास्यां माळ देस मैं हरिया मूंग चरांह (च)।

१२०—बांधूं (क. ग घ. ख च)। पी=री (ज)। बेलि (च)। संमाळो (घ)। हाथ मूं—करहला। चोपड़िस्यां (ख) चोपडि चोपडि (घ)। चंपेलि (ज)। चोपड चोपड तेल (ञ)।

रह रह, सुंदरि माठ करि, हळफळ लग्गौ काइ।
जाँम विरावइ करहलउ, सेंकतां मरि जाइ॥३२१॥
करहा, तूँ मनि रूअडउ, सेज्याँ करइ विछोह।
अजइ कुमारउ बप्पडा नहीं ज काँमिणि मोह॥३२२॥
आपहो भली हेकली करही करइ कलाप।
कहियउ लोपाँ साँमिकउ सुंदरि, लहौं सराप॥३२३॥

३२१—ऊँट उत्तर देता है—

अरी सुंदरी बस बस चुप कर। क्या (ऐसी) व्यग्रता लगी है? जो ऊँट (अपने को) दगावे तो (वैरी) सबके देखते भी मर जायगा।

३२२—मालवणी कहती है—

हे ऊँट तू मन का बड़ा अच्छा है। संयोगी जनों में विछोह करवाता है, (तू क्या जाने) तू बेचारा अभी कुँवारा है। अभी नारी का मोह तुझे नहीं है।

३२३—ऊँट जवाब देता है—

अपनी ऊँटनी को मैंने अभी अकेली छोड़ी है वह विलाप कर रही है (परंतु क्या करूँ) यदि मालिक का कहा न मानें तो हे सुंदरी शाप के भागी हों।

३२१—रहि रहि (क ग घ)। सुंदर (क ख ग)। मठ (ख)। लागउ (क) लैगही (ख)। हळफळ=लागउ (घ)। लगि (ख) लगी (ग)। कोइ (घ) काय (ग) गाइ (ख)। तिण बळ जाम्या न जाय (घ)। दिखावै (ख) दिखारिसी (घ)। करहिलौ (ख) मारैं=करहलउ (ग)। सींमीतौ=सैकंतां (ग)। सांमा भी (घ)।

३२२—रूअडो=रूअडउ (ख)। सुणि करहा सुंदरि कहै=करहा तूँ मनि रूअडउ (ख ग)। करहा सुणि सुंदरि कही (क)। सेज्याँ (ख) सेजां (ग घ)। अजैस=अजइ (ग घ) अजीया (ख)। अजूँ (क) अजावि (ख)। कुमारो (ख) कुमारो (म.)। कुमारो (घ)। तू फिरइ (ख घ) रहै=बप्पडा (ख)। तु (ख)। कामणि (ख) कामण (घ ख)। काँमणि रा=ज कामिण (ख) काँमण रो (ख)। मोहि (ख)। मोहि=मोह (ग)।

३२३—मेल्ही (ग घ) छोडी (ख अ. म. घ)। एकली (क ग घ. ज म.)। विलाप (ख ज घ)। तिण कहीयउ=कहियउ (ख) न करै (क ख ग घ म.) लोपइ (ख)=लोपाँ। साँमरो (ख घ) साँमिको (क ख ग)। लहै (ख ग घ)। करहा तो नहिं पाप (ख)=सुंदरि लहौं सराप। ढोलउ मारू मौहियउ तूँ छोड़ो ठौड़ भाग (घ में द्वितीय पंक्ति)।

सुंदरि, मो सारउ नहीं, कुँमर परदेसी मन्न।
साहिब चित्त उपाड़ियउ जिम केकाँणाँ कन्न ॥१२४॥
करहा सुणि सुंदरि कहइ, मिहर करउ मो आप।
साहिब म्हारउ ऊमह्यउ, हिव सगळो तो लाज ॥१२५॥
भाई कहि बतळावसूँ नागरवेल चरेस।
हळ हळ करहा, कुमर-नइ मत ले जाय विदेस ॥१२६॥
करहा मारवणी कहइ, खोड़उ होइ रहेस।
जे ढोलउ राखण करइ डाँमण तुम्झ न देस ॥१२७॥
सुंदर, थाँकै ही कहइ खोड़उ होय रहेस।
जउ ढोलउ डाँमण करइ डाँमण मुझ्झ म देस ॥१२८॥

१२४—हे सुंदरी अब मेरे वश की बात नहीं कुमार मन में परदेश ही। स्वामी ने चित्त को (यहाँ से) उखाड़ कर लिया है जिस प्रकार घोड़े कान को उठा लेते हैं।

१२५—सुंदरी कहती है कि हे ऊँट सुनो आप मुझ पर दया करो, मेरे स्वामी (चलने को) उमंगयुक्त हुए हैं अब तुम्हें ही मेरी लाज है।

१२६—मैं तुझे भाई कहकर पुकारूँगी नागरवेल चरने को दूँगी। अरे अरे ऊँट, कुमार को विदेश मत ले जा।

१२७—मारवणी कहती है कि हे ऊँट, लँगड़ा बन जा। यदि तू ढोला को रखने की (चेष्टा) करेगा तो तुझे दागने नहीं दूँगी।

१२८—ऊँट कहता है—

हे सुंदरी तुम्हारे ही कहने से (मैं) लँगड़ा बन रहूँगा (परंतु) यदि ढोला दाग लगाने की करे तो (तुम) मुझे दागने मत देना।

१२४—परदेसि (ख)। मनि (ख) मन (ग, घ)। चित्त=चित (ख)। चित (घ)। उपु (क, ग घ)। कन (ख ग घ)।

१२५—करहो (ख)। सुण (ख)। सुंदर (ग घ)। महिर (ग घ)। आप (ख)। म्हारो (ख)। लाज (ख)। केवल (ख) (ग) (घ) में।

१२६—केवल (ख) में।

१२७—केवल (ख) में।

१२८—केवल (ख) में।

साइधण ऊभय साँभळइ ऊभी आँगण छेह।
काजळ सउ भेळा करी नाँखी नाँख भरेइ ॥१३७॥
डूँगर केरा वाहळा, ओछाँ-केरा नेह।
वहता वहइ उतावळा, झटक दिखावइ छेह ॥१३८॥
पिय ओछाँरा पहवा जेहा काती मेह।
आडंबर अति डंबरइ आस न पूरइ तेह ॥१३९॥
थे सिध्धावउ, सिध करउ, बहु-गुणवंता नाह।
सा हीया सतखंड हुइ जेण कहीजइ जाह ॥१४०॥
हिव मालवणी वीनवइ, हूँ प्रिय, दासी तोहि।
हिव थे चढिस तु चालिया सूती मेल्हे मोहि ॥१४१॥

१३७—यह प्रेयसी, आँगन के किनारे पर खड़ी हुई, चलने की बात सुनती है और काजल को आँसुओं में मिलाकर, गिरा गिराकर फिर (आँखें आँसुओं से) भर लेती है।

१३८—मालवणी—

पहाड़ी नाले और ओछे पुरुषों का प्रेम करते समय तो बड़ी तेजी से चलते हैं परंतु तुरंत ही छेह (अंत) दिखा देते हैं।

१३९—आडम्बरहीनों के प्रियतम ऐसे होते हैं जैसे कार्तिक के मेघ जो आडंबर तो बहुत दिखाते हैं पर आशा पूरी (कभी) नहीं करते।

१४०—हे बहुत गुणोंवाले नाथ आप सिधारें सिद्धि करें। यह हिया तो दो टुकड़े हो जाय जो यह कह कि आप जावें"

१४१—अब मालवणी ढोला से विनय करती है कि हे प्रियतम, मैं तुम्हारी दासी हूँ। (यदि जाना ही है तो) अब आप मुझे सोती हुई छोड़कर (यात्रा को) चढ़ना।

१३७—केवल (ख) में।
१३८—केवल (ख) में।
१४०—केवल (ख) में।
१४१—हिवि (घ)। थोय (ग)। हिवइँ=हिव थे (ग)। चलेउ=चढिस (ग)। चढिस (घ)। चढि मैं (ख) = चढिस तु। सेन=सेल्हे (ग, घ)।

सजि कसस्या करि बाग महि चढ़ियउ साल्हकुमार।
करह करक्कउ श्रवण सुणि निद्रा जागी नार ॥१४६॥
ढोलइ करह चढ़ावियउ करि सिणगार अपार।
जास्यौं तउ मिळस्यौं वळे, नरवर कोट जुहार ॥१४७॥

(मालवणी का विलाप)

धावउ धावउ हे सखी, को दाँवणि को लाग।
साहिब म्हाँकउ चालियउ, जउ कउ राखइ आज ॥१४८॥
ढोलउ चाल्यउ हे सखी, वाज्या विरह निसाँण।
हाथे चूड़ी खिस पड़ी ढीला हुया सँधाण ॥१४९॥

१४६—कसने कसकर और हाथ में लगाम लेकर साल्हकुमार सवार हुआ। उस समय ऊँट का शब्द कानों से सुनकर नारी नींद से जगी।

१४७—ढोला ने बहुत शृंगार करके ऊँट को चढ़ाया (और नरवर की ओर देखकर बोला) यदि (जीते) लौट आए तो फिर मिलेंगे, ए नरवर के दुर्ग प्रणाम।

१४८—इधर ढोले को जाता हुआ जानकर मालवणी कहने लगी—
हे सखी दौड़ो दौड़ो कोई दामन पकड़ो और कोई लगाम पकड़ो हमारा प्रियतम चल पड़ा—यदि कोई आज उसको रख सके!

१४९—हे सखी प्रियतम चल दिए, विरह के नगारे बज उठे। (इस सत्य प्रभाव के कारण) हाथों से चूड़ी खिसककर गिर पड़ी और शरीर की संधियाँ शिथिल हो गईं।

१४६—कर (ग) गुह (ख) कसको (ख)।

१४७—ढोलो (ग)। करहो (घ)। ढोलो पुगळ हालीयौ=ढोलइ करह चढ़ावियो (ख)। कर (ख)। सिंगार (घ)। आराम=सिणगार (ख)। जाइस्यां (ख)। मेळस्यां (ख)। मौ बेगाही आवस्यां (ख)= जास्यौं तउ मिळस्यौं वळे। नरवर (ख)। कोटि (ख)।

केवल (ख ग. घ. च.) में।

१४८—धावो (ग घ)। के (ख ग) किम (ख)। दामणि (ख) दामणि (ख) दमणो (घ)। के (ख ग) किम (ख)। म्हाँको (ग) म्हारो (ख)। चालीयो (ग) उमाठी (ख)। मारवणी उमाहीयउ (ख ग. घ)=साहिब म्हाँकउ चालियउ। सो का (ख)=जउ कउ। कोई (ख. घ) की ढोलो (घ)=के को। राखै (ख ग घ. च ख) राखो (घ)।

१४९—चाला (घ)। विरह (ख)। नीसाण (ख)। हाथा (घ)। चूड़ी (घ)। खिर (ख)। खिसि (ख)। हुवा (ख)। पराण (ख)= संधाण।

सखि हे राजिंद चालियउ पखाँळियाँ दमाम ।
किंहि पुनवंती साँमुहउ, म्हाँ उपराठउ श्राज ॥५५०॥
सज्जण चाल्या हे सखी पडहउ वाग्यउ ड्रंग ।
कोंही रळी वधाँमणाँ कोंही अँवळउ श्रंग ॥५५१॥
सज्जण चाल्या हे सखी, वाज्या विरह निसाँण ।
पालंगी विसहर भई, मंदिर भयउ मसाँण ॥५५२॥
ढोलउ चाल्यउ हे सखी बज्या दमाँमा ढोल ।
मालवणी दीने तज्या, काजळ तिलक, तँबोल ॥५५३॥
[सज्जण चाल्या हे सखी, पाछे पीळा पग्ग ।
नव पाड़ा नगर बसइ, तो मन सूँनउ जग्ग ॥५५४॥]

५५०—हे सखी बाजा के बाजे बजाते हुए किसी पुण्यवती के सामने और मुझसे मुख मोड़कर राजन् आज चल दिए ।

५५१—हे सखी प्रियतम चल दिए, दुर्ग पर दुंदुभी बज उठी कहीं तो आनंदोत्सव हो रहे हैं और कहीं अंग व्यथापूर्ण हो रहे हैं ।

५५२—हे सखी प्रियतम चल दिए, विरह के नगारे बज उठे, आज पालकी मेरे लिए साँप रूप हो गई और महल श्मशान जैसे हो गए ।

५५३—हे सखी ढोला चल दिया दमामे और ढोल बजने लगे । मालवणी ने काजल तिलक और तांबूल तीनों को त्याग दिया ।

५५४—हे सखी साजन चले (उनके) पीछे (धूल उड़ने से) पीली पांति बन गई है । नगरी के नौ मुहल्ले (चौक) बसते हैं तो भी मेरा मन आज सूना है ।

५५०—राजंद (घ)। पखाळिया (ग) पखाळीया (घ)। कही (ख)। पुन्यवती (ख) पुण्यवंती (ग)। सामुहा (ख ग)।

५५१—सज्जण (ख)। पडई (ख) वाजै (ख)। वधामणो (ख)। कही (ख)। कांई (ख)। अवळा (क)।

केवल (क) (ख) (ग) में।

५५२—सज्जण (ख)। विमर (क)। केवल (क, ख) में।

५५३—केवल (ख) में।

५५४—केवल (ड) में।

सज्जण चाल्या हे सखी, दिस पूगळ दोड़ेह।
सायधण लाल कबाँण ज्यउँ ऊभी कड़ मोड़ेह ॥१५५॥
[सज्जण चाल्या हे सखी, वाजइ वाजारग।
जिण वाटइ सज्जण गया, सा वाटडी सुरंग ॥१५६॥]
सज्जण चाल्या हे सखी, नयणे कीयो साग।
सिर साड़ी गळि कंचुवउ, हुवउ निचोवण जाग ॥१५७॥
[सज्जण चाल्या हे सखी, सूना करे अवास।
गळेय न पाणी ऊतरइ हिये न मावइ सास ॥१५८॥
चाळ सखी, तिण मंदिरइँ, सज्जण रहियउ जेण।
कोइक मीठउ बोलड़इ लागो होसइ तेण ॥१५९॥
डाळ वळाम्यउ हे सखी, भींणी ऊडइ खेह।
हियडउ बादळ छाइयउ, नयणा टबूकइ मेह ॥१६०॥]

१५५—हे सखी साजन पूगल की ओर दौड़ चले। मद भरी लाल कमान की तरह खड़ी हुई कटि को मोड़ रही है।

१५६—हे सखी सजन चले। सुरंगे बाजे बजने लगे। प्रियतम जिस मार्ग से गए हैं वह मार्ग सुदर है।

१५७—हे सखी साजन चले नेत्रों ने शोक किया। सिर की साड़ी और गले की कंचुकी (आँसुओं से इतनी भीग गई हैं कि) निचोड़ने के योग्य हो गई हैं।

१५८—हे सखी घर को सूना करके प्रियतम चल दिए। (अब) गले से पानी नीचे नहीं उतरता और हृदय में श्वास नहीं समाता।

१५९—हे सखी, उस महल में चलो जहाँ प्रियतम ने निवास किया था; कोई एक मीठा बोल (अभी भी) उसमें लगा हुआ होगा।

१६—हे सखी ढोला चल दिया। मीनी मीनी धूल उड़ रही है। हृदय (-रूप आकाश) बादलों से छा गया है और नेत्रों से मेह टपक रहा है।

१५५—सज्जण (ज)। चालीया (ग)। साइ (ज)। जिम। (ग)। कर (ट) करइ। केवल (ज) (ट) में।

१५७—सज्जन (ग)। चाल्या। (ग) कीया (ग)। साड (क ग)। कंचवो (ग) कंचुवो (क घ)। हुवो (क घ)। निचोवण (ग)। केवल (क ग ग घ) में।

लाँबी छाँब चटक्कड़ा, गय लगावइ आळ ।
ढोलउ अजे न बाहुड़इ प्रीतम मो मन साल ॥४१०॥
रहि नीगमाँणी, माठ करि सयणाँ वयण म कथ्थ ।
ज्याँ पग दीधा पागड़इ वाग ज्याँहीँ हथ्थ ॥४११॥
प्यारा, पाखर पेम की, तोंह ज पहिरी अंगि ।
वयण लटक्कड़ वाग्ग ज्यूँ, कोइ न लागइ अंगि ॥४१२॥
साहिब, तुम्मह सनेहड़इ, प्रीति-तणी पति जाइ ।
जळ छिण ही आवइ नहीं, मच्छ मरइ छिणमाँह ॥४१३॥

४१०—उधर पीछे मारवणी विलाप करती है—
लंबी छुरी की मार से वह गति को हत करता है। मेरे मन का प्यारा नालवकुमार (ढोला) अभी तक नहीं लौट रहा है।

४११—इतने में सुआ आ जाता है और कहता है—
बोलती न रह चुप कर, प्रियतम से वचन न कह। जिन्होंने रिकाब पर पैर दिए लगाम भी उन्हींके हाथ में है (लौटना उन्हीं के हाथ में है)।

४१२—पुनः मारवणी विलाप—
हे प्यारे तुमने प्रेम का केवल कवच धारण कर लिया है। (मेरे) वचन बाण की तरह आघात करते हैं परंतु तुम्हारे अंग में कोई नहीं लगता।

४१३—हे नाथ, तुम्हारी प्रेमरीति से प्रीति की प्रतीति चली जाती है। मछली क्षण भर में मर जाती है परंतु जल को क्षण भर के लिये भी उसका ज्ञान (ध्यान) नहीं होता।

४१०—लंब (क ष)। चटक्का (ग ग ब)। गउ (ग)। बाहु (क. ग ष)। सालइ (क ग) सलइ (ष)।
केवल (क ख ग ष) में।

४११—निमाँणी (अ)। मनि (अ)। कथि (अ)। दीना (अ)। बागाँ (अ)। हाथाँ (अ)।
केवल (ग अ) में।

४१२—प्यारा (म)। सयणा (म)। प्रेमची (म)। काइक (क ष)। पहेरी (ष) पैहरी (अ)। अंग (क. ग ग. ष म)। [illegible]अंगि (म)। लटक्कै (ग म.) लटकै (क ग अ) लटकी (ष)। लगता चाहिए=लटकइ बाँण ज्यूँ (म)। ताम=काइ (क. ष)। वाग=बाग (ब)। मब=अंगि (म)। अंग (क. ग. ग ब म)।
केवल (क ग ग ष. म. म) में।

४१३—गमदइ (अ) सनेहड़ा (क ष)। प्रीत (ग. ष)। पत (ष)। प्याय (अ)। माप (ग ग)। माँहि (क. ग. अ)। माह (ष)।

साँवळि काँइ न सिरजियाँ, मारू मंझ वळाँह।
प्रीतम चाढ़त काँवड़ी, फळ लेवंत करांह ॥४१४॥
साँवळि काँइ न सिरजियाँ अंबर लागि रहंत।
वाट चलंताँ साल्ह प्रिय, ऊपर छाँह करंत ॥४१५॥
सींगण काइ न सिरजियाँ, प्रीतम हाथ करंत।
काठी साहँत मूठि-माँ, कोडी कासी संत ॥४१६॥

४१४—हे विधाता तूने मुझे मरु देश के रेतीले स्थल के बीच में वबूल क्यों नहीं बनाया (जिससे कि पूगल जाते हुए) प्रियतम डाली काटते और मैं उनके हाथों के स्पर्श का फल पाती।

४१५—(हे विधाता) मुझे श्यामल बदली क्यों नहीं बनाया जिससे मैं आकाश में लगी रहती और मार्ग चलते हुए प्रिय साल्हकुमार पर छाया करती।

४१६—(हे विधाता) मुझे नरसिंहा क्यों नहीं बनाया जिससे प्रियतम हाथ में लेते मुट्ठी में कसकर पकड़ते (और मैं) खूब प्रसन्न रहती।

केवल (क. ख. ग. घ. ङ) में।

४१४—सांवळ (ख ग घ ङ) सांवण (क)। सरजियां (ग)। कांइय सरजी चांवली (ज)। काँइम सरजी चंबली (ट)=साँवळि सिरजियाँ। मारुआ =मारू (ट) सरहीं=मारू (ठ)। मंझ (ख)। वोलो=प्रीतम (ख ठ)। ढोवत (ज) मोहत (ठ) वाहत (क. ग)। खल=फळ (घ)। चरकावंत=फळ लेवंत (ख ट)। करहां (ट)। पाव परहरियाँ=फळ.. करांह (ञ)। कर (ठ)।

४१५—सवळी (क ग. ख. ङ)। सिरजीया। (ल) सिरजई (ङ)। कांवर सरजी वादळी = साँवळि सिरजियाँ (ज)। लागी आभ=अंबर लागि (क. ख. ङ)। लागी साथ वहंत=अंबर.. रहंत (ख ग)। रहंति (ङ)। करी प्रीतम कावड़ी = वाट.. प्रिय (क. ख. ग. घ. ङ)। सिहियाँ (ख ङ) सिहियां (ग) सिहुवां (क) विहुयां (घ)=ऊपर।

४१६—सींगवि (ग. घ)। सरजियां (ग. घ)। साहत (ख)। हाथमें (क घ ङ)। मूंठमें (ग)। काढे (ङ)।

हित बिण प्यारा सज्जणाँ, छळ करि छेतरियाह।
पहिली लाड लडाइ कर, पाछइ परहरियाह ॥४१७॥
[आवि विदेसी वल्लहा छळ करि छेतरियाह।
मतवाळा री बाटक ज्यउँ पिय नइँ परहरियाह ॥४१८॥]
आडा वनखँड दे गया परवत दीन्हा पूठ।
हियड़ा ऊपर राखती कदे न कहती ऊठ ॥४१९॥
सज्जण अळगा तौं लगइ, जौं लग नयणे दिट्ठ।
जब नयणाँहुँ बीछुड़े तब उर मंझ पइट्ठ ॥४२०॥
[सज्जण देसंतर हुआ, जे दीसंता नित्त।
नयणे तो वीसारिया तूँ मत विसरे चित्त ॥४२१॥]

४१७—हे प्रेमविहीन प्यारे सज्जन तुमने छल करके (मुझको) ठग लिया। पहले लाड़प्यार करके (फिर) पीछे छोड़ दिया।

४१८—हे परदेशी प्रियतम आकर छल करके तुमने मुझे ठग लिया। मतवाले की सुराही की तरह तुमने पान करके मुझे छोड़ दिया।

४१९—(प्रियतम) जंगल के जंगल बीच में दे गए, पर्वतों को पीछे छोड़ गए। मैं उन्हें सदा हृदय पर रखती और कभी नहीं कहती कि उठो।

४२०—सज्जन तभी तक अलग (रहते) हैं जब तक आँखों से दिखाई देते हैं। जब वे आँखों से बिछुड़ जाते हैं तो हृदय में प्रवेश कर जाते हैं।

४२१—जो प्रियतम सदा दिखाई देते थे वे देशान्तर को चले गए। नयनों ने तो उन्हें बिसार दिया पर हे चित्त, तू उन्हें मत बिसारना।

४१७—हेत्त (क) हत ब (घ) हित व (ज)=हित बिण। सज्जणां (ग) सजणां (ज)। कर (घ) छेतरिया (ख ग घ ज)। लाड=लाड (घ)। नेहडै (ख)। ल्योडिया=लडाइ कै (क. ग. ख) पीछैं (ख) पीछ (घ)। पारहरिया (ख ग) परिहरिया (ज)।

४१८—यह दूहा केवल (ज) में है।

४१९—साजन चाल्या है मन्नी डूंगर दिया ज पूठ।
दीप पर दुसराबती (ग)।
केवल (ज ख) में।

४२०—सज्जन (क. ग. घ)। ओळगा (क. घ ख) नयणे (ग)। जबर्या (क. ख)। दीठ (क. ख)। नयणां (ग)। माँहि (ख)। उमर अन्तर मंझ (घ)। केवल (क ख. ग. ख) में।

हित बिण प्यारा सज्जणाँ, छळ करि छेतरियाह।
पहिली लाड लडाइ कर पाछइ परहरियाह ॥४१७॥
[आपि विदेसी वल्लहा, छळ करि छेतरियाह।
मदवाळा री बाटक ज्यूँ पिव मईं परहरियाह ॥४१८।]
आडा वनखँड दे गया परबत दीन्हा पूठ।
हियड़ा ऊपर रालतो कदे न कहती ऊठ ॥४१९॥
सज्जण अळगा तौं लगइ जौं लग नयणे दिट्ठ।
जब नयणाँहूँ वीछुड़े, तब उर मझ पइट्ठ ॥४२०॥
[सज्जण देसंतर हुआ जे दीसंता नित्त।
नयण तो वीसारिया तूँ मत विसरे चित्त ॥४२१॥]

४१७—हे प्रेमविहीन प्यारे सज्जन तुमने छल करके (मुझको) ठग लिया। पहले लाडप्यार करके (फिर) पीछे छोड़ दिया।

४१८—हे परदेशी प्रियतम आपने छल करके तुमने मुझे ठग लिया। मतवाले की सुराही की तरह तुमने पान करके मुझे छोड़ दिया।

४१९—(प्रियतम) जंगल के जंगल बीच में दे गए, पर्वतों को पीछे छोड़ गए। मैं उन्हें सदा हृदय पर रखती और कभी नहीं कहती कि 'उठो'।

४२ —सज्जन तभी तक अलग (रहते) हैं जब तक आँखों से दिखाई देते हैं। जब वे आँखों से बिछुड़ जाते हैं तो हृदय में प्रवेश कर जाते हैं।

४२१—जो प्रियतम सदा दिखाई देते थे वे देशान्तर को चले गए। नयनों ने तो उन्हें बिसार दिया पर हे चित्त, तू उन्हें मत बिसारना।

४१७—नेहज (क) हेत न (ख) हित ज (ज)=हित बिन। सज्जणाँ (ग) सजणाँ (ज)। कर (ख) छेतरिया (ग. ग. ब ज)। लाड=लाड (ख)। नेह=मैं (ब)। पहेलिया=लडाइ कै (क. ग ख) पीछैं (ज) पीछ (ख)। परहरिया (ग. ग) परिहरिया (ज)।

४१८—यह दूहा केवल (ज) में है।

४१९—सज्जन चाल्या है मन्नी डूंगर दिया ज पूठ।
दीर्घ पर दुमरावनी (ग)।
केवल (ज. ग) में।

४२०—सज्जन (क. ग. ख)। आँख्याँ (क. ग. ब) नयणे (ग)। नयणाँ (क. ब)। दीस (क ब)। नयणाँ (ग)। मांहि (ग)। उमर अन्दर मांय (ख)।
केवल (क ग. ग. ब) में।

करहा, पाणी खंच पिउ, त्रासा घणा सहेसि।
छीलरियाँ ढूंकिसि नहीं भरिया केथि लहेसि॥४२६॥
देस विरंगउ ढोलणा दुखी हुआ इहाँ आइ।
मनगमता पाम्या नहीं, ऊटकटाळा खाइ॥४२७॥
करहा, नीरूँ जउ चरइ, कंटाळउ नइ फोग।
नागरवेलि किहाँ लहइ थारा थोबड़ जोग॥४२८॥

४२६—ढोला ऊँट से कहता है—

हे ऊँट (अब) छककर पानी पीले। (आगे) प्यास बहुत सहनी पड़ेगी। छीलर गड्ढों पर (तो) तू ढूकेगा नहीं और भरे हुए (तालाब वहाँ) कहाँ पावेगा?

४२७—ऊँट कहता है—

हे ढोला यह देश विरंगा है। यहाँ आकर के दुखी हुए। मन को रुचनेवाला (घास) नहीं मिलता; ऊँटकटारा खाते हैं।

४२८—ढोला उत्तर देता है—

हे ऊँट, यदि चरे तो ऊँटकटारा और फोग चरने को दूँ। तेरे इस थोबड़े (मुँह) के लिए यहाँ नागरबेलि कहाँ पाऊँगा?

४२६—खांचि (ग) खीच (ग)। पीव (ग. ज) पी (ख) पिव (क घ)। पिम (ग) त्रासा (क. ग. ब)। घणी (ख)। सहेस (क ग ब)। छीलरियाँ (क. ग घ)। छीलरिए (ग) छीलरले (घ) छीलरिय (ज)। ढूकसि (क ग. ब घ) ढूकसि (ख)। सरवर (ग) सरवर (क ग ब) भरिया। केम (ग)। इह भरीया न (ज)। भर भरिया (घ)=भरिया केथि लहेस (क ग. ब)।

४२७—देसे (ब)। विरागड (घ)। विषा (ज)। विविक-हौ (घ)। पाम्ये (ब)। कंथारा (ज घ)। खाय (ज)।

केवल (ग. घ) में।

४२८—करीलो (ब)। चर = व (ग. ब) चर (ज) चा (ग) = मैं। मई (ज) मइ (घ)। का कटहला (क ग घ) कटा कारइ (ग)=किहां चरइ। नागरवेला खाए (क ग) नागर वरणा खाग (घ)=थारा थावर जोग। थावरो (ख) थारा थावर (ज)। आगि (ब ज)। नागर वेलां का कारहला नागर भरा खाग=द्विगीय पंक्ति (ह)।

करहा, नीरूँ सोह पर, वाट चलंतड पूर।
झाल विसूरा नीरतो, सो मय रही स दूर ॥४२९॥

करहा, इण कुळिगाँमडइ, किहाँ स नागरवेलि।
करि कइरों ही पारणउ, मइ दिन यूँही ठेलि ॥४३०॥

सुणि ढोला, करहउ कहइ, मो मनि माटी आस।
कइरों कूँपळ मवि चरूँ, सयण पडइ पचास ॥४३१॥

करहा, देस सुहामणउ, जे मूँ सासरवाडि।
आँव सरीखउ आक गिणि, आळि करीरों म्हाडि ॥४३२॥

४२६—हे ऊँट, जो चरने को दूँ वही मार्ग में पूरे वेग से चलता हुआ चरता जा। जो हाथ ओर किशोरे चरने को देती थी वह चम्पा अब बहुत दूर रह गई।

४३ —हे ऊँट इन छोटे से गाँवों में नागरवेल कहाँ? यहाँ करील का ही कलेवा कर। ये दिन इसी तरह से बिता दे।

४३१—ऊँट कहता है कि ढोला सुनो मेरे मन की आशा मोटी है—चाहे पचास बन्धन पड़ जायें पर करील की कोंपलें नहीं चरूँगा।

४३२—हे ऊँट, यह देश बड़ा सुहावना है क्योंकि यह मेरी ससुराल है! यहाँ आक को आम गिनो और करीलों के झाड़ों को छोड़।

४२६—जो चरे चालविचारो मार—सोई ..पूर (ब)। मेल्ही—राही स (ब)।
केवल (ट. ब) में।

४३०—ए = इण (ब)। कुळगामडो (ज)। नहींव = किहांस (ज)। क (ज)। इसन्यइ (ज) पूँईमि (ज)।
केवल (च. ब) में।

४३१—केवल (च)।

४३२—सुहावणी (ब)। जो (ब)। मो (ब)। चल तू = वै यू (ब) चाड (च)। सरीचा (ज)। करहा सीस म म्हाडी (ब) नागर वेली चालि (ब) रह करि सीस म म्हाडि ब) = चालि म्हाडि।

डेढ़ बरसरी मारवो, त्रिहुँ बरसाँरिउ कंत।
अणरत जोवन बहि गयउ, तूँ किउँ जोवनवंत ॥५२०॥

(मारवणी-रूप-वर्णन)

गति गंगा, मति सरसती, सीता सील सुभाइ।
महिलाँ सरहर मारुई अवर न दूजी काइ ॥५२१॥
नमणी खमणी, बहुगुणी सुकोमळी सु सुकच्छ।
गोरी गंगा नीर ज्यूँ मन गरवी तन अच्छ ॥५२२॥

५२०—(जब विवाह हुआ था तब) मारवणी डेढ़ वर्ष की थी और (उसका) पति तीन वर्ष का था। उसका यौवन चला गया। तब तू यौवनपूर्ण कैसे रह गया?

५२१—मारवणी गति में गंगा, बुद्धि में सरस्वती और शील स्वभाव में सीता है। महिलाओं में मारवणी की बराबरी करनेवाली दूसरी कोई नहीं है।

५२२—नम्र विनयशीला क्षमाशीला अनेक गुणोंवाली सुकोमल, सुंदर कक्षवाली गंगा के पानी के समान गौरवर्ण गर्वयुक्त मनवाली और सुंदर शरीरवाली है।

५२०—ढोल (ख. ग. ज) ढोला (क. म) त्रिजउ (घ)। मारवी (ख. ग) मारुइ (घ. ज)। त्रिहुँ (क. ख. ग) तिह (ज)। बरस (ख. ग. ज)। किम (ख)=बहि। किम था जोवन हुइ गई (ख) किम अबा जोवण हुँ गई (ग) किम था जोवण बहि गई (ज)=अणरत जोवन बहि गयउ। क्यों (ख) किम (घ) क्युं (ग) किम तू (घ) क्युं तूं (ज)=तूं किउँ।

(ट) में इस दूहे का पाठांतर इस प्रकार है—

(पे) ढोला तीन बरसरा धन बारे का मास।
मारू किम बुढी भई जो पे ढोल बरास॥

५२१—गत (ट) सरसती (ग) सुहाइ (म) सुभाय (ग)। मेहला (ट)। उणिम (ग) दीठी (क. घ) दीठी (म)=सरहर। मारुवी (क) मारवी (ख. ग)। ककम उणिम (ग. घ) ककिमें उणिम (क)=महिलाँ सरहर। ककिमें उणिम (घ)=अवर न दूजी। और (ट)=अवर। महियल जेही मारवी कल्में बीजी न काइ (म)।

५२२—खामनि (ख)। खमणी (ग)। सुकमणी (घ)। सुकच (म) सुकच (ग) सुकिष (घ) सुकच (ट)। मारू (ख. ग)=गोरी। ज्यों (ख) ज्यूं (घ)। गुण (ट)=मन। गर्ब (ट)। तनि (ट)। तन (ग) अति (घ)=अच्छ।

मारू लँक दुइ आंगुलाँ बर मिलब बस मंस।
मलपइ माँझ सहेलियाँ, माँनसरोवर हंस ॥४६१॥

चंपावरनी, नाक सळ, उर सुचंग विधि होय।
मंदिर बोली मारवी जाँणि भणक्की वीण ॥४६२॥

आदीताहूँ ऊजळो मारवणी मुख अन्न।
झीणा कप्पड़ पहिरणइ जाँणि झबक्कइ सोन्न ॥४६३॥

४६१—मारवणी की कमर दो अंगुल है और सुंदर निर्मल और उरःस्थल मांसल हैं। (वह) वह सहेलियों के बीच में मंदगति से चलती है (तो मालूम होता है) मानो मानसरोवर में हंस (चल रहा है)।

४६२—वह चंपे के से रंगवाली है उसकी नाक शलाका सी है उरःस्थल अत्यंत सुंदर है और कमर पतली है। (ऐसी) मारवणी महल में बोलती है (तो जान पड़ता है) मानो वीणा झनकार कर उठी हो।

४६३—मारवणी के मुख की कांति सूर्य से भी समुज्ज्वल है। झीने वस्त्र पहनने से (उसके देह की कांति ऐसी झलकती है) मानो सोना झलक रहा है।

पड़वो (क)=पड़ी मलल (ख. ग)। मल्प (ग)=वालि। हंस (ग घ) हंस (ग)। निवांस (क ग)। चाही चाणड़ चलल (ख. ग. घ)=जैही हंस निवांणि। हल्लजनिवांणि (ग)।

इस दोहे का (ख. ग) में एक और पृथक रूपांतर मिलता है—

चंपावरणी निमिसुर्ना पिक सर बेही वाणि।
ढोला पड़ी मारू, चाले जिम निवांस ॥ (घ)

जिसके पाठांतर (ग) में इस प्रकार हैं—जिम (ग)। पाड़ो (ग)=जोवें। हुंम (ग)=जिम। निवांणि (ग)।

४६१—आंगुली (ब)। चड़ (क. ख. ग)=बर। मत। (ग. ख. घ)=बर। मांस (ग)। माँहि (ग)। मान (ग ग. घ)।

४६२—नक (क. ख)। सम्मे सुर्मा=नाक सक (क)। सुरंग (ग.घ) हार (ग)=हीय। बोले (क. ग)। मारवी (ग. ग. घ)। जाँण (ग)।

४६३—आदितार (ग)। ऊजळा (क। अंम (ग) अन (क) कपड़ा (घ)। वै पहिरें सिणगार करि (ग)=झीणा कप्पड़ पहिरणइ। जाणिक (ग)

सोरठा

मारवणी मुँह चंस्त, आदित्याँ ऊजळी।
सोइ मोलाउ सावन्न, जो गळि पहिरइ रूपकउ ॥४६४॥

दूहा

मुमुहाँ ऊपरि मोहळो परिठिउ आँखि क चंग।
ढोला, यही मारवी नव नेही, नव रंग ॥४६५॥
मृगनयणी मृगपति मुखी मृगमद तिलक निलाट।
मृगरिपु कटि सुंदर बणी मारू अइड़ह घाट ॥४६६॥

४६४—मारवणी के मुख की कांति सूर्य से भी समुज्ज्वल है। यदि (वह) गले में चाँदी का गहना पहने तो भी सोने का सा झलकता है।

४६५—(उसकी) भौंहों पर मोहळी (आभूषण विशेष) पहनी हुई है (वह ऐसी मालूम होती है) मानो (आकाश में) पतंग (उड़ रही) हो।। हे ढोला, नित्य नया नेह करनेवाली और नये रंगवाली मारवणी ऐसी है।

४६६—(वह) मृग के से नयनोंवाली और मृगपति (चंद्र) जैसे मुख वाली है। (उसके) भाल पर मृगमद (कस्तूरी) का तिलक लगाया हुआ है और (उसकी) कमर मृगरिपु (सिंह) की सी सुंदर है। (हे ढोला) मारू ऐसी बनावट की है।

ऊजळो (ग) मर्ल (क) मोलउ (ख) सोभन (क. ख)। प्रहपे पहिरणी सोवन्न व यो म्हलो सौमत (ग)।

४६४—आदीतां (ख) मुं (ग) = हूँ। ऊजळो (ग)। सोम (घ)। म्हाँ (ख) पांम्पो (अ) = पहिरइ। रूपकवि (अ)। यह (ख) में दूहे के रूप में है।

४६५—मुहाँ (ग) भमुहा (ख) मोळही (क. ख ग. घ)। परठो (अ) परठी (ख) परखी (क. ख. ग. घ ङ) = परिठिउ। आंखि (ग) आंखिउ (क. ख) आंखि (ङ) = आंखिक। पतंग = (क) चंग (ङ. घ) चंव = चंग (ख) तंग = चंग (क. ख)। येही (ग)। मारवी (क. ग. घ) मारुई (क. ख)। नो (ग)।

४६६—नयणी (ग)। लिलाट (ग)। मंगरिप (ग)। सुरपति (घ) सुर (क) = सुंदर।

पर-मन-रंजन कारणइ भरम म दाखिस कोइ।
जेही दीठी मारवी तेहा आखे मोइ ॥४६७॥
थळ भूरा वन झंखरा, नहीं सु चंपउ जाइ।
गुणे सुगंधी मारवी, महकी सहु वणराइ ॥४६८॥
लखमण बत्तीसे मारवी निधि चंद्रमा निलाट।
काया कुंकूं जेहवी, कटि केहरि सी घाट ॥४६९॥
अहर, पयोहर दुइ नयण मीठा जेहा मक्ख।
ढोला, एही मारवी जाणे मीठी द्रक्ख ॥४७०॥

४६७—ढोला कहता है—

दूसरे के मन को प्रसन्न करने के लिये कोई भ्रमपूर्ण बात मत कहना; मारवणी को जैसी देखी हो ठीक वैसा ही वर्णन मेरे आगे करना।

४६८—बीदू कहता है—

(मारवाड़ की) भूमि (बालू से) भूरि है वन झंखाड़ है (वहाँ) चंपा उत्पन्न नहीं होता। मारवणी के गुणों की सुगंधि से ही सारा वनखंड महक उठा है।

४६९—मारवणी बत्तीसों सुलक्षणों की खानि है। (उसका) ललाट चंद्रमा जैसा है देह कुंकुम जैसी है और कमर सिंह की सी है।

४७०—(उसके) अधर कुच और दोनों नयन मधु की तरह मीठे हैं। हे ढोला मारवणी ऐसी है मानो मधुर द्राक्षा हो।

४६७—रंजन (ग) भरम (ख)=भरम। म (ग)=मत। दाखिसि (प) दाखै। (ग)=दाखिस। जिसही (ग)=जेही। मारवी (ख ग प)। तिसही (ग)=तेही।

४६८—बहुल थल वालोपड (ख ज प)=थळ भूरा वन झंखरा। न (ग)=सु। उपजि (ख. ज. प) नहीं सु। चंपा (ज) चांपो (ख. म ग)। चंपो (ग. प) जाइ (ख) आय (ज)=जाइ। मारू मनां सुगंध पड (ख. ग प)= गुणे मारवी। महिकी (प)। मगि (प) मख (ग)। वणराइ (ग)। चोगद चदइ सुमाइ (ख. प)=महकी सहु वणराइ।

४६९—लखण (ग)। बत्तीसे (प) बत्तीसे (ख)। मारवी (ख ग प)। शिर। (ख ग प)। जिसी (ख ग प)=जस। कटि (ख)=धार। केहर (ख. ग. प) में।

४७०—अधर (ज)। उरज (ज)। नयणि (ज) जेह (ज)=जहा। मानू जेहें दाख (ज)=जाणे मीठी दाख। द्रक्ख (ख. ज प) में।

अंगि अमोलख अक्खियउ, तन सोवन सगळाइ।
मारू अंबा-मउर जिम, कर लगाइ कुँमळाइ ॥४७१॥
अहर अमोलख ढंकियउ, सो नयणे रँग लाय।
मारू पका अंब ज्यूँ, म्हरइ ज लग्गे वाय ॥४७२॥
जंघ सुपत्तळ, कळि कुँभळ, मीणी लंब-मलंब।
ढोला, एही मारुई, जाँणि क कणयर-कंब ॥४७३॥
उरि गयवर नइ पग भमर, हालंती गय हंस।
मारू पारेवाह ज्यूँ, आँखी रत्ता मंस ॥४७४॥

४७१—(उसके) अंगों पर स्वच्छ आभूषण हैं और सारे अंग सुवर्ण के हैं। मारवणी आम के मौर के समान हाथ छूते ही कुम्हला जाती है।

४७२—(उसका) अधर आभूषण से ढक रहा है जो नेत्रों को रंजित कर रहा है। मारवणी (ऐसी सुकुमार है कि) वायु के लगते ही पके हुए आम के समान टपक पड़ती है।

४७३—(मारवणी की) पिंडली पतली है और कमल के समान है। वह अत्यंत सुकुमार और लंबी है। हे ढोला मारवणी ऐसी है मानो कर्णिकार की डाली हो।

४७४—(उसका) उरस्थल हाथी के (कुंभस्थल) जैसा है, और पैर (पहने हुए स्वर्ण-विनिर्मित नुपूरों के कारण) भ्रमर (की भाँति गुंजार) हैं। (वह) हंस की चाल से चलती है। मारवणी कबूतर की तरह आँखों में लालिमा (लाल डोरे) वाली है।

४७१—अंग (अ)। अमीलख (ज ब)। अखीयो (अ)। तनु (ब)। सर्व (अ)। लाग (अ)। मौरजम्यइ (प)=मउर जिम। सोवन गळाइ (प)=सोवन सगळाइ। केवल (च. अ. प) में।

४७२—नयण सुरंगा माइ (न)=मी लाय। ओवन में न समाय (न)=मरइ उ लगी वाइ। केवल (ह. न) में।

४७३—जंघ (अ)। कमल। (अ)। कणियरि (अ) कुसुम (प)=कुँभळ। कंपु (च)। केवल (च. अ. ब. में।

४७४—उरज तमु मगिहर मुंह भमर (ह)=उरि मर। उरं गमर गैहज (ह)=हलंती गय हंस। कटि (अ)=नइ। भमर (अ)=पग भमर। गयंद (च)=गय हंस। मंद (प)=हंस। पारेवड़ (ह)=पारेवाह। अम (ह)। आंगी (ह)। राता (ह) रत्तो (अ) मटि (च)। आँखी रता मंद (प)। केवल (च. अ. ह. प) में।

मारू मारइ पहियड़ा, जउ पहिरइ सोवन्न।
दंती चूड़इ, मोतियाँ, त्रोयाँ हेक वरन्न॥४७५॥

[कसतूरी कळि केवड़ा महमहत आय महक्क।
मारू दाड़िम फूल जिम दिन दिन नवी डहक्क॥४७६॥

ढोला सायधण आँगुळी मीणी पाँखड़ियाँह।
कइ जाभे हर पूजियाँ हेमाळइ गळियाँह॥४७७॥

मारू सी देखी नहीं, अणा मुझ दोय नयणाँह।
थोड़ा सो भोळ पड़इ, दखमपर ज्याहताँई॥४७८॥

४७५—मारवणी यदि सुवर्ण धारण कर लेती है तो पथिकों को मोहित कर लेती है। (उसके) दाँत चूड़ा और मोती तीनों एक रंग के (दिखाई देते) हैं।

४७६—(मारवणी ऐसी है मानो) कस्तूरी और केवड़े की कली की महक उड़ती हुई आ रही हो। वह दाड़िम के फूल के भाँति दिन दिन नया विकास पाती है।

४७७—हे ढोला उसकी अँगुलियाँ बड़ी सुकुमार हैं। रंग (प्रेम) करने के लिये ऐसी प्रेयसी या तो शिव की आराधना करने से मिल सकती है या हिमालय में (तपस्या करते हुए) गलने से।

४७८—मारवणी जैसी स्त्री इन (मेरे) मुख ने (अपनी) दो आँखों से नहीं देखी। (हाँ सूर्य का उदय होते समय उसका थोड़ा सा भ्रम होता है (थोड़ी सी झलक दिखाई देती है)।

४७५—मीरे (ष)। पंथिया (ष)=पहियड़ा। पंथी मारणी (ट)=मारइ पहियड़ा को (ट)। पहरे (ट)। पहिरही (ष) = पहिर। सोवन्न (ट) चुडउ दांतां (ट)=दंती चूडे दंती (ष)। हाथि च्यु (ष)=मोतियाँ तीने (ट) त्रिहुवां (ष)। एक (ष, ग)। वरन्न (ट)।

(ट) में इस दोहे की पंक्तियों का क्रम विपरीत है।

४७६—केवल (ट) में।

४७७—केवल (ट) में।

४७८—केवल (ट) में।

चंदवदन मृगलोयणी, मीसुर ससहर भाल।
नासिका दीप सिखा जिसी, केळ गरभसुकमाळ ॥४७९॥

दंत जिसा दाड़म कुळी, सीस फूल सिणगार।
काने कुंडळ झळहळइ, कंठ टेकावळ हार ॥४८०॥

बाँहे सुंदरि बहरखा, चासू चुड़ स चपार।
मनुहरि कटि मख मखळा पग झाँझर झणकार ॥४८१॥

बाँहड़ियाँ रूँमाळियाँ घण बाँके नयणेह।
घण घण साथ न बोलही, मारू बहुत गुणेह ॥४८२॥

मारू देस उपन्नियाँ नज जिम सीसरियाँह।
साहु घण दोला पहवी सरि जिम पध्धरियाँह ॥४८३॥

४७९—(वह) चंद्रमुखी और मृगलोचनी है। (उसका) ललाट चंद्रमा के समान दीप्तिमान है। (उसकी) नासिका दीप की लौ जैसी है (और वह) केले के पेड़ के भीतरी भाग जैसी सुकोमल है।

४८०—(उसके) दाँत दाड़िम के दानों जैसे हैं (उसके) शीश पर फूलों का शृंगार है कानों में कुंडल झिलमिला रहे हैं और गले में बहुमूल्य हार है।

४८१—सुंदरी की बाँहों में बहरखा नामक आभूषण है और चुड़ा पहना हुआ है मनोहर कटि प्रदेश में करधनी पड़ी है और पैरों में झाँझर की झंकार हो रही है।

४८२—उसकी बाँहें रूपमयी हैं। वह प्यारी बाँके नेत्रोंवाली है। वह प्रत्येक के साथ नहीं बोलती। मारवणी बहुत गुणों वाली है।

४८३—मारू देश में उत्पन्न हुई स्त्रियाँ ऐसी हैं मानो सरसे निकल पड़े हैं। ह दोला, मारवणी ऐसी है जैसे कोई सीधा बाण हो।

४७९—केवल (क) में।

४८० —केवल (क) में।

४८१—केवल (क) में।

४८२—बाहुड़ीयाँ (घ)। रूपाळीयाँ (ग) रूपाळिया (घ) रूपाळीयाँ (च)। घन (ग)। बंगी (क, ख, ग, घ)=बंके। नयणाँह (ज, च) नयणेहि (च)। छाँ (च)। न (ग)=ना। गुणाहि (च) गुणाँह (ज)। बहु गुणियाँह (घ)।

४८३—ज्यूं (घ)=जिम। घन (ग)। ज्यूं (च)। केवल (ख ग घ) में।

एकणि जीभ किसा कहूँ, मारू रूप अपार।
जे हरि दियइ त पाँमियइ कहियइ इण संसार ॥४८८॥

बीसू कहिया दूहड़ा, मारू रूप विचार।
उत्तर मुहर पसाउ करि, दीन्ही सालहकुमार ॥४८९॥

बीसू, सुणि, ढोलउ कहइ दिन वहि पूगळ जाव।
देह बधाई दिन थकाँ म्हे आवस्याँ राव ॥४९०॥

(ढोला की यात्रा और चिंता)

बीह गयउ हर डंबरे, नीले नीम्भरणेहि।
काळो आया करहला, बोल्यउ किसे गुणेहि ॥४९१॥

४८८—मारवणी के अपार रूप का बखान एक जीभ से कैसे करूँ। इस संसार में, भाग्योदय होने पर यदि भगवान् ही दे तो (ऐसी स्त्री) मिल सकती है।

४८९—मारू के रूप को विचारकर बीसू ने ये दोहे कहे। उत्तर में साल्ह कुमार ने प्रसन्न होकर (उसे) मोहरों का पुरस्कार दिया।

४९०—ढोला बोला—हे बीसू, सुनो अब (ऊँट को) चलाकर पूगल जाओ। तुम जाकर दिन रहते बधाई दो। हम रात को आवेंगे।

४९१—(बीसू के चले जाने पर तीसरे पहर ढोला चला। चलते चलते संध्या हो गई और पूगल अभी तक नहीं आया। ढोला ऊँट से नाराज होकर कहता है)—

(क. ख घ ङ)। कहिया (ग) समभ्ता (ञ)=समभ्त्याँ। को (ञ)=कहीं। किम (ग)। कुण (ग) क्या (ख ङ)। कहुँ (क. ञ)=कहुँई। हस्ती (ञ) हाई (क. ख ग ङ)। तुम (क. ग ञ)। तुम (ङ) सम (ग ञ)।

८८—एकण (ग)। तौ (क ख)=त। पामिज (ग)। कहुवै (ञ)।

केवल (क. ख ग ञ) में।

८८९—अपार (ञ)=विचार। मुहुरा (ख ग) मुहरां (क) मौज कीनोज पसाव करि (क) बाल पसाव (ञ)=पसाउ। कीमें (ञ)=करि दीन्हो (ग) दीन्हा (ञ)। कुंवार (ग) कुमार (ञ)।

केवल (क. ख ग. ञ) में।

४९०—सुण (घ) सुणि (ग)। ढउ (ञ)। जाह (ञ) मे (ग)=म्हे। आविस्यां (ग) आपस्यां (ञ)। राति (ग ञ)।

केवल (क. ख ग. ञ) में।

४९१—गयो (क.ख घ.ङ.ञ)। डंबरि (ञ) डूंगरे (ञ) डेबरे (ञ)=डंबरे।

विहँगड़े ज समुद्रमाँ, सर ज्यउँ, पंखुरियाँह।
कादर कामा कमळ ज्यउँ, ढळि ढळि ढेर थियाह ॥४९५॥
करहा काछो काछिया, मुई मारो घर दूर।
राहु कांई न खाँचिया, राह गिळंतइ सूर ॥४९६॥
करहा, वामन रूप करि चिहुँ चलणे पग पूरि।
तूँ थाकउ, हूँ रूसनउ, मुई मारी, घर दूरि ॥४९७॥

४९५—समुद्रों पर जिस प्रकार पक्षी (उड़ते ही जाते हैं जब तक वे हार नहीं जाते) सरोवरों में जिस प्रकार पंडुक (तैरते ही जाते हैं जब तक वे हार नहीं जाते) और कीचड़ में फँसे हुए कमल जिस प्रकार मुरझा मुरझाकर ढेर हो जाते हैं, उसी प्रकार मैं भी चलता ही जाऊँगा जब तक कि हार न जाऊँ या ढेर न हो जाऊँ।

नोट—इस दूहे का अर्थ भी अस्पष्ट है।

४९६—हे कच्छ देश के काछे ऊँट, फासला बहुत है और घर दूर है। राहु ने सूर्य को ग्रास करते समय हाथ क्यों नहीं खींच लिया (ताकि सूर्य अस्त नहीं होता)।

४९७—हे ऊँट अब वामन का सा रूप धारण करके अपने चारों पैरों से पथ को नाप ले। तू थक गया है और मैं भी खिन्न हो गया हूँ। फासला बहुत है और घर दूर है।

४९५—विहगड़ो (ब)। वेहगाड़े ह दरियाँ (प)। जे (ब)=ज। दरीयाँ (ब)। पखिया (ब)=सर ज्यउँ। पखिरियाँह (प)। कायर (प)। कांमा (ब)—कामा। कायर कामी कमळामी (प)=कादर ज्यउँ। ढरि ढरि (ब)।

विहगड़ो की दरीयाँ परहुं पंखरियाँह
कायर कमळ ज कामणो ढह ढह ढार थयाह (प)।

केवल (ख. ब. प इ ब) में।

४९६—मुअ (ब)=मुइ। मरि (ब) दूरि (ब)। कांई (ग)=कांइ। गइँ (ख ग)। गिळत (ब)=गिळंतइ।

केवल (क. ख ग प) में।

४९७—पँग (ब)=पग। पंग पूरि (प)=पग पूरि। ऊंमाहियो (ब)=ऊसनउ। हूँ थाके तूँ ऊमाहिय (क) हूँ थाको तुम सहीयो (म)। घर घणी पँघ दूर (क) घर घणी जा दूर (म)। पँघ (क ब)=घर।

नोट—(क. म) में पहली पंक्ति दूहा ४९० की भाँति है।

(मारवणी का स्वप्न)

जिण दिन ढोलउ आवियउ, तिण आगलड़ी रात।
मारू सुहिणउ लहि कहइ, सखियाँ सूँ परभात ॥५०१॥
सुपनइ प्रीतम मुझ मिल्या, हूँ लागी गलि रोइ।
डरपत पलक न खोलही, मतिहि विछोहउ होइ ॥५०२॥
सुपनइ प्रीतम मुझ मिल्या हूँ गलि लग्गी धाइ।
डरपत पलक न खोलही, मति सुपनउ हुइ जाइ ॥५०३॥
आज ज सूती निसह भरि प्रीय जगाई आइ।
विरह भुयंगम की डसी लगमगती गलि लाइ ॥५०४॥

५०१—जिस दिन ढोला (पूगल) आया उसकी पहली रात को मारवणी ने स्वप्न देखकर प्रातःकाल सखियों से कहा।

५०२—हे सखियो स्वप्न में प्रियतम मुझसे मिले। मैं रोती हुई (उनके) गले लगी। डरती हुई मैंने पलकें नहीं खोलीं कि कहीं (उनसे) विछोह न हो जावे।

५०३—स्वप्न में मुझे प्रियतम मिले। मैं दौड़कर गले लग गई। मैंने (इस डर से) डरते हुए पलकें नहीं खोलीं कि कहीं यह (सचमुच ही) स्वप्न न हो जाय।

५०४—आज तो रात भर सोई हुई थी (तो ऐसा जान पड़ा) मानो प्रियतम ने आकर जगाया। (प्रियतम को देखते ही) विरह रूप साँप से डसी हुई मैंने डगमगाकर (उन्हें) गले लगा लिया।

५०१—जिम (ग)। आविसी (ख) आविस्यै (क)। रात (ख)=[illegible]। राति (ग घ)। सुपनो (ग) सुपनौ (घ)।
केवल (क, ख ग घ) में।

५०२—सुपनौ (ख)। सुपनि (घ)। गळ लागी (ग)=लागी गलि। डरती (ग)। सुपनै (ग)=मति विछोहउ।
केवल (क, ख ग, घ) में।

५०३—सुपनौ (ख)। सुपनि (घ)। मिळ्यौ (ख)। गळ लागी (ग)। खोलही (ग घ)=खोल्ही। मत (ग)। जाय (घ)।
केवल (क ख, ग घ) में।

५०४—हूँ (ग) स (घ)—ज। निस (ग, घ)। भर (ग)। जाबि (घ)। जगाई

दूहा

राति ज बादळ सघण घण बीज चमंकउ होइ।
इण समईयइ, हे सखी, साल्हइ जगाई मोइ॥५०८॥

[हूँता साजण हीयड़ै समणाँ हेता हत्थ।
जउ सोहणो साचउ होवइ, सोहणो बड़ी वसत्त]॥५०९॥

सोहणउ आई फर गया, मई सर भरिया रोइ।
आव सोहागण नींदड़ी जिण प्रिय देखूँ सोइ॥५१०॥

जब जागूँ तब एकली, जब सोऊँ तब बेउ।
सोहणा थे मने छेतरी, नीती नीती खेल॥५११॥

सुहिणा तूँ वड राखसी, तोनइ दहियउ अग्गि।
सउ जोयण साजण वसइ, सूती थी गळि लग्गि॥५१२॥

थे। लाल महल में सोती हुई (ऐसी मुझको) मानो साल्हकुमार ने आकर जगाया।

५०८—रात को बहुत से घने बादल छाए हुए थे। बिजली चमक रही थी। ऐसे समय में, हे सखी, साल्हकुमार ने मुझे जगाया।

५०९—(इस प्रिया) के हृदय पर प्रियतम के हाथ थे। यदि (यह) सपना सच्चा हो तो सपना बड़ी वस्तु है।

५१०—सपना आकर चला गया मैंने रो रोकर सरोवर भर दिए। हे सौभाग्यवती नींद आ (जिससे) फिर उसी प्रियतम को देखूँ।

५११—जब जागती हूँ तो अकेली रह जाती हूँ और जब सोती हूँ तो दो हो जाते हैं। हे सपने नए नए खेल करके तूने मुझे ठग लिया।

५१२—हे स्वप्न तूने मुझे छलाया, तुझे अग्नि जलावे। (तूने मुझे ऐसा धोखा दिया कि जो) प्रियतम (यहाँ से) सौ योजनों पर बसते हैं मैं उन्हीं प्रियतम के गले लगाकर सोई हुई थी।

५०८—सघन घन (ग) घण क्या (ब)। समई (क)। मोहि (क ख ब)। केवल (क ग ग घ) में।

५१२—तो ज)लाइ। दूहवी (ब)। दहिगयौ (ज)। अगि (ब)। सौ (घ) गळ (ब) लगि (ब)।

जिम सुपनंतर पामियउ, तिम परतख पामेसि ।
सज्जन मोतीहार ज्यूँ कंठा-माहया करेसि ॥५१३॥
सुहिणा, तोहि मराविसूँ, हियइ दिराऊँ छेक ।
जद सोऊँ तद होइ जण, जद जागूँ तद एक ॥५१४॥
सहिए फिरि समझावियउ, सुहिणइ दोस न कोइ ।
सउ जोयण साहिब वसइ आँण मिलावइ तोइ ॥५१५॥
आज फरूकइ आँखियाँ, नाभि, भुजा, अहरौह ।
सही ज प्रीतम आवियउ, साम्हौ किया परौह ॥५१६॥

५१३—जैसे स्वप्न में पाया वैसे यदि प्रत्यक्ष पाऊँ तो प्रियतम को मोतियों के हार की भाँति कंठ में धारण करूँ।

५१४—अरे सुपने तुझे मैं मरवाऊँगी तेरे हृदय में छेद करवाऊँगी। जब सोई होती हूँ तब तो (हम) दो होते हैं (और जब) जागती हूँ तब एक ही रह जाती हूँ।

५१५—फिर सखियों ने समझाया कि स्वप्न का कोई दोष नहीं। जो प्रियतम सौ योजन दूर रहते हैं (वह) उन्हें भी लाकर तुमसे मिला देता है।

५१६—मारवणी फिर कहती है—

आज आँखें नाभि भुजाएँ और अधर फड़क रहे हैं। हे सखी, अवश्य ही प्रियतम ने (मेरे) घर की ओर घोड़े किए हैं।

५१३—जो (ख) = जिम। सपनंतर (ख)। जरि (ख)=तिम। परतखिहूँ (घ) प्रतख (ख)। मिलेस (ख)=पामेसि। प्रीय (ख) = सज्जन। करेस (ख)।

५१४—सुपना (क. ख ग)। मराविस्युं (घ) दिरास्युं (ग. घ)। जब (घ) जरि (घ)। तरि (ग घ) जब (ग)। जागा (घ)। जरि (घ)=तरि। एक (क ख ग)

केवल (क ख ग घ) में।

५१५—सखियाँ (ग)। समझाइयो (ग)। जोइण (ग)। तोहि (ग)। जो किम पावै धण (क)=आँण तोइ।

केवल (क. ग घ. घ) में।

५१६—फुरकै (क. घ. घ)। नाभ (घ)। अहिरोह (ग)। साजणी (ख घ) सजनी (ग)। साम्ही (क) सामा (ग)।

केवल (क. ख. ग. घ) में।

अहर फुरक्कइ, तन फुरइ, तन फुर भर्यंस फुरंत ।
नाभी मंडळ सहु फुरइ, साँभळ माइ मिळंत ॥५१७॥

आज उमाहउ मो घणउ ना जाणूँ किण केम ।
पुरुस परायउ वीर बड, अहर फुरक्कइ केम ॥५१८॥

सहिए, साहिब आविस्यइ, मो मन हुई सुजाँण ।
आगम-वाधाऊ हुया अंग-तणा अहिनाँण ॥५१९॥

आँखि निमाँणी क्या करइ, कउवा लवइ निलज्ज ।
सउ जोइन साहिब वसइ, सो किम आवइ अज्ज ॥५२०॥

५१७—अधर फड़कते हैं शरीर फड़कता है और शरीर फड़ककर स्तन फड़कते हैं नाभिमंडल (इत्यादि) सभी (अंग) फड़कते हैं। (निश्चय ही आज) साँझ को नाथ मिलेंगे।

५१८—आज मुझे बड़ा उत्साह है नहीं जानती कि क्यों और किस कारण ! पर पुरुष तो (मेरे लिये) बड़े भाई के समान है फिर अधर किस कारण फड़कता है !

५१९—हे सखि प्रियतम आवेंगे, (ऐसी) मेरे मन में प्रेरणा हुई है। मेरे अंगों के चिह्न (उनके आगमन की) पहले से बधाई देनेवाले हो रहे हैं।

५२०—फड़कती हुई आँख क्या करेगी और निर्लज्ज कौआ बोलता है (उससे भी क्या !)। प्रियतम तो सौ योजन (की दूरी पर) बसते हैं, वे आज कैसे आ सकते हैं !

५१७—अहिर (ग)। नयन (ग)। फिरै (क ख घ)। संझ्या (ग)।
केवल (क ख ग घ) में।

५१८—मुँ (क ख) किम (ग)=किम। वीरवर (ख घ)। आंखि (ग)=अहर।

५१९—सखीए (ग)। आविसे (ख) आवसी (ग)। हूआ (क ग)।
केवल (क ख ग घ) में।

५२०—आंख (घ)। फिर (घ)=करै। कोवा (घ)। किम (घ)। योजन (घ)। आज (घ)।
केवल (ग घ) में।

(ढोला का पूगल पहुँचना)

काली-कांठलि बीजळी नीची खिवइ मिहल्ल ।
उर भेदंती सज्जणां, ऊचेदंती सल्ल ॥५२१॥
साम्हा वेळा सामहसि कंठळि थई अगासि ।
ढोलइ करह कँवाइयउ, आयउ पूगळ पासि ॥५२२॥
ऊँडा पाणी कोहरा वळे चढीजइ निट्ठ ।
मारवणी-कइ कारणइ देस अदीठा दिट्ठ ॥५२३॥
ऊँडा पाणा कोहरे दीसइ तारा जेम ।
ऊसारता थाकिस्यइ, कहउ काढिस्यइ केम ॥५२४॥

५२१—काली कँठुली (—काले मेघों) में बिजली बहुत ही नीचे चमक रही है। प्रेमियों के हृदयों का भेदन करती हुई वह (विरहरूपी) शल्य को उखेलती है।

५२२—संध्या समय आकाश में सामने बादलों की कँठुली (काली घटा) उमड़ आई। ढोला ने ऊँट को छड़ी से मारा और (उसे तेजी से हाँककर) पूगल के पास आ पहुँचा।

५२३—ढोला कहता है—

पानी बहुत गहरा कुओं में मिलता है और घाटों (अर्थात् कँकरीले ऊँचे स्थानों) पर बड़ी कठिनाई से चढ़ा जाता है। मारवणी के कारण (ऐसे) अदृष्टपूर्व देश देखे।

५२४—यहाँ किसी पानी निकालनेवाले को देखकर ढोला कहता है—

कुओं में पानी (इतना) गहरा है कि (ऊपर से) तारे की तरह (नीचे चमकता हुआ) दिखाई देता है। उसको खींचते हुए (तुम) थक जाओगे कहो कैसे निकालोगे!

५२१—कांठलि (उ. ख)। सज्जना (उ)। ऊंचावती=ऊचेदंती (उ)।
केवल (ख. उ. ग) में।

५२२—सामही (ग) सामुही (ख)=सामहसि। अगासि (ग)। तिवइ उ पथिक अगासि (क)। ढोलो (उ)। कंवाडियउ (उ)।

५२३—कोहरां (ङ)। नीर (ङ)। कुअ (ङ)=[illegible]। कारणै (ङ)। दीठ (ङ)।
केवल (ख ङ) में।

५२४—कोहरा (ङ)। तारा जिम झिलकत (ङ)=दीसइ तारा जेम। ऊसारतां (ङ)। थाकसि नहीं (ङ)=थाकिस्यइ। काढेसी (ङ)। कब (ङ)=केम।
केवल (ख ङ) में।

तुम्ह आवउ घर आपणइ, म्हाँनी केही तात।
दीहे-दीह उसारिस्याँ मरिस्याँ मौंझिम रात ॥५२५॥

पणि समईयइ आवियउ बीसू विण्हाँ वार।
पिंगळ-राजानूं कहइ आयउ साल्हकुमार ॥५२६॥

राजा राँणी हरखिया, हरख्यउ नगर अपार।
साल्हकुँवर पधारियउ, हरखी मारू नार ॥५२७॥

(मारवणी का हर्ष)

साहिब आया हे सखी, कज्ज सहू सरियाँह।
पूनिम केरे चंद ज्यूँ दिसि च्यारे फळियाँह ॥५२८॥

५२५—पानी निकालनेवाला उत्तर देता है—

तुम अपने घर जाओ (तुम्हें) हमारी क्या चिंता पड़ी है! दिन भर हम पानी सींचेंगे और मध्यरात्रि में (सोते) मरेंगे।

५२६—इसी समय उस काल में बीसू (पुगल) आ पहुँचा। उसने पिंगल राजा से कहा कि साल्हकुमार आ गया है।

५२७—राजा और रानी प्रसन्न हुए। सब नगर बहुत आनंदित हुआ। साल्हकुमार आया (यह जानकर) नारी मारवणी हर्षित हुई।

५२८—मारवणी ने सखी से कहा—

हे सखी स्वामी आए, सब कार्य सफल हुए। पूर्णिमा के चाँद की तरह (ढोलारूपी चाँद के उदय होने से) चारों दिशाएँ प्रकाशित हो गई हैं।

५२५—थे ! (ग)=तुम्ह। किसी पराई (ग)=म्हारी केही। दीहाडो अमसर बोल्हसाँ (ग)=दीहे दीह उसारिस्याँ। मांझिम (ग)।

५२६—इणौ (क)। काळ (ख)=वार। कह्यो (ग)।

केवल (क ख ग घ ङ) में।

५२७—सहु परिवार (ग)=नगर अपार।

केवल (क ख ग घ ङ) में।

५२८—साजन (प) सजण (ग म) सजन (ख)=साहिब। मिलिया सखि हुई (प क म)=आया है सखी। कज्जा (ग. घ)। सहि (क प घ)। पूनिम चंद मयंक (क ख. ग घ. म) पूनिम रात मयंक (घ)=पूनिम चंद। ज्यौं (ख) जिम (ग) ज्युं (क. ञ)। दिस (ग. ञ)। चसीयाह (प)=फळियाँह।

सखी, सु सज्जण आविया, हुंता मुझ्झ हियाइ ।
सूका था सु पालह्‌व्या, पालह्‌विया फळियाइ ॥५१३॥

सज्जण मिळिया सज्जणाँ, तन मन नयण ठरंत ।
अणपीयइ पायग ज्यूँ नयणे छाक चढंत ॥५१४॥

(सखियों द्वारा मारवणी का शृंगार और ढोला
के पास ले जाया जाना)

साखिय उगट मौंजिणउ सिणगमति करइ अनंत ।
मारू तन मंडप रच्यउ, मिळण सुहावा कंत ॥५१५॥

मारवणी सिणगार करि मंदिर चू मरहपंति ।
सखी सुरंगी साथ करि गयगमणी गय गंति ॥५१६॥

५१३—हे सखि वे प्रियतम आ गए जो मेरे हृदय में थे। जो मनोरथ सूखे थे वे पल्लवित हो गए और पल्लवित होकर फल गए।

५१४—प्रियतम प्रेयसी से आ मिले। (मेरे) तन-मन और नयन शीतल हो रहे हैं। (मद्य का) प्याला पिए बिना ही मेरे नयनों में नशा-सा छा रहा है।

५१५—सखियाँ उबटन स्नान आदि अनेक प्रकार से मारवणी की सेवा कर रही हैं। उन्होंने सुहावने कंत से मिलने के लिये मारवणी के तनरूपी मंडप को सजाया।

५१६—सुंदर गजगामिनी मारवणी शृंगार करके रँगीली सखियों को साथ लेकर गज की चाल से महल को जाती है।

५१३—हुंता (ग. ड)। पालह्‌या (ख) पालह्‌व्या (ड)। सु फळीयाइ (क. ख) फळ्याइ (ग)। से (ड)—सु।

५१४—सखी सु (ग)—सज्जण। पीवै (ग)। पोवागसु (ग)। मं पीवै पार्थिग ज्युं (ड)। मैथे (ड)। चढंति (ड) चढंत (ख)।

५१५—सखीये (ख)। मांजणा (क. ख ख) मंजणा (ग) मंजण (ड)। सिणमत (ख ख) सिणमित (ड) सिणमिति (घ)। सुहावे (क. ग. ड)। (ख घ) में द्वितीय पंक्ति इस प्रकार है—

मारवणी मंदिर महलि कामिणि मिळिवा कंत (ख)।
मारवणी मंदिर महिलि कंमणि मिळिवा कंत (ख)।

५१६—सु (ग) मिस (ड)—चू। मरहपंत (क. ख)। साथि (क)। गत (क)। गत (घ)।

केवल (क. ख ग घ. ङ. ड) में।

घम्मघमन्तइ घाघरइ, उलम्पत जाँणि गयंद।
मारू चाली मंदिर झीणे बादळ चंद ॥५३७॥
मारू चाली मंदिराँ, चन्दण बादळ माँहि।
जाँणे गयँद मदछकियउ कदळी-वन महँ जाहि ॥५३८॥
घम्मघमंतइ घूघरइ, पग सोनेरी पाळ।
मारू चाली मंदिरे, जाँणि छुटो फँवाळ ॥५३९॥
चाली बीया, हंस गत, पग बाजंती पाळ।
रायजादी घर-आँगणइ छुट पटे फँवाळ ॥५४०॥
सोइ सज्जण आविया, जाँहकी जोती वाट।
थाँभा नाचइ, घर हँसइ खेलण लागी खाट ॥५४१॥

५३७—घूमते हुए घाघरे को पहिने हुए मारवणी महल की ओर चली मानो गजेंद्र उमड़ चला हो अथवा झीने बादल में चंद्रमा चल रहा हो।

५३८—मारवणी महलों में चली मानो चंद्रमा बादल में चलता हो अथवा मदोन्मत्त हुआ गजेंद्र कदलीवन में जा रहा हो।

५३९—छम छम बजते हुए घुँघरू और सोने की पायल पैरों में पहने हुए मारवणी महल को चली मानो फव्वारा छूटा हो।

५४०—(उसकी) चोटी वीणा के समान है चाल हंस जैसी है पैरों में पायल बज रही है। इस प्रकार राजकुमारी घर के आँगन में (चल रही) है। उसके छुटे हुए केशपाश फव्वारे के समान हैं।

५४१—वही प्रियतम आ गए जिनकी बाट जोह रही थी। (चारों ओर

५३७—घम-घम-घमक घूमता (क) घम-घमतै घाघ घूमता (ख) घम-घमाट घाघ घुमता (ट)। ऊलटो (क) उलटा (ट)। मोहल पधारी मारवी (क) महिल पधारि मारवी (ख) महिल पधारी मारूई (ट)। मंदरा (म)। झीन (क) झीणै (ख)=झीना।

५३८—केवल (म) में।

५३९—केवल (म) में।

५४०—चाल चली हंस चालती (ट)=चोटी गत। बाजट (ट)। राय आँगण (ट)=घर आँगणइ। छुटे आँप (ख)=छुटे पर।
केवल (ट, ख) में।

५४१—मीट (ग)। वे साजन पधारिया (क) सा सजन वरे पधारिया (ख)

मन मिळिया, तन गळिया दोहग दूरि गयाह।
सज्जण पाणी खीर ज्यूँ खिलोखिल्ल थयाह॥५५३॥
पंचाइण नइँ पाखरयउ, मइँगळ नइ मद कीध।
मोहण वेली मारुइ कव पम-रस पीध॥५५४॥
ढोलउ मारू एकठा करइ कतूहळ-केळि।
जाँणि चंदन-रूँखड़इ विळगी नागर-वेलि॥५५५॥

५५३—मन मिल गए, तन गड़ गए (परस्पर दृढ़ आलिंगित हो गए) और दुर्भाग्य दूर हो गए; प्रेमी दंपति पानी और दूध की तरह मिलकर एक हो गए।

५५४—मानो सिंह था और कवच पाकर युक्त हुआ हाथी था और मद कर लिया। (इसी प्रकार) मारवणी मोहन वेलि तो थी ही फिर उसने प्रियतम के प्रेम का रस पी लिया (अब उसकी शोभा का क्या कहना!)।

५५५—ढोला और मारवणी एकत्र कौतूहलक्रीड़ा करते हैं, मानों चंदन वृक्ष पर नागरवेलि लिपट गई हो।

५५३—गळीया (ख ग घ ठ)। थयाइ (क ग) थयाह (छ ठ)=थयाह। साजण=(क ठ)। खाव (ठ)=खीर। पाणीखाव (क ग) पाणीखीर (न) पाणी-खाव (म) पाणखाव (ब)=पाणी खीर। जाणि (न)=ज्युं। खिलीखीर (न) खिले खीर (ग) ज्यांखीखीर (घ) खीलेखीर (म)=खुलेखीर (न)=खिलोखिल्ल। थयाइ (क)।

५५४—एक सींह (ठ) केसर (न)=पंचाइण। अर (ठ छ)=नइ। एक सींह भर पाखर्यो (क न) पाखरियो वे पंचानन (छ) इम केसर वळि पाखर्यो (न)=पंचाइण नइँ पाखरयउ। मेंगळ (ज)। इक हस्ती (क न ग)=मइँगळ नइ। वे (ज)। पीद (ख) दीध (छ) खाव (ध) पीध (क ख)=कीध। वमि किद (न)=मद कीध। [illegible] (छ)=मोहण वेली। मारवण (छ) मारवी (ग घ म)। कंत (क ग ब)। प्रमरस (ब) सोहागिणि (ब) सुहागण (अ छ)=पेमरस। किद (अ छ ब) कीध (छ)=पीध।

५५५—कुतूहल (क)। केळ (क ग छ ठ)। जाणे (क न) जांणे (ग) जाण (घ) जांणे (ज)। रूखड़इ (ग) रूखड़े (ठ) रूखड़ो (ग)। वळीसु (न) वळींठु (म) वळीठ (ठ ज) वळींठु (घ)=विळगी। वेल (क ग छ ठ)।

लहरी सायर संदियाँ, वूठइ-संदउ वाय।
बीछुड़ियाँ साजण मिळइ, कहि किउँ ताढउ ताय ॥५५६॥
हियमाँ करइ वधाँमियाँ सही त सीधा काज।
जे सुपनंतर दीखता नयणे मिळिया आज ॥५५७॥
जिणनूँ सुपनेँ देखती प्रगट भए पिव आइ।
डरती आँख न मूँदही मत सुपनउ हुय जाइ ॥५५८॥
आजे रळी-वधाँमणाँ, आजे नवला नेह।
सखी, अम्हीणी गोठमइँ दूधे वूठा मेह ॥५५९॥

५५६—समुद्र की लहरियाँ हों बरसे हुए की हवा हो और बिछुड़े हुए प्रियतम मिल जायँ। फिर (हृदय को शीतल करनेवाले इन सुखों के सामने शरीर का) ताप कैसे ठहर सकता है!

५५७—(मारवणी) हृदय में बधाइयाँ करती है कि सभी काम सिद्ध हो गए। जो स्वप्न में दिखाई पड़ते थे वे आज आँखों के सामने (प्रत्यक्ष) आ मिले।

५५८—जिनको स्वप्न में देखती थी वे प्रियतम आकर प्रकट हो गए। मैं डरती हुई आँख नहीं मूँदती कि कहीं स्वप्न (यह सब) न हो जाय।

५५९—आज आनंद बधाइयाँ हो रही हैं आज नया नेह हो रहा है। हे सखि हमारी गोठी में आज दूध का मेह बरसा है।

५५६—लहरे (ग)=लहरइ। संदी (क. ग ख) संदी (घ)। बाय (ख)। बीछड़ीयां (ग ख च)। साजन (ग. ख)। किम (ग) क्युं (च) तसो (च)। ताप (घ)। ताव ताढी ताप (क) कहि ताप। क्यूं तसो=किउ ताढउ (ख)।

५५७—दीपता (च) दीसतो (च)। करे (घ च)। वधामणो (घ. च)। त (घ)=त। मतीसी सागटा काज (न)। सुपनंतर (अ)। त नयने (ख) लो सन्मुख (न) है साजन (घ)=नयण।

५५८—नयन (अ) में।

५५९—आज (क. ख ग. घ. ख)। वधामणा (ग) वाधावणा (ख) आज (क. ख ग. घ ख)। अमीन (ग)। म (ख)=मइँ। गोठमी (क)=गोठमइँ।

ज्यूँ सारसाँ सरवराँ, ज्यूँ धरणीसूँ मेह।
चंपक-वरणउ बालहउ चंदमुखीसूँ नेह ॥२९४॥

चन्द्रायणा

बेऊँ चतुर सुजाँण पेम-रँग-रस पिया।
बरखा रुति घण बरस जाँणि क हरखिया ॥
भी सिणगार सँवारि क आई सेज परि।
(परिहाँ) जाँणि अपछर इंद्र क बैठा आप घरि ॥२९५॥
दोउ मयमंत सुजाँण सेज दिसि चाहुडइ।
जाँणे धरती काज असप्पति आहुडइ ॥
अहरे अहर लगाइ तने तन मेळिया।
(परिहाँ) जाँणि क गाँधी-हाट सुजाँणे भेळिया ॥२९६॥

५५४—जिस प्रकार सैन्डों का प्रेम सरोवरों से और मेघ का प्रेम पृथ्वी से होता है उसी प्रकार चंपक वर्णवाले प्रियतम (ढोला कुमार) का चंद्रमुखी (मारवणी) से प्रेम है।

५५५—दोनों (दंपति) चतुर और सुजान हैं और प्रेमरंग का रस पिए हुए हैं। मानो वर्षा ऋतु में बादल बरसकर हर्षित हुए हों।

फिर (मारवणी) शृंगार सजकर सेज पर (ढोला के पास) आई, मानो अप्सरा और इंद्र अपने घर पर बैठे हों।

५५६—दोनों मदमत्त प्रेमी सेज की ओर चले मानों दो राजा धरती के लिये (युद्ध में) जुट रहे हों।

अधर से अधर लगाकर शरीर से शरीर मिला दिया मानों गंधी की हाट पर सुगंधों ने मेला किया हो।

२९४—सारसाँ सरवर बिना (ख ग) सारसाँ कइ सरवराँ (क)—ज्यूँ... सरवराँ। घर सरवरा (क)। ज्यउं (ख)। धरणी (क ख ग) धरणो (ख)। बालहो (ख)। चंद-वदनी (ख) चंद-मीणी (ग)।

२९५—प्रेम (ख)। बरसत (ख) बरसि (ग)। जांण (ख)। बरखा कीधा (ख) बरखीया (क)—हरखिया। जाणि मेंवर हरखीया (क)। बरखा रुति घणि मेह बरसइ (रिंमझर) मन हरखीया (ख)। भी (ख) भा (क)—भी। सम्भारि (ख) सुधारि (ग)। पर (ख क ग)। जिसके (ग)—जाँणे। इंद (ग)। बैठा (ख)। घर (क ख ग)।

२९६—दूउँ (ग)। मइमत (ख) मइमात (क)। दिस (क ग ख)। चाहुडे

दूहा

मारवणी इम वीनवइ, धनि आजूणी राति ।
गाहा-गूढा-गीत-गुण कहि का नवली वाति ॥५६७॥
गाहा-गीत विनोद-रस सगुणां दीह लियंति ।
कइ निद्रा कइ कलह करि, मूरिख दीह गमंति ॥५६८॥
विरह विपापी रयण भरि, प्रीतम विणु तन खीण ।
वीण बजापी देखि ससि, किस गुण मल्ही वीण ॥५६९॥
वीण बजापी देखि ससि रयणी नाद सलीण ।
ससिहर मृगरथ मोहियउ, तिण हसि मल्ही वीण ॥५७०॥

५६७—मारवणी यों विनय करती है कि आज की रात धन्य है। आज कोई गाथा या पहेली या गीत या गुणोक्ति या कोई नई कथा कहो।

५६८—गुणवान् मनुष्यों के दिन गाथा, गीत और विनोद के रस में बीतते हैं और मूर्ख या तो नींद में या कलह में दिन बिताते हैं।

५६९—ढोला प्रश्न करता है—

प्रियतम के वियोग में कृश शरीरवाली नायिका ने रात भर विरहव्यथा से व्याकुल होकर वीणा बजाई फिर चंद्रमा को देखकर किस कारण उसे रख दिया?

५७०—मारवणी उत्तर देती है—

विरहिणी को वीणा बजाते देखकर चंद्रमा रात्रि में उसके नाद में लीन हो गया और चन्द्रमा के रथ के मृग मोहित हो गए। इसीलिये उसने हँसकर वीणा को रख दिया।

(ख)। आज (ग घ)। धनि (ग)। आसपत (ग घ) आसपनि (ख)। आइड़े (ख)। नवरी (ग) नवाप (ग)। कहो (ख)। सुआली (ग ग) सुआला (ख)। मैविहवा (ग)।

५६७—मारविणी (ख)। यम (घ)=इम। वीनवे (ग)। धन (क. ग ग. घ)। वात (ख)।

(ग) में दूसरे और चौथे चरणों का क्रम विपर्यय है।

५६८—गूढ (ग)=गीत। गुणां (ग)=सगुणां रमंति (घ) गमंति (क ग ख)। कै (ख) का (ग क)=कइ। मूरख (ग) इम वारंति (ग)=दीह गमंति।

५६९—रैण (ग भर (ग)। बिन (ग. घ) बिन (ग) बाजावी (ग)। हसि (क घ. ग) हसि (ग) मिस (क)। वीणं (क)।

५७—राति (क. ग)। रेणी (ग)। संमूरज (ग)। ससिहर (क ग)।

गाहा

तरुणी पुणोवि गहियं परीयणय मितरेण पिउ दिट्ठं।
कारण कवण सयाणे दीपक्को धूणए सीसं ॥५७५॥

दूहा

वाऊँम दीपक पवन भव अंचल-सरण पयट्ठ।
कर-हीणउ धूणइ कमळ जोंण पयोहर दिट्ठ॥५७६॥

गाहा

वनिता-पति विदेस गय मंदिर-मझे अद्धरयणीय।
वाळा लिहइ भुयंगो, कहि सुंदरि कवण कज्जेण ॥५७७॥

प्रियतमा को उनके गुंजाफलों का भ्रम हुआ और इसीलिये उसने हँसकर मोतियों को डाल दिया।

५७५—ढोला—

प्रिय ने देखा कि फिर तरुणी द्वारा हाथ में लिया हुआ दीपक अंचल के अंदर से सिर धुन रहा है। हे सजनी इसका क्या कारण है?

५७६—मारवणी—

हे प्रिय दीपक पवन के भय से अंचल की शरण में गया परंतु अंचल के अंदर पयोधरों को देखा तो हाथ न होने के कारण वह सिर धुनने लगा।

५७७—ढोला—

स्त्री का पति विदेश गया। अर्धरात्रि को महल में वह बाला साँप का चित्र लिखती है। हे सुंदरि, कहो किस चीज से?

५७५—पच्छो (ग) पुणवे (म)। पवण (त)=पुणोवि। विगहीयं (क)। परि यंतराय (म) परिष्पोयणतेरीयं (ब) परियेरीयं (त)=परी रेण। पीउ (क) प्रिय (ग म. ब) मीम (त)। कमण (त)=कवण। सयाणो (क. ब) सयाणो (त)। दीपको (ब त) मूंझिये (म) धूण (त)।

५७६—वाजम (ग. त)। सरणि (म)। जाम (ग) जाम (त)=जोंण। पयोहरि (म)।

५७७—वास मीय विदेस गयौ (क ब. त) वाम प्रिय गयो विदेसे (ग)। मंझे (त) मझेय (ग) मधि (ब)। अद्ध (ग)। मधि-रैरणी (त) अद्धरयणाए (ग) मधि से रयणीए (ध)। लिख (ग) लिखो (ध) लिखयो (त)। भयंगो

ससनेही सज्जण मिल्या रयण रही रस छाइ।
चिहुँ पहुरे चटकउ कियउ, वैरणि गई विहाइ ॥५८१॥

(अष्टयाम वर्णन)

[पहिलइ पोहरे रैणके, दिवला चंदर दूल।
धण कसतूरी हुइ रही, प्रिय चंपारो फूल ॥५८२॥

दूजै पोहरे रयणके मिळियउ गुप्फमगुप्फ।
धण पाखा, पिव पाखरचौ, चिहुँ मळा मद छुप्प ॥५८३॥

तीजै पहरे रैणके मिळिया तेहा-तेह।
धन नहिं धरती हुइ रही, कंथ सुहावौ मेह ॥५८४॥

चोथे पहरे रैणके कूकड मेल्ही राखि।
धण संभाळे कंचुवौ, प्री मूँछाँरा वाखि ॥५८५॥

पँचमै पहरैं दीहरे लापधण दिये बुहारि।
रिमझिम रिमझिम हुइ रही, हुइ धण-प्री जौहारि ॥५८६॥

५८१—स्नेहवाले प्रेमी मिले। रात्रि आनंदमय हो गई। चारों पहरों ने रसिकता की और वैरिन रात बीत गई।

५८२—रात्रि के पहले पहर म दीपक आकाश में झूल रहे हैं। प्रिया कस्तूरी हो रही है और प्रियतम चंपा का फूल (हो रहा है)।

५८३—रात्रि के दूसरे पहर में दंपति दृढ़ आलिंगन देकर मिल रहे हैं। प्रिया पैदल है और प्रियतम सवार है। दोनों युद्ध में मग्न बोद्धा हैं।

५८४—रात्रि के तीसरे पहर मे पति पत्नि खूब गहरे मिलकर एक हो गए हैं—प्रिया धरती हो रही है और कंत सुहावना मेघ (हो रहा है)।

५८५—रात्रि के चौथे पहर म मुर्गों ने बाँग दी। प्रिया चोली को सँभ लती है और प्रियतम मूँछों के बालों को (सँभालता है)।

५८६—पाँचवें पहर दिन को वह प्रिया (बिखराए हुए मोतियों को बटोरने के लिये) बुहारी दे रही है। (उसके पायल की) रिमझिम रिमझिम ध्वनि हो रही है और प्यारी एवं प्यारे का जुहार हो रहा है।

५८१—सज्जण (क ख) सज्जन (ग)। छाइ (ग) छाइ (क) छोह (ख)। पहरे (ग ख)। हूअौ (ग. ख)=कियउ।

५८२-५९०—केवल (ख) में।

छट्ठे प्रहरे दिवसके हुई ज बीमणवार।
मन पावस, तन तापसी नैण ज पीकी धार ॥५८७॥

सत्तम प्रहरे दिवसकै धण सु वाड़ियाँ जाइ।
झाँणे द्राख-बिजोरियाँ धण झोलइ, प्रिय खाइ ॥५८८॥

आठम प्रहर संझा समै धण ठव्वै सिणगार।
पान कमद्ध काज्जर करै, फूलाँको गळि हार ॥५८९॥

प्रहरे-प्रहर ज ऊतर्यूं, दिवला सास भरेह।
धण जीती, प्रिय हारियउ, बेरहा मिलण करेह ॥५९०॥

(ढोला मारवणी की क्रीड़ा)

म्हँ ने ढोलो मूकिया हूँगे धमकलियेह।
म्हाँमे प्रिअजी मारिया चंपारे कळियेह ॥५९१॥

मैंन ढोलो मूँकिया म्हाँनूँ आवी रीस।
पाणा केरै कूपळै ढोलो साहिय सीस ॥५९२॥

५८७—छठे प्रहर दिन में ज्योनार हुई जिसमें मन पावस तन तपस्वी एवं नेत्र घी की धारा हैं।

५८८—सातवें प्रहर दिन में प्रिया वाटिका को जाती है और दाख एवं बिजौरे लाती है। प्रिया झोलती है और प्रियतम खाता है।

५८९—आठवें प्रहर संध्या समय प्रिया शृंगार सजाती है और पान खाकर एवं काजल लगाकर उसको दीप्त (विशेष मनोमोहक) करती है तथा गले में पुष्पों का हार धारण करती है।

५९०—जो प्रहर पर प्रहर बीता उसमें प्रिया जीती और प्यारा हारा। हे दीपक तू हमको आग भरना और उनके मिलन की बेला करना।

५९१—मारवणी सखियों से कहती है—ढोला कुमार मुझे चंदन की छड़ी लेकर चूम गया। प्रियतम ने मुझे चंपा की कलियों से मारा।

५९२—ढोला मुझे चूम गया। मुझे रोष आया और मैंने पान (नागपान) का पात्र स्वामी के सिर पर उंडेल दिया।

५९१-५९२—केवल (ज) में।

राति दिवसि रंगइँ रमइ, विलसइ नवरस भोग।
जोड़ी सारीखी जुड़ी केसव-तणइ संजोग ॥५६३॥

(ढोला का नरवर को लौटना)

पनरह दिन लग सासरइ रहियउ साल्हकुमार।
पूगल भगतौं नव-नवी कीधी हरख अपार ॥५६४॥
सोवँन मंडित सिंगार बहु मारवणी सुकमाइ।
गय, हैंवर, दासी बहुत दीन्हीं पिंगल-राइ ॥५६५॥
साथे दो-ही डोकरो दीन्हा पिंगल-राव।
ढोलउ नरवरनूँ चलइ, मारग अधिक उछाव ॥५६६॥

५६३—इस प्रकार दंपति रात दिन प्रेम क्रीड़ा करते हैं और नव रसों का विलास भोग करते हैं। भगवान् केशव की कृपा से उनकी अनुरूप जोड़ी जुड़ी।

५६४—साल्हकुमार पंद्रह दिनों तक ससुराल में रहा। पूगल (निवासियों) ने अपार हर्ष के साथ (प्रतिदिन) नई नई खातिर की।

५६५—मारवणी का गौना करके राजा पिंगल ने बहुत से सुवर्णमंडित शृंगार, अच्छे अच्छे हाथी घोड़े और बहुत सी दासियाँ दीं।

५६६—साथ में राजा पिंगल ने [illegible] (साथ दासी) दी। अब ढोला अत्यंत आनंद और उत्साह के साथ नरवर की ओर प्रस्थान करता है।

५६३—दिवस (क. ख. ग. घ. ङ)। रंगसौं (ख)। रमैं (क ख ग घ)। विलसे (घ)। नव नव (घ)=नवरस। जुड़इ (घ)। साहिब (घ)=केसव। तणी (ख)। संजोगि (घ)।

५६४—राउ (क ग. ङ)=सासइ। पिंगल (ग) = पूगल। अपार (ग. घ. ङ) = हरख।

नोट—(घ) में इस दोहे का पाठ इस प्रकार है—

पुंगल कीयो मोतुषाँ रहियो सासरवाडि।
पनर दिहाडा पदमणी मारू मनहर हाडि॥

५६५—मंडित (ख. ङ)। कै (ग) = बहु। मारवणी (ख ग.ङ)। हय (क.ग.ख)। हय गय (ख) = गय हैं। दीन्हा (ग)। राउ (ग) राव (घ. ङ)।

५६६—राइ (ग क)। मैं (ग)। दिय डोकरो (क) = डोकरउ। उछाह (क ख ग. ङ)।

हिव सूँमर हेरा हुवइ मारू मूँ वणहार।
पिंगळ राजावा दिया साहइ सो असवार ॥५९७॥

(साँप के पीने से मारवणी की मृत्यु)

वहताँ दिन बीजइ पछइ राति पड़ंती देखि।
रही मँझि डेरा किया ऊजळ जळधर देखि ॥५९८॥

ढोलउ मारू पौढिया रस मईं चतुर सुजाँण।
च्यारे दिसि चउकी फिरइ सोढइ भूप सुजाँण ॥५९९॥

मारवणी मुखससि तणइ कसतूरी महकाइ।
पासइ पन्नग पीवणउ निकळुकियउ तिणि ठाइ ॥६००॥

५९७—अब ऊमर सूमरा को खबर मिली थी मारवणी जानेवाली है और पिंगल राजा ने उसे पहुँचाने के लिये सौ सवार दिए हैं।

५९८—चलते हुए दूसरे दिन के पश्चात्, रात पड़ती जानकर (ढोला ने) निर्मल जल और स्थान देखकर जंगल के बीच में डेरा किया।

५९९—चतुर सुजान ढोला और मारवणी प्रेम में मग्न हुए सो रहे और चारों ओर सुभट सुजा सरदार पहरा देने लगे।

६००—मारवणी के मुखचंद्र से कस्तूरी की महक आ रही थी। उसी स्थान पर पास ही एक (प्राण पी जानेवाला) पीवणा साँप निकला।

५९७—हेरो (ख. ग)। मूँ वणहार (ग. च)। सवसुहड (ग) सबल सुहड (ख)=साहइ सौ।

५९८—रात (क)। पडौती (ग)। मझ (ख) मंझ (क. ठ)। डेरो (ग)। कीयो (ग)=किया। पर पाठ (क. ख. ग. च ठ)=जळधर।

५९९—रमि (ग)=मईं। रंग रमें (च)=रस मईं। दिसि (क) दिस (ख ठ)।

६००—मिस (ख)। तणो (क. ख ग)। कहि कसतूरी महमई मारवणी मुँह माम (ख) मारवणी महमाय करि कसतूरी महमहे (च)=मारवणी महकाइ। नागड (ग)=पन्नग। पीवणो (ख) पीवण्या (च)। नीसर्‌यो (क. ख. ग. च. ठ)=निकळुकियउ। तिण (ग. क. ख)। ठाइ (ग. च) थानि (ख) ठाम (ठ)=ठाइ।

नोट—(च) में यह दूहा नहीं है।

ढोला मारवणी मुई, तईं सारकी न सम्भ।
दीवा केरी वाटि जिम, खोड़ी खोड़ी दग्घ ॥६०९॥

(ढोला का विलाप)

वाही थी गुणवेलड़ी, वाही थी रसवेलि।
पोयण पीवी मारवी, चाल्या सूती मेल्हि ॥६१०॥
मारू मारू कळाइयौं, उज्जळ दंती नारि।
हसनइ दे हुँकारड़ा, हियड़ा फूटणहारि ॥६११॥
[वीसारियाँ न वीसरइ, चितारियाँ मावंत।
मारू सायर लहर ज्यूँ हियड़े द्रव करंत ॥६१२॥]

६०९—हे ढोला मारवणी मर गई और तूने उसकी सुध भी न ली। वह दीपक की बाती की भाँति धीमे धीमे जल गई।

६१०—ढोला वचन—

वही (मारवणी) गुणों की लता थी और वही रस की बेलि थी। ऐसी उस मारवणी को पीयणे साँप ने पी लिया और हम उसे सोती छोड़कर चले।

६११—"हे मारू हे मारू, इस प्रकार कहकर ढोला विलाप करने लगा। "हे उज्ज्वल दाँतोंवाली नारी, हँस कर के उत्तर दे मेरा हृदय फूटने वाला है।

६१२—भुलाने से नहीं भूलती और स्मरण करने से पास नहीं आ जाती। मारवणी हृदय को सरोवर की लहर के समान द्रवीभूत किए देती है।

६०८—जिम (क ख ग च ज ट)। जिमहर (ख)। राजीपा (ज) पाविमा (च)=वणा। सूवइ (ख) सूवै (च)। नचंती (ग)। मैले (घ)।

६०९—केवल (ज) में है।

६१०—उगाही छ (घ) बाधी है (ट)=वाही थी। उगाही छै (घ) वाही छै (ट)। हुइ गुणवेल (ख)=वाही थी रसवलि। वाप अमराया साद करि वाधै न या मेलिह (घ में दूसरी पंक्ति) अम वांधा सांरो करो वाढे पाया की मेल (घ म दूसरी पंक्ति) अम वांधा सादा करो वामेई छोड्यो मेल (घ में दूसरी पंक्ति)।

६११—केवल (ज) में।

मारू त्रिहुँ बरसे वडी, चंपारइ उणिहार।
सा कुँमरी परणाविस्यौं, चालउ, राजकुमार ॥६१३॥
इणि भवि मारू कामिणी, मन-पाणी इणि सत्थ।
पूगळनूँ सहु को वळउ, न करउ म्हाँही कत्थ ॥६१४॥
ढोलउ किम परचइ नहीं सहु रहिया समझाइ।
के पूछिया पूगळ-दिसी के कोंही कवि काइ ॥६१५॥

(योगी द्वारा मारवणी का पुनर्जीवित होना)

इक जोगी आणंद-माँ आव्यउ तिणहिज वाट।
जाँणे श्रीपति मेलिया भाँजण साल्ह उचाट ॥६१६॥

६१३—साथ के लोग कहते हैं—

मारवणी से तीन बरस बड़ी और चंपा के समान रूपवाली जो राजकुमारी है वह आपको ब्याहेंगे हे राजकुमार यहाँ से चलो।

६१४—ढोला ने उत्तर दिया इस जन्म में मारवणी ही मेरी स्त्री है। मेरा मन बस इसी के साथ है। सब कोई पूगळ को लौट जाओ मेरी बात मत करो।

६१५—ढोला किसी प्रकार नहीं समझता। सब लोग समझाकर थ गए। फिर कुछ तो पूगळ की ओर चले गए और कुछ किसी काम से कहीं चले गए।

६१६—एक योगी अपने आनंद में उसी रास्ते पर आ निकला मानो साल्हकुमार की व्यथा को दूर करने के लिये भगवान् ने भेजा हो।

६१३—ई तिहु (क ग)=त्रिहु। वा त्रि बरस (ग)=त्रिहुँबरसे। मछआरि (ग)। कुमारी (क) कुमार (ग)।

यह दोहा (ख) में इस प्रकार है—

पिंगळ राय कहावियउ ढोला चाले आव।
मारू वडुरी वहिनडी तोहि-सधी परणाव ॥

६१४—इय (क. ग)। कामिणी (क. ख) कामणी (ग)। मन (ग)=भव। उण (ग) इय (क. ख ग)=इणि। साथी (क) साथ (ख. ग)। म्हाँरीयी (ख)। कम (ख) काम (ग)।

६१५—सो तो (ख) सो तई (ग)=ढोलो। कहीं (ग)=किम। सब (ग) सवि (क)। परच्यइ (ग)=समझाइ। वळिय (ग)=पूछिया। दिसा (क)। के (ग)=कै। क्योंही (क। कज (क. ख ग) किस (ख)=कवि।

६१६—एक (क. ख)। जोही (ख)=जोगी। आणंद (ग)। आयो (ग) आव्या

साथइ सुंदरि जोगिणी, मारवणीसूँ प्यार ।
तिण जोगी ओळखिया ढोलउ मारू मार ॥६१७॥
नर मारीसू क्यूं बळइ नरसूं नारि बळंत ।
साल्हकुंवर जोगी कहइ, आइसउ केम मरंत ॥६१८॥
जोगी सुणि डाखउ कहइ, तोनूँ केही तात ।
थे पथी, तुम्हो पंथ सिर, म करि पराई बात ॥६१९॥
जोगिणा जोगीसूँ कहइ सौंमळि नाथ समथ्थ ।
का जीवाड़उ मारुवी, हूँ पिण इणहिज सथ्थ ॥६२०॥

६१७—उसके साथ में एक सुंदरी जोगिन थी जिसका मारवणी से प्रेम था। उस जोगी ने नारी मारवणी और ढोला को पहचान लिया।

६१८—वह जोगी ढोला को *लक्ष्य करके कहने लगा—नर के साथ नारी जलती है, पर नर नारी के साथ क्यों जले? जोगी कहता है कि हे साल्हकुमार स्वयं ही क्यों मरता है?

६१९—ढोला कहता है कि हे जोगी सुनो तुम्हें क्या चिंता है? तुम पथिक हो अपना रास्ता पकड़ो पराई बात मत करो।

६२०—(तब) जोगिन जोगी से कहती है कि हे समर्थ स्वामी सुनो या तो मारवणी को जिला दो नहीं तो मैं भी इसी के साथ (जल मरती) हूँ।

(क) झाम्पा (क)। उणहिज वार (ग)=तिणहिं ज वार। जिला मारवण (ख)=मारवण साल्ह।

६१७—साथे (क ग)। जोगणी (ग)। री धारि (क ख. ठ)=सूं प्यार। प्यार (ख)=बार।

६१८—क्यों (क)। बळै (ख)। मसिसो (ग) इसको (ठ)। कोइ (ग)=केम।

६१९—सूं कांहे कमकाल (ठ)=तोनूँ केही तात। पंथी (ग)=थे पंथी। तुम्हो (क. ख. ग. क) हो (ठ)। न (क. ख. क. ठ)=म। करौ (क. ग. ठ)। म्हांकी (ग) म्हांरी (ठ)=पराई। वात (ग ठ)=बात।

६२०—सूं (ख)=सूँ। समाथ (ग ठ)। जीवारौ (ग)। मारवणी (ख)। का हूँ इण साथ (ग)। इणही (क)=इण हिज।

(ऊमर सूमरे की कथा)

डेरा गया ऊमर कन्हइ, कहियउ पढ़ी बात।
ढोलउ मारू एकला, लहसि न पही भात॥६२६॥

(ऊमर का पीछा करना)

पढी भखी म, करहला कळइळिया कड़कीय।
का प्री रागौं मौण करि कोइ अचंती होय॥६२७॥
किवँ, ठाकुर, भळगा वहउ आवउ आमत करीह।
म्हे पिण आस्यौं नरवरइ एकण साथ चलौह॥६२८॥
ऊँमर साल्ह उवारियउ मन खोटइ मनुहारि।
पगसूँ ही पग ठूँटियउ, मुहरी म्हाळी नारि॥६२९॥

६२६—(इधर ऊमर सूमरे के) दूत ऊमर सूमरे के पास गए और यह बात कहने लगे कि अब ढोला और मारवणी अकेले हैं ऐसी बात फिर नहीं मिलेगी।

६२७—पीछे आते हुए ऊमर सूमरे के घोड़ों की टापों का शब्द सुनकर मारवणी कहती है—

अरे ऊँट, यह तो ठीक नहीं घोड़ों का शब्द हो रहा है। (फिर ढोला से कहती है कि) हे प्रिय या तो इनको अपने प्राणों का मोह है (वे प्राणों के भय से भाग रहे हैं) या इनको कोई अचिंत्य हानि होनेवाली है।

६२८—ऊमर ढोला के पास पहुँच गया तो कुछ दूर से बोला—

हे ठाकुर! यों अलग क्यों चल रहे हो, आओ विश्राम एवं जलपान आदि कर लें। हम भी नरवर जावेंगे, (सभी) एकही साथ चलें।

६२९—ऊमर सूमरे ने साल्हकुमार को खोटे मन से आग्रह करके, उतार

६२६—गया (क. ख. ग. घ)। ऊँबर (ख)। कहीज (ख ग)। ये ही (ग)। एकला (ख)। लहिसिय (ग) हिव (क. ख) इसड़ी (ग. क)।

६२७—दृढ़ (ख ग. घ) एक (ख)। कड़कहिसि (क ख)। भल मये मेंकावि(ब)=कळइळिया कड़कीय। कै (ख ग) केइ (घ)। प्रिय (घ) रागे (घ ख)। अचेही (क. ग) अचीती (घ)। हाणि (ख घ ख) हानि (क)।

६२८—किम (ग)। अमल (ग)=आमत। म्हेई (ग)=म्हे पिण। नरवरी (ख)। नरवर आइस्यौं (ग) नरवर आइस्यौं (ख)। एकण बाँधि चलोह (क. ख ग)।

६२९—मनुहार (ख. ग)। पग (क. ख. ग)=पगसूँ ही। दूठियउ (ख)। महुरी (ख)। म्हाळी (ख. ब)।

ढोलइ मनह बिमासियउ साँच कहइ छइ एह।
करह बेकि दोनूँ चढ्या, कूँट न संभाळेह ॥६३७॥

[पिउ ढोलउ, श्री मारुई करहउ कुंकुं भम।
ऊमर दीठा पकड़ा, चढ़ा ज तीन रतन ॥६३८॥]

ऊमर दीठी मारुई, कीमू जेही लंकि।
चाँपि हर सिरि फूलड़ा, डाके चढ़ी कहक्कि ॥६३९॥

ऊमर ऊतावळि करइ पल्लाणियाँ पवंग।
सुरताणी सूघा करंग चढ़िया दळ चतुरंग ॥६४०॥

६३७—ढोला ने मन में सोचा कि यह सच कहती है। तब ऊँट को बिठाकर दोनों चढ़ गए परंतु ऊँट के पैर के बंधन की ओर ध्यान नहीं दिया।

६३८—पति ढोला की मारवणी और कुंकुम वर्णवाला ऊँट—इन तीन बड़े रत्नों को ऊमर ने एक ही साथ जाते देखा।

६३९—ऊमर ने बर्रे जैसी (पतली) कमरवाली मारवणी को देखा। वह ऊँट पर चढ़ी लहलहा रही थी मानों महादेवजी के सिर पर फूल लहलहा रहे हों।

६४०—ऊमर ने जल्दी करके घोड़ों पर जीन कसे। सीधी सुरताणी तलवारों को लेकर चतुरंगिनी फौज चढ़ी।

६३७—मन (ग)। कहाँ (क ख ग. घ)। बेक (ख. ग)। दूवे (ख. ग) दूनू (क) तिन्हे (ग)।

६३८—मारू ढोलै वेसमैं दीठा तीन रतन।
एक ढोलो एक मारवी करहो दूंढे मन ॥ (ग)

नोट—केवल (ट) और (ग) में।

६३९—किमू (ख. ग)। जैहि (ख) जेही (घ)। लंकि (ख)। सिर (ख ग)। चढ़ी (ग)। लहकि (घ)।

६४०—ऊमरि (ग)। चलि ऊतावळि (ग)=ऊतावळि। पाखर्या (ग) सही (ग)=करंग। चढ़ियो (ख)।

छूट कटाड़ी दे छुरी बंधाड़ी कर लिय तास।
चारण, हूँ देखइ जिसा कहिज्यउ ऊमर पास॥६४५॥
बीजइ दिन ऊमर मिल्यउ, पह ऊगंता सूर।
ढोलउ मारू एकठा, कहि, केतीहेक दूर॥६४६॥
ऊमर सुणि मुझ बीनती बउड़ि म मार तुरंग।
करहउ लंघियउ कूदियउ आडावळ बड़ चंग॥६४७॥
ऊँचा डूंगर विसम पथ, लागा फिर तारेहि।
कूल्यउ करहउ लंघिया, घोड़ा म म्हारेहि॥६४८॥

६४५—तब उसने चारण को छुरी देकर उसी के हाथ से उस (ऊँट) का बंधन कटवाया। (और चारण से कहा)—हे चारण, तुम हमको जैसा देखते हो जाकर वैसा का वैसा ऊमर से कह देना।

६४६—(चारण वहाँ से चला।) दूसरे रोज सूर्य के उदय होते हुए मार्ग में ऊमर मिला (और उससे पूछने लगा कि) बताओ ढोला और मारवणी जो एक साथ जा रहे हैं कितनी दूर पर हैं?

६४७—(उत्तर में चारण ने कहा)—हे ऊमर मेरी प्रार्थना सुनो बेचारे घोड़ों को दौड़ाकर मत मार डालो। (वहाँ तो) पैर बँधा हुआ ऊँट आडावळ की महान् घाटी को लाँघ गया है।

६४८—ऊबड़ खाबड़ भूमि को और ऊँचे पहाड़ों को जो मानो तारों से बातें करते हैं ऊँट पैर बँधे हुए ही लाँघ गया है। (अब) तू घोड़ों को दौड़ाकर मत मार।

६४५—कडि कटारी (ख ग)=छूट कटाड़ी। कारे छुरी तास (ख ग) कारे बंधण तास (म)=बंधाड़ी कर लिय तास। जिसी (क) जिसो (ख)।
केवल (क ख ग घ. ङ. म) में।

६४६—पह (क घ)। बताओ न (क ख)=कहि। केती (क. ख)=केतीहेक। एक (ग) इक (म)=हेक। कहो स केती (ङ)=कहि केती हेक। दूरि (ख)।
केवल (क. ख ग घ. ङ म) में।

६४७—सुणी (ङ)। बीनती (क)। न (ख)=म। करहे (ख)। ईहै करहै लंघीया (क ग)। उलंघीयाँ (ख)। आडावळरो बंग (ख)।
केवल (क ख ग. घ ङ) में।

६४८—ऊँचा (ख)। पंथ (ख)=डूंगर। लागा (ख)। कूदै (ख) कूदे (ख)। मा (ख)। सी पिव बिच पाँथी थको मति घोड़ा मारेह [(ख) में द्वितीय पंक्ति]।

कूटि कटाळो हथि करइ, हिव नरवर नेड़ेह।
ऊमर, सुणि मुझ बीनती, घोड़ा म म्मारेह ॥६४९॥

(ढोला का नरवर लौट आना)

ऊमर मन विखखउ हुयउ चारण वयण सुणेह।
वळिहि ज पँथ पाछउ वळयउ, साल्ह निचंत करेह ॥६५०॥
ढोलउ नरवर आवियउ मंगळ गावइ नार।
वळव हुवउ आयउ घरे हरख्यउ नगर अपार ॥६५१॥

(दंपति विनोद)

साल्हकुमार विलसइ सदा काँमिण सुगुण सुगात।
माळवणीनूँ एक निस, मारवणी दुइ रात ॥६५२॥

६४९—ढोला ने हाथों हाथों से ऊँट का बंधन कटवाया है और अब तो वह नरवर के निकट होगा। हे ऊमर, मेरी विनती सुन घोड़ों को मत मार।

६५—चारण के वचन सुनकर ऊमर मन में उदास हो गया और उसी मार्ग से वापिस लौट गया और इस प्रकार साल्हकुमार को निश्चिंत कर गया।

६५१—ढोला नरवर लौट आया। वहाँ नारियाँ मंगल गीत गाने लगीं और उत्सव होने लगा। ढोला घर लौट आया (यह सुनकर) सारा नगर बहुत हर्षित हुआ।

६५२—अब साल्हकुमार सद्गुणवती और सुंदरी नारियों के साथ नित्य

६४९—ऊँट (क)। करइ (क ध) = करह। नळवर। (ग)। यह नेड़ेह (क. ध)=नीड़ेह। ए तेह (ख)=नीड़ेह। सुण (ग)। म (ख ग)=मत। घोड़ा दौड़ न मारेह (ख)।

केवल (क. ख ग घ ङ. त) में।

६५०—मनइ (ख)। क्रियो (क ध)। सखेह (ख)=सुणे। वय (क. ध)। नचीत (ख)।

केवल (क ख ग घ ङ. त) में।

६५१—नळवर (ध)। नारि (क ख)। हुवा (ग) करि (क. ध)= हुवो। आया (घ) हरख्या (क)।

६५२—कामणि (ग)। निसि (क)। मारवणी (ख)=माळवणी। राति (ग त)।

केवल— क. ख ग । त) में

मारवणी नइ माळवणि ढोलउ लियइ भरतार।
एकणि मंदिर रँग रमइ, की जोड़ी करतार ॥५५३॥

(मारवाड़ की निंदा)

तवणउ मालवणी कहइ, साँभळि कंत सुरंग।
सगळा देस सुहामणा, मारू देस विरंग ॥५५४॥
बाळउँ, बाबा देसड़उ, पाँणी जिहाँ कुवाँह।
आधीरात कुहक्कड़ा, ज्यउँ माणसाँ मुवाँह ॥५५५॥

सुख भोगने लगा। उसने मालवणी को एक रात और मारवणी को दो रातें दीं (एक रात मालवणी के साथ रहता और दो रात मारवणी के साथ)।

५५३—मारवणी मालवणी और उनका पति ढोला एक ही महल में आनंद से रंग मनाते हैं। विधाता ने यह (अपूर्व) जोड़ी बनाई।

५५४—उस समय मालवणी कहती है—हे रसिक कंत सुनो सारे देश सुहावने हैं, किंतु एक मारू देश (मारवाड़) ही विरंगा (नीरस) है।

५५५—हे बाबा ऐसा देश जला दूँ जहाँ पानी गहरे कुँओं में मिलता है और जहाँ पर (लोग) आधी रात को ही पुकारने लगते हैं मानों मनुष्य मर गए हों।

५५३—भाक मर माळवणी (क ख ग घ)। ढोलै (क. ख ग. घ) त्याहरै ढोलो (च)=ढोलउ लियइ। एकण (ग घ) इसै (च)=एँण। रँग में (क. ख)=रँग रमइ। कीई (ग) करि (च)=की।

केवल (क. ख ग घ च) में।

५५४—सँभळ (ग)। सिणगार (ग)।

केवल (क. ख ग. घ) में।

५५५—बाळूँ (क. ख ग घ. च)। बाबा बाळूंई (ख. घ)। ढोला प्रीतम (च)=बाबा। जहाँ पाँणी (क ख) जिहाँ पाँणी (ख घ ग च)। कुपरि (च) कुवेह (ग) कुवां (घ) कुवेहि (ख) रात (ग) रातइ (घ)। पुकारत (च) कूकता (ख) कुहुकइ (घ) कुहुका (ग) विहाणवी (क. ख ग. घ)= कुहक्कड़ा। ज्यौं (क ख ग. घ) जिउ (च) जाणै (ख) जिम (ग)। मांणिसां (ग) मांणस (ख. घ)। मुवारि (ख. च) मुवेह (ग) मूंआह (ग) मुवां (ग)।

बाळउँ, बाबा देसड़उ, पाँणी संदी ताति।
पाँणी केरइ कारणइ प्री छंडइ अधराति ॥६५६॥

[बाळूँ ढोला, देसड़उ, जहँ पाँणी कूँवेण।
कूँ कूँ वरणा हथ्थड़ा नहीं सु पाड़ा जेण ॥६५७॥]

बाबा, म देइस मारुवाँ, सूधा एवाळाँह।
कंधि कुहाड़उ, सिरि घड़उ वासउ मंझि थळाँह ॥६५८॥

बाबा म देइस मारुवाँ, वर कूँआरि रहेसि।
हाथि कचोळउ, सिरि घड़उ, सीचंती य मरेसि ॥६५९॥

६५६—हे बाबा उस देश को जला दूँ जहाँ पानी का भी कष्ट है और पानी (निकालने) के लिए प्रियतम आधी रात को ही छोड़कर चले जाते हैं।

६५७—हे ढोला उस देश को जला दूँ जहाँ पानी गहरे कुँओं में मिलता है और जहाँ कुंकुमवर्णवाले सुंदर हाथ उसको नहीं निकालते।

६५८—बाबा मारू देश में सीधे सादे भेड़ चरानेवालों को मुझे मत देना (विवाहना) जहाँ कंधे पर कुल्हाड़ा और सिर पर घड़ा रखना पड़ेगा और थली (मरुभूमि) के बीचों बीच रहना पड़ेगा।

६५९—बाबा मुझे मारू देश में मत देना कुमारी चाहे रह जाऊँ।

६२६—बाळउँ (क ख ग. घ) बाळूँ (ज)। बाबा बाळउँ (च छ)। पाँखि (ज)। जहाँ पाँणी की (क. ख ग घ)=पाँणी संदी की (क. ख. ग घ. ज) हंदी (ज) हुंती (च)। ताति (क. ख ग घ) ताप (च छ)। अब एकली मुइ रहे (क. ख ग घ ज) एक घड़ी के कारणे (ज)=पाँणी केरइ कारणइ। प्रीय (ज) प्रिय (छ)। छाँड (क ख ग घ ज) छाँडे (ज)=छंडइ। आधी (ख. ग घ)। रात (क ख ख घ. घ)।

६२७—ऐसउ (ज) में।

६२८—म (ख. घ)=म। देइस (क ख ग. घ. छ) मारवाड़ि (ज) मारुई (च छ)। बापा (ज ख च)=सूधा। गोवाळाँह (क. ख ग घ. ज) गहवाँई (ज)। सिर (क. ख. ग घ. ज)। मंझि (ज) मंझि (क ख ग. घ)।

६२९—न (ख. घ)। देइ (ग ख घ)। मारु (च छ) मारवाड़ि (ज)। वकि (च) वढि (ज)। कुमारि (क ख ग. घ) कुँआरि (च छ) कुँवारी (ज)। राह (ज)। कुँच पैर भरेस (ज)=वर कुँआरि रहेसि। हाथ (ख. ख क ख ग. घ)। सिर (क ख ग. घ च ज)। पाँणी भरति (ज) सींचता (घ) सींचती (क. ख ग. घ) सीचंतो (छ)=सीचंती य। मरुंगि (घ)=मरेसि।

(मालव देश की निंदा)

वळती मारवणी कहइ मारू देस सुरंग।
बीजा तउ सगळा भला, माळव देस विरंग।।६६३।।
बाळूँ बाबा, देसड़उ जहाँ पाँणी सेवार।
ना पणिहारी झूलरउ ना कूवइ लेकार।।६६४।।
बाळूँ, बाबा देसड़उ जहाँ फीकरिया लोग।
एक न दीसइ गोरियाँ घरि घरि दीसइ सोग।।६६५।।

(मारवाड़ की प्रशंसा)

मारू देस उपन्नियाँ तिहाँ का दंत सुसेत।
कूंझ बची गोरंगियाँ खंजर जेहा नेत।।६६६।।

६६३—उत्तर में मारवणी कहती है कि मारू देश सुरंगा है और सब देश तो अच्छे हैं पर मालव देश विरंगा है।

६६४—बाबा उस देश को जला दूँ जहाँ पानी पर सेवार छाया रहता है और जहाँ न तो पनिहारिनों का झुंड आता जाता रहता है और न कूँओं पर पानी निकालनेवालों का लवकूय शब्द ही होता है।

६६५—बाबा उस देश को जला दूँ जहाँ के लोग फीके (नीरस) हैं जहाँ एक भी गोरी (सुंदरी) दिखाई नहीं देती, और जहाँ (काले वस्त्र पहनने का रिवाज होने के कारण) घर-घर शोक छाया-सा दिखाई देता है।

६६६—जो मारू देश में उत्पन्न हुई हैं उनके दाँत बड़े उज्ज्वल होते हैं वे कुंझ पक्षी के बच्चों की भाँति गौर वर्ण होती हैं और उनके नेत्र खंजन जैसे होते हैं।

६६३—मारू (क. ख)=मारुव। बळ बीजा केइ क भला पिण माळव देस विरंग (ग)।

६६४—लवकार (ख)।

६६५—बाळम (ग) = बाबा। फीकरिया (ग. घ)। गोरडी (घ) घर घर (क. ख. ग)।

६६६—उपन्नीया (ग)। त्याहकां (ग)। सपेत (ग) सुसेत (घ)। कूंझी (ग)। बचा (ग)। कंज गची क्रांग धंमिया (घ)।

माळव-देस विलोड़िया, मारू किया बधाय।
मारू सोहागिण थई सुंदरि सगुण सुभाय ॥६७२॥
जिम मधुकर-नई केतकी जिम कोइल सहकार।
मारवणी-मन हरखियउ तिम ढाढ भरतार ॥६७३॥

उपसंहार

आणद अति, उछाह अति नरवर माँहि हुलास।
सजनाँ सखर्याँ-तणाँ कळिमाँ रहिया बोल ॥६७४॥

स्त्रियों का झगड़ा मिट गया। मारवणी आनंदित हुई। उसने प्रियतम के प्रेम की परीक्षा पा ली।

६७२—ढोला ने मालव देश की अमर्यादा की और मारू देश की मर्यादा की। इस प्रकार सद्गुणवती और चतुर मारवणी सौभाग्यवती हुई।

६७३—जिस प्रकार केतकी से मधुकर का और जिस प्रकार आम्रवृक्ष से कोकिल का मन हर्षित होता है उसी प्रकार ढोला पति से मारवणी का मन हर्षित हुआ।

६७४—अत्यंत आनंद और बड़े उत्सवों के साथ ढोला नरवर में रहने लगा। उन प्रेमी स्नेहियों की वार्ता इस कलियुग में रह गई है।

६७२—मालवणी (क. ख. ग. घ.)। विलोडियो (ग. घ.)। कीयां (घ.)। सोहागणि (क. ख.) सुहागण (ग.)। हुई (घ.) = थई। सुगुण (ग. घ.)।

६७३—जिर (घ.) = नई। मु (घ.) = मन। ज्यों (क. ख. ग.) = जिम। मु ढोलो (ग.) = ढोलइ। ढोलो (घ.)। ज्युं हंस मोर्ड मानसर ज्युं ढोलो मारुवर भरतार [(ख) में द्वितीय पंक्ति]।

६७४—अधिक (घ.) = अति। माह्या (घ.) = माँहि। सज्जनीहां (क. ख.)। सजणां (ग. घ.)। तणी (क. ख.) तणी (घ.)। मैं (ग. घ.)। रहीयो (ग.)।

परिशिष्ट

नोट

परिशिष्ट में भिन्न भिन्न प्रतिलिपियों में उपलब्ध पद्य अथवा गद्य का वही अंश दिया गया है जितना हमारे अनुसार वाचक कुशललाभ से पूर्व की 'ढोलामारूरा दूहा' की अपनी प्राचीन प्रति में यदि प्राप्त होती तो होना संभव नहीं था।

जो दोहे मूल में रख लिए गए हैं उनकी संख्या मूल के अनुसार, परिशिष्ट में उद्धृत प्रतिलिपियों में दे दी गई है जिससे यदि कोई विद्वान् उन प्रतिलिपियों के पूरे रूप को खड़ा करना चाहें तो संख्याओं के स्थान पर मूल के उन्हीं संख्याओंवाले दोहों को रखकर, सहज ही में भर सकते हैं।

परिशिष्ट (१)

टिप्पणी

शीर्षक

ढोला—अप ढोल्ला। इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के दुर्लभ शब्द से हुई बताई जाती है (दुर्लभम्, दुल्लम दुल्लह, दुल्लह ढोल्लह ढोल्ल, ढोल्ला)। अपभ्रंश कविता में यह शब्द नायक के अर्थ में आता था। हेमचंद्र के प्राकृत व्याकरण के अपभ्रंश भाग में यह शब्द तीन बार आया है[1] और तीनों बार नायक के अर्थ में। प्राकृत[2]-पिंगल-सूत्र में भी एक स्थान पर यह शब्द आया है और टीकाकारों ने यहाँ पर उसका अर्थ ढोल किया है पर वीर, नायक नेता यह अर्थ भी किया जा सकता है।

राजस्थानी भाषा में यह शब्द बहुत प्रचलित रहा है और आज भी है। राजस्थान की ग्रामीण कविता एवं गीतों में इसका बहुत प्रयोग हुआ है। इसका अर्थ नायक पति या वीर होता है और यह बहुधा संबोधन में ही प्रयुक्त होता है। दो चार उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

(१) गोरी छाई है थी रूप ढोला, धीरां धीरां आव।

---

1 (१) ढोल्ला सामला धण चंपावण्णी। (८-४ ३३)
(२) ढोल्ला, मइँ तुहुँ वारिया मा कुरु दीहा माणु।
निद्दए गमिही रत्तडी दडवड होइ विहाणु॥ (८ ४ ३३)
(३) ढोल्ला एह परिहासडी अइभण कवणहिं देसि।
हउँ झिज्जउँ तउ केहिँ पिअ तुहुँ पुणु अन्नहि रेसि॥ (८ ४ ४२५)

2 ढोल्ला मारिय ढिल्लि महँ मुच्छिअ मेच्छ-सरीर।
पुर जज्जल्ला मंतिवर चलिअ वीर हम्मीर॥
चलिअ वीर हम्मीर पाअ भर मेइणि कंपइ।
दिगमग णह अंधार धूलि सुररह आच्छाइहि॥
दिगमग णह अंधार आण खुरसाणक ओल्ला।
दरमरि दमसि विपक्ख मारु ढिल्ली मह ढोल्ला॥

(२) अमल लेती, भँवरजी, ये कठी थी ढोली ढोला मारूड़े करयो को निनाद । थाँहाँरी रथ आया भँवरजी परदेस में थी, म्हे थी म्होंर वधा-वमाऊ उमराव थाँरी प्यारी ने पलक न आँखड़े थी ।

(३) गोरी तो मीचे, ढोला गोखड़े आली को मीचे थी फोरों माँय । प्रेम पर प्राण का आसा थारी लग रही हो थी ।

(४) दूर्वाने ही वाचो ढोला थीरो नहीं बूहो भो राज ।

हमारी संमति में यह ढोला शब्द किसी व्यक्ति के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। किसी प्रसिद्ध लोकप्रिय व्यक्ति का नाम ढोला (सं दुर्लभराज) रहा होगा और बाद में उसका नाम नायक के अर्थ में प्रचलित हो गया होगा। राधा और कृष्ण वास्तविक व्यक्ति थे परन्तु अंत में वे समस्त कविता के नायक-नायिका हो गए। वह ढोला या दुलम्मराज कौन था यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता पर हमारा अनुमान है कि यह ढोला इसी ढोलामारूरा दूहा ग्रन्थ का नायक था। यह ढोला एक ऐतिहासिक व्यक्ति है। वह जयपुर के राजवंश का पूर्व पुरुष था। जयपुर का कछवाहा राजवंश पहले नरवर म राज्य करता था। इस नरवर को नल नाम के राजा ने बसाया था और इसी नल का पुत्र ढोला था। ढोला की दो तीन पीढ़ियों क बाद कछवाहे राज-पूताने में चले गए और वहाँ राज्य करने लगे। इतिहास के अनुसार ढोला का समय संवत् १   के आसपास आता है। नैणसी न अपनी ख्यात में लिखा है कि इस ढोला के दो स्त्रियाँ थी जिनमें एक मारवाड़ की और दूसरी मालवे की थी। राजस्थान के प्रसिद्ध ऐतिहासिक मुंशी देवीप्रसादजी लिखते हैं कि आमेर के कछवाहों की लम्बी चौड़ी वंशावली में लिखा है कि नल नरवर का राजा था जिसकी रानी दमयंती थी और ढोला उसका बेटा था जो बहुत बलवान् और स्त्रियों का रसिया था। वह मारवणी नाम की एक स्त्री को बहुत प्यार करता था। ढोला और मारवणी के विवाह तथा प्रेम की कथा का राजस्थान में बहुत प्रचार हुआ और ढोला मारू ये नाम घर घर में प्रसिद्ध हो गए। धीरे धीरे इन्होंने इतनी लोकप्रियता प्राप्त कर ली कि ये नायक-नायिका के साधारण अर्थ म प्रयुक्त होने लगे।

मारू—स मरु से। इसका अर्थ है मरु का या मरु की। यहाँ यह शब्द स्त्रीलिंग है। इस शब्द के अनेक रूपांतर मिलते हैं जैसे मारू, मारवी मारवणी, मारवणी मारवणी मारवण मरवण। राजस्थान म रानी का नाम प्रायः देश के नाम पर रख दिया जाता है; जैसे मीराँ के लिये मेड़तणी राणी (मेड़तावाली

रानी)। इसी प्रकार ढोला की इस रानी का नाम मारवणी प्रसिद्ध हुआ। उसकी दूसरी रानी मालवा की थी और वह मालवणी (मालवे की) नाम से प्रसिद्ध थी। कभी कभी कन्या का नाम भी अपने देश पर रख दिया जाता है। संभव है, ढोला की स्त्री मारवणी का यह नाम उसके पितृगृह का ही रखा हुआ हो।

ढोला की भाँति मारू या मारवण शब्द भी राजस्थान में खूब प्रचलित रहा है। गीतों आदि में इसका बहुत प्रयोग मिलता है। वर्तमान काल में नायिका के अर्थ में मारू शब्द नहीं आता मारवण या मरवण आता है। मारू का प्रयोग अब पुँल्लिंग में नायक के अर्थ में होता है और यह कभी कभी ढोला शब्द के साथ भी आता है। नीचे कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

(१) उर चवड़ी कड़ पातळी ठावो ठावो मंस।
ढोला, थारी मारवण पाणासररो हंस॥

(२) मारवण थारे लो नैणाँरो पाणी लागस्यो।
हो प्यारी मारवण थारा नैणाँरो पाणी लागस्यो॥

(३) मरुधरिया महाराज म्हाँने कद लो पियाई दारूड़ी।
बोलो नी, दारूड़ा मारू, पूछे थाँरी मारूड़ी॥

(४) दखरा म, ढोला-मारू, पे ही थी गँवार। नित उठ मुजरा पे आओ थी म्हाँरा राज। दखरा मे मरवण मे ही प सपूत नित उठ रण में मे ही चटोंथी म्हारा राज।

मारू इस काव्य की नायिका है। यह पूगळ के परमार राजा पिंगळ की कन्या थी। संभव है कि इसकी कथा के अत्यंत प्रसिद्ध होने के बाद व्यक्तिवाचक मारू या मारवणी शब्द जातिवाचक बन गया हो और नायिका के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा हो।

रा—पश्चिमी राजस्थानी (मारवाड़ी) में संबंधकारक का चिह्न रो (पुरानी वर्तनी में रउ या रौ) है। हिंदी की भाँति राजस्थानी में भी भेद्य के अनुसार यह चिह्न बदल जाता है—

पुँल्लिंग एकवचन— रो (रउ, रौ)	= (हिं) का
पुँल्लिंग बहुवचन—रा	= (हिं) के
विकारी रूप (पुँल्लिंग)—रे (रइ, रै)	= (हिं) के
(स्त्रीलिंग)—री	= (हिं) की

प्राचीन राजस्थानी कविता में रो के स्थान पर अन्यान्य संबंध कारक के प्रत्यय भी प्रयुक्त हुए हैं। जैसे—को (पूर्वी राजस्थानी और ब्रज), नो (गुजराती), चो (मराठी), जो (सिंधी) दो (पंजाबी)।

रो प्रत्यय की उत्पत्ति प्रा॰ और अप॰ केरो-केरउ प्रत्यय से हुई है।

दूहा—अप॰ दूहा हि॰ दोहा। इस शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत दोधक या दोग्धक शब्द से की जाती है। हमारी सम्मति में दोहा अपभ्रंश का ही शब्द है। यह छंद दो पंक्तियों में लिखा जाता है इसी कारण इसका यह नाम पड़ा है। राजस्थानी में यह दूहो (बहु॰ दूहा) कहलाता है। अपभ्रंश काल से यह साहित्य का सबसे अधिक लोकप्रिय छंद है। छोटे होने के कारण इनको याद रखने में सुभीता होता है। राजस्थान में आज भी हजारों दूहे लोगों की जबान पर पाए जाते हैं।

राजस्थानी मे दूहा छंद सब छंदों का मानो प्रतिनिधि है। अतः कभी कभी सामान्य छंद अर्थ में भी इसका प्रयोग कर दिया जाता है।

राजस्थानी में सोरठा भी दोहे के अंतर्गत समझा जाता है और उसे सोरठियो दूहो (= सोरठ देश का दोहा) कहते हैं। जैसे—

> सोरठियो दूहो भलो, भलि मरवणरी बात।
> जोबन छाई धण भली, तारों छाई रात॥

राजस्थानी म दूहा चार प्रकार का होता है। चारों प्रकारों के नाम ये हैं—

(१) दूहो (२) सोरठो, (३) बड़ो दूहो या अंतमेळ दूहो—१-४ चरण ११ मात्रा के २-३ चरण ११ मात्रा के (४) तूंवेरी या मध्यमेळ दूहो—१-४ चरण ११ मात्रा के २-३ चरण ११ मात्रा के। तुक सदा ११ मात्रावाले चरणों की ही मिलती है।

गाहा १—गाहा—अप॰ प्रा॰ गाहा सं॰ गाथा। संस्कृत पिंगल में इस छंद का नाम आर्या है पर प्राकृत और अपभ्रंश मे यह गाथा या गाहा नाम से ही प्रसिद्ध है। प्राकृत साहित्य का मुख्य छंद गाथा ही है। हाल कवि की गाथा सप्तशती इसी छंद में लिखी हुई है। गाथा छंद का प्रयोग बहुत पुराना है। प्राचीन बौद्ध साहित्य में पाली और संस्कृतमिश्रित गाथाएँ मिलती हैं जिनकी भाषा को कई विद्वानों ने भ्रमवश संस्कृत और पाली के बीच की भाषा माना है।

राजस्थानी में (और हिंदी में भी) गाथा छंद का प्रयोग नहीं होता। राजस्थानी के प्राचीन आख्यानक काव्यों में कहीं कहीं गाथाएँ मिलती हैं। वे उपदेशात्मक अवतरणों की भाँति आए हैं। इनकी भाषा बड़ी विचित्र प्राकृत अपभ्रंश एवं राजस्थानीमिश्रित होती है। उसे टूटी फूटी प्राकृत कहना चाहिए। उससे प्राचीनत्व की झलक अवश्य उत्पन्न हो जाती है।

पूगलि – पूगल + इ (अधिकरण का प्रत्यय) = पूगल में।

पूगल बीकानेर राज्य में बीकानेर नगर से कोई ५ मील पश्चिमोत्तर में है। पहले यहाँ परमार राजपूतों का राज्य था और पीछे यह जैसलमेर के भाटियों के अधीन हुआ। बीकानेर राज्य की स्थापना के समय यह एक स्वतंत्र राज्य था और इसका शासक बड़ा प्रतापी एवं प्रभावशाली था। बीकानेर के संस्थापक राव बीकोजी ने अपना प्रभाव बढ़ाने के लिये उसकी राजकुमारी से विवाह किया। पीछे से यह बीकानेर राज्य में मिला लिया गया। इस समय दूसरे दर्जे की रियासत है। पूगल के ठाकुर को राज्य की ओर से वंशपरंपरागत राव की उपाधि प्राप्त है।

परमारों का मूल राज्य आबू के आसपास था जहाँ से वे मारवाड़ सिंध मालवा और गुजरात तक फैल गए। परमारों के दो बड़े प्रतापशाली राज्य थे। एक आबू में और दूसरा मालवा में, जिसकी राजधानी धार थी। आबू के परमारों के राज्य के नौ बड़े विभाग थे जो बाद में स्वतंत्र हो गए। इन्हीं नौ राज्यों के कारण मारवाड़ राज्य अब भी नौ-कोटी मारवाड़ कहलाता है। इन नौ राज्यों में एक पूगल भी था।

इस समय पूगल की प्राचीन महत्ता सर्वथा नष्ट हो चुकी है। साहित्य और जनसमाज में पूगल की पद्मिनी स्त्रियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। अब भी उधर की स्त्रियाँ सुंदर समझी जाती हैं।

पिंगल—यह पूगल का परमारवंशी राजा था। इतिहास में इसका पता नहीं चलता। (राजस्थान के इतिहास की अभी पूरी खोज हुई भी नहीं है)।

राउ—सं० राजा प्रा० राय राय राउ।

नल—यह कछवाहा वंश का राजा जयपुरवालों का पूर्वज था। उस समय कछवाहों का राज्य ग्वालियर के आसपास था। ये पहले कन्नौज के प्रतिहार सम्राटों के सामंत थे फिर उनके निर्बल होने पर स्वतंत्र हो गए। नल ने नलवर या नरवर नामक नगर बसाकर उसे अपनी राजधानी

है। उसका विकारी रूप किया या के (कभी कभी कुण भी) होता है। उसी के आगे ही अव्यय जुड़ा हुआ है। यह 'ही' अव्यय कभी कभी सानुनासिक कर दिया जाता है। जैसे—किणहीं अवगुण हूँ कहो कुरलो मोंसिम रव। (दूहा ५७)

विसेसि—विसेस (विशेष) + इ (क्त्वा का प्रत्यय)।

ऊचाळउ—सं उच्चलन प्रा उचालो। अकाल पड़ने पर मरुस्थल की कई जातियाँ अपने परिवार तथा पशुओं के साथ स्वदेश को छोड़कर किसी पानी और घासवाले स्थान को चली जाती थीं। कभी कभी सभी लोग ऐसा करते थे। आजकल सब लोग तो ऐसा नहीं करते किंतु गाय भैंस आदि पालनेवाली जातियाँ कभी कभी ऐसा करती हैं। राजस्थान के लोग प्रायः मालवा की ओर चले जाते थे। ऐसे जानेवाले लोगों को मरु कहा जाता था— मारुवे जासोड़ी मउरी राम नीको राख। (नरसी मेहतोगे मायेरो)

कियउ—सं कृत प्रा कय-कय किय किय। मिलाओ—हिं किया। कर्यो क्रिया का सामान्य भूतकाल। यह रूप कविता में ही विशेषतया आता है। बोलचाल में 'कर्यो' अधिक प्रयुक्त होता है। सामान्य भूतकाल के अन्य रूप—करउ, कीधउ किद्धउ किद्ध कीन्हउ।

हिंदी की भाँति राजस्थानी के अधिकांश भूतकालों के रूप मूल कृदंत से बने हैं और उनमें यदि क्रिया सकर्मक है तो कर्म के लिंग-वचन-पुरुषानुसार परिवर्तन होता है।

नरवरचा—चा (बैन्न) चो का विकारी रूप है। चो संबंध का प्रत्यय है। आधुनिक भाषाओं में मराठी के संबंध कारक में चा प्रत्यय लगता है। पुरानी राजस्थानी तथा गुजराती कविता में भी इसका प्रयोग अन्यान्य संबंध प्रत्ययों के साथ साथ हुआ है। मिलाओ—ऊपर 'रा' प्रत्यय पर टिप्पणी।

दूहा ९—दियउ—सं दत्त प्रा दत्त-दय दिय-दिय। सामान्य भूतकाल पुल्लिंग। अन्य रूप—दयउ दीधउ, दीन्हउ दिद्धउ दिद्ध। मिलाओ—दूहा नं ४ में 'कियउ' पर टिप्पणी।

जउ—सं यातः, प्रा जो।

राजवियाँ—राज + आँ प्रत्यय। राजवी शब्द के बहुवचन का विकारी रूप। विभक्ति प्रत्यय विकारी रूप के आगे जोड़े जाते हैं पर पुरानी भाषा में

थन्न—सं० स्तम्भ प्रा० थंभ। अन्य रूप—थन, थिन, थिम।

कँम—सं० कर्म प्रा० कम्म। यहाँ रचना (कृति) का अर्थ है।

दूहा ६—सारीखी सं० सदृश प्रा० सारिक्ख। ई स्त्रीलिंग का प्रत्यय है।

जोडी—सं० युज्। राजस्थानी में जुड़नो क्रिया बनती है उसका सकर्मक जोड़नो हुआ। जोड़ना क्रिया के आगे ई प्रत्यय लगाकर संज्ञा बनाई गई है। अर्थात् वस्तुओं का अनुरूप मेल जैसे इन दोनों की जोड़ी है। साथ रहनेवाली (विशेषतः दो) वस्तुओं को जोड़ी कहते हैं। दो के लिये भी इस शब्द का प्रयोग होता है। जैसे—हाथों की जोड़ी (कंगन) पैरों की जोड़ी (मुर्कियाँ)।

जुडी—सं० युज् : प्रा० जुड। सामान्य भूत स्त्रीलिंग एकवचन।

आ—ओ (यह) का स्त्रीलिंग।

अउ—ओ का प्राचीन रूप।

नाह—सं० नाथ = स्वामी पति, वर।

सूँ—राजस्थानी में करण और अपादान का चिह्न। अन्य रूप—स्यूँ स्यौं-स्यो सुँ सूँ सों सौं सैं सें स्यँ स्यूँ। कविता में से तें थी आदि रूप भी आते हैं।

इसकी व्युत्पत्ति कुछों से बताई जाती है पर बहुत संभव है कि यह संस्कृत विभक्ति स्मात् या सम शब्द से निकला हो। इसका एक रूप सम भी कविता में आता है।

करइ—सं० करोति प्रा० करइ। करबो क्रिया—कर + अइ। अइ वर्तमान अन्य पुरुष का और मध्यम पुरुष एकवचन का प्रत्यय है। आधुनिक रूप—करै। आधुनिक राजस्थानी में यह संभाव्य भविष्यत् का रूप है। आधुनिक वर्तमान बनाने के लिये, हिंदी की भाँति है क्रिया के रूप आगे और जोड़ने पड़ते हैं।

कीजइ—सं० क्रियते प्रा० किज्जइ। आज्ञा का रूप। राजस्थानी में कर्तृवाच्य आज्ञार्थ और कर्मवाच्य वर्तमान काल के रूप एक से होते हैं। आधुनिक राजस्थानी में कीजै के स्थान पर करीजै रूप प्रयुक्त होता है। मिलाओ—हिं० कीजै, कीजिए।

बीमाँह—सं० विवाह प्रा० वीवाह। व और म का पारस्परिक परिवर्तन अपभ्रंश हिंदी राजस्थानी एवं गुजराती में पाया जाता है।

दूहा ७—नूँ—कर्म का प्रत्यय। आधुनिक राजस्थानी में ने आता है। यह संभवतया संस्कृत विभक्ति-प्रत्यय आन् (जैसे रामान्) से निकला है।

विचारउ—विचारवो क्रिया। विचार+अउ। आज्ञा का रूप मध्यम पुरुष बहुवचन। आधुनिक रूप—विचारो।

विखइ—विखो+इ (अधिकरण चिह्न)। विखो = सं. विषम। इसका अर्थ दुःख के दिन होता है।

दाँ—देवो क्रिया।। संभाव्य भविष्यत्, उत्तम पुरुष बहुवचन का रूप। आधुनिक रूप—दाँ।

दीकरी—राजस्थानी देशी शब्द। हिंदी-शब्दसागर में इसकी व्युत्पत्ति सं. डिंभक से की गई है।

हाँसउ—सं. हास=हँसी। सजातीय कर्म।

हसिसी—सं. हसिष्यति; प्रा. हसिस्सइ। सामान्य भविष्य।

लोइ—सं. लोक प्रा. लोअ-लोय।

दूहा ८ कोइलाँ—सं. कोकिल प्रा. कोइल; आधु. राज. कोयल। बहुवचन (आँ)।

सालूराइ—सं. शालूर-सालूर राज. सालूर सालूरो। बहुवचन। अंत में इ छंद की मात्रा पूरी करने के लिये जोड़ा गया है। राजस्थानी में ऐसा बहुत होता है।

राज—सं. राजन्। संबोधन। यह शब्द आपके अर्थ में भी आता है।

हिवइ—अन्य रूप—हिवे हवे हमें अबै अब हमाँ=अब।

मा—सं. मा; प्रा. मा म; राज. मा म मत। मिलाओ—हिं. मत। यह शब्द विशेषतया आज्ञार्थ में आता है।

पाँतरउ—सं. प्रमत्त प्रा. पमत्त, पमंत-पाँत। पाँतरवो क्रिया। आज्ञार्थ।

बप—यहाँ बप शब्द की काया के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

दउ—ऊपर दूहा ७ में दाँ देखो। आज्ञार्थ बहुवचन।

अभराँह—सं. अभ्र-अब्भर। बहुवचन विकारी रूप संप्रदान कारक, विभक्ति प्रत्यय लुप्त हो गया है। ह पाद-पूर्त्यर्थ जोड़ा गया है। अन्यार्थ—अभ।

दूहा ९ ज्यूँ—सं यथा या यद्वत्; प्रा जधा या जह अप जिम जेवँ, जिवँ जिउँ ज्युं ज्यूँ। अन्य रूप—ज्युं, जिउँ, जिउँ जिम, जिमि, जेम। मिलाओ—हिं ज्यों।

थे—राजस्थानी में मध्यम पुरुष का बहुवचन। एकवचन में तू होता है। आदर दिखाने के लिये एकवचन में भी थे का प्रयोग होता है (हिंदी में ऐसी जगह आप आता है)। बहुत अधिक आदर दिखाने के लिये राजस्थानी में भी आप आता है पर अधिकतर थे आपी होता है। राजस्थानी का तू हिंदी के तू के स्थान पर और राजस्थानी का थे हिंदी के आप या तुम लोग के स्थान पर है। हिंदी तुम का पर्याय राजस्थानी में नहीं है।

जाणस्यउ—सं ज्ञा; प्रा जाण राज जाणनो हिं जानना। आधुनिक रूप—जाणो। संभाव्य भविष्य मध्यम पुरुष बहुवचन।

ज्यूँ—देखो ज्यूँ।

करउ—करयो (हिं करना) क्रिया का आज्ञार्थ बहुवचन रूप।

आदेस—सं आदेश प्रा आएस; मिलाओ—हिं आयसु।

दीध—सं दत्त। सामान्य भूतकाल। अन्य रूप—दिध्ध दिध्धो दीधो। यह रूप सीधे संस्कृत से आया है। नियमित रूप दियो दिया दी होते हैं। दीध या दिध्ध सब लिंगों और वचनों में एक सा रहता है। दिध्धो या दीधो म कर्म के लिंग वचनानुसार परिवर्तन होता है।

ओ—यह अक्षर यहाँ एकमात्रिक है। प्राचीन रूप—अउ।

म्हाँ—प्रा अम्हे; राज म्हे = हम से का विकारी रूप म्हाँ होता है। हिंदी में जहाँ अव्यय कर्ता आता है वहाँ राजस्थानी में विकारी रूप का प्रयोग होता है। म्हाँ करयो = हमने किया।

नातरउ—अन्य रूप—नातो नातरो; हिं नाता = संबंध। यहाँ मतलब विवाहसंबंध से है। आधुनिक राजस्थानी में इसका एक दूसरा अर्थ विधवा के साथ विवाह संबंध का है।

कीध—सं कृत प्रा किद। अन्य रूप—किध्ध किध्धउ कीधउ। मिलाओ—ऊपर दीध पर टिप्पणी।

दूहा १० परणिया—सं परि णी। परणनो क्रिया का सामान्य भूत, पुंल्लिंग, बहुवचन। इसका अर्थ विवाहित होना है।

वरदळ—(१) वर = अच्छा; दळ = दल समूह; अच्छे दल का अर्थात् धूमधाम या ठाटबाट का या (२) वर = अच्छे । दळ = पक्ष; दो अच्छे पक्षों या कुलों में।

वि —इस शब्द का ठीक अर्थ निश्चित नहीं हो सका।

हुवउ—स भू; प्रा हुव। हुवणो क्रिया का सामान्य भूत, पुंल्लिंग एकवचन। अन्य रूप—भयउ, भयउ।

उछाह—सं उत्साह प्रा उच्छाह, ऊसाह। अन्य रूप—उछाव। संस्कृत म इस शब्द का अर्थ उत्साह होता है पर राजस्थानी में वह उत्सव और आनंद के अर्थ म भी आता है। यह भी संभव है कि यह सं उत्सव, प्रा॰ उच्छव, राज उच्छव-उच्छव उछाव से बना हो।

दूहा ११ आविअउ—सं आ + या; प्रा आव। आवणो क्रिया का सामान्य भूत पुंल्लिंग एकवचन।

देसे—देस + ए (अधिकरण का प्रत्यय)।

थयउ —मिलाओ—ऊपर दूहा २ में थियै।

मुगाळ—सं मुकाल; प्रा मुगाल।

तेणि—सं तेन; प्रा तेण तेणे = जिससे उस कारण से इसलिये।

राखी—सं रक्ष प्रा रक्ख, राज रि रखना। राखणो क्रिया का सामान्य भूत स्त्रीलिंग एकवचन।

सासरइ—सासरो + इ (अधिकरण प्रत्यय) सं श्वशुर (श्वशुरस्य अयं) प्रा सासुर (देखो सुरसुंदरी चरियं ८ १६४)

अजे—सं अद्यापि प्रा अज्जवि = अभी। अन्य रूप—अजेई अजूं।

ज—एक निरर्थक अव्यय जो जोर देने के लिये या पादपूर्णार्थ जोड़ दिया जाता है। इसका मूल रूप या तु हो सकता है। गानेवाले कभी कभी छंद के बीच में इसे जोड़ देते हैं—जैसे मदीनो लागियो (स)।

दूहा १२ जिम—सं यथा या यद्वत्; प्रा जम या जइ; अप जेंव, जिव जेम जिम।

ग्रभमें—अपनी अमल = अधिकार। यह अधिकरण का प्रत्यय है।

रिमइ—करणो का वर्तमानकालिक अनिश्चित रूप = करता है।

चालती—प्रा चल; रि चलना राज चालणो क्रिया का स्त्रीलिंग वर्तमान कृदंत (Fem Present Participle)। मिलाओ—रि

आरसइ—आरसउ (आरसो) का विकारी रूप, अधिकरण का प्रत्यय हुआ अथवा आरसो + इ (अधिकरण प्रत्यय)।

सूती सं सुप्त प्रा सुत्त; राज सूतो। सामान्य भूत स्त्रीलिंग या स्त्रीलिंग भूत कृदंत। सूवणो या सोवणो क्रिया का नियमित रूप सोई सूई-सुई होते हैं। इन नियमित रूपों की अपेक्षा सूती रूप अधिक प्रयुक्त होता है।

साल्हकुँवर—ढोला का नाम।

सुपनइँ—सुपनो + इँ (अधिकरण प्रत्यय)। सं स्वप्न। यह शब्द राजस्थान में प्राकृत से होता हुआ नहीं आया है। अन्य रूप—सुहिणो (प्रा सुविण)।

मिळ्यउ—मिलनो और मिळनो दोनों रूपों में यह क्रिया राजस्थानी में प्रयुक्त होती है।

जागि—जाग + इ (पूर्वकालिक प्रत्यय)। अन्य प्रत्यय ए ई, करि, के, कर नर नेने आर।

निसासउ—सं निश्वास प्रा णीसास राज निसासो निसास।

लाइ—लावणो (सं लगद्, प्रा ला, लाव) क्रिया का वर्तमान कालिक रूप।

दूहा १५ ऊभंवे—सं अवलंब् प्रा ओलंब; राज ओलंब या ऊळंब। वे पूर्वकालिक प्रत्यय हैं।

इल्यड़ा—यो अपभ्रंश एवं राजस्थानी में एक प्रत्यय है जो कभी कभी स्वार्थ में और कभी कभी अनादर प्रकट करने के लिये जोड़ा जाता है। गुजराती में भी यह आता है। ड़ा ड़ो का बहुवचन है।

चाहंती—चाह (= चाहना देखना चाह जोवना) क्रिया का स्त्रीलिंग वर्तमान कृदंत। यह पंजाबी का प्रभाव है। राजस्थानी रूप चाहंती या चाहती अथवा चावती होता है।

वाल्हाय—चाह (= प्रेम) + इंदी (= की)। इंदो-संदो राजस्थानी में संबंध कारक के प्रत्यय हैं। इनकी व्युत्पत्ति प्रा हुंतो-सुंतो से की जाती है।

मण—सं मन; प्रा मण।

ऊमग्यउ—ऊमटणो का सामान्य भूत, पुलिंग, एकवचन। अन्य रूप—ऊमटणो ऊमडनो उमगणा ऊमगनो। मिलाओ—हि उमड़ना।

थाइ—सं स्थाप; प्रा थाइ।

निहाळइ—निहाळणो का वर्तमानकालिक रूप। सं निभालय्, प्रा णिहाल राज निहाळ = देखना, खोजना पता लगाना। अन्य रूप—निहारबो = देखना।

मुग्ध—सं मुग्धा प्रा मुग्धा। अंतिम स्वर का लोप। अन्य रूप—मुंधा मुंध मूँधा-मूँध-मूध-मुगधा। साहित्य मे एक प्रकार की नायिका जो यौवन में प्रवेश कर चुकी हो परंतु जिसमें न तो कामचेष्टा उत्पन्न हुई हो और न जिसने विरह संताप भोगा हो।

दूहा १५—उकसंबी—उकसंबणो का पूर्वकालिक रूप (उकसंब+ई)। सं उत्कंधा (?); प्रा उक्कंध = कंठ से बाँधना। सिर को हाथों पर बाँधकर अर्थात् रखकर।

चाहंती—चाहबो का स्त्रीलिंग वर्तमान-कृदंत। चाह+अंती। ऊपर दूहा नं ५ में चाहंती देखिए। चाह का अर्थ प्रेम भी होता है अतः चाहंती का अर्थ प्रेम करती हुई—प्रेममग्न होती हुई भी हो सकता है।

ऊँचो—सं उच्च। राजस्थानी में यह विशेषण है और इसका प्रयोग क्रियाविशेषण की भाँति होता है। वाक्य में इसके लिंग वचन विशेष्य के अनुसार बदलते हैं। जैसे—छोरो ऊँचो चढ्यो; छोरी ऊँची चढी; छोरा ऊँचा चढ्या; छोरयाँ ऊँच्याँ चढ्याँ।

चातृगि—सं चातकः प्रा चातगो। अपभ्रंश और राजस्थानी में कभी कभी बीच में र या सानुस्वार र जोड़ दिया जाता है। चातक = चात्रंग इस र को फिर ऋ कर दिया गया है।

मारगि—सं मार्ग; प्रा मग्ग, मारग। इ कर्म का प्रत्यय है। अन्य रूप—मारग।

दूहा १७ झिखइ—सं ध्या; प्रा झा झिय; हिं झींखना। झिंखना = निरंतर प्रतीक्षा करना।

आसालुध—सं आशालुब्ध = आशा से लुभाई हुई। आशा उसे बराबर लुभाए रखती है अर्थात् बनी रहती है। यह आशा न तो पूरी होती है और न पीछा छोड़ती है।

पाँखस—प्रा पंखड़, जैसे—जिवँ सुपुरिस तिवँ घंघलइँ, जिवँ नइ तिवँ वलणाइँ। जिवँ डोंगर तिवँ कोट्टरइँ, हिआ विसूरहि काइँ।

(हेमचंद्र—व्याकरण ८-४ ४२२)

प्रथा—सं घन; प्रा॰ घरा राज घरो हिं घना। राजस्थानी में यह बहुत (संख्यावाचक और परिमाणवाचक) के अर्थ में आता है।

दूहा १८ ऊनमियउ—ऊनमयो का सामान्य भूत पुंल्लिंग, एकवचन। सं उद्गम; प्रा उग्गम। अन्य रूप—उनमयो ऊनमयो। पुरानी हिंदी में उनका किया बहुत आई है। मिलाओ—

(१) उन्नमति नमति वर्षति गर्जति मेघः। (मृच्छकटिक)

(२) ऊँनमि आई बादली बरसन लगे अँगार।
उठि कबीरा धाह दे दाझत है संसार॥

(कबीर—साखी ५१—२)

उनई घटा चहूँ दिसि, आई। छूटहिं बान मेघ झरि लाई॥

(जायसी)

इसका एक दूसरा रूप उनरना या ऊनरना भी हिंदी कविता में आया है—

(१) उनरत जोबन देखि नृपति मन भावइ हो।

(तुलसी—रामलला नहछू)

(२) ऊनरी घटा में आली तू न री अटा पै बैठ। (हरिश्चंद्र)

यहाँ ऊनमियउ क्रिया का कर्ता मेह (मेघ) लुप्त है। कभी कभी आकाश, या दिशा जिधर मेह उमड़ता है, इस क्रिया का कर्ता बना दिया जाता है। जैसे—नभ ऊनम्यउ = आकाश उमड़ आया अर्थात् आकाश में मेह उमड़ा। उत्तर ऊनम्यो—उत्तर दिशा उमड़ी अर्थात् उत्तर दिशा में मेह उमड़ा। मिलाओ —उत्तर आज स ऊतरयो (दूहा २८८ २६८)।

दिसिं—दिस + इं (अधिकरण प्रत्यय)।

गाजियउ—सं गर्ज्; प्रा गज्ज गाज। अन्य रूप—गाजियउ। यह क्रिया गाजयो और गरजयो इन रूपों में भी प्रयुक्त होती है।

यहाँ भी कर्ता मेह लुप्त है। यह क्रिया भी ऊनमयो की भाँति आकाश और किसी दिशाविशेष के साथ भी आती है।

गुहिर—सं गंभीर प्रा गहिर राज गहर, गहीर, गुहिर गहरो। गहर गंभीर राजस्थानी का एक मुहावरा है।

प्रिउ—सं प्रिय। अन्य रूप—प्रिय प्री पिय, पी पिव, पिव पिउ, पीय पियो।

संभरियउ—संभरयो का सामान्य भूत, पुंल्लिंग एकवचन। सं संस्मृ; प्रा संभर संभल। अन्य रूप—साँभरयो साँभरनो, सभरयो। मिलाओ—

जदि पितर सब सुकृत सँभारे । (तुलसी)

तेहि कल पातक सकल सँभारा । (तुलसी)

नयणें—ए अपादान का प्रत्यय ।

बूडउ—बूडणो का सामान्यभूत पुंल्लिंग, एकवचन । सं० बुड प्रा० बुड राज० बूड्यो । यह क्रिया संस्कृत के मूल धातु से बनी है । संस्कृत धातु बुड् या बृड् से मरुभाषा क्रिया बनती है । मिलाओ—

हरिया आँखे कँवला उस पाणी का नेह ।

एक मठ न चींतरू कहीं बूडा मेह ॥ (कबीर ५५—१)

परवत बूडा मोतियाँ पड़ बाँधी सिनरोंह ।

(कबीर—साखी ५५—२)

बूहा १६ आसरइ—आसरणो का वर्तमान । सं० आसरणा; प्रा० आसर । मिलाओ—जै अब के सतगुरु मिलैं सब दुख आखौं रोय । (कबीर)

काई—प्रा० कई = क्यों । अन्यार्थ—क्या । आधुनिक रूप—कोई । यह 'क्या' अर्थ में प्रयुक्त होता है ।

चित्रोंम—राजस्थानी शब्द = चित्र ।

कॉम-चित्रोंम—काम चित्र अर्थात् ढोले की काम जैसी मूर्ति जो मारवणी ने स्वप्न में देखी थी ।

जु—सं० यत्; प्रा० ज, जो । यहाँ पर यह शब्द अव्यय है । जोर देने के लिये या पाद पूरणार्थ या कभी कभी ही के अर्थ में इसका प्रयोग होता है ।

दिठ—सं० दृष्टि प्रा० दिट्ठि; राज० दिठ दीठ ।

मइँ—अधिकरण का प्रत्यय । मिलाओ—हिंदी 'में' । अन्य रूप में मैं (आधुनिक राज०) ।

इसकी उत्पत्ति सम्भवतः संस्कृत प्रत्यय स्मिन् और प्रा० म्मि से हुई है । मध्ये शब्द से होकर भी संभव है—मध्य मज्झे, मज्झि, मझि मंहि, मइँ मैं ।

दिठ मइँ—अन्यार्थ—मैंने देखा है । दिठ=सं० दृष्ट; प्रा० दिट्ठ = देखा । मइँ = सं० मया; प्रा० मइँ = मैंने ।

रूप—मूर्ति ।

मूलइ—भूलणो का वर्तमान । प्रा० भुल्ल । यहाँ यह अकर्मक क्रिया है सकर्मक नहीं । अर्थ है—उसका रूप मुझे नहीं भूलता है अर्थात् उसका रूप मुझसे भुलाया नहीं जा सकता है ।

तास—सं तस्य; प्रा तस्स। अन्य रूप—ताසु, तास।

दूहा २०—अम्हाँ—सं अस्माकम् प्रा अम्हाणं; अप अम्हहं।

सखियाँ—सखी का बहुवचन। सख्याँ रूप भी होता है।

एम —अप एम्व एवँ।

तैं—सं त्वया; प्रा तइं। हिंदी के सप्रत्यय कर्त्ता तूने की जगह राजस्थानी में तइं तैं होता है। अप्रत्यय कर्त्ता हिंदी की भाँति तू होता है।

अणदिट्ठा—सं निषेधवाचक अ-अन् उपसर्गों के स्थान पर राजस्थानी में अण होता है। अ और अन भी आते हैं। दिट्ठा क्रिया का रूप है अण दिट्ठ = नहीं देखा।

सज्जणाँ—सं सज्जन; प्रा सज्जण; राज सज्जण साजण सज्जन साजन सजण सैण; सज्जणो साजणो (बहुवचन में ही)। नासिक्य वर्णों को या नासिक्य वर्ण के पूर्व आनेवाले वर्णों को प्रायः सानुनासिक कर देते हैं। यहाँ आदर के लिये बहुवचन का प्रयोग किया गया है।

दूहा २१—सम्यायं—तुमसे प्राप्त सज्जन के प्रति।

किउँ—अप केम किम किवँ किउँ। ऊपर दूहा १ में क्यूँ देखिए। अन्य रूप—किउँ क्यूँ क्यु, क्यों।

करि—करणो क्रिया का पूर्वकालिक। किउँ करि प्रायः साथ ही आता है। मिलाओ—हिं क्योंकर।

लग्गा—सं लग्न प्रा लग्ग। व्याकरण की दृष्टि से लग्गो होना चाहिए। लग्गा इस शब्द पर खड़ी बोली का प्रभाव ज्ञात होता है अथवा यहाँ प्रेम को बहुवचन कर दिया है जिससे क्रिया भी बहुवचन हो गई है।

पेम—सं प्रेमन्; प्रा पेम्म पेम।

दूहा २२ जे—सं ये प्रा अप जे।

जीवण—सं जीवन। जीवन का आधार या जीवन का कारण अतः जीवन रूप।

किम्हाँ—किसका विकारी रूप। मिलाओ—हिं किन्हीं (का)।

वसंत—वसणो धातु का वर्तमानकालिक रूप। सं वसंति। अंत प्रत्यय प्रायः बहुवचन में आता है पर कभी कभी एकवचन में भी प्रयुक्त होता है।

वारइ—वार या वारा + इ (करण या अधिकरण का प्रत्यय)।

पयोहरे—पयोहर + ए (अपादान प्रत्यय)।

कढ़ंत—काढ़णो का वर्तमानकाल। सं कृष् प्रा कड्ढ राज काढ़णो। काढ़णो कढ़णो का सकर्मक है।

तात्पर्य—दूध बालक का जीवन है। वह माता के शरीर में ही रहता है। बालक उसको नहीं देख सकता तो भी निकाल लेता है। इसी प्रकार जो जिसका जीवन होता है वह उसके पास ही अथवा उसके शरीर में ही रहता है।

दूहा २२ सनेही—सं स्नेह। ई मूल से जोड़ दिया गया है। यह शब्द राजस्थानी साहित्य में बहुत आता है।

समदाँ—सं समुद्र प्रा समुद्द राज समुंद समंद, समँद समद। आँ विकारी रूप का प्रत्यय है। संबंध का चिह्न लुप्त है।

परइ—सं परं। मिलाओ—हिं परे।

वसइ—वसणो का वर्तमान। अन्य रूप वसइ-वसे वसैत।

हिया—सं हृदय। अन्य रूप हियो हीयो।

मंझार—सं मध्य प्रा मज्झ राज मंझ। मज्झ आर (मज्झआर भी) देशी शब्द है। देखिए—देशी नाममाला ६-१२१।

आँगणइ—आँगणो (सं अंगन)+इ (अधिकरण प्रत्यय)

बाँध—सं बन्धुः प्रा बंधो। अन्य रूप—बाँधि बाँधे। मिलाओ—हिं बन्धु। आधुनिक राजस्थानी में बाँधे शब्द भाई के अर्थ में आता है।

दूहा २३ सखिए—ए संबोधन का प्रत्यय है। अप्रधान कर्ता कारक के बहुवचन में (कहीं एकवचन में भी) यही रूप आता है। मिलाओ—

सहिए फिरि समुज्झावियो (दूहा ५१९)।

सखिए कन्त मौखिउ लिखमति करइ अनंत।

संबोधन में यह शब्द दूहा ५१९ और ५११ में भी आया है।

वल्हा—सं वल्लभ प्रा वल्लह राज वल्लहो वाल्हो वाहलो। अन्य रूप—वालंभ (=प्रियतम)। यह शब्द प्रिय (प्यारा और प्रियतम) के अर्थ में आता है। आदरार्थ बहुवचन।

जइ—सं यदि प्रा जइ। अन्य रूप—जै, ज।

तोइ—सं तदापि प्रा तावि।

विसारइ—सं विस्मृ; प्रा विम्हर राज विसरणो वीसरणो। प्रेरणार्थक—विसारणो। विसरणो और विसारणो का एक ही अर्थ होता है।

झाल—सं ज्वाला = जलन, ताप, लपट। अन्य रूप—झळ। मिलाओ—साहब मिले न झल बुझै रही बुझाइ बुझाइ। (कबीर)

मिर्च या राई आदि की चरपराहट या तीक्ष्ण स्वाद को भी झाल (हिं झाल) कहते हैं। मिर्च खाते ही समस्त शरीर में एकदम आग सी लग जाती है। मारवणी के शरीर में भी वैसी ही विरहज्वाला प्रसूत हो उठी।

ऊपनउ—सं उत्पन्न प्रा उप्पण्ण सामान्य भूत पु, एकवचन।

दूहा २६ तनइ—तन + इ (अपादान या संबंध का प्रत्यय)।

अपभ्रंश काल में अधिकांश विभक्ति प्रत्यय घिस घिसाकर इ के रूप में रह गए। अतः इ प्राय सभी कारकों के प्रत्यय का काम करता है। इससे अर्थ बोध में असुविधा होने लगी अतः अपभ्रंश के उत्तरकाल में कारक संबंध प्रकट करने के लिये अन्य शब्द या विभक्ति प्रत्यय जोड़े जाने लगे।

जाणइ—जाणवो क्रिया का वर्तमान काल। अन्य रूप—जाइ (यह रूप केवल कविता में आता है)।

बाबीहिअउ—अप बप्पीहा हिं पपीहा। अन्य रूप—बाबीहो पपीहो पपइयो। इसे संस्कृत में चातक कहते हैं। यह एक प्रसिद्ध पक्षी है। इसकी लंबाई प्रायः १३ इंच होती है। मध्य भारत नैपाल बंगाल आसाम अराकान और मलय प्रायद्वीप में यह विशेष रूप से पाया जाता है। इसका रंग हरा और काला होता है। यह वर्ष में दो बार रंग परिवर्तन करता है। यह बागों में कीड़ों की तलाश में फिरता है। मई में अंडे देना प्रारंभ करता है जो संख्या में तीन होते हैं। इसका घोंसला भूमि से थोड़ी ऊँचाई पर कटोरी के आकार का बहुत ही सुंदर होता है।

भारतीय साहित्य में इस पक्षी का वर्णन बहुत आया है। इसे लेकर भारतीय कवियों ने बड़ी सुंदर सुंदर उक्तियाँ कही हैं। गोस्वामी तुलसीदास का चातक प्रेम वर्णन (दोहावली) साहित्य की एक अपूर्व वस्तु है। चातक का प्रेम आदर्श प्रेम माना गया है। चातक के विषय में यह प्रवाद है कि वह पड़ा हुआ पानी नहीं पीता। जब मेह बरसता है तो उसका जल ऊपर से ही ले लेता है। प्यास से चाहे मर जाय पर तालाब और नदी का पानी वह कभी नहीं पीता। यह भी प्रवाद है कि यह स्वाती नक्षत्र के दिन को छोड़कर और कभी बरसता हुआ पानी भी नहीं पीता।

भाषा के कवियों ने मान रखा है कि वह जो बोली बोलता है सो 'पी कहाँ, पी कहाँ' इस प्रकार पुकारा करता है। इसकी बोली कामोद्दीपक तथा विरहवर्धक मानी गई है। चातक विषयक कुछ सूक्तियाँ दी जाती हैं—

बप्पीहा, पिउ पिउ भणवि कित्तिउ रुअहि हयास।
तुह जलि महु पुणु वल्लहइ बिहुं वि न पूरिअ आस ॥ १ ॥
बप्पीहा, कइं बोल्लिएण निग्घिण वारइ वार।
सायरि भरियइ विमल जलि, लहहि न एक्कइ धार ॥ २ ॥

(हेमचंद्र)

चातक सुतहि पढ़ावही आन नीर मति लेइ।
मम कुल यही सुभाव है स्वाति बूँद चित देइ ॥ १ ॥
पपिहा पन को ना तजै तजै तो तन बेकाज।
तन छूटे है कछु नहीं पन छूटे है लाज ॥ २ ॥
पपिहा को पन देखि करि धीरज रहै न रंच।
मरते दम जल मैं पड़्या तऊ न बोरी चंच ॥ ३ ॥
ऊँची जाति पपीहरा पिवै न नीचा नीर।
कै सुरपति कौ जाँचई कै दुख सहै सरीर ॥ ४ ॥

(कबीर)

पपैया प्यारे कद को बैर चितारयो
मैं सूती थी अपने भवन में पिउ पिउ करत पुकारयो।
दाधी ऊपर लूण लगायो हिवड़े करवत सारयो ॥ १ ॥
पपीहा रे पिउ का नाँव न लेइ।
काइक जागै बिरहिणी रे पीउ क्यों जिव देइ ॥ १ ॥
पपइया रे पिउ की वाणि न बोल।
सुणि पावेली बिरहिणी रे थारी रालैली पाँख मरोड़ ॥
चाँच कटाऊँ पपइया रे ऊपर रालूँ लूँण।
पिउ मेरा मैं पीउ की रे तूँ पिउ कहै स कूँण ॥ १ ॥

(मीराँ)

जथा चातक घन स्वाति बूँद के पन करो जीव।
सूरदास प्रभु अति पन तेरे समुझि देखि धौं हीय ॥ १ ॥
कहाँ री चातक मोहिं जिवावत।
पै हि रैन रटति हौं पिय पिय तैसेहि सो पुनि पुनि गावत ॥

कंठहि सुकंठ नाँउ प्रीतम को ताहि जीभ मन लावत ।
आपु न पिवत सुधा रस सजनी बिरहिन बोलि पियावत ॥ २ ॥

चातक न होइ कोउ बिरहिनि नार ।
अजहूँ पिय पिय रटनि सुरति करि झूठेहि माँगत बारि ॥
अति कृस गात, देखि सखि, याको अहनिसि रटत पुकारि ।
देखो प्रीति बापुरे पसु की मानत मारि न हारि ॥ ३ ॥

हौं तो मोहन के बिरह जरी, तू कत जारत ?
रे पापी तू पंखि पपीहा पिउ पिउ पिउ अधराति पुकारत ॥
सब जग सुखी, दुखी तू जल बिन तऊ न तन की बिथा बिचारत ।
सूर स्याम बिन ब्रज पर बोलत हठि अगिलोऊ जनम बिगारत ॥

(सूर)

जो, घन बरसै समय सिर जो भरि जनम उदास ।
तुलसी याचक चातकहि तऊ तिहारी आस ॥
उपल बरसि गरजत तरजि डारत कुलिस कठोर ।
चितव कि चातक मेघ तजि कबहुँ दूसरी ओर ?
मान राखिबो माँगिबो पिय सों नित नित नेहु ।
तुलसी तीनिउ तब फबै जब चातक मन लेहु ॥
प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचानि ।
याचक जगत कनावड़ो कियो कनौड़ो दानि ॥
बधिक बध्यो पर्यो पुन्य जल उलटि उठाई चोंच ।
तुलसी चातक प्रेमपट मरतहुँ लगी न खोंच ॥

(तुलसी)

दादुर-मोर-किसान-मन लग्यो रहै घन माँहि ।
पै रहीम चातक रटनि सरवरि को कोउ नाहिं ॥

(रहीम)

अरे पपइया बावरा पापी रात म कूक ।
हाऊ होठे सुभगरी, जो थें दाती ढूँक ॥
पीह पीह कल्पी बुरी पपीहा काय ।
म्हारा सहज सुभाव था म्हाँरे लागे बोल ॥

(राजस्थानी दुहावली)

आसाढ़—चातक का वर्णन वर्षा ऋतु में किया जाता है। वह वर्ष भर प्यासा रहता है, वर्षा के आने पर उसे प्यास बुझाने की आशा होती है (आषाढ़ से वर्षा का आरंभ माना जाता है)। आषाढ़ में ही चातक को मेघ का प्रथम दर्शन होता है, अतः वह जोरों से पुकारने लगता है।

विरहणि—सं विरहिणी। अन्य रूप—विरहिण-विरहिणि-विरहिणी, विरहण-विरहिणी।

दूहा २७ नइ—सं अन्यत् अन्य रूप—अनइ अने। भोजपुरी और गुजराती में ने और अने 'और' के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। बीकानेरी आदि में और का प्रयोग होता है।

दुहुवाँ—दुई = दोनों। वाँ विकारी रूप का प्रत्यय है जो यहाँ वाँ हो गया है। संबंध कारक का चिह्न लुप्त।

सहाव—सं स्वभाव प्रा सहाव। अन्य रूप—सुहाव सुभाव सभाव।

जद—जोधपुर की राजस्थानी में जद आता है।

घण—सं घन प्रा घण।

प्रियाव = प्रिय + आव = हे प्रिय तू आ। आव आवणो क्रिया का आज्ञा का रूप है। न शब्द के साथ आवणो क्रिया की भी संधि हो जाती है। जैसे—संदेसा ही नाविया (दूहा १४)।

कवियों ने पपीहे की बोली के कई अर्थ लिए हैं—(१) पी पी (२) पी कहाँ पी कहाँ (३) पी आव पी आव।

दूहा २८ गवक्ख—सं गवाक्ष।

सिरि—यह शब्द अधिकरण प्रत्यय 'पर' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। कबीर ने इसका ऐसा प्रयोग कई स्थलों पर किया है। जैसे—

विरहिणि ऊभी पंथ सिरि पंथी पूछे धाइ।
एक सबद कहु पीव का कबर र मिलेंगे आइ॥

ऊँचहरी—ऊँचउ + एरउ। स्त्रीलिंग। एरउ या एरो प्रत्यय स्वार्थ में लगता है। मिलाओ—भेगहरउ (दूहा ११४) आपेरउ (दूहा ९३)।

मत ही = कहीं न।

साहिब—अरबी साहब। कविता में यह शब्द प्रियतम या पति के अर्थ में आता है। आजकल यह आदरार्थ संबोधन में प्रयुक्त होता है और यूरोप वासी के अर्थ में भी आता है। अन्य रूप—सायब सा ब (साबु)।

आषाढ़—चातक का वर्णन वर्षा ऋतु में किया जाता है। यह वर्ष भर प्यासा रहता है वर्षा के आने पर उसे प्यास बुझाने की आशा होती है (आषाढ़ से वर्षा का आरंभ माना जाता है)। आषाढ़ में ही चातक को मेघ का प्रथम दर्शन होता है, अतः वह जोरों से पुकारने लगता है।

विरहणि—सं विरहिणी। अन्य रूप—बिरहिण-बिरहिणि-बिरहिणी, विरहण-विरहिणी।

दूहा २७ नइ—सं अन्यत्। अन्य रूप—अनइ अने। जोधपुरी और गुजराती में ने और अने और के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। बीकानेरी आदि में और का प्रयोग होता है।

दुहुवाँ—दुहूँ = दोनों। वाँ विकारी रूप का प्रत्यय है जो यहाँ वाँ हो गया है। संबंध कारक का चिह्न लुप्त।

सहाव—सं स्वभाव प्रा सहाव। अन्य रूप—सुहाव सुभाव, सभाव।

अस—जोधपाल की राजस्थानी में यह आता है।

घण—सं घन प्रा घण।

प्रियाव = प्रिय + आव=हे प्रिय तू आ। आव आवणो क्रिया का आज्ञा का रूप है। न शब्द के साथ आवणो क्रिया की भी संधि हो जाती है। जैसे—संदेसा ही नाविया (दूहा १४)।

कवियों ने पपीहे की बोली के कई अर्थ लिए हैं—(१) पी पी (२) पी कहाँ पी कहाँ (३) पी आव पी आव।

दूहा २८ गउख—सं गवाक्ष।

सिरि—यह शब्द अधिकरण प्रत्यय पर के अर्थ में प्रयुक्त होता है। कबीर ने इसका ऐसा प्रयोग कई स्थलों पर किया है। जैसे—

विरहिणि ऊभी पंथ सिरि पंथी पूछै धाइ।
एक सबद कहु पीव का कबर र मिलैंगे आइ॥

ऊँचहरी—ऊँचउ + एरउ। स्त्रीलिंग। एरउ या एरो प्रत्यय स्वार्थ में लगता है। मिलाओ—बेगहरउ (दूहा १३४) आपरउ (दूहा ९१)।

मत ही = कहीं न।

साहिब—अरबी साहब। कविता में यह शब्द प्रियतम या पति के अर्थ में आता है। आजकल यह आदरार्थ संबोधन में प्रयुक्त होता है और यूरोप वाली के अर्थ में भी आता है। अन्य रूप—साहब सा व (आ)।

चकोर चाँदनी का बड़ा प्रेमी होता है। चंद्रमा की ओर टकटकी लगा कर बराबर देखा करता है। इसके विषय में प्रवाद है कि यह जलती हुई चिनगारियाँ खा जाता है। एक पक्षीप्रेमी सज्जन का कहना है कि उन्होंने चकोर को पत्थर के कोयले की जलती हुई चिनगारियाँ खाते देखा है। साहित्य में चकोर के विषय में बहुत सी उक्तियाँ हैं। कुछ नीचे दी जाती हैं—

चित दै देखि चकोर त्यों तीजैं भजै न भूख।
चिनगी चुगै अँगार की, चुगै कि चंद मयूख॥

शीत ऋतु का वर्णन—

लगत सुभग सीतल किरन निसिसुख दिन अवगाहि।
माह ससी भ्रम सूर त्यों रहत चकोरी चाहि॥
(बिहारी)

तैं रहीम, मन आपुनो कीन्हो चारु चकोर।
निसि बासर लाग्यो रहै कृष्णचंद्र की ओर॥
(रहीम)

दूहा २३ बाढ्यो—बाढणो राजस्थानी में काटने या चीरने के अर्थ में आता है। भूत वर्तमान का प्रत्यय है। अन्य रूप—बाढत। नियमित रूप—बाढ्ह (बाढे) है।

दे—पूर्वकालिक प्रत्यय कभी कभी लुप्त हो जाता है। अन्य रूप—देर देई (कविता में)

लूण—सं लवण हिं लोन।

मेरा—खड़ी बोली का प्रभाव। राजस्थानी व्याकरण के अनुसार मेरो होना चाहिए।

स—सो का संक्षिप्त रूप।

कूण—अप कवण हिं कवन कौन। अन्य रूप—कुण, कोण। यि ऐसा ही भाव मीराँ के एक पद में आया है। देखो—दूहा २६ की टिप्पणी में उद्धृत मीराँ का तीसरा भजन।

दूहा २४ रत—सं रक्त प्रा रत्त, रात।

कोसाद—मीठे मीठे शब्द बोलकर विरह को जगाता है अतः।

कार—सं कि। अन्य रूप—का कर कै (देखो-दूहा ११)। इसका अर्थ या होता है। मिलाओ—हिं क्या तो यह क्या यह।

दाझंत—दाझणो का वर्तमान कृदंत सं दह् प्रा डह।

कोर—किनारो—हिं कोरी।

प्री—सं प्रिय।

दूहा २१ निल—सं नील।

पंखिया—पंख+इया (वाला अर्थ का तद्धित प्रत्यय)। निल-पंखिया नीलपंखियों का संबोधन है।

मगरि—सं मुकुट (=देह) प्रा मउड, मउड। राजस्थानी में मगर पीठ को कहते हैं।

रेह—सं रेखा प्रा रेहा अंतिम स्वर का लोप।

मति—ऐसा—ऊपर दूहा नं १८।

पावस—सं प्रावृष् प्रा पाउस।

तळफि—सं तप् (?) प्रा तडप्प। प्राकृत पिंगल सूत्र में यह तडप्प शब्द आया है।

किउ—सं कीय प्रा कीअ अप कीउ। अन्य रूप—किय किय, की किया।

देह—देखणो का संभाव्य भविष्य। इ पादपूर्त्यर्थ जोड़ा गया है अथवा देख के ख का स्थानापन्न है।

दूहा २२ तर—फारसी=तरह।

तईं—प्रा अप तईं। देखो—दूहा ९।

किउँ—क्यों। देखो—दूहा २।

चकोर—भारतीय साहित्य में जिन पक्षियों को अधिक महत्व दिया गया है वे चकवाक, चातक और चकोर हैं। चकोर साधारण तौर से कुछ बड़ा होता है। हिंदी शब्दसागर में उसे एक प्रकार का बड़ा पहाड़ी तीतर कहा गया है। यह नेपाल नैनीताल तथा पंजाब और अफगानिस्तान के पहाड़ी जंगलों में मिलता है। इसके ऊपर का रंग काला होता है। जिस पर सफेद सफेद चित्तियाँ होती हैं। पेट का रंग कुछ सफेद होता है। चोंच और आँखें रक्तमय होती हैं। यह झुंड में रहता है और बैशाख जेठ में बारह बारह अंडे देता है। इसके पंख बहुत ही नयनाभिराम होते हैं।

प्राचीन समय में राजा लोग इसे पाला करते थे और भोजन के समय खाद्य पदार्थ इसे दिखाकर खाते थे। यदि उनमें विष होता तो चकोर की दृष्टि पड़ते ही उसकी आँखें रक्तवर्ण हो जाती थी और वह मर जाता था।

माठि—सं० मष्ट प्रा० मट्ठ। मिलाओ—मठ करहु, अनुचित भल नाहीं। (तुलसी)

करि—करणो का आज्ञा का रूप।

परदेसी—परदेशवासी प्रवासी।

आँणि—आणनो क्रिया का आज्ञा का रूप। सं० आ+नी या आनय।

कि—परदेसी शब्द के पहले 'काइ' (=क्या) शब्द लुप्त है।

दूहा २८ काइक—काइ+इक=कोई एक। यहाँ एक अनिश्चय के अर्थ में आया है। मिलाओ—केवीरेक (दूहा १४६)। इस एक का कभी कभी क ही शेष रह जाता है। जैसे—आधीक रात=आधी एक रात (कोई आधी रात लगभग आधी रात)।

कह्याँ—मिलाओ—हिं० कहे (=कहने से या कहने पर)। कह्यो का बहुवचन विकारी रूप।

देइ—संभाव्य भविष्य सामान्य भविष्य के अर्थ में अथवा देसी—देही इस सामान्य भविष्य का संक्षिप्त रूप।

दूहा २९ डूँगर-दहण—अपने मर्मभेदी स्वर से पर्वतों में भी ज्वाला उठा देनेवाला। जिसके करुण शब्द से पत्थर जैसी कठोर चीजों में भी ज्वाला उत्पन्न हो जाय वह यदि विरही हृदय को ज्वाला से विकल कर दे तो कौन बड़ी बात है।

छाँडि—प्रा० छड्ड धातु। आज्ञा का रूप—छंडणो छाडणो छोडणो। बोलचाल में छोडणो प्रयुक्त होता है।

हमारउ—प्रा० अम्ह+रउ (संबंध चिह्न)। हमारो ब्रज में तथा हमारा हिंदी में आता है। राजस्थानी के अपने रूप महारउ, म्हारउ हैं।

पुकारिसउ—पुकारणो क्रिया अकर्मक और सकर्मक दोनों प्रकार से प्रयुक्त होती है।

दूहा ३० मया—मय का रूप राजस्थानी रूप 'मया' होगा।

मारू इ —मिलाओ—चातक न होइ ए विरहिनि नार।

(घर)

(पूरा पद ऊपर दूहा २० की टिप्पणी में देखो।)

दूहा ३१ बोलण—बोलना चाहिए। बोलणो+अण। मिलाओ—हिं० बोलने।

कंता—कंत का संबोधन कंत कंता दोनों रूपों में प्रयुक्त होता है।

नवि—इसके अर्थ न और नहीं दो (व्यवस्था) दोनों होते हैं।

कीधउ—सं कृत; प्रा किद सामान्य भूत, पुँल्लिग, एकवचन का अनियमित रूप।

जोर करयो—प्रकट होना पूरे बल पर होना पूर्णता को पहुँचना, मन में प्रियतम के लिये तीव्र भावनाओं का उत्पन्न होना।

दूहा ३१ गहक्किया—गहक्कयो का सामान्य भूत पुँल्लिग बहुवचन। कविता में मात्राएँ पूरी करने के लिये कभी कभी अक्षर को द्वित कर देते हैं। गहकना—चाव या उमंग से भरना ललकना, उमंगित होना (उमंगित होकर बोलना भी)।

मूँक्या—मूँक्यो का सामान्य भूत, पुँल्लिग, बहुवचन। सं मुच् प्रा॰ मुंच, मुक्क; राज मुक्क या मुक। मिलाओ—गुज मूँकवुँ। इसका अर्थ छोड़ना होता है। लक्षणा से दे देना अर्थ है।

धणियाँ—धणी का बहुवचन विकारी रूप। कर्म का प्रत्यय लुप्त। धणी का अर्थ पति और मालिक होता है। मिलाओ—हैं धनी (हार धनी के पड़ रहे बचा धनी का लाइ—कबीर)।

धण—यह शब्द राजस्थानी में नायिका की प्रेयसी इन अर्थों में आता है। इसका पुँल्लिग धणी है जो धण से ही बनाया गया है। इसकी व्युत्पत्ति सं धन्या से की गई है पर सं धन से भी हो सकती है। पुराने जमाने में स्त्री को भी एक प्रकार का धन ही समझा जाता था। इसका पुँल्लिग धणी संभवतः धनिन् (धनवाला—स्त्रीवाला) से बना हो। इसका प्रयोग अपभ्रंश काल से मिलता है। राजस्थानी में तो यह बहुत आता है। आधुनिक गीतों में भी इसका प्रयोग खूब होता है। कबीर और जायसी में भी यह आया है। पीछे दूहा ८ में यह सामान्य रूप में स्त्री के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। प्रयोगों के उदाहरण—

> ढोल्ला सामला धण चंपावण्णी। (८ ४ ११)
> सामि पसाउ सलज्जु पिउ सीमा संधिहिं वासु।
> पेक्खिवि बाहु बलुल्लडा धण मेल्लइ नीसासु ॥ (८ ४ ४१)
> (हेमचंद्र)
>
> धन मैली पिउ ऊजला लागि न सक्कौं पाइ। (५ ११)
> (कबीर)

कुरळी—कुरळनो क्रिया का सामान्य भूत, स्त्रीलिंग, एकवचन। कुरलना राजस्थानी का एक बड़ा ही भावपूर्ण शब्द है। इसका प्रयोग विशेषतः क्रौंच चातक, सारस कोयल मयूर आदि के करुण किंतु मधुर शब्द के अर्थ में होता है। उदाहरण—

(१) हूँ चातक ज्यूँ कुरळाऊँ थी।
 बहु बादर नहिं न बधाऊँ थी॥
(२) मोर मयारो कुरळ्टे घन चातग सोर हो।
 (मीराँबाई)

सरवर सँवरि हंस चलि आए।
सारस कुरळहिं, खंजन देखाए॥
 (जायसी—नागमती-वियोग खंड)

अंबर कुंजाँ कुरलियाँ गरजि भरे सब ताल। (कबीर)
उवै—साधारण रूप वै है। मिलाइयो—हिँ वे, अगला दोहा देखो।
मेळी—मिलाई" बंद की। आँखि मेळी = सोई।
दूहा ५२ कहिजइ—कहणी का कर्मवाच्य; आधुनिक रूप—कहीजै। अन्य रूप—कहियइ थे।
पसू—पशु की भाँति विवेकरहित।
केरा—केरो का बहुवचन। केरो संबंध का प्रत्यय है।
प्रा केर अप केरअ। इसी से राजस्थानी रो बँगला एर, व्रज को, एवं हिंदी का'—ये संबंध प्रत्यय बने हैं।
प्रणुराव—अनु + रव = पीछे पीछे बोलना। वैसा ही शब्द करना। अणुराव गूँज को भी कहते हैं।
दूहा ५३ तियका—बहुवचन = उनके।
तियकी इ०—अर्थात् जो प्रियतम से बिछुड़ जाते हैं वे सदा इसी प्रकार करुण शब्द से रोया करते हैं जो चारों ओर फैलकर गूँजने लगता है। मिलाइयो—

अंबर कुंजाँ कुरलियाँ गरजि भरे सब ताल।
जिनिपै गोविंद बीछुटे तिनिके कवन हवाल॥
अंबर घनहर छाइया बरसि भरे सब ताल।
चातक ज्यौं तरसत रहे तिनिको कवन हवाल॥
 (कबीर)

कुरझड़ियाँ कुरला री गूँजि उठे सब ताल ।
जिनकी जोड़ी बीछड़ी तिनका कोण हवाल ॥
(राजस्थानी सुभाषित)

दूहा ५४ कूँझड़िया—सं॰ क्रौंच; प्रा॰ कुंच, कोंचा राज॰ कुंज-कूँज, कुंझ-कूँझ, कु झ-कूँझ, कु झी-कूँझी, कुरज, कुरझ कुरझी कुंझड़ी कूँझड़ी कूँझड़ी-कूँझड़ी। अनुवाद में इसका अर्थ कुररी दिया गया है, वह ठीक नहीं है। हिंदी में इसको कर्णकुंच कहते हैं। यह सारस की जाति का पक्षी होता है और सरोवर आदि के जल के किनारे रहता है। यह झुंड बनाकर आकाश में उड़ता है। इसका स्वर बड़ा ही करुण होता है। राजस्थानी साहित्य में यह पक्षी चातक की ही भाँति महत्त्वपूर्ण है। चातक राजस्थान में नहीं होता क्रौंच होता है अतः उसका महत्त्व और भी अधिक है। क्रौंच के करुण रुदन ने ही भारतीय काव्य रचना का जन्म दिया। आदिकवि वाल्मीकि की कवित्व शक्ति का आकस्मिक स्फुरण एक क्रौंच पक्षी के व्याध द्वारा निहत अपने प्रियतम के प्रति करुण रुदन को सुनकर ही हुआ था और भारतीय साहित्य की सब प्रथम काव्य कृति ने क्रौंच को अमर कर दिया है—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंच मिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥

क्रौंच के बच्चे निर्बल इवेत पक्ष के होते हैं। स्त्रियों के गोरे वर्ण से उनकी उपमा दी जाती है (कूँझ वर्णी गोरड़ियाँ जंवर पेरा मेल—दूहा ५(७)। कहते हैं कि कुंज पक्षी अपने बच्चों को छोड़कर चर चुगने जाता है तब वहाँ से उनको बराबर पुकारता रहता है और बच्चे भी बराबर गर्दन ऊँची किए उसकी प्रतीक्षा करते रहते हैं (देखो—दूहा २ १ से २ ५)। कबीर ने भी इस भाव का एक दोहा कहा है (देखो—दूहा २ १ की टिप्पणी में अवतरण)। उदाहरण—

तूँ है ए, कुरजाँ आपणी दूँ हे धरम की बहण।
एक संदेशो, ए बाई म्हारो ले जाजो, ए म्हारी
राज कुरजां म्हारा पीव मिला दे ए ॥
(राजस्थानी गीत)

करकर—सं॰ कलरव। यह शब्द प्रायः मधुर किंतु करुण शब्द के अर्थ में आता है।

बसेहि—बस (सं॰ वन) + हहि (अधिकरण प्रत्यय)।

सर—सं॰ सर, सरः प्रा॰ सर।

दूहा ५५—दरंग+इ। दरंग=सं दुर्ग। अन्य रूप—द्रंग, दुग्ग। अपभ्रंश और राजस्थानी में कभी कभी आगे का द्वित्व वर्ण Single कर दिया जाता है। कुछ विद्वान् यह मानते हैं कि पुराने लेखक द्वित्व अक्षर लिखने का परिश्रम बचाने के लिये पूर्व अक्षर पर अनुस्वार का सा एक चिह्न कर देते थे (मिलाओ—उर्दू का तशदीद) यही बाद में भ्रम से अनुस्वार हो गया। मक्कड़ का मंकड़ हो गया द्रग्ग का द्रंग, इसी प्रकार और भी।

करवत—सं करपत्र; प्रा करवत्त।

वूही—वूहवो क्रिया का सामान्य भूत स्त्रीलिंग एकवचन। राजस्थानी में वहवो (हिं बहना) क्रिया चलना के अर्थ में आती है। कविता में तथा कुछ देहाती बोलियों में यह क्रिया वुहवो और वूहवो के रूप में भी प्रयुक्त होती है। प्रयोग—

> जिण मारग केहर वुहो लागी वास तियाँह।
> ते वन ऊभा सूकसी नहिं चरसी हिरणाह॥
>
> (राजस्थानी सुभाषित)

दूहा ५६ बइसि—बइसवो का पूर्वकालिक। बइस=सं उपविश्, प्रा बइस। राजस्थानी में बैसवा और बैठवो दोनों रूप आते हैं।

सारणी—सं शस्त्र, प्रा सत्थ सार; राज सार। इणी ऊनवाचक प्रत्यय। चक्की के छेद करने के औजार को सार कहते हैं।

सालियाँ—मिलाओ—हिं सालना।

दूहा ५७ समँदाँ—समुद्रों के, यहाँ जलाशय के।

बीट—(१) सं वृंत; प्रा बिंट=फल पत्तों आदि के डंठल या बंधन। (२) सं विष्ठा। पक्षियों की विष्ठा को राजस्थानी में बीट कहते हैं। बि—(क) प्रति का बैठ (=बैठकर) पाठ स्पष्टतर है।

जामोपत्त—जाम (सं जन्म; प्रा जम्म)+उपत्त (सं उत्पत्ति)। इस शब्द का ठीक अर्थ स्पष्ट नहीं है।

माँझिम रत—सं मध्यम रात्रि = आधी रात।

दूहा ५८—कळिमळ—सं कश्मल प्रा कसमल।

वाइ—सं वायु।

स्यौं—विकारी रूप।

दूहा ५८ परताइ—हिं परला राज पैलो गुज पेलूं।

दूरा—(१) देखो दूहा ५५ में दूरी। (२) सं दूर राज दूठो, दूरो।

सोरठा ६० आवी—आवणो का पूर्वकालिक। आवी वहइ संयुक्त क्रिया है—आकर बहती है = आ बहती है (आ निकलती है)।

एकलियौ—एकल्ल + इ (अधिकरण प्रत्यय)। या प्रत्यय स्वार्थ में लगता है। एकल्ल का अर्थ एक ही अकेला भी होता है।

दूहा ६१ आडा—यह विशेषण बीच में क्रियाविशेषण का काम देता है।

वयाइ—वयानो का वर्तमानकाल हिं बनता है।

आयाइ—आयो कृदंत संज्ञा का विकारी रूप संबंध प्रत्यय लुप्त = आने की।

भत—हिं भाँति; राज भाँत = प्रकार उपाय।

क्याइ ६०—अम्यार्थ—बीच म बन हैं इन बनों म जाने का अभाव बनों को पार करने का उपाय नहीं है।

संदइ—संदउ का विकारी रूप। संदउ (संदो) राजस्थानी में संबंध का प्रत्यय है। ऐसा ही दूसरा प्रत्यय हंदो है। इसकी व्युत्पत्ति प्रा तणो से की जाती है।

हिलुसइ—हिलुसणो का वर्तमानकाल। सं उल्लस्।

दूहा ६२ घड नइ—मिलाओ—हिं दो न।

मिलउ—मिलाओ—हिं बना।

लंबी—लंघणो का पूर्वकालिक (लंघ+ई)

मिलई—अन्य रूप—मिलौ मिलूं।

दूहा ६३ आवेरि—स अग्र; प्रा अग्ग राज आगो, आगो, परो। स्वार्थिक प्रत्यय है। मिलाओ—वेगेरो ऊँचेरो।

दूहा ६४ उपराठियाँ—पीठ फिर हुए। देखो—दूहा ११ और १११।

नइ—कर्म का प्रत्यय। वर्तमान रूप—नै। अन्य रूप—नूं।

इनके अतिरिक्त कूँ, कौं को को कहुं आदि भी प्रयुक्त होते हैं।

कदियाँह—कहना।

हूँ—अपादान का प्रत्यय। यह दूसरे अपादान प्रत्यय सूँ से बना है। राजस्थानी में स का ह प्रायः हो जाता है। मिलाओ—हिं हूं हूं।

मेल्हियह—प्रा० मेल्ल मिल्ह धातु का रूप। मेल्हणो क्रिया राजस्थानी में छोड़ना भूलना रखना भेजना आदि अर्थों में आती है।

दिणियर—सं० दिनकर प्रा० दिणयर।

दूहा ७३ हुंति—हेतुरेअमद्भूत = होता या होते। अन्य रूप—हुंत, होत हुआ, होता (आधुनिक राजस्थानी)।

दूहा ७४ वजउ—(१) सं० व्रज् प्रा० वज। (२) सं० वा प्रा० वाज; राज० बाज।

उमाँ—ऊ (= वह) का विकारी रूप। अम का प्रत्यय हाम। अन्य रूप—वाँ।

लाख पसाउ—सं० लक्ष+प्रसाद। पुराने जमाने में राजा लोग बहुत प्रसन्न होकर कवियों आदि को कई प्रकार के पुरस्कार देते थे जिनमें लाख-पसाव क्रोड़पसाव और अरबपसाव मुख्य हैं। इन नामों का मतलब है प्रसन्न या अनुग्रह करके लाख करोड़ या अरब द्रव्य का दान देना। अरबपसाव करनेवाले राजा इनेगिने ही हुए हैं। पहले वास्तव में इतना द्रव्य दिया जाता था पर बाद में तो लाख आदि का नाम ही नाम रह गया। यह आवश्यक नहीं था कि पुरस्कार में नकद द्रव्य ही दिया जाय। जागीर घोड़े, हाथी, वस्त्र आदि भी दिए जाते थे। राजस्थानी साहित्य में नीचे लिखे दानी प्रसिद्ध हैं—

[1](१) सिंध का राजा ऊनड़—इसने नौ लाख गाँववाली सिंध की समस्त भूमि एक ही दिन म दान दे डाली।

(२) अजमेर का गौड़वंशी राजा बच्छराज—इसने अरबपसाव (एक अरब द्रव्य) दान किया था।

---

1 (१) माई एहा पूत जण जेहा ऊनड़ जाम।
सींधी सारी सिंध इम जिम दीधी इक गाम॥
(२) दैणौ अरबपसाव इम भिड़ौ गौड़ बछराज।
गढ़ अजमेर सुमेरसूं ऊँचौ दीधौ आज॥
(३) लाख रीत लखपत लखे, मदन करोड़ मद सींग।
बीकाणै दाता बडा उभै हुआ अरसींग॥

(३) बीकानेर नरेश राजा रायसिंह ने सवा करोड़ का दान किया।

(४) बीकानेर के राव सूरजकरण का छठा पुत्र करमसी—इसने एक चारण को करोड़ रुपए का दान दिया। जो कुछ पास था वह सब दे चुकने पर भी जब एक करोड़ की रकम पूरी नहीं हुई तब अपने वीरदसी नामक कुँवर को चारण के हवाले कर दिया।

दूहा ७५ हिऊँ—आधुनिक रूप—हूँ।

मेलइ—मेलणो मिलना का प्रेरणार्थक है।

मुम्म, झुम्म—कारक मध्यम पुरुष। वि —भाव के लिये मिलाओ—

काढि कलेजो मैं धरूँ रे कागा तूँ ले जाइ।
ज्याँ देसाँ म्हाँरो पिव बसे वे देखे तू खाइ॥

दूहा ७६ चागवइ—चागवणो चागणो का प्रेरणार्थक है। अन्य रूप—चगावणो।

परि—भाँति ज्यों। मिलाओ—

तिल तिल बरस परि जाई। पहर पहर जुग जुग न सेराई॥
(जायसी)

गावै करि मंगल चाहि चाहि गहले मने धूर सिसुपाल मुख।
पदमिणि जनि फूले परि पदमिणि रतनिणी कमोदणी रुख॥
(कृ र री वेलि)

दूहा ७७ मोंधी—मिलाओ—हि [illegible]।

कुँमलाँणी—कुमलाणो क्रिया का सामान्य भूत स्त्रीलिंग, एकवचन। अनियमित रूप। मिलाओ—[illegible]।

दूहा ७८ ऊमा देवड़ी—देवड़ा चौहान राजपूतों की एक शाखा है। ये सोनगरा चौहानों से निकले हैं। आजकल सिरोही का राज्य देवड़ों का है। देवड़ा नाम क्यों पड़ा इसका ठीक पता नहीं चलता। ख्यातों में लिखा है कि चौहान राजा आसराज के यहाँ देवी रानी होकर रही और उसके वंशज देवड़े कहलाए। कुछ लोग कहते हैं कि एक राजा का दूसरा नाम देवराज था जिसकी संतान देवड़ा कहलाई। (विशेष देखो भूमिका)

ऊमा पिंगळ की स्त्री एवं मारवणी की माता थी। कुशललाभ और जोधपुरीय कथानकों में इस काव्य का एक पूर्व संबंध (प्रस्तावना या उपोद्घात) भी मिलता है जिसमें पिंगळ और ऊमा के विवाह की कथा दी गई है जो इस प्रकार है—

एक बार राजा पिंगल शिकार खेलने को गया। वहाँ उसे एक भाट मिला जिसने ऊमा के रूप की बहुत प्रशंसा की। नगर में लौट आने पर राजा ने अपने प्रधान को ऊमा के पिता सामंतसिंह के पास जालोर भेजा और ऊमा को माँगा। ऊमा की सगाई इससे पूर्व गुर्जर नरेश उदयादित्य (उदयचंद) के पुत्र रायधवल के साथ हो चुकी थी पर ऊमा की माता इस संबंध से संतुष्ट न थी। उसने पिंगल को कहलवाया कि अमुक अमुक लग्न के दिन तुम आबू यात्रा के बहाने वहाँ आ जा और हम ऊमा का विवाह तुम्हारे साथ कर देंगे। उधर उक्त लग्न के थोड़े दिन पहले एक दूत लग्न लेकर उदयादित्य के पास भेजा गया। उदयादित्य से दूत ने कहा कि मैं मार्ग में बीमार पड़ गया इसलिये पहले न आ सका। उदयादित्य ने देखा कि लग्न पर बरात नहीं पहुँच सकती पर उसने रायधवल को बरात के साथ रवाना कर दिया। उधर लग्न पर पिंगल पहुँच गया। जब गुजरात की बरात ठीक समय पर नहीं आई तो ऊमा का विवाह पिंगल के साथ कर दिया गया क्योंकि तेल चढ़ी हुई कन्या कुमारी नहीं रखी जा सकती। उदयादित्य को यह खबर मिली तो वह बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने जालोर को घेर लिया। विवाह के बाद पिंगल तो पूगल पहुँच गया पर ऊमा साथ न भेजी जा सकी। इसलिये पिंगल के प्रधान भेरुल ने एक बैलों की जोड़ी ऐसी तैयार की जो खूब तेज जाकर लौट आ सके और उदयादित्य के सैनिकों द्वारा पकड़ी न जा सके। उस जोड़ी को गाड़ी में जोतकर वह एक रात को जालोर गया और ऊमा को ले आया (विशेष देखो परिशिष्ट में (घ) और (झ) प्रति का प्रारंभिक अंश।)

कहिवा—कहने (के लिये)। अन्य रूप—कहवा।

मयी—यह एक प्रत्यय है जो कई कारक प्रत्ययों का काम देता है। जैसे—

(१) कर्म—किम पहुँचों नववर-मढ-मयी (को)।

(२) करण—खाना मिखिया महल मयी (से)।

(३) संप्रदान—बाबा गरथ दिया खिंव-मयी (को)।

(४) अपादान—माँगी पूरी राजा-मयी (से)।

इसके सिवा यह 'प्रति' और 'पास' का भी अर्थ देता है। जैसे—

ऊमाको पूछो तुम-मयी (प्रति)।

नरवरगढ ढोलह-मयी (पास)।

(ये सब उदाहरण कुशललाभ की चौपाइयों के हैं। देखो—परिशिष्ट में (घ) प्रति।)

दूहा ८० मालवन—मालवइ। इ का न हो गया है।

वाह—राग (?)।

दूहा ८१ साँढिया—साँढ + इया (वाला अर्थ देनेवाला प्रत्यय) = साँढवाले साँढनी सवार। मिलाओ—ऊँटिया (ऊँटवाला ऊँट का सवार)।

पाठवह—सं प्रस्थापय, प्रा पट्ठव पट्ठाव राज पाठवणो, पठावणो।

तेडन—तेडनो का कृदंत रूप। तेडना क्रिया राजस्थानी तथा गुजराती में बुलाने, न्योता देने के अर्थों में प्रयुक्त होती है।

कनि—हिंदी में भी यह शब्द 'लिये' के अर्थ में आता है।

दूहा ८२ ओ—कोइ। इ लुप्त हो गया है।

संदेसड़ा—सं संदेशक; प्रा संदेस; अप संदेसडउ राज संदेसडउ (संदेसड़ो)। बहुवचन—ड़ो प्रत्यय स्वार्थ में या अनादर में आता है।

झाड़—(१) राज झाड़। (२) जगड़ या जागड़ बिना बस्ती के देश को भी कहते हैं। अतः मरुभूमि के जंगल के बीच में।

विचाहु—बीच में ही। विच देशी प्राकृत शब्द है और हु ही का दूसरा रूप है।

दूहा ८३ आवंत—(१) सं आयाति; प्रा आवंत। आता हुआ है = आता है। (२) सं आयांति प्रा आवंति। आवत, आवंत ये रूप वर्तमानकाल के दोनों वचनों में प्रयुक्त होते हैं।

वेच्या—बेचे हुए अर्थात् बेचे जाने पर। वेच्याँ पाठ हो तो 'बेचने पर' अर्थ होगा।

लाख लहंत—लाख रुपए पाते हैं लाख रुपयों में बिकते हैं (देखो—दूहा २८ और १७)।

दूहा ८४ करे—कर + ए (पूर्वकालिक प्रत्यय)।

दूहा ८६ झबक्कड़—अचानक। मिलाओ—हिं औचक।

झिंबी—चमकी। बिजली के चमकने के लिये यह क्रिया आती है। यह चमता सूचित करती है।

संझ—सं संध्या, प्रा संझा।

दूहा ८७ सोहन—सुन्दरा।

तसु—सं तस्य प्रा तस्स राज तास, तस, तसु।

किसोइ—किसो = को । समासार्थ—कि = को + कोइ = कोई ।

दूहा ९७ मुँ—छंद पूर्त्यर्थ ह्रस्व कर दिया गया है ।

भ्रम—भ्रमता है । वर्तमान काल ।

काँनी—सं कर्ण; प्रा कण्ण = प्रच्छन्न, गुप्त, छिपा । स्त्रीलिंग ।

से—सो

तथ्य—सं तथ्य = रहस्य ।

दूहा ९८ सही—सखी ।

समाँणी—समान उम्र की ।

मल्हपंत—प्रा मल्ह (=लीला करना) । लीला के साथ धीमे धीमे चलना ।

नेडी—सं निकट प्रा णिअड नेड विशेषण, स्त्रीलिंग ।

दूहा ९९ साँभळिया—सं संभल प्रा संभल; गुज सांभळु ।

मूकियउ—सं मुच प्रा मुक्क ।

दूहा १०० विमासियउ—सं विमृश प्रा विमरिस ।

दूहा १०२ माँगणहार—याचक । यहाँ याचक जाति के पुरुष से अभिप्राय है । चारण भाट, ढोली, ढाढी आदि याचक जातियाँ कहलाती हैं ।

गारउ—फारसी गर प्रत्यय को संभवतः संस्कृत कार से बना है । राजस्थानी में यह वाला या करनेवाला के अर्थ में आता है । मिलाओ—खमखमारा ।

रीझवइ—रीझवणो रीझणो का प्रेरणार्थक है । अन्य रूप—रिझावणो ।

रूपावइ—लावइ का रूपांतर ।

दूहा १०३ मोकळि—सं मुच प्रा मुक्क, मोकल्ल गुज मोकलवु । आज्ञार्थ ।

उत्तिम—उत्तम ।

मंगता—याचक । आजकल मँगता बुरे अर्थ में प्रयुक्त होता है ।

घरउ—घर के, अपने ।

जगावइ—संगीत द्वारा विरद की उद्घोष करे ।

दूहा १०४ सेवग—सं सेवक ।

दूहा १०५ ढाढी—विवाह जन्मोत्सव आदि शुभ अवसरों पर बधाई आदि के गीत गानेवाले मुसलमान गवैए । प्रयोग—

हौं तो तेरो घर घर को ढाढी सूरदास मो नाउँ । (सूर)

श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने हमारे पूछने पर लिखा है—'ढाढी जाति की उत्पत्ति का ठीक ठीक पता नहीं चलता परंतु अंदाजे से ढाढी शब्द लगभग १६वीं शताब्दी से काम में लाया जाता है। जब वे इस नाम से पुकारे जाने लगे, करीब करीब उसी समय से मुसलमान हो गए थे। संभवतया पहले वे ढोली या भाट थे परंतु मुसलमान होते ही वे अपनी जातिवालों से नीची निगाह से देखे जाने लगे और 'ढाढी' कहलाने लगे। ढाढियों और ढोलियों का पेशा एक ही सा है—उत्सवों पर गाना, बजाना, बधाइयाँ और संदेशवाहक का काम करना। ढाढियों का अब तक यही पेशा है और वे सारे हिंदू रीति रिवाजों का पालन करते हैं। वास्तव में मुसलमान तो वे केवल नाम के हैं।

राजस्थान में अब भी कोई उत्सव या मंगलकार्य ढाढियों के सहयोग बिना अधूरा ही समझा जाता है। गढ़ों के द्वार पर नौबत और शहनाई यही बजाते हैं। सवारी के समय नगाड़े और तुरही बजाते हुए और बिरद गाते हुए निशान का (झंडा) हाथ में लिए घोड़ों या ऊँटों पर चढ़कर यही सबसे आगे चलते हैं। जान पड़ता है, पहले युद्धयात्रा के समय भी ऐसा ही होता रहा होगा। वे अपने यजमानों की वीरगाथाओं को कविताबद्ध भी करते रहे हैं और शांति के समय उनका बिरद बखान कर, संगीत सुनाकर तथा वीरता या प्रेमपूर्ण सुंदर सुंदर कहानियाँ कहकर उनका मनोरंजन भी करते रहे हैं। यजमानों का भी उनपर सदा से अटल विश्वास रहा है। राजपूत जाति के इतिहास में युद्ध और प्रेम इन दो बातों का सदा प्राबल्य रहा और ढाढियों ने उनके दोनों प्रकार के कार्यों में पूरा सहयोग दिया है। अब भी इस जाति में बड़े बड़े गुणी उच्चकोटि के गवैए, सब प्रकार के वाद्य बजानेवाले कहानी कहनेवाले और अच्छे अच्छे कवि मौजूद हैं। हिंदी के सिद्धहस्त गद्य पद्य लेखक मुंशी अजमेरी जी जिन्होंने आगरा में महात्मा गांधी को अपनी विनोद और हास्यपूर्ण बातों से प्रसन्न किया था और अपने गानों और कथाओं से रिझाया था इसी जाति के रत्न थे।

बोलाविया—सं० बू प्रेरणार्थक या बोलावइ बुलवावइ; हिं० बुलाना राज० बोलाबो या प्रेरणार्थक बोलाबवो; सामान्य भूत पुंलिंग, बहुवचन। यहाँ यह शब्द 'बुला भेजने' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है 'पुकारने' के अर्थ में नहीं।

ताळ—सं ताल। ताली बजाने में जितना समय लगता है उतना समय। थोड़ा समय। उदाहरण—

'तिथि ताळि सखी गळि स्यामा तेही'। (वेलि १७७)

जागरजाळ—सं जागर प्रा जागर=विद्वान् पंडित। जाळ प्रत्यय (= हिं वाला)। प्रत्यय यहाँ पर निरर्थक जान पड़ता है।

विद्याव्यसनी होने के कारण कदाचित् ढाढियों को इस नाम से पुकारा जाता है। धीरे धीरे इस शब्द का अर्थ याचक या गा बजाकर माँगनेवाला रह गया है।

दूहा १०६ सीख—सं शिक्षा प्रा सिक्खा हिं सीख। राजस्थानी में यह शब्द 'विदा' के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है जैसा कि इस स्थल पर हुआ है।

मेल्हि—सं मुच्; प्रा मेल्ल; राज मेल्हणो + इ (पूर्वकालिक प्रत्यय)।

तेडाविया—सामान्य भूत पुंल्लिंग बहुवचन। राजस्थानी—तेडणो + आव (प्रेरणार्थक प्रत्यय) तेडावणो + इया प्रा तेड; राज तेडा (संज्ञा) = न्योता, निमंत्रण बुलावा।

मांगणहार - राज मांगणो + अण + हार। माँगनेवाला याचक। मांगणु—सं मार्ग प्रा मग्ग हिं माँगना। हार (प्रत्यय)—सं कार हिं हार हारा।

दूहा १०७ दियण—राज देणो + अण = देने के लिये। सं दा प्रा दा हिं देना।

कज—सं कार्य प्रा कज्ज; हिं काज = लिये के हेतु, निमित्त।

कदे—सं कदा; प्रा कदा; हिं कब राज कद = किस समय।

चालिस्यउ—(सामान्य भविष्य मध्यम पुरुष बहुवचन) सं चल् प्रा चल हिं चलना राज चालणो।

विहाणइ—(अधिकरण) सं विभात; प्रा विहाण = प्रभात में। उदाहरण—निद्दए गमिही रत्तडी दडवड होइ विहाणु॥

(हेमचंद्र ८-४-३३०)

अज—(क्रियाविशेषण) सं अद्य प्रा अज्ज; हिं आज।

दूहा १०८ निसह—सं निश निशा; प्रा निस निसा = रात्रि में। ह अधिकरण कारक का चिह्न है। मिलाओ—

जल बिन हंस निसह बिन रवू।
कबीरा को स्वामी पाइ परिकै मनैबू लो।
(२११—२७५)

म्हे—(सर्वनाम, कर्ता कारक बहुवचन) सं० अस्मद् प्रा० अम्हे अप० अम्हई अम्हे; हिं० हम।

वहिस्यौं—(भविष्य उत्तम पुरुष बहुवचन) सं० वह प्रा० वह हिं० बहना = चलेंगे। राजस्थानी में यह शब्द मनुष्यों के अथवा वाहन के मार्ग चलने के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

पंथी—सं० पथिन्; प्रा० पंथिय।

बीम्या—(सामान्यभूत पुंल्लिंग बहुवचन) सं० बीज, प्रा० बीय, हिं० बीतना=बिद बीते रहे।

मुआ—सं० मृत प्रा० मुअ मूअ; हिं० मुए, मर गए वो।

त—(अव्यय) सं० तत् प्रा० तु राज० हिं० तो तब = त उस दशा में।

'सतगुर मिल्या त का भया जे मनि पाड़ी मोल'।
(कबीर)

किसी शब्द पर जोर देने के लिये राजस्थानी में त, त व का निरर्थक प्रयोग भी होता है।

दूहा १६ भगताविया—सं० भुज्, भोग हिं० भोगना भुगतना भुगताना। राज० भोगवो भोगवणो (प्रेरणार्थक) भुगतवो, भुगतावो भुगतावणो (प्रेरणार्थक)। राजस्थानी मुहावरे में यह शब्द रुपिया के साथ व्यापारगत प्रयुक्त होता है जैसे—'रुपियो भुगतावणो'।

मारू—सं० मरु प्रा० मरु, मरुअ।

(१) एक राग जिसको माँड भी कहते हैं। इस राग की उत्पत्ति मरु स्थल से हुई जान पड़ती है अथवा मारवाड़ में अधिक गाए जाने से इसका नाम 'माँड' पड़ा जिस प्रकार पूर्व से 'पूर्वी' सिंध से 'सिंधवी' और सौराष्ट्र से सोरठ। मारवाड़ में अब तक यह राग सबसे अधिक लोकप्रिय है और उत्सव के अवसरों पर गाया जाता है। 'सोरठ' और 'देश' का भी राजस्थान में बहुत प्रचार है परंतु उतना नहीं जितना माँड का।

पहले जब राजस्थान भारत का आदर्श युद्धक्षेत्र बना हुआ था तब योद्धाओं को उत्साहित और उत्तेजित करने के लिये इसी राग में स्याग बीरता

और यश के गान गाए जाते थे परंतु ज्यों ज्यों यह देश विलासभूमि बनता गया और अपने उच्च आदर्श भ्रष्ट होकर 'दारूड़ा पियो और मारूड़ा गाओ' तक ही रह गया त्यों त्यों इस राग ने भी पलटा खाया और इसमें शृंगाररस का प्रवाह बहने लगा। रात्रि के समय जब कोई इस राग में विरह की टेर लगा देता है तो हृदय व्याकुल हो जाता है।

माँड संपूर्ण राग है। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह भी राग का पुत्र समझा जाता है। मारवाड़ के गवैए ढोला मारू के प्रसिद्ध दूहे इस राग में बड़े सुंदर ढंग से गाकर मन को लुभा लेते हैं। माँड राग की चीजों में जब तक बीच बीच में दोहे नहीं रहते तब तक उसका मजा अधूरा ही रहता है।

(२) इस शब्द का दूसरा अर्थ मरुस्थल निवासी भी होता है। जयपुर निवासी बिहारीलाल कवि ने इस अर्थ में प्रयोग किया है—

मरुधर पाय मतीरहू मारू कहत पयोधि। (बिहारी)

आधुनिक राजस्थानी में 'ढोला' की तरह यह शब्द केवल 'नायक' के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है; जैसे—पधा मारू, बन्ना मारू। उदाहरण—

आई रे आई, मारू, सावणियाँरी तीज राज सहर्यों
कसूंबो रे मारा गाढा मारू ओटियो।
(प्रचलित 'कसूंबो' गीत)

निपाइ—सं निष्पद् प्रा णिप्पाअ राज निपाजो नीपाणो, नीपजणो; हिं निपजाना = बनाकर, रचकर। उदाहरण—

फिरि सीपायौ तरि निकुयी ए मठ पूरबी पाताल मैं। (वेलि ११)

तिणाँ—सं तद्, हिं तिन = उनको। विकारी रूप कारक प्रत्यय लुप्त। अन्य रूप—त्याँ।

दूहा ११० सुहाँमणउ—(विशेषण) सं शुभ; प्रा सोह; राज सोहणो + आँमणो (प्रत्यय)। अन्य रूप—सोहणो, सुहावणो सुहामणो। क्रियापद—हिं सुहावना।

पहिआइ—सं पथिक प्रा पहिअ; राज पहिअ + आ (संबोधन चिह्न) + इ (पाद पूर्त्यर्थक) = हे पथिको।

दूहा १११ संदेस—संदेसाँ होना चाहिए। अनुस्वार का लोप हो गया है। विकारी रूप, करण कारक का प्रत्यय लुप्त।

लग लहइ—सं लग्न प्रा लग्ग हिं लगना राज लागवो = मन होता है। 'लग' धातु है जो लहइ से मिलकर संयुक्त क्रिया बनाता है।

लहइ—सं लभ प्रा लह हिं लहना राज लहवो। केवल कविता में प्रयुक्त होता है।

आखइ—(संभाव्य भविष्य) सं आख्या प्रा आक्खा आक्ख हिं आखना राज आखवो। (क) में, जो अब तक प्राप्त प्रतियों में सबसे प्राचीन है इस दूहे के प्रथम और दूसरे 'आखइ' के स्थान पर क्रमशः 'देखूँ' और 'देखे' पाठ है, जो 'दाखूँ' (कहती हूँ) और 'दाखे' (कहे) के स्थान पर प्रतिलिपिकार की गलती से लिख गया जान पड़ता है। (क) का यह पाठ रखने से अर्थ होता है—'जिस प्रकार मैं आँखें भरकर देखती हूँ, उसी प्रकार यदि वह देखे'—जो ठीक नहीं बैठता।

दूहा ११२ भजि—सं भञ्ज् प्रा भंज; हिं भजना, भगना। पूर्वकालिक। प्रयोग—

कमल भाजि विरहिणी वदन जिम
भंग पाडि संजोगि उर। (बेलि १२२)
महु कंतहो गुट्ठि ठिअहो कउ झुंपडा बलंति।
(हेमचंद्र ८ ४ ४१६)

झुरता—सं क्षोभित प्रा खोरणा; हिं खोरणा।

ढंढोलिसि—सं ढुंढनम्; प्रा ढुंढुल्ल ढुंढल्ल, ढंढोल राज ढूँढवो, ढंढोलवो; हिं ढूँढना ढँढोरना। प्रयोग—

(१) अमर माहि ढंढोलताँ हीरा परि गया हाथ।
(कबीर)

(२) दुघार दिवस भागि पर लागो ढूँढि ढँढोरि आप ही आयो।
(सूर)

दूहा ११३ यूँ—(अव्यय) अप एम्व, इम्व एवँ इवँ; राज एम इम यूँ।

मोंखिमड—मोख + इमठ (अनादरवाचक प्रत्यय) = बेचारा मोख।

झळ—सं ज्वाल; हिं झल झार = ताप; राज उम झमना, झपट झपक। उदाहरण—

(१) आँखाँ ता ठरि ठठी झळ। (बेलि १४)

(२) साहिब मिले न झळ बुझे, रही बुझाय बुझाय।
(कबीर)

दूहा ११४ मोळगा—सं अपलग्न; अप० ओळग्ग राज अळगो हिं० अलग = दूर, जुदा, भिन्न पृथक्।

रूड़ा—सं रूढ़ = प्रशस्त हिं रूरा = अच्छा भला, प्रशंसनीय। मिलाओ—

लटकन ललित ललाट लटू री
दमकत है है दँतुरिया रूरी। (सूर)

दूहा ११७ साख—राजस्थानी में 'साख' फसल को कहते हैं।

दूहा ११८ उपाड़ियउ—सं उत्+पाट्य प्रा उप्पाडिअ; राज उपाड़्यो हिं उपाड़ना = ऊपर उठाना उखेड़ना। उदाहरण—

रूपड़ी रखी मछि मारक पड़यो। (बेलि ११५)

दूहा ११९ बइसइ—सं उपविश प्रा बैस बइस; गुज बेसवुँ; राज० बैस्यो = बैठना। उदाहरण—

तै मंदिर खाली पड़े बैसण लागे काग। (कबीर)

दूहा १२० मउरियउ—सं मुकुलित; प्रा मउरिअ, मउलिअ; हिं० मौरना = मंजरी युक्त होना। उदाहरण—

मारगि मारगि अंब मौरिया। (बेलि ५)

धुहड़—प्रा धुंट। राजस्थानी में (और अपभ्रंश में भी) कभी आगे द्वित्व वर्ण होने पर उसे एक करके पूर्व वर्ण को अनुस्वार कर देते हैं और कभी इसके विपरीत अनुस्वार को हटाकर आगे के वर्ण का द्वित्व कर देते हैं।

दूहा १२१ कण—(सं) धान्य कण। उदाहरण—

कण एक लिया किया एक मण कण। (बेलि ११८)

करसण—सं कर्षण प्रा करिसण। इसी से राजस्थानी में करसण (= किसान) और हिं किसान बनता है।

भोग—(सं) उपभोग कर। इससे राजस्थानी भोगता शब्द (= जमींदार जागीरदार) बना है।

दूहा १२२ फाटि—सं स्फटित प्रा फट्टिअ (सामान्य भूत); राज० फाट्यो हिं फटना। छोड्या फाटि इत्यादि मिलाओ—

> सरवर हिया घटत नित जाइ। टूक टूक होइकै बिहराई॥
> बिहरत हिया करहु पिय टेका। दीठ दवँगरा मेरवहु एका॥
> (जायसी)

तलावड़ी—सं तडाग तडागिका प्रा तलाग तलाइआ; राज तलाव; हिं तलैया। ड़ी ऊनवाचक प्रत्यय।

पाळि—सं पालि राज पाळ पाळ हिं पाल, पार = मेंड़, जलाशय का किनारा। मिलाओ—

टूट पाळ सरवर बहि लागे। (जायसी)

सरवरियारी पीरा ऊँची नीचो रे पाळ एक पड़ूँ दूजी ऊतरूँ।

(राजस्थानी गीत)

दूहा १२३ पँहचाइ—सं प्र+भू प्रा पहुच अप पहुच्चइ (हेमचंद्र); राज पूँचणो हिं पहुँचना। प्रेरणार्थक, आज्ञा।

दूहा १२४ पही—सं पथिक प्रा पहिय।

धावउ—प्रा धाव राज धावणो धावणो। आज्ञा। मिलाओ—मराठी धाँव धाँवणे। उदाहरण—

वर श्यामा तरिस स्यामतर वळवर वेधूंबे गळि बाहाँ घाति।

(वेलि २ १)

दूहा १२५ निकळै वेगी साप्पणी इत्यादि—ऐसा प्रसिद्ध है कि साँप के मुँह में स्वाती की बूँद पड़ने से विष बनता है इससे संभवतः इसे संतोष और शांति प्राप्त होती है (?)।

करली सीप भुजंग मुख, स्वाति एक गुण तीन।
जैसी संगति बैठए तैसो ही गुण दीन॥
(रहीम)

दूहा १२६ ऊतर—(सं) लक्षणार्थ में उत्तर का पवन शिशिर वात, जिसके चलने से लता गुल्म आदि जल जाते हैं। उदाहरण—

प्रब ऊगमित शिशिर वृतीय पौहवौ

ऊतर ऊपायिया ऊलल। (वेलि २४६)

दक्षिण—लक्षणार्थ में दाक्षिणात्य पवन। शीतल मंद सुगंधित वासंतिक वायु, जिसके चलने पर सूखी हुई वनस्पति में फिर से प्राण का संचार होता है और नवांकुर प्रस्फुटित होने लगते हैं।

वाजइ—सं व्रज; प्रा वच वज वजइ, वाजइ = चलता है चलती है। राजस्थानी म हवा के चलने को 'हवा वाजणो' कहते हैं।

दूहा १२७ ओखद—सं औषधि = दवा उपचार।

मनि परतीति न ऊपजै, जीव बेसास न होइ ।

(कबीर)

पाठांतर—'सावज संकळ तोडस्यइ वेसासयाइ न थाइ'—अर्थात् मेरा यौवनरूपी अदमनीय हिंस्र पशु बंधन को तोड़ा चाहता है; उससे (शांत) बैठा नहीं जाता ।

सावज—सं० श्वापद = जंगली हिंस्र पशु । प्रा० सावय गुज० सावज । उदाहरण—

सावज सीह रहे सब माँची, चंद अरु सूर रहे रथ खाँची ।

(कबीर)

संकळ—सं० शृंखला प्रा० संकला संकला; हिं० साँकल । बंधन यहाँ मर्यादारूपी बंधन ।

वेसासयाइ—सं० उपविश प्रा० वेस, बईस गुज० बेसवुं राज० बैसणो = बैठना शांत होकर रहना ।

ते मंदिर खाली पड़े बैसण लागे काग । (कबीर)

दूहा १५४ हेक—सं० एक । एक और उससे बने हुए शब्दों का ए राज० स्थानों में प्रायः हे हो जाता है । मिलाओ—हेकण । उदाहरण—

हेक कहो हित हुवे पुरोहित करेमुना सिसुपालकर ।

(वेलि १५)

वेगाहरउ—सं० वेग; राज० वेगो (विशेषण)+हरउ या हरो प्रत्यय (स्वार्थ में) । मिलाओ—मनेरउ घणेरउ बडेरउ ।

दूहा १५५ भमंतउ—सं० भ्रम प्रा० भम राज० भम या भँव+अतउ (वर्तमान कृदंत प्रत्यय) ।

कणयर—सं० कर्णिकार प्रा० कण्णिआर हिं० कनेर कनियर = एक पुष्पवृक्ष विशेष ।

कंब—सं० कंबा कंबी प्रा० कंब कंबा = लीलायष्टि हाथ में रखने की छड़ी पतली सी छोटी डाली । किसी पेड़ से काटी हुई हाथ में रखने की अथवा पशु को ताड़ित करने की छोटी डाली ।

सुरत—सं० स्मृति = याद ध्यान सुरति । उदाहरण—

सुरति समाँणी निरति में, निरति रही निरधार । (१४—२)

दूहा १५६ सात सलाँम से केवल सात बार ही अभिवादन करने का आशय नहीं है वरन् अनेकानेक प्रणाम का आशय है ।

थी—सं तः (अपादान विभक्ति चिह्न) = से। मिलाओ—

तरवर थे फल झड़ि पड़े बहुरि न लागे डार।

(कबीर)

दूहा १२७ विलसंती—सं विलाप अथवा अनु शब्द विल विल करना = बिलखना, विलाप करना।

(१) औंधाइ सीसी सुलखि बिरहबरी बिललात। (बिहारी)

(२) एक लहे ही लहैं और लहा बिललाइ। (कबीर)

'पग सूं कादइ लीहटी—मिलाओ—

चारु चरन नख लेखति धरनी।

नूपुर मुखर मधुर कवि बरनी॥

समासोक्ति का बड़ा सुंदर उदाहरण है।

कादइ—खींचती है कुरेदती है। मिलाओ—किम प्रयोग दोहा १११ में।

लीहटी—सं रेखा; प्रा लेहा राज लीह+टी (ऊनतावाचक प्रत्यय)

दूहा १२८ हर—सं स्मर प्रा मर, हर = आकांक्षा अभिलाषा, उत्कट इच्छा। राजस्थानी का साधारण प्रचलित शब्द है। उदाहरण—

हूर म करो मनि राम हूर। (वेलि ७०)

मनह—(सं मनस्) मन से मन में। उदाहरण—

(१) मनह मनोरथ छाड़ि दे तेरा किया न होइ। (कबीर)

(२) मनह उतारी झूठ करि तब लागी डोलै साथ। (कबीर)

इन—(१) हि नहीं का विपर्यय। अथवा (२) इ = भी, न = नहीं।

दूहा १२९ अवर—सं अ+वर = वह सुंदरी भी।

अंखोए—सं आ+नी प्रा आ+चय।

कप्पड़े—सं कर्पटक; प्रा कप्पड; हि कपड़े। उदाहरण—

पाहि बिनंठा कप्पड़ा क्या करै बिचारी चोल।

(कबीर)

पाठांतर—

सावरते नयणेहि—(१) सावरनयनी मृगनयनी कामिनी के।

(२) आँखों के प्रत्यक्ष सामने।

(१) सं शाबर—मृग। (२) सं सांप्रत=प्रत्यक्ष।

दूहा १४० कागळ—मराठी—कागद गुज कागळ। उदाहरण—

कागळ दीधो प्रेम करि। (बेलि २६)

नाथिया—(राज) न+आथिया की संधि। इस प्रकार के प्रयोग प्राचीन राजस्थानी में मिलते हैं। मिलाओ—गुज नथी सं नास्ति।

दूहा १४१ थाइ—सं स्था; प्रा था। वर्तमानकाल। मिलाओ—

ऊँची जाती थाइ है दिन दिन पीछे थाँहि। (७२—११)

मोलइ—सं मूल्य राज मोल+इ (अधिकरण और कर्मविभक्ति का चिह्न)

दूहा १४२ बीअउ—सं द्वितीय प्रा बिइज्ज राज बिओ बीओ। गुजराती में भी प्रयुक्त होता है। देखो—'बिज्जो बीओ'। (हेमचंद्र १—२४८)

बंभण मिसि बदे हेक सु बोली। (बेलि ७१)

आगलि—सं अग्र; प्रा अग्ग स्वार्थ में 'लो' प्रत्यय।

आगलि पितु मात रमंती अंगणि। (बेलि १८)

ठवइ—सं स्थापय प्रा ठव।

बहिल्लउ—(अप बहिल्ल) गुज बहेलो।

एक्कु कइअह इ वि न आव ही अन्नु बहिल्लउ जाहि।

(हेमचंद्र ८-४-४१२)

मोकळे=सं मुच् प्रा मुक्क (प्रेरणार्थक); गुज मोकळवु मराठी मोकलवें=भेजना। भविसयत्तकहा में 'मोक्कलइ' का इस अर्थ में प्रयोग हुआ है।

दूहा १४३ पारेवा—सं पारावत प्रा पारेवय।

कूरा—सं होना प्रा कुरश। कबूतर पालनेवाले घर के आँगन में एक लंबे बाँस के सहारे छत की ऊँचाई से कुछ ऊपर कबूतरों के बैठने का एक चौखट लगा देते हैं जिस पर कबूतर विश्राम करते हैं। बिल्ली कुत्ते आदि पशुओं से बचाने के लिये कूरा बनाया जाता है।

त्रूटि—सं त्रुट प्रा तुट्ट, तुट। त्रूटे कंध मूल जाइ त्रूटे। (बेलि)

दूहा १४५ चाचरि—सं चर्चरी प्रा चच्चरी=फागुन में होलिकोत्सव के उपलक्ष में होनेवाले गान नृत्य इत्यादि। चर्चरी होली में गाए जानेवाले राग विशेष को भी कहते हैं।

(१) तुलसीदास चाचरि मिस कहै राम गुन ग्राम। (तुलसी)

(२) छिनहिं चरहिं छिन चाँचरि होई।

नाच कूद भूला सब कोई॥ (जायसी)

झंपावेसि—(सं झंप्) उछलना कूद पड़ना।

(१) करि अपनो कुल नाश बहिन सो अगिनि झंप दै आई। (सूर)

(२) नैनाँ अंतरि आव तूं, ज्यूं हौं नैन झंपेउँ। (कबीर)

दूहा १४६ कुड़ियाँ—(१) सं कूट = कूटे हुए अनाज की राशि, ढेर। यथा—अन्नकूट। (२) देशीय कुड। कूड़ा कुड़ा का भी यही अर्थ होता है। राजस्थानी मुहाविरा कूड़ा करना=खलिहान में काटे हुए धान्य की राशि का ढेर लगाना।

दूहा १४७ वाहला—(दे) राजस्थानी म छुद्र बरसाती नदी या नाले के अर्थ में बहुधा प्रयुक्त होता है। उदाहरण—

अति घेंडु कोपि कुँवर उफणियो बरसालु वाहला वरि (वेलि १४)

दूहा १४८ धरि—सं धरित्र धरी। वस्तुराशि का तौल अथवा माप। यहाँ पर पृथ्वी के संग्रहित पदार्थों की राशि से आशय है।

महारव—(सं) महा जलराशि। लाक्षणिक अर्थ में यहाँ पर प्रेम जलधि का आशय है।

ऊमटइ—सं उन्मंथन प्रा उम्मडण, हिं उमड़ना। बढ़ आना, भर जाना उतराकर चलना। पाठांतर—केता कहूँ = कहाँ तक कहूँ।

सँभार—(१) संभारशो का प्राकृत का रूप = सम्हाल। (२) प्रिय संबंधी एकत्रित विचारसमूह स्मृतियाँ अथवा हृदयोद्गार।

दूहा १४६ मझूकड़ा—(अनु शब्द) मझूकणो (= मन मन करके चमकना) से बना। उदाहरण—

(१) मंदिर माँहि मझूकती दीवा कैसी जोति। (कबीर ७१—१७)

(२) हूवा था पै उभ्भरयो गुन की लहरि मझूकि।

(कबीर ९५४—७४)

दूहा १५० अजळिपारी तीज—भाद्रपद कृष्णपक्ष की तृतीया को 'कजली अथवा अजळिपारी तीज' कहते हैं। राजस्थान में वर्षाऋतु और ऋतुओं से अधिक आनंदप्रद होती है। जनता का वर्षासंबंधी आनंदोल्लास इस त्योहार के रूप म व्यंजित हुआ है।

बिजळी—सं विद् प्रा विज्जु = बिजली का चमककर प्रेरित होना। राजस्थानी बोलचाल की भाषा मे बहुतायत से प्रयुक्त होता है। उदाहरण—

कहो कौन लिखै कहो कौन गावै कहाँ मैं पोथी निखरे।

(कबीर १७७—२११)

दूहा १२१ चाव्ह—सं चाल, राज चाबे। मिल्याँ—मूल छंद स्त्रीलिंग बहुवचन=बाल की तरह मिल रही हैं। इस प्रकार मिल रही है कि बाल की तरह गुथी हुई दिखाई देती हैं।

छमकि—'चमकि' का मारवाड़ी रूपांतर। बोलचाल में मारवाड़ के लोग 'च' के स्थान में 'छ' का उच्चारण करते हैं। भोजपुरी मारवाड़ी में ऐसे प्रयोग बहुतायत से होते हैं जैसे—चतुर्भुज का छतरभुज चबूतरा का छबूतरा इत्यादि।

दूहा १४२ बारिघुर्याँ—प्रा घर। राजस्थानी में शब्द के बीच में निरर्थक अक्षरों का आगम किया जाता है। यहाँ 'घर' शब्द में 'र' का निरर्थक आगम किया गया है। इस प्रकार—

भंवरि का बबहरि। (वलि २४)

उदाहरण—भरी कुटी मछली छीके धरी बहोरि।

(कबीर १९—२४)

दूहा १२३ परोकियाँ—सं परकीया=परकीया नायिकाएँ।

नोठ—सं अनिष्टि; प्रा अणिट्ठि। राजस्थानी म प्रारम्भिक 'अ' का कभी कभी लोप हो जाता है। =कठिनता से। हिं उदाहरण—

(१) छता समीपिन ससिन हूँ, मोठि पिछानी जाय। (बिहारी)

(२) निशा वश मुख दीठ निठ (वेलि १९१)

बाहुड़े—सं प्रघूर्णन प्रा पघोलन हिं बहुरना राज बाहुड्यो बहोड्यो (प्रेरणार्थक)। उदाहरण—

(१) कया हाँडी काठ की ना उँ चढ़ै बहोरि।

(कबीर २४ ११)

(२) गइ बहोरि गरीबनिवाजू। (तुलसी)

दूहा १२४ किया कराबइ पखाँइ—पंक्ति का दूसरा अन्वय=जो मुझसे (किया+कर+आवइ) किस प्रकार आया जा सकता है क्योंकि बीच में अनेक बाधाएँ (दाधा) हैं।

दूहा १२५ लाल कमाण—फारसी—कमान। लाल कमान साहित्य में प्रसिद्ध है। लाल रंग की कमान योद्धाओं को विशेष प्रिय होती है। उदाहरण—एक न दोस्त हम किया जिस गलि लाल कबाँइ।

(कबीर ११ ११)

दूहा १२६ कैंनी—सं कथित; प्रा कहय।
उदाहरण—रात्यूं रूँनी बिरहनी ज्यूं बंचौ कूं कुंज। (कबीर ७—१)
लोइ—सं लोक; प्रा लोअ, लोय।
सामाको ज्वाला पड्या—मिलाओ—
बीमरियाँ ज्वाला पड्या, राम पुकार पुकार।
(कबीर ९—२१)

दूहा १२७ करंकड़ड़—प्रा करंक = हाड़ अस्थि-पंजर
उदाहरण—(१) करंकचयमीसयो मसाणम्मि'।
(सुपासनाहचरिअ १७१)

(२) यहु तन जारौं मसि करौं लिखौं राम का नाउँ।
लेखणि करूँ करंक की लिखि लिखि रॉम पठाउँ॥
(कबीर ८—११)

ऊजावेसि—सं उद्‌ प्रा उजु प्रेरणार्थक उजुाव (भविष्यत् रूप)।
दूहा १२८ पाहसि—सं प्र + विष् प्रा पइस।
उदाहरण—(१) देवाळे पैसि मंकिम वरसे। (बेलि १ ८)
(२) मंदिर पैसि चहूँ दिसि भीगे बाहरि रहे ते सूका।
(कबीर १४७—१७१)

पल्लवइ—सं पल्लव; हिं पलुहना = फूलना फलना हरा भरा होना।
उदाहरण—
(१) सुखि बेलि पुनि पल्लुवै जो पिउ सींचै आइ। (जायसी)
(२) पलुहइ नारि सिसिर ऋतु पाई। (तुलसी)
दूहा १२९ अकथ कहाणी इ —भाव मिलाओ—
(१) अकथ कहाँणी प्रेम की कछू कही न जाई।
गूँगे केरी सरकरा बैठे मुसकाई॥ (कबीर ११६—१५६)
(२) अकथ कहाँणी प्रेम की कहाँ न को पतयाइ।
(कबीर ६५—१)

दूहा १३० प्रीतम तोरइ इ —इसी प्रकार की ऊहात्मक प्रेमोक्ति के लिये मिलाओ—
कबीर हरि का डरपतों ऊन्हों धान न खाऊँ।
हिरदा भीतर हरि बसे ताथै खरा डराऊँ॥ (कबीर ७१—७ टि)

सामन्त—सं सद्, दण्ड प्रा समन्त राज सामन्तों की संज्ञा। उदाहरण—

आठ पहर का दाम्भणाँ मोपै सहा न जाइ। (कबीर १०-३५)

तें—सं तः (अपादान प्रत्यय)।

पृष्ठ १६१ उत्तपथा—सं उत्+पथ=उत्पथित करनेवाला। हिंदी उदाहरण—

बेलि मकन नव बेलि सी सुलही सहाही कंत। (पद्माकर)

कर्ने—सं कर्ण। उदाहरण—

'परस भोजन भगति करि, क्यूँ करे न खारे पाव।

(कबीर २—११)

पृष्ठ १६२ बिग्गाउ—सं विगुण; प्रा विगुण विगउ। हेमो-हेमचंद्र—१—९४ और २—७६ 'हिन्योस्त' दुग्गो-बिग्गो दुरमो-बिरमो।

खोरि—सं मूढ़ प्रा मुप हिं खोरि। पूर्व द का लोप।

पृष्ठ १६३ बिहूणी—सं विहीन प्रा विहीण विहूण। उदाहरण—

देखा चंद बिहूँणाँ चाँदिणा तहाँ अलख निरंजन राइ।

(कबीर ११—१५)

जीव बिहूँणाँ देहुरा, देव बिहूँणाँ देव। (कबीर १५—४१)

बिणजारा—सं वाणिज्य+कार; प्रा वणिज्जार; हिं बनजारा=मध्य काल में बैलों पर वस्तुएँ लादकर एक देश से दूसरे देश में वाणिज्य करनेवाले व्यापारी। इनके बैलों की कतार को राजस्थानी में 'बालद' कहते हैं। ये लोग बड़ी लंबी लंबी यात्राएँ करते थे और मार्ग में विश्राम करते करते आगे बढ़ते थे। जिस स्थान पर विश्राम करते थे वहीं पर अग्नि जलाकर भोजन बनाते थे। विश्रामस्थान से चल जाने पर इनके परित्यक्त स्थल कुछ दिन तक इनकी यात्रा के स्मारक बने रहते थे।

मढ़—सं मठ प्रा मढ हिं मढ़=मढ़ी।

धुखंती—सं धूप प्रा धुक्क (सुलगाना)=धुखती हुई।

यह शब्द राजस्थानी में बहुतायत से प्रयुक्त होता है। इससे आग के प्रज्वलित होने की उस दशा का बोध होता है जब धूप धुआँ निकलता है लपटें नहीं उठतीं। लाक्षणिक रूप में हृदय की वैसी ही उद्विग्न दशा।

पृष्ठ १६४ डंबर—(सं) किसी समय के आकाश की लाली का डंबर कहते हैं। उसी से आँखों की लाली की समता की गई है।

उदाहरण—पिंजर डंबर न भए के काम की भी भीत।

बिजाया—प्रा भेजाना। भिजायो—हिं भिजाना।

उदाहरण—मोमि बिजायी में कहा पायो, कहा कियो कहि मोहि।

(कबीर)

दूहा १६७ वासँग—सं वल्लभ। अनुस्वार का आगम।

उदाहरण—बै—सं द्वि प्रा बि बे।

बिधि सेस सहस फण फणि फणि बि बि बीह। (बेलि ५)

हिलोर दे—आत्मगर्भित मुहावरा है। जिस प्रकार समुद्र की तरंग का हिलोर अकस्मात् तट की ओर बढ़ निकलता है, उसी प्रकार, हिलोर की तरह पति के आगमन की प्रतीक्षा मारवणी करती है।

काग उडाइ उडाइ—साहित्य में प्रतीक्षोत्कंठित नायिकाओं का काग को उड़ाकर पति के आगमन की शकुन चिंता करना रूढ़िसंगत हो गया है। अपभ्रंश और प्राकृत साहित्य म ऐसी उक्तियाँ बहुतायत से उपलब्ध होती हैं। उदाहरण—

(१ काग उडावण धण खडी आयो पीव भडक्क।
आधी चूडी काग-गळ आधी गई तडक्क॥ (राजस्थानी सुभाषित)

(२) पिक चातक बन बसन न पावहिं बायस बलिहि न खात।
सूरस्याम संदेशन के डर पथिक न उहि मग जात॥ (सूर)

(३) काग उडावत मोरी भुजा पिरानी। (कबीर)

दूहा १६८ वालहा—सं वल्लभ, प्रा वल्लह।

दूहा १६६ गरथ—(१) सं ग्रंथ=सामग्री, संपत्ति; एकत्रित धन इत्यादि। वा (२) अरथ (अर्थ=धन) के अनुकरण पर बना हुआ शब्द। अरथ गरथ बोला जाता है।

अकन्यम—सं अकम्प; प्रा अकम्प। न का आगम।

दळ चढ़णा—राजस्थानी मुहावरा 'दळ चढणो'=प्रसन्न होना, मद होना।

दूहा १७० अमर—सं अपर; प्रा अवर।

सुपनंतरि—सं स्वप्न+अंतर+इ (अधिकरण चिह्न)=स्वप्न में।

उदाहरण—दया धर्म औ गुर की सेवा ए सुपनंतरि नाहीं।

(कबीर २०१—५)

सोरठा १७१ पंजर—सं पंजर। राजस्थानी और हिंदी में दार्शनिक अर्थ में यह शब्द बहुधा शरीर के लिये प्रयुक्त होता है।

पुळर—राजस्थानी देशीय शब्द = चलता है, गतिशील होता है।
उदाहरण—पुळिये मग पुळिमाह, हुवे हरस अदरस हुवा।
बळ पैठाँ भळियाह मंदा क्रम मँदाकिनी ॥
(राठोड़ पृथ्वीराज)

दूहा १७२ निपट्टियाँ—सं नि+पद्=उत्पन्न होने पर, भयित होने पर।
पतीजूँ—सं प्रत्यय (प्रति+इ) प्रा पत्तिअ पत्तिअ=विश्वास करूँ।
उदाहरण—
(१) बोल्यो बिहग बिहँसि रघुबर बलि कहौं सुभाय पतीजै।
(तुलसी)
(२) जाति जुलाहा नाम कबीरा अजहू पतीजौं नाहिं। (कबीर)
दूहा १७३ बिलक्खा—सं विकल या विलक्ष; प्रा बिलक्ख=दुःखी व्याकुल। उदाहरण—
(१) बिकसित कंज कुमुद बिलखाने (तुलसी)
(२) बहु बिलखी बीछड़ती बाळा। (वेलि १०)
दूहा १७४ निसद—सं नि+शब्द प्रा निसद्द नि:शब्द।
दूहा १७५ परिवाँण—सं प्रमाण प्रा पमाँण; राज परवाँण=सचमुच निश्चय। उदाहरण—
करता की गति अगम है तूँ चलि अपणें उनमान।
धीरे धीरे पाव दे पहुँचैगे परवाँन। (कबीर १८—१७७)
मावई—सं मात्; प्रा माथ; हिं माना (क्रिया)=अच्छा लगे।
यहाँ अप्रसन्न। मिलाओ—हिंदी 'भाए'।
(१) एम्बहिं राह पयोहरहं जं भावइ तं होइ।
(हेमचंद्र ८४४२)
(२) भावइ पानी सिर पडउ भावइ पडउ अँगार।
भावइ बाँध न बाँध—मिलाओ—
चउन करत पचन है पैरे भावै बाँध न बाँधो। (कबीर २१६—१९७)
न—सं ना (निषेधवाचक) अपभ्रंश न। उदाहरण—
लोए हिंडिसइ ललिय्यएण मरि सन मेइ म न्मु।
पाविउ न्वह गुण्गइ घोरी लिन्मइ अन्नु (हेमचंद्र ८४४१८)
दूहा १७६ पानडो—सं उपानह प्रा पाहड़ो; हिं पनही।
उदाहरण—

बिनु पानहिं हु पयादेहि पाए संकर साखि रहेउ यहि घाए।
(तुलसी)

दूहा १७७ ठाकुर—सं ठक्कुर = ईश्वर सरदार, स्वामी।

खिसइ—(दे)= खसकना स्थान से हटना गिरना। मिलाओ—

(१) खसी माल मूरति मुसुकानी। (तुलसी)

(२) परभाते तारे खिसइ त्यां इहु खिसे सरीर।
(कबीर २५६-६)

किराकठ—सं कीरकण्ठ।

दूहा १७८ धंधाळू—हिं धंधा + आलू (राजस्थानी प्रत्यय = काम-काजी।

परदेस—सं विदेश। मिलाओ—

बिन पाऊँ से कठरी डोलत देस बदेस। (कबीर)

सपळी—सं सकल; प्रा सयल सगळ। उदाहरण—

स्वारथ का सबका सगा जग सगळा ही जाणि।
(कबीर ५२ १६)

संपजे—सं संपद्यते; प्रा संपज्जइ = उत्पन्न होती है एकत्रित होती है।

दूहा १७९ पहुच—सं प्र + भूत; प्रा पहुत। उदाहरण—

जे बम आगे ऊबरों तो जुरा पहूँचो आइ। (कबीर ७१ ८)

सोरठा १८ संभारियाँ—याद करने पर। सं सं + स्मृ प्रा संभर संभळ।

काप—सं कृप् प्रा कप्प; राज कापणो से संज्ञा।

दूहा १८१ पडु तन इ —भाव मिलाओ।

पड़ु तन जालों मसि करूँ ज्यूँ धूवाँ जाइ सरग्गि।
मति वै राम दया करै, बरसि बुझावे अग्गि॥

दूहा १८२ मरइ—सं मृ; प्रा मर। लाक्षणिक अर्थ में राजस्थानी मुहावरा संदेसो मरणो संदेश भेजने के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

पळहर—सं पर्वत; प्रा पव्वइ।

भी—(राजस्थानी देशीय)=फिर। उदाहरण—

(१) बिरहिन ऊठै भी पड़ै दरसनि कारनि राम। (कबीर ८-७)

(२) अजहूँ बीज अंकूर है भी ऊगन की आस। (कबीर ८१-६)

दूहा १८४ साँमहे—सं प्रा अप —सम्म; राज साँमळणो सुन॰ सांमळणु। ए पूर्वकालिक प्रत्यय।

उदाहरण—साँमळि अनुराग थयो मनि स्यामा। (वेलि २६)

नागरवाळ—देखो दोहा १५ में नागरवाळ पर टिप्पणी।

दूहा १८५ हूँतौ—प्रा. 'हिंतो' (अपादान विभक्ति का चिह्न)=से।
उदाहरण—

(१) हूँ ऊपरी भिकुटचाइ हूँती, हरि बंधे वेश्याहरण।
(वेलि ६१)

(२) कुंदणपती हूँता कुंदणपुरि, किसन पधार्या लोक कहँति।
(वेलि ७२)

(३) जब हूँत कहिगा पंखि बिदेसी तब हूँत तुम बिन रहै न जीऊ।
(जायसी)

माणसाँ—सं. मानुष प्रा. माणुष।

दूहा १८६ निचत—सं. निश्चित; प्रा. णिच्चित=चिंतारहित।

दूहा १८७ ढूकड़ा—सं. ढौक्; प्रा. ढुक्क। ढुक+ड़ो (स्वार्थक प्रत्यय)=पास।

डेरउ कीध—(राजस्थानी मुहावरा) डेरा लेना, निवासस्थान स्थिर करके रहना।

दूहा १८८ मल्हार—सं. मल्लार। वर्षा ऋतु का राग विशेष। राजस्थान में वर्षा सर्वप्रिय ऋतु होने के कारण ढाढियों ने उसी ऋतु के राग को अपनाया।

निवाज—सं. निष्पाद्य प्रा. णिवज्ज=कलाकार।

झड़ मंडियउ—सं. धर प्रा. झड; हिं. झड़ी। वर्षा की झड़ी लगने के अर्थ में राजस्थानी में 'झड़ मँडणो' मुहाविरा आता है। उदाहरण—

झड़ माचौ मंडियो झड़ (वेलि १११)

गुहिर—सं. गंभीर प्रा. गहिर। उदाहरण—

सघण गाजियो गुहिर सरि। (वेलि १६६)

दूहा १८९ जोवणाँ—सं. योवन प्रा. जोव्वण जोवण।

सेरियाँ—अप. सेरी=संकी पतली तंग गली। उदाहरण—

सेरी सांकरी साँकड़ी चंचल मनवा चोर। (कबीर १८४)

दूहा १९० सुरहउ—सं. सुरभि; प्रा. सुरहि।

लद्रव—(संज्ञा) देश विशेष का नाम। यह लद्रवा लोद्रवा पश्चिमी राजस्थान के भूभाग (जेसलमेर राज्य) का प्राचीन नाम है जिसकी प्राचीन राजधानी पूगल थी।

[illegible]

भींनी—सं॰ भिद्; हिं॰ भीगना, भीजना। उदाहरण—

मैन ठगोरी भरी हरि आजु बजाई है बाँसुरिया रस भीनी।

(रसखान)

ठोवड़ियाँह—सं॰ स्थान; प्रा॰ ठाण; अप॰ ठाव राज॰ ठावड़ ठोड़; हिं॰ ठौर। इयाँ प्रत्यय।

दूहा १५१ निखत—सं॰ निश्चित; प्रा॰ णिच्छित = बहुत अधिक, पूरी, खूब।

ऊचेड़ती—सं॰ उत्+खाद्; प्रा॰ उखाड़ उखाड़ हिं॰ उखाड़ना।

सल्ल—सं॰ शल्य; प्रा॰ सल्ल = काँटा मार्मिक वेदना।

दूहा १५२ वेल्ह—सं॰ वेल्ल् प्रा॰ वेल्लइ=हिलना चलना काँपना। यहाँ बेचैनी से चंचल होना।

दूहा १५३ ई—सं॰ इदम्; प्रा॰ इमम्। उदाहरण—

देखत तोहि वसुदेव देवकी, पहिलौ ई पूछे मदन।

(वेलि १४९)

रतन तळाव—(सं॰ रत्न+तडाग) हृदय भावरूपी रत्नों से भरे हुए सरोवर की तरह है, जो दुःखरूपी तरंगों से आकुल होने पर बाँध को तोड़कर चारों ओर बह निकलता है। संगीत ही में यह शक्ति है कि वह भाव तरंगावली को पुनः व्यवस्थित करके मर्यादाबद्ध कर देता है।

सहदिसि बठि—मिलाओ—

बनिज कुराबनौं पूँजी हदि, पाछू सहदिसि गयौ फूटि।

(कबीर ११४—१८१)

दूहा १५५ मल्हावा—अप॰ मल्ह = मौज मानना लीला करना। प्रेरणार्थक = खिलाना हलराना गाना। उदाहरण—

हलरावै दुलराइ मल्हावै, जोइ सोइ कछु गावै। (सूर)

दूहा १५६ मेल्ह्या—सं॰ मुच्; प्रा॰ मेल्ल = छोड़ना, परित्याग करना, भेजना। उदाहरण—

(१) राम लगे मेल्हिवा रुकमणी समाचार इधि माँहि सही।

(वेलि ५६)

(२) हँसि न बोले उनमनी, चंचल मेल्ह्या मारि।

(कबीर ९—६)

दूहा १५७ अपच्छर—सं॰ अप्सरा; प्रा॰ अच्छरा।

सरिसहार—सं. सदृशाकार; प्रा. सरिसायार = समान, समरूप।

सार—सं. स्मृ, प्रा. सर, हर; हिं. सार = याद, स्मृति, सुधि। उदाहरण—

बन को मधु क्यों करिहै न सम्हार
जो सार करै सचराचर की। (तुलसी)

दूहा १९८ चीतारेह—सं. चित्त चिंता करना, याद करना। उदाहरण—

जुगे चितारे भी जुगे जुगि जुगि चितारै।
(कबीर २५१—५)

दूहा १९९ भचिक—(अनुकरणात्मक शब्द) अचानक, झट, बिना सोचे बूझे।

गालि—सं. गालय = फेंकना, दूर करना।

हळवार—सं. लघु, प्रा. लहु का विपर्यय हलु हरु हिं. हलका, होले। उदाहरण—

(१) होळै होळै झूलगती सो तैं दीनी फूँक (राजस्थानी सुभाषित)
(२) ना सो भारी ना सो हलका ताकी पारिख लखै न कोई।
(कबीर १४४—१९९)

दूहा २०० बार—सं. द्वार, प्रा. दुआर, बार, वार।

दूहा २०१ जळ माहि इ — मिलाओ—

कमोदनी जलहरि बसै चंदा बसै अकासि।
जो जाही का भावता सो ताही कै पासि॥ (कबीर १०—१)

दूहा २०२ जुगइ चितारइ इ —मिलाओ—

जुगे चितारे भी जुगे जुगि जुगि चितारै।
मैंडे बच रहि कुम मन, माया ममता रे॥ (कबीर २५१-५)

थकाँ—(दे.) = होते हुए। उदाहरण—

(१) भीतर भक्ता बाहिर हम भासै
मनि सावली सुहाग सुख। (वेलि २११)
(२) दिवस थकाँ ताईं मिलौ, पीछै पड़िहै रात।
(कबीर ९९—११)

दूहा २०६ आसाढुम्बी—सं. आसाढुम्ब प्रा. आसाढुम्ब। हतोत्साह और निराश प्रेमी के मन को भी प्रिय मिलन की संभावना के प्रलोभन द्वारा लुभाए रखने की शक्ति आशा में होती है।

पंपालेर—(दे.) राजस्थानी में पंपाळ स्वप्न के माया प्रपंच को कहते हैं।

सेकर—सं सेपय; हिं सेंकना=गरम करना, भूनना।
भीजे—सं दीप्य प्रा भीया=बुझे हुए। उदाहरण—
(१) पाणी ही तैं पातला, धूवाँ ही तैं भीण।
(कबीर ३६ १२)
(२) मनवा तो अधर बस्या बहुतक भीणाँ होइ।
(कबीर २६ १४)
दूहा २०८ जे दिन ह—मिलाओ—
जे दिन गए भगति बिन ते दिन सालैं मोहि। (कबीर ७६-११)
दूहा २०६ सीख—सं शिक्षा। राजस्थानी मुहाविरा सीख देणो' बिदा करने के अर्थ में आता है।
सोवन—सं सुवर्ण प्रा सुवण्ण।
नाँखउ—सं नाश्य=फेंकना राज नाखणो'=डालना, फेंकना। उदाहरण—निडढ़ाबरि नाँखिया नग (बेलि २४)
उछाड—(१) सं उद्गी प्रा उड्डाव उड्डाड राज उछाड, उछाळ, उछाळ (उल्पयोरभेदात्)। (२) सं उच्छल; प्रा उच्छाल=उछाया जाना ऊँचा फेंका जाना। उच्चमेर मकृशोऽम्बाड़गुड़ुल्लोग्मेला। (हेमचंद्र ८४ ३६)
दूहा २११ सीचाणउ—सं संचान अप सिंचाण गुज सिंचाणो हिं सचान। उदाहरण—
(१) काल सिचाणाँ नर चिड़ा औझड़ ओच्यंताँ।
(कबीर ७१—२)
(२) बिरह बयानि लपटानि सबै झपट न मीच सिचाम। (बिहारी)
ओबीजइ—सं दोलन हिं डोलना=चलकर पार करना उलाँघना। मिलाओ—मराठी डोही=गहरा।
महिराँण—सं मत्स्यंन प्रा महयराव हिं महराव=समुद्र। मि०—इसडो तो महराण को ऊडि पड़यो मझिमाँर। (कबीर ७७—२)
दूहा २१२ उछाळीयह—देखो दूहा २ ६ में 'उछाळ पर टिप्पणी।
मूँठ—सं मुष्टि प्रा मुट्ठि हिं मुट्ठी मूँठ।
दूहा २१३ वींझ—सं विन्ध्य प्रा विंझ। मिलाओ—
भीत हुम्या बन बीझ म, वला वर मारै। (कबीर २४१-२६१)
दूहा २१४ पसरह—सं प्र+सृ प्रा पसर; हिं पसरना राज पसरवो=फैलना बढ़ना।

दूहा २१६ सळ—(दे.)=सिकुड़न। नाक सळ = नाक सिकोड़ना। मि.—हिंदी मुहावरा—नाक भौंह सिकोड़ना = अप्रसन्न होना।

विणठा—सं. विनष्ट प्रा. विणट्ठ बिगड़ना नाश होना। मिलाओ—
पाछि बिनंठा कप्पड़ा क्या करै बिचारी चोल। (कबीर १—२४)

दूहा २१८—आमणदूमणा—सं. उन्मनाः + दुर्मनाः; प्रा. उम्मण-दुम्मण; राज. आमणदूमणो = उदास खिन्न, उद्विग्न मन। उदाहरण—

कहु मन आमन दूमना मेरो तन छीजत नित जाइ।
(कबीर १६—१२)

रूसणउ—सं. रुषण प्रा. रूसण राज. रूसणो, रूठना। मिलाओ—
'रूसणु अंतरु' (हेमचंद्र ८-४-४ ८)
काँइ रूसणा हठ निग्रह कियाँ। (वेलि १८८)

दूहा २१९ चीरवइ—सं. चीर से किया।

दूहा २२० लगइ—सं. लग्न प्रा. लग्ग अप. लग्गइ राज. लागइ। हिंदी लिप्त—इस दोहे के भाव से मिलाओ—

हंसै बाया बगुल दुग हंसा किनहूँ न जाइ।
ये जैसे गुर अखिरवाँ तिनि हंसा बुधि कुधि जाइ॥
(कबीर १—२१)

दूहा २२१ दिसाउर—सं. देशापर प्रा. देसावर = दूसरा देश। मिलाओ—

पंखी चाले दिसावराँ, बिरखा सुफल फलंत।
(कबीर ७७—७)

दूहा २२२ दीपता—सं. दीप = प्रसिद्ध प्रकाशित शोभित। उदाहरण—
(१) दक्खिण दिसि देस विदरभदि दीपति। (वेलि १)।
(२) द्वार में दिसान में दुनी में देस देसन में।
देख्यो दीप दीपन में दीपत दिगंत है। (पद्माकर)

दूहा २२३—तंती नाद—तंत्री का नाद, संगीत। मिलाओ—
तंत्रीनाद कवित्त रस सरस राग रति रंग। (बिहारी)

दूहा २२४ डकर—डकर शब्द गुजराती में है।

अडब्बड़ै—सं. उल्लंघ; प्रा. उल्लंघ, ओलंघ हि. उलाँघना = अबाध यात्रा करना। 'बीसलदेवरासो' में यह शब्द इस अर्थ में बहुत प्रयुक्त हुआ है।

ऊठसि—सं उत्थ + स्य (क्रिया विभक्ति); हिं उठ; राज ओथ, ओथिये। मिलाओ—अप एत्थु केत्थु। तेत्थु।

दूहा २२९ मुल्तानी—मुलतान की मुलतान पंजाब में प्रसिद्ध स्थान है।

सुरँगा—सं समर्थ प्रा समत्थ हिं सुरँगा=सत्ता, सरूप मुखवाला।

केसार—(१) देशी सेरह—सेलिया, घोड़े की एक उत्तम जाति। उदाहरण—

किरगा कमँदा स्याह सेलिया सुर सुरंगा।
मुश्की पँचकल्याण, कुमेद औ केहरिरंगा॥ (सूदन)

हेरि—(संज्ञा स्त्रीलिंग) प्रा हेरा हिं लोहँडी, हेरी राज हेड=समूह झुंड। चौपायों के समूह जिनको व्यापारी या बनजारे मेले में बिक्री के लिये ले जाते हैं। वि०—ठीक अर्थ अस्पष्ट है।

तुखार—सं तुखार=हिमालय के उत्तर का एक प्राचीन देश जहाँ के घोड़े प्रसिद्ध थे। प्रा तुक्खार=उत्तम जाति का घोड़ा।

दूहा २२७ लखंग—सं पंक्ति; प्रा लट्ठि; हिं लड़ी लख=पंक्ति कतार बड़ी संख्या (घोड़ों की)। वि —ठीक अर्थ अस्पष्ट है।

ताछिया—(दे) हिं छांटना=चुनिंदा चुने हुए, छटे हुए।

बाँकड़—सं वक्र वंक प्रा वंक बाँक=टेढ़ा तिरछा (बल और साहस का द्योतक) मिलाओ—रणबंका राठौड़।

तिखंग—ठीक अर्थ अस्पष्ट है।

दूहा २२८ काछी—कच्छ नामक देश का। कच्छ देश के ऊँट प्रसिद्ध होते हैं।

करह—सं करभ प्रा करभ, करह राज करहो करहलो=ऊँट। उदाहरण—(१) बन ते भाँगि बिहड़े पड़ा करहा अपनी बाँनि।
बेदन करह कासौं कहै को करहा को जाँनि॥ (कबीर)
(२) दादू करहा पलाँणि करि को चेतन चढ़ि जाइ। (दादू)

विलूँबिया—राज वि+लूँबि+इया। सं लुम्ब प्रा लुंब; राज लूँबी लूँब=ऊँट की कूब ऊँट की पीठ पर की कूबी। ऊँट एक कूबीवाले और दो कूबीवाले भी होते हैं। दो कूबीवाले उत्तम समझे गए हैं।

घड़ियउ—सं० घटिका; प्रा० घडिआ; हिं० घड़ी = काल का एक मान जो २४ मिनट के बराबर होता है।

एथि—सं० इतः+स्थ; प्रा० एत्थ, एथियै = यहाँ पर। मिलाओ—'अठथि' दूहा २२४।

विसाहइ—सं० व्यवसाय; हिं० बिसाहना = खरीद करना। पूर्वकालिक रूप। उदाहरण—

मोर क्रुनाइ हर नाम बस उइ पाप बिसाहन जाइ।
(कबीर १५६-२१७)

दूहा २६ परेरउ—सं० पर। परउ प्रत्यय संबंध का अर्थ देता है या स्वार्थिक प्रत्यय।

रंग—सं० पुरानी राजस्थानी में अनुस्वार का निरर्थक आगम। यहाँ गढ़ अथवा राज्य का अर्थ है।

मींमळ—सं० विह्वल; प्रा० भिंभल भिंभल = प्रेमप्रतीक्षा में विह्वल, अथवा देखनेवाले को विह्वल कर देनेवाले (नेत्र) विह्वलता (तरलता) के कारण सुंदर (नेत्र) उदाहरण—

मछलसरी मद मींमळु ई मधु मधि भमि राजु।
संपति विय सुकुमाल सी मालती मीसर आजु॥
(वसंत विलास काव्य—७४)

दूहा २३० मोती हरि—सं० मुक्ताफल; प्रा० मुत्ताहल मोत्ताहल हिं० मुक्ताहल।

दूहा २३१ मरजीवड—सं० मरजीवक प्रा० मरजीवय (देखो—प्राकृत श्री श्रीपालकथा १८५ गाहा); हिं० मरजीवा मरजिया = वह व्यक्ति जो समुद्र के भीतर उतरकर मोती आदि वस्तु निकालने का काम करता है पनडुब्बा। उदाहरण—

(१) मोती उपजे सीप में सीप समुंदर माहिं।
कोई मरजीवा काढ़ेसी, जीवन की गम नाहिं॥ (कबीर)

(२) जस मरजिया समुँद धँसि मारे हाथ आव तब सीप।
(जायसी)

उफट—सं० उद्घाटन प्रा० उप्पाडण हिं० उफनना उफड़ना। पूर्वकालिक रूप प्रकट होकर ऊपर उठकर; ऊपर उछलकर।

दूहा २३२ संकोडी—सं० संकोच; हिं० सिकुड़ना, सकुचना, सकुचाना = संकुचित हुए। उदाहरण—

संकुचित तन खमा चंम्पा उन्मै । (बेलि १९२)

दूहा २२२ साटवि—(दे) प्रा सट्ट हिं सट्टा = विनिमय करके,

(१) सिर साटै हरि सेविए, छाड़ि जीव की बाँधि ।

खरीदकर । अवि पूर्वकालिक प्रत्यय । उदाहरण—

(कबीर ७ ११)

(२) जब रे मिलेगा पारिखू, तब हीरों की साटि ।

(कबीर ७८—७४)

टि —इस शब्द का ठीक अर्थ स्पष्ट है । यह राज शब्द साँबद का दूसरा रूप भी हो सकता है ।

परिघळ—(१) सं परि + घट (?) प्रा परिघट परिघल (?)। धारण करने योग्य वस्तु, अलंकारादि । (२) परघळ = बहुत ।

टि —इसका ठीक अर्थ अस्पष्ट है ।

पटोळा—सं पट्टकूल, प्रा पट्टऊल, पटोल = रेशमी वस्त्र । उदाहरण—

फाड़ि पुटोळा धज करौं कामलड़ी पहिराउँ । (कबीर ११ ४१)

दूहा २५२ दूहविया—सं दुःख प्रा दूहव । उदाहरण—

किम कैयपि दूहविया' । (कुम्मापुत्तचरिय, पृ १२)

टि०—इस दूहे के चतुर्थ चरण का यह अर्थ ठीक जान पड़ता है—'या हमने दुखी किया है ।

दूहा २९६ रासड—दे रासल; राज रासड़ो = झगड़ा । [illegible] [illegible] ।

दूहा २३८ लाँति—मिलाओ राज लाँठ लाँत, लैंति = लगन लाग यानी चैतन्य चतुरता । उदाहरण—

लाँति लागी त्रिभुवनपति सेती ।

घर गिरि पुर सामहा चालंति ॥ (बेलि १८)

दूहा २५० कुमकुमाँ—सं कुंकुम हिं कुमकुम = गुलालभरा । विकारी रूप ।

(१) कुमकुमैं मँजण करि धोत वस्त्र धरि । (बेलि ८१)

(२) जहाँ स्यामघन रास उपायौ

कुमकुम जल सुखवृष्टि रमायौ । (सूर)

बीजळ—सं व्यजन, प्रा विजण विजण, बीजण; हिं बिजन, बीजन = पंखा । उदाहरण—

बिझन झुलाती से वे बिझन झुलाती हैं। (मूरूष)

बीमझा—'बीभत्स' से क्रिया। सामान्य भूत।

दूहा २४२ ऊन्हाळउ—सं उष्ण + काल प्रा उण्ह-काल उण्हाल, राज ऊन्हाळो = ग्रीष्म ऋतु।

ऊतारिवउ—सं अवतरण; प्रा उत्तरण हिं उतारना = उतारना, धौलना। स्वार्थ में प्रेरणार्थक।

दूहा २४३ गउखे—सं गवाक्ष हिं गोखा, गोख = अटारी पर की खिड़की झरोखा। उदाहरण—

'गावै करि मगळ चढ़ि चढ़ि गौखे''। (वेलि ४२)

दूहा २४४ नस—सं निश् = रात्रि।

दूहा २४८ कामणगारियाँ—राज कॉमण (जादू) + गर (कर)= जादूगरनियाँ। देखो इस प्रकार के प्रयोग—मेळगर निरतगर जादगर (वेलि)।

पाँगुरियाँह—राजस्थानी 'पाँगरणो' = पनपना, हरा भरा होना पुनः पल्लवित होना। सामान्य भूत बहुवचन।

दूहा २५१ डूँगरिया—अप डुंगर = पहाड़। उदाहरण—अम्मा लग्गा डुंगरिहिं पहिउ रडंतउ जाइ। (हेम ८४४४५)

झँगोरया—सं झंकार प्रा झिंगार राज झिंगोरणो' = मोर का बोलना।

दूहा २५६ कादिम—सं कर्दम प्रा कद्दम राज कादो।

उदाहरण—करि ईंट नीलमणि कादो कुंकुम। (वेलि १४)

तिलक्कस्यइ—(दे) तिलक्कना = फिसलना राज तिलकणो।

दूहा २५७ झामी—सं दग्ध प्रा दड्ढ; दाझ राज झाळ। इतनी अधिक शीतल कि जिससे जलने का भाव प्रतीत हो। अत्यधिक शीत भी अग्नि की तरह जलाता है अतएव अत्यंत शीतल वायु को झामी (दग्ध करनेवाली) वायु कहा है।

दूहा २६२ समनेहाँ—सं सम + स्नेह। बहुवचन, विकारी रूप। यहाँ संभवतः 'सनेहाँ' पाठ रहा होगा लिखने में 'स' का 'म' हो गया होगा; क्योंकि 'समनेहाँ' का प्रयोग राजस्थानी में प्रायः नहीं पाया जाता। सनेहाँ का अर्थ 'स्नेहियों' है।

बयरी—सं वैरी। अपने पति को वैरी संबोधन इसलिये किया है कि वह उसे विरह के दुःख में छोड़कर जाना चाहता है।

दूहा २६३ मंडव—सं मंडप प्रा मंडव।

दूहा २६५ बहल—सं बहुल। उदाहरण—

बहलो जणी सिंधासणवालो,
पाछे होइ हाथियो पंथ। (पृथ्वीराज)

ठाढा—सं स्तब्ध; प्रा थड्ढ हिं ठंढा; मराठी ठंडा, पंजा राज० ठाढा, ठाढ।

रेस—अप रेस रेसि रेसिं रेसिम्मि = निमित्त लिये, वास्ते।
उदाहरण—

(१) इउं किज्जउं तउ केहिं पिअ
तउँ पुणु अन्नहि रेसि। (हेमचंद्र ८ ४ ४२५)

(२) सुणि आगम नगर जनू उछरंग
स्वागति किधन बाजार रेसि। (वेलि १८१)

दूहा २७१ पय—सं पग प्रा पअ, पय; राज पग, पया।
उदाहरण—

ढोलाँ पग दुरजाचारी मोढाँ लाग मलेच।
ताबे धनमी भोमड़े, जादम करै न वेग॥

(राजस्थानी दूहा)

ओळंभा—सं उपालंभ; प्रा ओलंभ राज ओळंभो हिं उलहना।

दूहा २७२ बाहर ऊबरा इ—भाव मिलाओ—

(१) कबीर बादल प्रेम का, हम परि बरस्या आय।
अंतरि भीगी आतमाँ हरी भई बनराय॥ (कबीर ४ १४)

(२) कबीर गुरु की बादली चौबरवानी छाँहि।
बाहिर रहे ते ऊबरे भीगे मंदिर माँहि॥ (कबीर १४–२१)

बाहर था वह ऊगरइ—अन्वार्थ—"जो बाहर थे वे बच (उबर) गए"। अनुवाद के अर्थ से यह अर्थ अधिक युक्तिसंगत जँचता है।

ऊगरइ—सं उद्+वृ; प्रा उग्गिर उग्गिरइ। राजस्थानी में ऊगरणो, उबरणो = बच रहना निकलना।

दूहा २७३ ढोला ढीहडि इ०—अन्वार्थ—हे ढोला मेरे रोकने पर रुक जा; विधाता का लेख तो मिलेगा ही।

निवारियउ—(१) निवारित=निवारण किया जाता हुआ रोका हुआ। (२) नि=नहीं+वारियउ=रोका हुआ।

दूहा २७६ सुचीत—सं सु+चित्त=शुभ है चित्त जिसका; मनोज्ञ, मनोरम।

दूहा २७७ सीयाळइ ऊन्हाळइ वरसाळइ—सं शीत+काल, उष्ण+काल, वर्षा+काल।

चीकणी—सं चिक्कण=स्निग्ध कोमल, फिसलनेवाली।

दूहा २७८ ताव—देखो दूहा १२५।

दूहा २७९ पाळउ—सं प्रालेय प्रा पालेय; हिं पाला=तुषार हिम का गिरना।

खापर—(दे) पशुओं को ओढ़ाने का मोटा कपड़ा। राज खप्पड़, खापड़। अँगरेजी—टारपॉलीन। हिं तिरपाल, तिरपाल।

झुरइ—क्षय=क्षीण होती है व्याकुल होती है। उदाहरण—

दुखिया मूवा दुख कों सुखिया सुख कौं झूरि।
(कबीर ५४—८)

दूहा २८० गोरडी—सं गौरी। गोरी शब्द राजस्थानी में स्त्री, पत्नी, नायिका प्रेयसी आदि के अर्थ में आता है।

दूहा २८१ नीपजइ—सं निष्पद्यते प्रा णिप्पज्जइ हिं निपजना। उदाहरण—

सहज सुभाय नीपजै ज्यों खेतन में बीज। (कबीर)

दूहा २८२ तिण्ही—सं तृण।

त्रिहक—तड़क् से अनुकरणात्मक क्रिया। राज तिड़कणो; हिं तड़कना=टूटकर चटक जाना।

झालइ—सं क्षेप प्रा झेल; हिं झेलना राज झालणो=सहन करना धारण करना। उदाहरण—

कबीर केवल राम कहि, सुध गरीबी झालि। (कबीर २१—५२)

गाम—सं गर्भ प्रा गब्भ=गर्भाधान।

ग्राम—सं ग्राम; प्रा गम्म=आरम्भ, आक्रमण।

दूहा २८४ नीसरइ—सं निः+सृ प्रा निस्सर; हिं निसरना। उदाहरण—

कहो कौन सिवै कहो कौन गावै, ज्यों वै पानी निसरै। (कबीर)

दूहा २८६ उप्पर—देखो दूहा १२६ ।

उचरठ—सं० अप+वृ हिं० उचर आना=अचानक आ जाना ।

ज्यौं—अवश्य निश्चय करके । मिलाओ—

"दुए हरख हथलेवौ हुओ, वेस संसार हुवइ वहि ।" (वेलि १५२)

सीह—सं० शीत प्रा० सीअ=सरदी, जाड़ा । उदाहरण—

(१) जहाँ भानु तहँ रहा न सीऊ । (जायसी)

(२) प्रतिहार प्रताप करे सी पाळे । (वेलि २२५)

चंगा—सं० चंग पंजाबी चंगा मराठी चाँगला; हिं० चंगा=स्वस्थ, नीरोग, सुंदर । मिलाओ—मन चंगा तो कठौती में गंगा ।

दूहा २८७ काइरियाँह—देखो दूहा १४० में कायर पर टिप्पणी ।

ओले—सं० क्रोड; हिं० ओल=ओट, शरण । उदाहरण—

(१) सूरदास ताको डर काको हरि गिरिधर के ओलै । (सूर)

(२) ढूँढत ढूँढत जग फिरया तिण के ओल्है राँम । (कबीर)

काइरियाँह—सं० कातर; प्रा० काअर=डरपोक अधीर । देखो हेमचंद्र ८—१—२१४ ।

दूहा २८८ पल्लाणियाँ—सं० पर्याण; पल्लाणिय=जीन किए हुए, सवार, प्रयाण को जाते हुए ।

दरक्क—सं० दर हिं० दरकना=विदीर्ण होना फटना (हृदय का)

आक—सं० अर्क; प्रा० अक्क हिं० आक=मदार का वृक्ष ।

दूहा २९० दोहागिण—सं० दुः+भागिनी; प्रा० दुहागिणि=वह स्त्री जिस पर पति का प्रेम न रह गया हो ।

दूहा २९१ रीठ—सं० अरिष्ट; प्रा० रिट्ठ=विनाशकारी (शत्रु) स्त्री (सर्पी)। राजस्थानी में रठ असहनीय शीत को कहते हैं ।

दूहा २९२ दरंद—सं० दरंद=समुद्र । पाले का समुद्र अर्थात् जाड़े का शीत ।

दूहा २९४ दंद—(सं० द्वंद्व ?) जोर शोर का ।

वाइसर—सं० वैश्वानर=अग्नि । उदाहरण—

जिहि बैसंदर जग जल्या सो मेरे उदिक समान ।

(कबीर ११—४)

मेंद—सं० मद; प्रा० मद, हिं० मद । अनुस्वार का आगम ।

दूहा २९५ ऊकटिया—सं. अव+कांड हि. उकठना=सूख जाना। उदाहरण—जिमि न नवै पुनि उकठि कुकाठू। (तुलसी)

सरीह—सं. शिरीष; प्रा. सरीस। शिरीष का वृक्ष राजस्थान में बहुतायत से पाया जाता है।

बेसाँ—सं. द्वि; प्रा. बे बि; षष्ठी प्रत्यय=दो युग्म, दंपति।

दूहा २९६ ऊपड़िया—सं. उत्पत्; प्रा. उप्पड हि. उपड़ना। उदाहरण—

ऊपड़ी मुड़ी रवि लागी भंवरि। (बेलि १९१)

कोट—राजस्थानी मुहाविरा कोट-रा-कोट=अनंत राशि।

पोमणी—सं. पद्मिनी; प्रा. पोमिणी। उदाहरण—

(१) घर पोइणियाँ यह सुणी (बेलि २९)

(२) पोमणा फूल प्रतापसी। (पृथ्वीराज)

घोड़—सं. घोटक। लक्षणा से घोड़े के समान स्फूर्तिमान् युवा पुरुष।

दूहा २९७ ऊकटियउ—सं. उत्+कृष प्रा. उक्कड्ड हि. कढ़ना=बाहर निकल पड़ना।

केकाँण—(दे.) घोड़ा। संभवतः कैकय शब्द से बना है जहाँ के घोड़े प्रसिद्ध होते थे। उदाहरण—

केकाणाँ पाइ मुगट किया। (बेलि १२७)

कमेड़ि—हि. कुमरी। पंडुक की जाति की एक चिड़िया जो सफेद कबूतर और पंडुक से उत्पन्न होता है। राजस्थान में इसे कमेड़ी कहते हैं। इसकी बोली में क्याल तू केदाण तू ऐसी आवाज निकलती जान पड़ती है।

दूहा २९९ साम—सं. सम्मुख; प्रा. सम्मु; हि. सामना।

दूहा ३०० ऊछरइ—सं. उत्+शल; प्रा. उच्छल। उदाहरण—

रोष मनोज को होवे भरा,

कबहूँ न करीन की भानन पाती। (पद्माकर)

दंग—(१) फा. देहात नगर जो पत्तन से बड़ा और कस्बे से छोटा हो। (२) दुर्ग।

दूहा ३०१—हंसिलाप—सं. हंसिन्+हंसिनी का आरव। आधुनिक राजस्थानी में हसलाव का हिलडाव शब्द का रूप है।

दूहा १०३ सव—सं शव । प्रा सो; सो, सव ।

रत—सं ऋतु । अन्य रूप—रिति, रति रत, रित, रत । आधुनिक राजस्थानी में रुत् प्रयुक्त होता है ।

मोंवळी—सं अमल, स्त्रीलिंग । निर्मल ।

टि —इस दूहे के प्रथम चरण का अर्थ अस्पष्ट है ।

दूहा १०४ रल्लायाइत—अप रल्ल + आयत (भाववाचक संज्ञा बनाने का प्रत्यय) ।

झणक्कंत अवसद—अनु शब्द ।

मूंझइ—अ मध दि मूमना ।

पागड़इ—दे रिकाब, ऊँट या घोड़े की काठी का पायदान जिस पर पैर रखकर सवार होते हैं ।

दूहा १०६ रहवारी—दे जातिविशेष जो ऊँटों को चराने और रखने का काम करती है ।

दूहा १०७ कग—सं काकं प्रा कग्ग = कागा । मिलाओ—

मैं जाण्यो चोळो मुओ ल्याली हूवगो बग्ग ।

जाये उडहि न जाणइ औरू बांवरा कग्ग ॥ (कबीरदास)

दूहा० १०८ दाम आवइ—पसंद आना । राजस्थानी मुहाविरा जो बोल चाल में अब भी आता है ।

दूहा १०९ दोवड़-चोवड़ा—मिलाओ; हिं दोहरा चौहरा = दुगुने चौगुने, भारी शरीरवाले ।

नागरवेलियाँ—सं नागवल्ली पान की बेल ।

दूहा १११ मोंगळोर—संभवतः किसी स्थान का नाम है । इसका पता नहीं चलता । जोधपुर राज्य में मोंगळोर नाम का एक गाँव है पर वह मोंगळोर से सर्वथा भिन्न है ।

दूहा ११२ पल्हँ—अप पल्ल = डालना ।

बाहूँ—सं बंध हिं बाँधना ।

लग—सं रश्मि प्रा लच्छु लग=नकेल लगाम ।

मलोरउ—भला + एरउ (स्वार्थिक प्रत्यय) ।

दूहा ११७ अग्गर—सं आगर=रहने का सुंदर आवास ।

आसंगो— सं आ + संग से क्रिया प्रयोग=संग करना । संज्ञा आसंग सामर्थ्य के अर्थ में राजस्थानी में बोलचाल में आता है; जैसे—म्हारी आसंग कोय नी ।

दूहा २१६ धूमणी—सं दुर्मना प्रा दुम्मण।
बरग—सं वर्ग=पाता। देखो—दूहा १०७ में बग्ग।

दूहा २१७ कन्हइ—हिं कने=पास, नजदीक।
(१) मीत तुम्हारा तुम्ह कने तुमही लेहु पिछानि। (दादू)
(२) अब आके बुढ़ापे ने किया हाय! ये कुछ असर।
अब जिसके कने जाते हैं लगते हैं उसे जहर॥

(नजीर)

लोहड़—अप (देशी नाममाला २-८)।

दूहा २१८ डाँभियउँ—सं दह्; प्रा डंभ राज डाँभणो हिं दागना। कर्मवाच्य संभाव्य भविष्य उत्तम पुरुष, एकवचन। पहिचान के लिये अथवा रोगनिवारण के लिये पशु को दागा जाता है।

रळि—प्रा रल हिं रलना=मिलना। उदाहरण—
कबीर, गुर गरवा मिल्या, रळि गया आटै लूँण।

(कबीर २-१४)

दूहा २२० चोपड़िस्यूँ—अप चोप्पड=स्निग्ध चिकना करना।
चंपेल—सं चंपा+तैल=चमेली अथवा चंपा का तेल।

दूहा २२१ दड़वड़—दे अनु शब्द; प्रा दडवड फवडा, हिं दड़बड़ी=त्वरा जल्दी व्याकुलता। (देखो हेमचंद्र २-१८४)

दूहा २२२ रूअड़उ—सं रूप=प्रशस्त अच्छा भला।
वेण्याँ—सं वेण्। वेण्यो का विकारी रूप बहुवचन कारक प्रत्यय युक्त। पारस्परिक प्रेम से मिलकर भ्राता के मनकों की तरह ऐक्यसूत्र में आबद्ध अर्थात् प्रेमसंयुक्त।

बप्पड़ा—अप बप्पुडा हिं बापुरा, गुज बापडुं। उदाहरण—
प्रिय एम्वहिं करे सेल्लु करि छड्डुहि तुहुँ करवालु।
जं कावालिय बप्पुडा लेहिं अभग्गु कवालु॥

(हेमचंद्र ८-४-३८७)

दूहा २२३ कळपै—सं कल्प्=दुःख की कल्पना करना बिलखना, विषाद करना। उदाहरण—
(१) सुख करी सुरत रूपाभिधि मंगल।
काँइ रे मन कळपसि हरपख। (वेलि १८६)

(१) नेकु विहारे निहारे बिना कहाँपे बिन क्यों पल भीरब होलो।
(पद्माकर)

लोपों—सं लुप्=लुप्त करना=न मानना। संभाव्य भविष्य, उत्तम पुरुष, बहुवचन। उदाहरण—

कलि सकोप लोपी सुचालि निज कठिन कुचालि चलाइ।
(तुलसी)

दूहा ३२४ सारउ—सं स (?); हिं सरना (?) राज सारो=वश। बोलचाल का शब्द है।

दूहा ३२६ मतअवल्दूँ—राजस्थानी में पुकारने के अर्थ में 'मतअवणो' आता है।

दूहा ३२८ माँडि पलाँण—'पलाँण माँडणो'=ऊँट पर जीन कसना।

दूहा ३३० कूड़ा—सं कूट; प्रा कूड=असत्य, मिथ्या, झूठा दुष्ट। उदाहरण—

कामण मरण विचारि करि कूड़े काम निवारि। (कबीर)

दूहा ३३१ तेडावियड—राज दे तेड़णो=निमंत्रित करना, बुलाना। प्रेरणार्थक रूप। उदाहरण—

देवग तेड़ि वसुदेव देवकी परिणोई पूछे मदन। (वेलि १४६)

दूहा ३३२ रालउ कयड़उ काँमस्यउ—अन्वयार्थ—अरे अनजान मूर्खों। पासे हुए (रक्षित) ऊँट को (क्या) दाग लगाओगे?

सँभारण—सं संधान; प्रा संधाय=दवादारू से ठीक करना स्वस्थ करने का उपचार।

दूहा ३३४ देशावर—सं देश + प्राउ (प्रत्ययार्थक प्रत्यय।

दूहा ३३६ ऊकरड़ी—अप उकरड=घूरा, गंदगी इकट्ठा करने की जगह।

डोका—राजस्थानी शब्द—धान्य के पौदे के सूखे डंठल जो पशुओं के चारे की तरह काम मे आते हैं।

अपस—सं अपशु=कुत्सित पशु गदहा।

दूहा ३३७ छेद—अप =प्रांत अंत, किनारा। (देखो—देशी नाम माला १-३८)।

मेळा—सं मेल् = मिश्रित करना इकट्ठे। उदाहरण—
भावी सूचक यिवा कि मेळा सिंघरासि मइगया सफल।
(वेलि ६६)

दूहा ३३६ कोटाँ—सं क्षुद्र; प्रा खुडु। बहुवचन विकारी रूप।
दाखवइ—सं दक्ष् प्रा दक्ख। प्रेरणार्थक।

दूहा ३४० सिखावउ—सं (प्रेरणार्थक); हिं सिखाना = सिद्धि के लिये प्रमाण करना। उदाहरण—
सायक है भृगुनाथ तो धनु सायक सौंपि सुभाव सिखावे।
(तुलसी)

दूहा ३४१ कसबी—(दे) ऊँट पर जीन कसने के लिये पट्टा अथवा मोटा फीता। कसबी बहादुर अथवा शिक्षित के अर्थ में भी आता है।
सोवनवानी—सं सुवर्ण+वर्ण = सुनहले सुवर्ण वर्णवाले। 'वानी' के प्रयोग के लिये देखो—
पावस बानी राम धन उनमा बरसे अमृतधारा।
(कबीर ११० १६१)

परिवाणा—सं प्रमाण प्रा परवाण = वास्ते, लिये। उदाहरण—
कहिबे को सोभा नहीं देखा ही परवांम। (कबीर २५२-४८)

दूहा ३४२ झेक्यउ—(शब्द) ऊँट के बैठने को राजस्थानी में 'झेकणो' कहते हैं। ऊँट को बैठाते समय 'झे झे' शब्द किया जाता है उसी के अनुकरण पर यह शब्द बना है।

रहूकड़ा—(दे अनु शब्द) ऊँट के बरगलाने का शब्द। कोयल के बोलने को भी 'रहूकड़ा' कहते हैं। साधारणतः सुंदर और कर्णप्रिय शब्द के लिये प्रयुक्त होता है।

दूहा ३४६ कसणा—(संज्ञा) सं कर्षण; प्रा कस्सण; हिं कसना = बाँधने की रस्सियाँ या फीते।
करंकउ—(अनु शब्द) पशु के बोलने का शब्द।

दूहा ३४८ दाँवणि (१)—(फा दामन) पहिनने के वस्त्र का निचला भाग या छोर; अथवा (२) (सं दाम = रज्जु, बंधन)—लाक्षणिक अर्थ में नियंत्रण। दूहे की पहली पंक्ति का दूसरा अर्थ यों भी हो सकता है—हे सखी दोहो दोहो (अब मेरा प्रियतम चल ही पड़ा) तो अब कौन सा बंधन (मर्यादा बंधन) रह गया क्या लाभ है।

ढो मा दू १८ (११०—११)

दूहा ३५१ निसाँण—हिं निशान = नगाड़ा चौंसा । उदाहरण—
(१) बीच सहस घुमरहिं निसाना । (जायसी)
(२) घुरै नीसाण घोर घण घोर (वेलि ४)

संधाण—सं संधि, संधान = शरीर की संधियाँ । दोहा ३१२ में लाक्षणिक अर्थ में, भिन्न आशय में, यह शब्द प्रयुक्त हुआ ।

दूहा ३५० दमाम—फा दमामा (?) = ढोल नगाड़ा चौंसा ।

दूहा ३५१ पद्दरउ—सं पद्र प्रा पद्दर ।

अँवळउ—सं अपर; प्रा अवर (?) राज अँवळो = (१) उलटा, चक्करदार (२) मदस्त्य (रास्ता का उलटा) । राज अँवळा-सँवळा= हिं उलटा सुलटा ।

दूहा ३५२ पालँखी—सं पर्यंक = पालकी ।

विसहर—सं विषधर ।

दूहा ३५४ पाड़ा—सं पाटक, प्रा पाडय = मुहल्ला ।

दूहा ३५५ ऊभी—सं उद्+भू=खड़ा होना । उदाहरण—
बिरहिन ऊभी पंथ सिर पंथी पूछे धाय ।
एक शब्द कहु पीव का, कबर मिलेंगे आय ॥ (कबीर)

कड़—सं कटि प्रा कडि ।

दूहा ३५८ आवास—सं आवास = निवासस्थान ।

मावइ—सं मा; हिं समाना=समाना ।

दूहा ३६० टपूकइ—अनु शब्द = टप् टप् अथवा टप् टप् शब्द करके गिरना ।

दूहा ३६१ पहराविया—सं परि+धा; प्रा पहराव = तैयारी से बनाया ।

पूठि—सं पृष्ठ; प्रा पिट्ठ हिं पीठ, पूठ । उदाहरण—
पश्चिम दिसि पूठ पूरव मुख परठिय । (वेलि १५४)

बापू—सं बापु प्रा बाप ।

दूहा ३६२ ऊर्यो ही—हिं वहाँ ही ।

बहोड़िया—सं प्रपूर्ण प्रा पहोल = लौटाना । सं भू बहु । मिलाओ हिं बहुरि । उदाहरण—
कबीर बहु तन जात है सकै तो ठौर बहोड़ि । (कबीर)

दूहा ३६३ लहँदी—सं लावण्य हिं लोनी ।

दूहा १६२ मोकळा—(दे०) = बड़ा घना, बहुत। उदाहरण—
मुकति हमारा मोकळा सहजै आवौ जाउ। (कबीर २५०—१७)
दूहा १६६ पीयड़ियाँ—सं० पोता=गति; पद; पदचिह्न।

दूहा १६७ कुबधि—सं० कुबोधि हिं० कोरा = धन कर्मों से युक्त ग्रंथिल मार्ग। यहाँ कोरे से लाक्षणिक अर्थ में अंधकार से आशय है।

दूहा १६८ बीज—सं० विद्युत्; प्रा० विज्जु।
दूहा १६९ राता—सं० रक्त प्रा० रत्त = लाल। उदाहरण—
भृकुटी कुटिल नैन रिस राते। (तुलसी)
दूहा १७० बाहिरी—सं० बहिर्=बिना विहीन। उदाहरण—
जेहि घर कंता ते सुखी तेहि गारू तेहि गर्व।
कंत पियारे बाहरे हम सुख भूला सर्व॥ (कबीर)
दूहे के भाव से मिलाओ—
साँई मैं तुझ बाहरा कौड़ी हूँ नहि पावें।
जो सिर ऊपर तुम धनी महँगे मोल बिकावें॥ (कबीर)
दूहा १७१ लहक—हिं० लहकना = लहलहाना, प्रफुल्लित होना। उदाहरण—

लहर भरे लहकहिं अति भारे। (जायसी)
दूहा १७२ रूक्ख लागी वेलड़ी इ —मिलाओ—
सूकण लागा केवड़ा तूटी अरहर माल।
पाणी की कम जाणतौं, गया ज सींचणहार॥
(कबीर ७४—१५)

दूहा १७३ मोवड़ी—अप० = बड़ी (देशीनाममाला ६—११६)।
आ—यह (स्त्रीलिंग)।
ठाँव—सं० स्थान; प्रा० ठाण = घोड़े आदि के चरने का स्थान।
आहीठाँव—(१) सं० अभिस्थान प्रा० अहिठाण; राज० आहीठाँण। (२) सं० अभिज्ञान; प्रा० अहिण्णाण राज० अहिनाण = चिह्न।

दूहा १७४ विलंबी—(१) सं० विलंब्; हिं० विलमना अथवा (२) सं० अवलंब्। पूर्वकालिक क्रिया या भूत कृदंत स्त्रीलिंग का रूप। उदाहरण—
(१) जीव विलंब्या जीव सौं अलख न लखिया जाय। (कबीर)
(२) कबीर जहाँ बिलंबिया, करे अलख की सेव। (कबीर)

दूहा १७७ छाह—सं छादि; प्रा छाइ; हिं छाह = वह धन जो किसी वस्तु निर्माण के लिये निर्माता को पेशगी दिया जाता है। यहाँ पर 'छाह दे' का अर्थ है—प्रचार कर, प्रकट। छाह दे दे रोवणो—यह मुहावरा धाड़ मारकर रोने के अर्थ में आता है।

प्रवाळी—सं प्रवाल = मूँगिया लाल रंग का एक पत्थर अथवा रत्न। उदाहरण—लूंबी पनाँ प्रवाळी लंम। (वेलि १६)

चूँन—सं चूर्ण।

सोरठा १७८ रणोहि—सं रणरणाय् प्रा रणरणक् = दुस्सम निश्वास व्याकुलता।

सोरठा १७९ रडी—सं रट; प्रा रड्, गुज रडवुँ।

पढेहि—प्रा पढ = पढ़कर; बढ़कर।

सोरठा १८० गळती—सं गल्; प्रा गळ; हिं गलती हुई = क्षीण होती हुई समाप्त होती हुई। उदाहरण—

गत प्रभा थियौ ससि रयणि गळंती (वेलि १८२)

परगळती—सं प्रकट् वर्तमान कृदंत स्त्रीलिंग = प्रकाशित होती हुई रात बीतने के बाद होनेवाले प्रकाश के समय। उदाहरण—

दीपक परगळतो न दीपै। (वेलि १८२)

लडहडिया—अनु शब्द 'लड् लड्'; प्रा लड लड = झगड़ा करना, लटकना।

खुरसाँण—फा खुरासान। यहाँ तलवार से मतलब है। खुरासान की तलवार तथा घोड़े प्रसिद्ध थे। खुरासानी शब्द तलवार, घोड़ा और शस्त्र चाकू के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है।

दूहा १८१ सिंघी—सं शृंगी प्रा सिंगी सिंगिया हिं सींगिया = एक बहुत जहरीली धातु, जिसके खाते ही मौत हो जाती है।

दूहा १८२ समर—सं स्मर प्रा समर।

सहिनांण—सं संज्ञान प्रा सण्णाण। देखो—दूहा ४७६।

दूहा १८४ आपडाँ—सं आ + पत्; प्रा आपड = पहुँचना।

वाळरे—सं वल्; प्रा वळ = चलना लौटना स्वार्थिक र प्रत्यय।

सद—सं शब्द प्रा सद।

दूहा १८५ घाटा—सं घट्ट = पहाड़ी रास्ता घाटी।

दूहा १८६ धाहड़ी—प्रप धाह = चिल्लाना, रोकर पुकारना हिं धाह मा धाह मारना। उदाहरण—

रैणा दूर बिछोहिया रहु रे संप म झूरि।
देवलि देवलि धाहड़ी, देसी ऊगे सूरि॥ (कबीर)

उरळउ—सं उदार प्रा उराळ, उरल राज उरलो (?) = विशाल, विस्तीर्ण विभक्त शांत। राजस्थानी बोलचाल में बहुत प्रयोग होता है।

दूहा १८७ मेहाँ—सं मेघ; प्रा मेह = बादल।

प्रगाडउ—सं प्रकट प्रा पगड = प्रकाश सूर्य का प्रकाश। मिलाओ—

कबीर पगड़ा दूरि है जिनके बिचि है रात।
का जाणों का होइगा उगवंते परभात॥ (कबीर)

दूहा १८८ सवइर—सं शब्द; प्रा सद। ड़ो स्वार्थिक प्रत्यय, विकारी रूप।

थळ—सं स्थल प्रा थल; राज थळ। विशेष अर्थ में रेतीली या कंकरीली ऊँची भूमि के लिये आता है। राजस्थान के रेगिस्तान को इसी लिये 'थळी' कहते हैं।

दाधी—सं दग्ध प्रा दड्ढ; राज दाधउ।

दूहा १८९ चुणइ—सं चि प्रा चिण हिं चुनना चुगना = इकट्ठा करना एकत्र करना (देखो—हेमचंद्र ८-४-२४१)।

दूहा १९० मथ्थइ—सं मस्तक; प्रा मथ्थअ हिं माथे = ऊपर। राजस्थानी में माथे' अधिकरण विभक्ति चिह्न की तरह 'पर या ऊपर के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

लहूबी—(दे) लहलहाना हरीभरी हो जाना।

बूरि—सं बूर; प्रा बूर=एक घास विशेष जो राजस्थान में बहुत होती है।

दूहा १९१ बाळ—दे—राजस्थान का वृक्ष विशेष।

अग्गाळि—सं अग्रतः प्रा अग्गाल।

दूहा १९३ मँझिसय—प्रा मिज्जन; राज झूलना = स्नान करना। 'मिज्जइ' का प्रयोग देखो—कुमारपाल चरित में।

दूहा १९४ सोळ सिंगार—साहित्य में प्रसिद्ध सोलह प्रकार के शृंगार।

मुळकावउ—प्रप मुर=खिलना; स्वार्थ में क प्रत्यय। नेत्रों द्वारा हँसी प्रकट करना, मुळकाना। उदाहरण—

आगे थे हरि मुलकिया आवत देख्या दास। (कबीर)

सव्वर—सं सरवर प्रा सव्वर = सरोवर। उदाहरण—

सव्वर मध्ये ताहि नहिं मावै

के भरि काम के ठरे पिवावै। (कबीर)

दूहा ४९६ नवसर हार—सं नव+सृक्=नौलड़ा।

दूहा ४९७ सुवा—सं शुक; प्रा सुअ+डो प्रत्यय। अन्य रूप—सुओ सुवडो, सुअडो सूओ, सूवटो।

पड़गल—सं प्रतिग्रहण प्रा पडिग्गहण = प्रतिगृहीत कार्य का संपादन करना अपनाया कार्य करना।

वाहि—सं वद् प्रा वल। प्रश्नार्थक। उदाहरण—

वाली तरह भगतोक चाहिए। (वेलि २ ६)

दूहा ४९८ वार—सं वार प्रा वार = अवसर, वेला।

दूहा ४९९ परिठ्यउ—सं परि+स्थापय् प्रा परिठव। सामान्य भूत एकवचन। उदाहरण—

परठित ऊपरि आवपन। (वेलि १५४)

मोर्यो—देखो दूहा १०५ में मोरयो पर टिप्पणी।

दूहा ५०० चंदेरी—सं चेदि एक प्राचीन नगर जो वर्तमान ग्वालियर राज्य के नरवाड़ा प्रांत में है। आजकल की बस्ती से ४-५ कोस की दूरी पर पुरानी राजधानी के भग्नावशेष मिलते हैं। पहले यह नगर भारत में प्रख्यात था और समृद्ध दशा में था। रामायण महाभारत और बौद्ध ग्रंथों में इसका उल्लेख मिलता है। महाभारत काल में चंदेरी का प्रसिद्ध राजा शिशुपाल था। प्राचीन समय में इसके आसपास का प्रदेश चेदि कलचुरि और हैहय-वंश के अधिकार में था और चेदि देश के नाम से प्रख्यात था। चंदेल क्षत्रियों के राजा यशोवर्मा ने कलचुरियों के हाथ से कालिंजर का प्रसिद्ध किला छीनकर इस प्रदेश पर सं ९८२ से सं १ ११ तक राज्य किया। अल बरूनी ने चंदेरी का उल्लेख किया है। ई सन् १२५१ में गयासुद्दीन बलबन ने चंदेरी पर अधिकार किया। सन् १४३८ में यह नगर मालवा के बादशाह महमूद खिलजी के हाथ में चला गया। सन् १५२ में चित्तौर के महाराणा साँगा ने इसे जीतकर मेदिनीराय को सौंप दिया। उससे बाबर ने जीता। सन् १५२८ के बाद यह नगर मुगलों के अधिकार में रहा। अंत में सन् १८११ में ग्वालियर राज्य में सम्मिलित हुआ।

बूँदी—राजस्थान का प्रसिद्ध राज्य। बूँदी में पहले मीणों का राज्य था। सं ११६८ के आसपास हाडा देवीसिंह ने मीणों से बूँदी को छीनकर उसे अपनी राजधानी बनाया। उक्त संवत् से बहुत पूर्व बूँदी का आबाद होना संभव है परंतु इसके बसने का निश्चित संवत् ज्ञात नहीं हुआ (ओझा)।

पुहत्तउ—सं प्र+भू; प्रा पहुच। स का रूपान्तर। सामान्य भूत, पुंल्लिंग। आइ पुहती तीर—मिलाओ—

पांची माँहिला माँछली एकै दो पाकडि तीर।
वही कमू की कास की, आइ पहुता कीर॥
(कबीर ७४-१२)

छुहा ५०४ वीटवउ—स मी प्रा वीट। वर्तमान कृदंत पुंल्लिंग।

अपूटा—सं आ+पृष्ठ प्रा आपुट्ठ आपिट्ठ; राज अपूठा=वापिस; पीछा; पीठ की ओर।

छुहा ५०६ गाई—देखो—छुहा १७७।

छुहा ५०७ पूतउ—स पूर्यते प्रा पूरइ = पूरी हो, सफल हो।

छुहा ५०८ मझी—अपादान का प्रत्यय प्रा मज्झ।

छुहा ५१० कड्ढवा—धातु शब्द = पशु को डंडी से मारने अथवा हाँकने का धन् धन् शब्द।

गय—सं गति; प्रा गय = गति चाल।

संवाहर—सं संव (प्रेरणार्थक) = संवा करना।

छुहा ५११ नीमाणी—सं निम्न प्रा णियय=नीचा होकर रहना लाक्षणिक अर्थ में चुप रहना।

छुहा ५१२ पाखर—सं प्रक्खर; प्रा पक्खर = घोड़े का कवच यहाँ पर साधारण अर्थ में कवच के लिये उपयुक्त है।

छुहा ५१३ पति—सं प्रत्यय या प्रतिष्ठा; हिं पत पति = मर्यादा प्रतिष्ठा रखना रखना। उदाहरण—

अब पति राखि लेहु भगवान। (सूर)

छुहा ५१४ बाँवळि—सं बब्बूर; प्रा बब्बूल हिं बबूल; राज बाँवळ = काँटेदार वृक्ष विशेष।

बादल—राज बादळाँ = बरसना सेवन करना।

छुहा ५१५ साँवळि—सं श्यामला; प्रा साँवळी = श्याम रंग की बदली।

सुग्रीवसेन नै मेघपुहप समवेग बळाहक इसे बहंति ।
मंडि लागो त्रिभुवनपति लेडे धर गिरि पुर खमा बामंति ॥ ९८ ॥
आयो अब लेडि करि सेन अंतरै प्रथिमी गति आकास-पथ ।
त्रिभुवन-नाथ-तणो वेळा तिणि रव संभळी कि दीठ रथ ॥१११॥

(कृष्ण-रुक्मिणीरी वेलि)

दूहा ४२४ उमाहियउ—सं उन्मद् या उन्माथ या सं उन्मथ्; या उन्माद। उमहणो का प्रेरणार्थक। (आनंद द्वारा) उमंगित किया हुआ।

बह—सं वर्म या वह।

पुहरि—राजस्थानी में कभी ह जोड़ दिया जाता है, कभी लुप्त हो जाता है और कभी अदल-बदल हो जाता है; जैसे—पुह (पथ) पुहचार (पहुचार) पुहर (पहर)। अन्य रूप—पहर पहुर, पहोर, पोहर, पोर।

आबगढ—आबागढ़ नामक राजस्थान का प्रसिद्ध पहाड़ जिसे अँगरेजी वर्तनी की कृपा से लोग अरबलो कहने लगे हैं। अन्य रूप—आबागढ़ आबावळ।

पइ—पायी।

दूहा ४२५ तिसाइयउ—सं तृषायित।

पाइयउ—पीवणो का प्रेरणार्थक अन्य रूप—पियावणो हि पिलाना।

दूहा ४२६ लंघ—लंघणो का पूर्वकालिक लाँघकर। लंघ का मतलब तृप्त होकर, पेट भरकर भी होता है। यही अर्थ यहाँ उपयुक्त जान पड़ता है।

भास—भास का पुंल्लिंग। आधुनिक रूप = तासो। संभव है यह तृप्त शब्द से बना हो क्योंकि तासे का मतलब बराबर प्यास होता है।

ढुकिस—ढुकणो का सामान्य भविष्य। ढुकणो का अर्थ पास जाना होता है। जानवरों के पानी पीने के लिये पानी के पास जाने को भी ढुकणो कहते हैं। पूरा आना बराबर बैठना फिट होना इन अर्थों में भी यह क्रिया आती है। ढुकवा (= ढुके हुए) शब्द पास के अर्थ में ऊपर दूहा नं १८० में आया है।

केमि—अप केम्बु। जेसलमेर एवं पश्चिमी बीकानेर की देहाती बोलियों में केम केमिये शब्द प्रयुक्त होते हैं। मिलाओ—किम्बुँ किम्वें (पंजाबी) प्रयोग—

जइ सो घडदि प्रयावदी केत्थु वि लेप्पिणु सिक्खु।
जेत्थु वि तेत्थु वि एत्थु जगि भण तो तहे सारिक्खु ॥
(हेमचंद्र ८४४४)

दूहा ४२७ विरंगउ—बिना रंग का नीरस सूखा।

ढोलया—ढोलयो का संबोधन। 'मयो' का की भाँति स्नेहवाचक प्रत्यय है।

गम्मया—मिलाओ गुज गमवुँ = अच्छा लगना, भाना।

पाम्या—सं प्राप्; प्रा पाम; गुज पामवुँ राज पावा; हिं पामना।

दूहा ४२८ नीरूँ—नीरणो का संभाव्य भविष्य, उत्तम पुरुष एकवचन। नीरणो देशी प्राकृत का शब्द है। इसका अर्थ होता है चारे आदि को पशु के आगे उसके खाने के लिये डालना।

फोग—एक प्रकार का क्षुप पौधा जो राजस्थान में बहुत होता है। इसमें छोटे छोटे दाने लगते हैं जिन्हें फोगला कहते हैं और जिनका रायता बनाया जाता है। देहात में इनकी भूजी बनाकर रोटी के साथ खाई जाती है।

चोवड़—हिं तोबड़ा—घोड़े को दाना खिलाने का थैला; शाब्दिक अर्थ मुँह।

दूहा ४३० कुसिगाँमड़इ—कुगाँव (?) = बुरा देश। अथवा अंग से कुलग्राम = बड़ा ग्राम।

कइर—सं करीर प्रा कइर करीर।

पारणउ—सं पारणा—व्रत के दूसरे दिन का भोजन यहाँ पर भोजन।

यूँ ही—इसी प्रकार।

ठेलि—हिं ठेलना = आगे चलाना बिताना।

दूहा ४३१ सायरवाडि—समुद्रतट।

वाडि—कदंब। राजस्थान में भी बाड नाम का एक बड़ा पेड़ होता है पर वह कदंब से सर्वथा भिन्न है।

दूहा ४३२ लंब कराडिया—(१) कराड ऊँट की आवाज को कहते हैं अतः लंबी आवाजवाले। मिलाओ—ठाढी मार कराडे देरे है कोइ रखावो गहि रे। (कबीर ग्रंथावली पृष्ठ १३७ पद १५१)। (२) लंबे और बाहर निकले हुए दाँतोंवाले को भी कराड कहते हैं। (गलदवालो)।

वालीया—वाल + ईया (प्रत्यय)—बाल के, बाल सदृश जिसका मूल्य हो, बहुमूल्य यहाँ समझिए।

दूहा ४१४ म—सं० मा प्रा० म राज० हिं० मत। पुरानी राजस्थानी में यह शब्द बहुत प्रयुक्त हुआ है। कबीर में भी जगह जगह इसके प्रयोग मिलते हैं—

हरि गुण सुमिर, रे नर प्राणी।
जतन करत पतन ह्वै जैहै भावै जाण म जाणी॥

झूर—प्रा० झूर; खास। झूरणौ या झूरबो किसी की याद कर—करके दुखी होने को कहते हैं। क्षीण होने के अर्थ में भी यह क्रिया आती है। देखो—दूहा १८२। प्रयोग—

झुरै है बाबो नंदजी झुरै जसोदा माय।
सब गोपी ब्रज की झुरै बाला राधा रही मुरझाय॥
(मीराँ)

बिरोलियउ—प्रा० बिरोल = मथना राज० बिलोवणो हिं० बिलोना।

मेल्है—खड़ीबोली का प्रभाव राज० रूप = मेल्हा।

दूहा ४१५ वलाक—राजस्थानी शब्द।

मझाळइ—प्रा० मिच्छ राज० मिच बीच पं० विच। मझ+आळइ। आळो का अर्थ वाला है मझाळो का अर्थ बीचवाला स्थान। मझाळइ = बीच वाले स्थान में।

एवाळ—सं० अजपाल प्रा० अयवाल। मिलाओ—गुवाळ (=गोपाल)।

दूहा ४१६ घोरड़ा—घोड़ा शब्द से बना घोड़े की तरह सुंदर एवं बलवान्।

तईं—विकारी रूप। संबंध प्रत्यय लुप्त।

कि—किम् = क्या।

नेहवी—नेह+वी = नेहवाली।

सी—सं० शीत प्रा० सीय।

सहइ—सहता है सहन करता है। क्या तुम्हारी प्रिया इतना स्नेह करनेवाली है कि तू इस भयंकर शीत की परवाह बिना किये इस तरह दौड़ा जा रहा है!

दूहा ४१७ छवड़उ—प्रा० छवडी (देशी नाममाला ३—२५)।

हुँती—प्रा० हुंतो = से।

किव्ह—पूर्वकालिक रूप मिलाओ—दूहा १२।

दूहा ४१८ सीस्योरी—राजस्थानी शब्द।

सुँसे—सुवानो का भाव का रूप।

म्होंती—जो सिंधी में संबंध का प्रत्यय है।

गोठवी—सं गोष्ठिनी; प्रा गोट्ठिणी = सखी, वयस्का।

हैं—पंजाबी = हम।

सैया—सं सज्जन, प्रा सज्जण = मित्र प्रेमी।

दूहा ४६६—आघोफरइ—इसका अर्थ अर्धमार्ग या अवर होता है। राजस्थानी में यह झुकने के अर्थ में भी आता है। इस दूहे में इसका अर्थ या तो ढालू जमीन का हो सकता है जो झुकने की तरह ढालू हो या यह हो सकता है कि जब ढोला आधा मार्ग तय कर चुका था (उस समय आबावळ पहाड़ में) मिलाओ—हिं अधमर। प्रयोग—

बळ पाळ भवति बळ काळळ ऊकळ पीळा देख रावा पहला।

आघोफरै मेघ ऊकस्ता महाराज रामै महल॥ (बेलि २ १)

अध आधफर ऊपर आकास। चलत दीप देखियत प्रकास।

चोडी दे मनु अपने मेघ। चतुरे देवलोक को देव॥

(केशव)

एवड़—यह शब्द सं अवी प्रा अव से बना है। मिलाओ—हिं० रेवड़। एवड़ की निगरानी करनेवाले या रखनेवाले को एवड़ियो या एवाळियो कहते हैं।

अलख—सं प्राचीन या सं आलस्य।

मागइ—सं भंज्; प्रा भंज = तोड़ता है छिन्न करता है, संकुल या चल विचल करता है। आधुनिक राजस्थानी में मांगवो तोड़ने के और मागवो टूटने के अर्थ में आता है।

दूहा ४७० क्रम—सं क्रम = चलना।

पंथ कर—रास्ता पकड़।

दाघ—ऊँट की तेज चाल। दाघ पालवो—तेज चलाना। मिलाओ—ऊँटने पहड़ाँ री दाघ नहीं पालणो (कहावत)।

महल—सं महिला।

दूहा ४७१ ऊँमर—ऊमर या ऊमर सूमरा नामक जाति का राज्य सिंध में संवत् ११११ से १४ ६ तक रहा। ये किस वंश के थे इसका ठीक पता नहीं चलता। भाट उन्हें चोटा परमारों की ऊमट शाखा में बतलाते हैं। तवारीख-तुहफे-तुल-कराम आदि मुसलमानी इतिहासों में उन्हें अरब जाति का लिखा

है। अन्य लोग उन्हें भाटी राजपूत कहलाते हैं जिन्हें सिंध में मुसलमानों का राज्य होने पर कई अन्य जातियों के साथ मुसलमान होना पड़ा। संवत् ११११ के आसपास उन्होंने ठट्ठे से मुसलमानों को निकालकर अपना राज्य कायम किया। सूमरा इस वंश का पहला राजा था। छठे और सोलहवें राजाओं के नाम ऊमर थे जिन्होंने क्रमशः ४ और १५ वर्ष राज्य किया। यहाँ यह ऊमर व्यक्तिवाचक नहीं किंतु जातिवाचक नाम जान पड़ता है। यह ऊमर स्वतंत्र राजा नहीं किंतु कोई सरदार होगा क्योंकि संवत् १   के लगभग सूमरे स्वतंत्र नहीं हुए थे। ऊमर मारवणी को चाहता था और उसको अपनी स्त्री बनाना चाहता था। उसने कई बार पिंगळ पर जोर डाला पर पिंगळ राजी नहीं हुआ। यह जाति का परमार तो नहीं हो सकता क्योंकि परमार कभी परमार कन्या को पत्नी नहीं बना सकता। मुसलमान होना ही अधिक संभव जान पड़ता है। इसकी कथा आगे फिर आती है। (दूहा नं ५६७ और ६२१ से ६५)

चालउ—वर्तमान कृदंत = चलता हुआ। अन्य रूप—चालंतो, चालंत। आधुनिक रूप—चालतो, चाँलतो।

म्हगउ—सिद्ध हुआ। देखो—दूहा ४११।

दूहा ४४२ ऊमाहउ = सामान्य भूत पुंल्लिंग, एकवचन। उमंगित होकर चला है। देखो—दूहा ४२४।

संदावेस—(१) संदावणो = संदेश कहना। संदेश कहूँगा। (२) संदा=के। वेस=वेश रूप (ऐसा हो गया है)।

तन खिस्या—(१) शरीर खिस गया अर्थात् यौवनापगम होकर शिथिल हो गया। (२) स्तन शिथिल हो गए अर्थात् यौवन बीत गया।

दूहा ४४३ मोड़ो—राजस्थानी शब्द विशेषण=देरी से दूर करके।

वेस—स वयस्=अवस्था।

होइ—सामान्य भूत, स्त्रीलिंग। अन्य रूप—हुइ हुई।

लोरडी—लोर करनेवाली। लोरा पड़ना सिर की एक बीमारी है।

आए—आवणो + ए (पूर्वकालिक)।

दूहा ४४४ आव्यउ—भूत कृदंत पुंल्लिंग, एकवचन आया हुआ।

पाहुड—वि बाधित।

वहइ—सं वह्। लोटना चलना जाना।

करेइ—संभाव्य भविष्य उत्तम पुरुष, बहुवचन = करें।

दूहा ४४२ कार्सुं—यह शब्द संस्कृतः का और सुं (गुजराती) इन दो एकार्थवाची शब्दों को मिलाकर बनाया गया है।

जो—जोवणो का आज्ञा का रूप। जो प्राकृत की धातु है।

जबाइ—जो (स्त्रीलिंग)। जो बाव जो पटना।

जाइ—जा पूर्वकालिक क्रिया है। इ पादपूर्त्यर्थ जोड़ा गया है।

दूहा ४४६ हुंती—होती हुई होनेवाली संभव।

दूहा ४४७ चलपत—सं चलपत्र = पीपल के पत्ते हवा के न होने पर भी हिलते रहते हैं। अत्यंत चंचल चलायमान।

साहइ—सं साध् प्रा साह। साधना सम्हालना। मिलाओ—साहणी = घोड़ों का निगरानीदार।

बीसू—एक चारण। बीसू संभवतया व्यक्तिवाचक नाम न होकर चारणों की किसी जाति विशेष का नाम है, जैसे—बीठू।

सुमराज—महाराज का शुभ हो। चारण, भाट, ढाढी ढोली आदि याचक जातियाँ अपने जजमान को सुमराज कहकर आशीष देती हैं।

दूहा ४४८ एकर—एक का विकारी रूप। राजस्थानी में विकारी रूप सप्रत्यय कर्ता के लिये प्रयुक्त होता है।

दूहा ४४६ सहिनांण—सं सज्ञान प्रा सन्नाण। इसी प्रकार सहिनाण (सं अभिज्ञान)। मिलाओ—

यह मुद्रिका मातु मैं आनी।
दीन्ह राम तुम कहँ सहिदानी॥ (मानस = सुंदरकांड)

दूहा ४५२ खमणी—क्षम धातु + अणी (कर्तृ = प्रत्यय)=क्षमनेवाली। सं क्षम् प्रा खम।

कष्ट—सं कष्ट, प्रा कस्स कष्ट।

गरबी—सं गुर्वी हिं गरई।

दूहा ४५३ सक—संक का अर्थ भी शक्ति ही होता है। दो शब्दों के प्रयोग का अभिप्राय सौंदर्य पर जोर देना है। अथवा संक का अर्थ शर्मी या लज्जाशीलो लिया जाय।

डरण—सं दशन। सं द के स्थान पर प्राकृत आदि में कई शब्दों में ड हो जाता है जैसे—दंभ डंड डंस डसण, डम्भ डोला इत्यादि।

दूहा ४५५ पुखिंद—सं कपींद्र।

मयंद—सं मृगेंद्र।

वि॰—इस दूहे में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

दूहा ४२६ सिआइ—सुहाग (?)। अन्य संभव अर्थ—(१) गौरवर्णा (सं॰ सिता प्रा॰ सिआ) (२) श्री वाली (अप॰ सिअ = श्री)। इसका अर्थ अस्पष्ट है।

संपजइ—सं॰ संपद्यते; प्रा॰ संपज्जइ।

बिम—मिलाओ—बिन=अब। या बि+म।

ठग्गउ—अप॰ ठगिय, ठग=ठगी जाती हाय।

दूहा ४२७ उपजियाँ—भूत कृदंत स्त्रीलिंग बहुवचन। सं॰ उत्पन्न प्रा॰ उप्पण्ण।

ढूँक इ॰—देखो—दूहा २४।

वर्ता—देखो—दूहा १ २ २ ४ १ ५।

नेत—सं॰ नेत्र प्रा॰ णेत्त। मिलाओ—

ताक्खी सऊमल छित्रदंत। साखी सुनाथि मद लावंत।
सोहसी भूमि चाँप सुभाइ। गुम्मर दिवइ परिमाल मंडइ॥
(राउ जइतसीरउ छंद १)।

दूहा ४२८ जाही—अ॰ जाइ। भूतकृदंत स्त्रीलिंग=देखी हुई अथवा देखी जाने पर।

चक्कु—सं॰ चक्षु, प्रा॰ चक्खु राज॰ चाख। राजस्थानी में चाख लगना नजर लगने को कहते हैं।

एकण—एक ही अवस्था एकमात्र।

बादर—अप॰ बद्द=बादल। मिलाओ—बद्दा।

एराकी—इराक देश के घोड़े जो बहुत प्रसिद्ध होते हैं।

दूहा ४२९ करल—मुष्टि। लक्षणा से मुष्टिमात्र। मिलाओ—

श्यामा कटि कटिमेखला समरपित
हस्त अंग मापित करल (वेलि ६९)

विवीह—अप॰ बप्पीहा। देखो—दूहा २६।

विजुपड—सं॰ विद्युत्।

सीर—सं॰ सिर प्रा॰ सीर-राज॰ सीं।

दूहा ४३० डीभू—राजस्थानी शब्द।

सर—सं॰ स्वरः प्रा॰ सर।

हंस—सं॰ हंस।

निवाँणि—सं० निम्न प्रा० णिम्म, निम्न=नीचा। प्राय प्रत्यय। निवाई = नीचा स्थान=जलाशय।

दूहा ५६२ झँबक—झँबक्यो। झाँबो पड़नो। झलक दिखाई देना, झलक पड़ना। मिलाओ—झाँकी।

सोरठा ५६४ अघ—सं० अर्घ्य प्रा० अग्घ। अन्य रूप अघ।

परिहरउ—नियमित रूप परिहरयउ या परिहरिअउ होगा।

रूपकउ—सं० रूप्यक। चाँदी का गहना।

दूहा ५६५ मझुराँ—सं० भ्र् प्रा० मझुरना।

छोहली—ललाट पर पहनने का एक आभूषण।

परिठिउ—सं० परि+स्थापय् प्रा० परिठव। परठनो राजस्थानी में एक ऐसी क्रिया है जो कई अर्थों में प्रयुक्त होती है। इसका साधारण अर्थ कोई कार्य करना या सम्पन्न करना है फिर चाहे वह धारण करने का हो या पहनने का या स्थापित करने का।

मिलाओ—

(१) मोटा-मोटी तोरण परठीजै (स्थापित किए जाते हैं)।

(२) परठि प्रथिम तोरण सर पंच (धारण करके)।

(३) पञ्चागि विधि पूठ पूरब मुख परठित (स्थापित किया हुआ)।
(कृष्ण-रुक्मिणीरी वेलि)

(४) नारिकेल फल परठि दुज (पृथ्वीराज रासो—पद्मावती समय)।

क—मिलाओ—हिंदी कि। जाँणि क=मानो कि।

दूहा ५६६ निलाट—सं० ललाट प्रा० णिलाड।

अइसइ—ऐसै—ऐसे।

घाट—सं० घट्=बनावट गठन।

वि०—छेकानुप्रास अलंकार।

दूहा ५६८ जाइ—सं० जन् प्रा० जा=उत्पन्न होना। आजकल केवल भूतकाल में यह क्रिया आती है। जायोजाई = जनमा+जनमी (इनका अर्थ जना-जनी भी होता है)।

वणराइ—सं० वनराजि। मिलाओ—

सात समँद की मसि करौं लेखनि सब वणराइ। (कबीर)

दूहा ५६९ नमण नदीसे—मिलाओ—

सावया पचीस, बाल-लीला मै राजकुँमरि इलही रमंति ।
से—से समान । (वेलि ११)

दूहा ५७० मसण—(१) सं माक्षिक प्रा मक्खिअ । मधुमक्खियों का मधु । (२) प्रा मसण राज मसणग भाषक रि मक्खन ।

दूहा ५७१ मञ्झिकउ—मध्य का मञ्झिआ बना लिया गया है ।

दूहा ५७२ करि—इ कर्ता का प्रत्यय है ।

मीयी—सं पीय प्रा मीयाअ=पक्षी । देशी नाममाला में मीयी का अर्थ शरीर भी दिया हुआ है ।

दूहा ५७४ चूडर—चूड़ो=चूड़ियों का समूह । आजकल चूड़े का अर्थ दूसरा होता है । राजस्थानी स्त्रियाँ हाथीदाँत की चूड़ियाँ दो भागों में करके पहनती हैं । पहला भाग कुहनी के नीचे तक रहता है और दूसरा कुहनी के ऊपर से लेकर कंधे तक । इस दूसरे भाग की चूड़ियों को आजकल चूड़ो कहा जाता है । पहले भाग को मुठिया कहते हैं ।

तीनाँ—ती+नाँ=तीनों ।

दूहा ५७६ कदि—सं कली राज कळी ।

महक्क—महकती हुई प्रफुल्लित ।

दूहा ५७७ हमाळे—सं हिमालय । इ अधिकरण का प्रत्यय है ।

प्रथम पंक्ति का अन्वयार्थ—हे बाला, उस मेघपी से रंग करो न उसकी पँखुड़ियाँ पतली हैं (वह पतले शरीर की है) ।

दूहा ५७८ भया—नियमित रूप हया । हकार के लोप की प्रवृत्ति । उगहंतोह—नियमित रूप उगंतोह । ग और अनुस्वार के बीच में एक ह जोड़ दिया गया है ।

दूहा ५७९ भींसुर—सं भास्वर ।

सघरह—(१) शश है इस में जिसके=चंद्रमा । (२) शशधर का अपभ्रंश—ससधर ससहर ससहरू ।

दूहा ५८० कुळी—सं कली ।

सीस फूल—सीसफूल सिर का एक गहना भी होता है ।

टँकावळ—टँका+आवळ (=माला)=टकों वाला । बहुत टकों का । 'लाख टकों का हार' कहानियों में प्रसिद्ध है । बहुमूल्य । टँका टगर के बराबर एक सिक्का होता था । (सुपासनाहचरियं पृ ५११) ।

दूहा ५८१ गहरत्या—गोरख मामक हाथ का एक गहना ।

दो मा पृ ११ (११०—१२)

दूहा ५०२ डरपत—डरपणो क्रिया का वर्तमान कृदंत ।

मतिहि—मती न । देखो—दूहा २८, २६ । नीचे मति भी इसी अर्थ में आया है ।

दूहा ५०३ छोडही—छोडती है । पलक छोडना = मिले हुए पलकों को अलग करना ।

दूहा ५०४ लवपवती—लवपवणो का वर्तमान कृदंत स्त्रीलिंग । यह अनुकरणात्मक क्रिया है । पाठांतर—लुबधवती=पति प्रेम में लुब्धा ।

सोरठा ५०५ वाटली—(१) सं वर्तुली प्रा वट्टुली राज वाटका, वाटकी वाटी = छोटी कटोरी । पाठांतर—अँगूठी ।

बाणूं—मानो ।

दोर्यूं—दोरो का विकारी रूप (अनियमित) या दोरो का नपुंसक लिंग में प्रयोग । देखो—दूहा ६ ।

दूहा ५०६ नीगुण—बिना गुण का ।

छावड़—दीवट पर का खम्भ जो प्रायः सर्प के आकार का बना होता है ।

पुनग—सं पन्नग । उ जोडने की प्रवृत्ति पुहर पुर आदि शब्दों में भी पाई जाती है ।

दूहा ५०८ चमंकठ—हिं चमक । अनुस्वार का आगम । मिलाओ—नींद नंक ।

समईयइ—समय समइ समई + अइ-यइ ।

दूहा ५०९ हुंता—अन्य रूप हुता हूंता । मिलाओ—गुजराती—हता (= थे) ।

दूहा ५१० पाई—आई=आकर ।

फर—फिर । इकार के लोप की प्रवृत्ति के लिये मिलाओ—गय सर करयो इ ।

दूहा ५११ मेल—मै + एल । मिलाओ—अकेला, एकला एकलो ।

थे—आधुनिक बहुवचन । यहाँ तें के लिये प्रयुक्त हुआ है ।

मने—मुझे । ने कर्म का प्रत्यय है ।

बीबी इ —अर्थ अस्पष्ट है । बीबी को बीबी भी पढ़ा जा सकता है ।

दूहा ५१२ ईं इ०—सं अयं लग्ना तारिका ।

तोनइ—तुमको । तो + नइ (कर्म का प्रत्यय) ।

दूहा ५१३ पामेसि—पाऊँगी। सामान्य भविष्य के अर्थ में सामान्य भविष्य।

कंठा—कंठ में, कंठ से। एकवचन के लिये बहुवचन।

महप—भारथ

दूहा ५१४ छेक—छेकवो (सं. छिद्) क्रिया से संज्ञा। मिलाओ—

सतगुरु साचा सूरमा सबद जो मारया एक।
लागत ही मर मिट गया पड़या कलेजे छेक॥ (कबीर)

दूहा ५१५ सहिए—सखियों ने। ए कर्ताकारक का प्रत्यय।

मुंदियाह—मुंदियाउ का विकारी रूप। कर्म का प्रत्यय लुप्त।

ताइ—सम्बार्थ—तो भी।

दूहा ५१६ फरूकइ—सं. स्फुर् प्रा. फुर राज. फरक फरक्क, फरक्क फरक।

वाहरोंह—सं. अपर। डा स्वार्थ में प्रत्यय। ह पादपूर्त्यर्थ।

दूहा ५१८ किम—अप. किम। कैसे।

केण—सं. केन=केन प्रकारेण।

वीर—भाई। अन्य रूप वीरो। मिलाओ—

वै हलधर के वीर। (बिहारी)

बड—बड़ा।

दूहा ५१९ आगम—आगे से ही पहले ही।

दूहा ५२० निमाँणी—नीची बेचारी। देखो—दूहा ४११।

लगइ—सं. लग् प्रा. लग।

दूहा ५२१ काळी कंठळि—गोलाकार काली घटाएँ। मिलाओ—

काळी करि कँठळि ऊजळ कोरण धारे श्रावण धरहरिया
गळि चालिया दसो दिसि जळग्रम थंभि न विरहिण नयण थिया।

नीची—क्षितिज के पास। (वेलि १९२)

निरख—यह दूहा कुछ पाठांतर के साथ पुनरावृत्त हुआ है। देखो—दूहा १९१।

दूहा ५२२ सांझी—साँझ की।

समझसि—साँझ + झी (=वाली)। मिलाओ—आगली, लारली, पाछली, नीचली ऊँचली ऊपरली साँझली।

कँवाडयइ—कंब से नामधातु कंबावयो=छड़ी से मारना। देखो—दूहा ११५, ४१, ४१४ व १।

थास ह —इस चरण का अर्थ अस्पष्ट है।

दूहा ४०२ रूँमालियाँ—रूँम या रूम=सं रूप प्रा रूम। आळी वाला का अर्थ देनेवाला प्रत्यय है, आळियाँ उसका स्त्रीलिंग बहुवचन का रूप है।

बोलही—प्रा बोल्लइ। वर्तमान का इ प्रत्यय आगे चलकर हि एवं ही में बदल गया। ऐसे रूप केवल कविता में प्रयुक्त होते हैं। बोलचाल में तो अंतिम अइ आगे चलकर ऐ में बदल गया है। इकारवाले रूप सूर तुलसी आदि हिंदी कवियों में बहुत पाये जाते हैं। जैसे—

कटकटहिं मर्कट बिकट भट बहु कोटि कोटिन धावहीं।

दूहा ४०३ नद—सं नद प्रा णअ हिं नाला राज नाळ, नाळो।

हरि—(१) सं हर प्रा हर। (२) सं हरित् प्रा हरि।

पाखरियाँह—प्रा पक्खर (देशी नाममाला ६—१०) राज पाखरो गुज पाखरूँ। स्त्रीलिंग बहुवचन।

दूहा ४०४ बोलणियाँह—बोलनेवाले या बोलनेवालियाँ। इणा (=वाला) प्रत्यय।

दूहा ४०५ सबळ—सुंदर, स्वच्छ, निर्मल नीरोग प्रकाशमान। देखो—दूहा ५६।

मीठा-बोला—मीठा बोलनेवाले मीठे हैं बोल जिनके।

लोइ—सं लोक प्रा लोअ लोय।

दूहा ४०६ इयर—इ पूर्वकालिक का प्रत्यय है।

गहिलड—सं ग्रहिल प्रा गहिल्ल राज गैलो गुज घेलूँ।

धापेइ—वर्तमान काल। धापवो क्रिया संभवतः सं धै (तृप्त होना) के प्रेरणार्थक धापय् से बनी है। सं ध्रात (तृप्त हुआ) प्रा धाअ से राजस्थानी में धायो रूप भूतकृदंत और सामान्यभूत में बनता है।

दूहा ४०८ ऊगिसर—उदित होकर।

दूहा ४०९ पसाउ—सं प्रसाद प्रा पसाअ। देखो—दूहा ७४ में शब्द पसाउ। अनुग्रह या प्रसन्न होकर दिया हुआ दान।

दूहा ४१० वहंत—होते हुए, रहते हुए।

दूहा ४११ अर अंबरे—मिलाओ—हिं अंबरडंबर।

नीले—संध्या की कालिमा से नीलवर्ण हो गए। नीलड़ो नामधातु है। देखो दूहा २५१। अन्य रूप—नीलाणो। मिलाओ—

नीलाणो नीअंबर ब्याह। (वेलि १६८)

दूहा ५०२ तरपत—तरपणो क्रिया का वर्तमान कृदंत ।

मतिहि—मती न । देखो—दूहा २८, २६ । नीचे मति भी इसी अर्थ में आया है ।

दूहा ५०३ छोडही—छोडती है । पलक छोड़ना = मिले हुए पलकों को अलग करना ।

दूहा ५०४ लवपवती—लवपवणो का वर्तमान कृदंत स्त्रीलिंग । यह अनुकरणात्मक क्रिया है । पाठांतर—लुबधवती=पति प्रेम में लुब्धा ।

सोरठा ५०५ वाटकी—(१) सं वर्तुली या वर्तुली; राज वाटक्य, वाटकी वाटी = छोटी कटोरी । अर्थांतर—अँगूठी ।

जाणे—मानो ।

ढोलैं—ढोलो का विकारी रूप (अनियमित) या ढोलो का नपुंसक लिंग में प्रयोग । देखो—दूहा ६ ।

दूहा ५०६ नीगुण—बिना गुण का ।

छजा—दीवट पर का छज्जा जो प्रायः सर्प के आकार का बना होता है ।

पुयग—सं पन्नग । उ जोड़ने की प्रवृत्ति पुहर पुह आदि शब्दों में भी पाई जाती है ।

दूहा ५०८ चमंक्क—हिं चमक । अनुस्वार का आगम । मिलाओ—नींद नंद ।

समईसर—समय समइ-समई + सर-सर ।

दूहा ५०९ हुंता—अन्य रूप हुता हूंता । मिलाओ—गुजराती—हता (= थे) ।

दूहा ५१० आई—आई=आकर ।

फर—फिर । इकार के लोप की प्रवृत्ति के लिये मिलाओ—गत, कर करयो इ ।

दूहा ५११ वेल—वे + पल । मिलाओ—अकेल, एकल एकलो ।

थे—आधुनिक बहुवचन । यहाँ तैं के लिये प्रयुक्त हुआ है ।

मने—मुझे । ने कर्म का प्रत्यय है ।

बीची द०—अर्थ अस्पष्ट है । बीची को चीची भी पढ़ा जा सकता है ।

दूहा ५१२ हूँ द —सं अहं तथा दाहिला ।

थोनइ—तुमको । थो + नइ (कर्म का प्रत्यय) ।

दूहा ५२३ ऊँडा—अप उंड (देशी नाममाला १–८५), बहुवचन।

कोहर—सं कूपर=कुँआ।

दूहा ५२४ ऊसारता—सं उत्सारय् प्रा उस्सार राज ऊसारणो का वर्तमान कृदंत; बहुवचन।

दूहा ५२५ ताव—सं तप प्रा ताव (संज्ञा)=धूप।

दीहे दीह—दिन दिन, दिन भर।

दूहा ५२८ कम्मा—स्वार्थ में का प्रत्यय।

दूहा ५२९ चाँहली—बीच में ह व्यर्थ जोड़ दिया गया है।

हुँती—थी। अन्य रूप—हुती हुंत हती।

दूहा ५३० संपडुवा—सं उपपन्ना है।

मारूआँ—मारूओ + ईं (विभक्ति प्रत्यय। मारूओ=मारव + अणो (का)=मारव का।

दूहा ५३१ उअम्मियउ—मिलाओ—हिंदी उमगना।

अमी—सं अमृत प्रा अमिअ।

पयड़—सं प्रकट प्रा पयड़।

दूहा ५३२ मन इ—मेरे मन में चाहते हुए, जब मैं मन में चाह रही थी।

चाही—मिलाओ—ँगला चाही=चर।

वधाँमणा—सं वर्धापन प्रा वद्धावण वधावणः राज बधामणा बधावणा।

दूहा ५३३ छ, छ—छो का संक्षिप्त रूप।

दूहा ५३४ ठरंत—ठरणो क्रिया का वर्तमान काल=ठंडे होते हैं।

अणपीयइ—अनपिये=न पिए हुए, बिना पिए ही।

पायणा—सं पानक; प्रा पाणग = पीने की कोई वस्तु, विशेषतः मदिरा।

छाक—छकने का भाव तृप्ति। विशेषतः किसी नशीली वस्तु द्वारा होनेवाली तृप्ति। मस्ती मद्या मद। छकणो क्रिया संस्कृत के चक् से बनी है। मिलाओ—रसी विषम छवि-छाक। (बिहारी)

दूहा ५३५ समर—सं स्मर प्रा सुमर।

मंजियउ—सं मज्जन; प्रा मज्जण मंजण।

खिजमति—फा खिदमत।

दूहा ५३६ गयमयणी—गयगमणी पाठ है।

गति—सं गति राज गति, गंति।

आथमणउ—प्रा अस्तमयः राज आथूँणो=पश्चिम को, अस्त होने की दिशा को।

विमणउ—स विमना प्रा विमण।

दूहा २२० थोरिमिमउ—सं थोरम प्रा थोरम से भूत कृदंत=सुरभित।

दूहा २२१ कंचूवा—सं कंचुक प्रा कंचुअ। स्त्रियों के पहनने का कौंचली नामक वस्त्र।

दूहा २२२ लूँब—सं लम्ब; प्रा लुंब। मिलाओ—लूँब=गुच्छा।

दूहा २२३ गडिवा—मिलाओ—हिंदी गड़ना।

दोहग—सं दौर्भाग्य प्रा दोहग्ग।

खिलोखिल—खिलखिलो या खेलवां से=प्रफुल्ल।

दूहा २२४ पंचाइणा—सं पंचानन।

पाखरघड—अर्थ अस्पष्ट है।

मईगळ—सं मदकल; प्रा मयगल।

दूहा २२५—कऊतक—सं कुतूहल। उकार का लोप।

दूहा २२६ सँधियाँ—संधी का बहुवचन।

बाव—सं वायु; प्रा वाउ, वाय।

ठाढउ—(१) हिं ठाढ़ा (?)=खड़ा हुआ। (२) सं स्तब्ध प्रा ठड्ढ राज ठाढो=ठेठ। (३) ठंडे के अर्थ में भी आता है।

ताव—सं ताप।

दूहा २२८ मरउ—अजभाषा का मरबउ राज रूप—मरा।

दूहा २२९ आवे—ए स्वार्थ में प्रत्यय। मिलाओ—आवे=अब। यह शब्द ही अव्यय का अर्थ भी देता है तब आगे का अर्थ होगा अब ही।

रखी—आनंद। मिलाओ—

विविध किसौ आदिविधि वसुदेव मन उपजी रखी। (दर)

आफ कसी न रखी करै आसी, असी किय बान। (बिहारी)

गोउ—सं गोप, प्रा गोव।

दूहा २६ पाल्हव्या पाल्हविया—पाल्हवायो धातु का सामान्यभूत, पुंल्लिंग एकवचन। राजस्थानी में सामान्य भूत में इया और या प्रत्यय लगते हैं। जोधपुरी में इया प्रयुक्त होता है और बीकानेरी आदि में या।

दूहा २३१ मेल्हवी—व्याकरण की दृष्टि से मेल्हयी या मेल्ही होना चाहिए।

दूहा २६२ बेठ—सं बेष्टा । अंत्य आ का लोप । मिलाओ—वाळ=वाला, मूँछ = मुच्छा ।

हुवणा इ —अभ्यार्थ—ढोला और मारवणी काम की कुतूहलपूर्ण क्रीडाओं म हुम्म हुए । इस अवस्था में हुवणा हुवणा किया का सामान्य भूत का रूप होगा ।

दूहा २६३ मरखमा—मर = मार । खमा—खमने अर्थात् सहनेवाले (सं क्षम) ।

रचणीं—रचनेवाले प्रेम रंग म रँगनेवाले । मिलाओ—मेंहदी का रचना या राचना ।

मेळि—मिळनो का प्रेरणार्थक । मेळणो का अर्थ मेजना भी होता है ।

चंद्रायणा २६२ चंद्रायणा—यह छंद राजस्थानी साहित्य म बहुत प्रयुक्त होता है । बोलते समय चौथे चरण के पहले 'परिहाँ शब्द प्रायः जोड़ दिया जाता है ।

बरस—वर्तमान काल या पूर्वकालिक रूप ।

कु क—पाद पूरणार्थ निरर्थक अव्यय ।

चंद्रायणा २६६ आहुवड़—लोटते हैं, यहाँ जाते हैं ।

कि —दोनों सेज पर बैठे थे इसलिये उनका फिर सेज की ओर जाना कैसे कहा ? इसका उत्तर यही है कि लोक गीतों (Ballads) में प्रायः ऐसा हुआ करता है ।

असप्पति—सं अश्वपति । राजस्थानी में यह शब्द राजा के अर्थ में आता है । मिलाओ—

असपतियाँ उथमंगराँ, कँचा कुमर उतार ।
राघौ दीधा रेणुऔं सोंगे बग साधार ॥ (बाँकीदास)

आहुवड़—आहुवनो, आमड़णो = भिड़ना ।

सुरमि—प कर्ता का चिह्न ।

मेळिया—मेळनो = धावा करके तोड़ना लूट लना चीजों को अस्तव्यस्त कर देना । यह शब्द विशेषतया गढ़ या किले के साथ आता है ।

मिलाओ—(१) आयी गार किलेह ताळा माँही सूरमा ।
मेळ्या केम मिळेह, राजौ लोप्यौं राकिमा ॥
(२) आ बिंदली मिळली न दिम चढ़ती मो उर चाव ।

दूहा ५६७ गूझ—गूढार्थवाले वाक्य, पहेलियाँ। पहेलियाँ पूछना दाम्पत्य विनोद का एक सुखद अंग है। आजकल भी जब जमाई ससुराल जाता है तो सालियाँ एवं अन्य स्त्रियाँ उससे पहेलियाँ पूछा करती हैं।

का—काइ = कोई।

दूहा ५६८ खिसंति—(१) खेते हैं अर्थात् बिताते हैं (गुणवान्)। (२) खपते अर्थात् छीजते हैं (गुणवानों के बिन)।

गमंत—सं. गम् = बिताना। मिलाओ—

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा॥

दूहा ५६९ इन दूहों में जो पहेलियाँ दी गई हैं वे जनसाधारण में प्रचलित पहेलियाँ थीं। एकाध पहेली गाथा छंद में भी है। भाषा में सब पहेलियाँ माधवानल-कामकंदला चौपाई में भी ज्यों की त्यों पाई जाती हैं।

दूहा ५७० खलीण—खल्लीन।

तिण—इस कारण से।

दूहा ५७१ संमही—सं. संमह् = पकड़ना।

नकफूली—नाक में पहनने का एक गहना।

दूहा ५७२ मुख—नकफूली का।

गुंजाहल—गुंजाफल। मिलाओ—मुत्ताहल, मुत्ताहल = मुक्ताफल।

अछइ—अस्ति रूप छइ (= है)।

तेण—तेन कारणेन।

ढुक्कउ—अर्थ 'पास गया' है। यहाँ नकफूली पर गया।

दूहा ५७३ जेण—जिसने।

झालिया—धारण किए, (हाथ में) लिए।

तेण—तेन कारणेन।

दूहा ५७४ समल—सं. निमल; राज. निमल, समल। देखो दूहा ८८।

गाहा ५७५ तरुणी इ —संस्कृतच्छाया—

तरुण्या पुनरपि गृहीता परिष्कृतास्यांतरेण, विशेषेण हारम्।
कारणा च तस्याभे दीपकः पुनरपि हीरम्॥

दूहा ५७६ चाँप—सं. चम्पक; राज. चाम = चंपा भौंरी।

गाहा ५७७ गय—सं. गत प्रा. गय।

सिहर—सं. शिखर्।

पुरवेग—वेग से प्रेरणा से।

दूहा ५७८ हर-हार—महादेव का हार अर्थात् नाग।

परठम्मठ—देखो दूहा ४९१।

ज्यूँ—अप जेम्व = जिससे ताकि।

दूहा ५७९ आविरस—सं. आदर्श प्रा. आयरिस। आभाओं का आलय।

दूहा ५८० प्राहुणउ—सं. प्राघुण प्रा. पाहुन हिं. पाहुना। यह शब्द पति के लिये भी प्रयुक्त होता है क्योंकि उसकी प्रतीक्षा की जाती है।

दूहा ५८१ चटक्कउ—चटको=शीघ्रता। शीघ्रता प्रदर्शित करने के लिये अँगूठे और अँगुली को दबाकर चटकारी की जाती है।

मिलाओ—चटक्कर = झटपट।

वैरवि—रात्रि ने शीघ्र बीतकर शत्रुता का कार्य किया क्योंकि अब प्रिय तम बिछुड़ जायगा।

दूहा ५८२ दिवला—सं. दीप प्रा. दीव। ला ऊनवाचक प्रत्यय है।

डूल—सं. दोल्।

दूहा ५८३ मिल्जिवउ—कर्मवाच्य मिला जाता है = मिलते हैं।

पाखी—मिलाओ—हिंदी पैखल। अन्य रूप—उपाखी।

पाखरयो—सजाया। ठीक अर्थ अस्पष्ट है।

मद—सं. मद प्रा. मद।

दूहा ५८४ नहि—मानो। यह क्या बरखा नहीं हो रही है? अर्थात् हो रही है। वैदिक भाषा में 'न' शब्द उपमा के अर्थ में आता है।

मिलाओ—आह ज्यूँ = ज्यों।

दूहा ५८८ ढोलड—अप —ढोल्ल (हेमचंद्र ४ १६५)।

दूहा ५८९ ठवे—सं. स्थापय् प्रा. ठव ठव। वर्तमान काल।

पाखर—सं. प्रखर।

दूहा ५९० ऊतरई—उतरना का अर्थ यहाँ बीतना है।

साख—साखी।

मिलाओ—

पण आठ दिन हारिया घोड़ा पान धरंत।
पलकाड़े पूरो हुओ दिवला साख भरंत॥

(राजस्थानी सुभाषित)

दूहा ५६२ मॅंनि—मने, म्हाने = मुझे, हमें।

मूँझिया—हिं मूमना=घेर लेना।

म्हॉनॅं—नॅं गुजराती में कर्म का प्रत्यय अब भी है।

कूँपली—प्रा कुंप + ली ऊनवाचक प्रत्यय। लकड़ी या कुप्पी के आकार का बहुत छोटा पात्र जिसमें स्त्रियाँ काजल-टीकी और सुगंध आदि सुहाग का सामान रखती हैं। राजस्थान में कन्या के दहेज के साथ ऐसी कूँपलियाँ दी जाती हैं।

दाझी—मिलाओ—हिं दाझना=डरपाना।

दूहा ५६४ मगर्यों—मिलाओ—हिं आवभगत शब्द आवभगत।

दूहा ५६५ मुकळावयो—मुकळावयो का अर्थ गौना करवाना होता है। यह क्रिया अप मोकल्ल से बनी है। मिलाओ—गुज मोकलवुँ।

ईंवर—सं इत्वर। अनुस्वार का आगम।

दूहा ५६६ छोकरी—प्रा छोकरी। यहाँ साथ रहनेवाली लड़की अर्थात् सहेली अथवा दासी से अभिप्राय है। अन्य रूप—छोहरी छोरी।

मिलाओ—हिं छोकरा छोकरा।

दीन्ही—यह शब्द दो बार आया है। पाठ में अशुद्धि जान पड़ती है, पर सभी प्रतियों में यही पाठ मिलता है।

दूहा ५६७ देरा—दूत। देरा दुवर—दूतों द्वारा खबर होती है।

मूँझयो—सं मंथ् (?)=मथना।

मोकलया—पहुँचाने के लिये, मोकलवयो + आया (तुमर्थ प्रत्यय)।

छोरह—सं शुभ्र; प्रा सुहय।

दूहा ५६८ गोरी—राजस्थानी शब्द संगम।

ऊमस—सं उन्मत्त।

थळ धर—(१) बलायान। (२) बलवाली भूमि। (३) बल और भूमि।

दूहा ५६६ पळम्मिया—अप पलहृत्थ=हाना लेना।

म्हारे—आगे।

चउथी—चौथी पहरा।

दूहा ६०० पीणयठ—पीनेवाला। पीवणा राजस्थान में एक प्रकार का साँप होता है। रात को जब मनुष्य सो जाता है तो यह आकर उसकी साँस पीने लगता है। इससे मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। पीवणा साँप एक से दो फुट तक लंबा होता है। उसका रंग मटमैला भाखी होता है। पीठ पर

तीन काली धारियाँ होती हैं। फन सिकुड़ा हुआ और पेट सफेद होता है। चमड़ी रबड़ की भाँति चिकनी होती है जिससे लाठियों और पत्थरों से इसे मारना बड़ा कठिन होता है। बरसात में इसके अंदर की पोटली फूलती है। इसी ऋतु में यह प्रायः देखा जाता है और सैकड़ों को पी जाता है। यह विशेषतः रेतीले टीबों में होता है। यह काटता नहीं। कहते हैं कि पीने के बाद पूँछ की फटकार से आदमी को सचेत करने की चेष्टा करके चला जाता है। दूसरी विशेषता प्याज खाए हुए मनुष्य के पास नहीं जाता। लोग प्याज खाकर या मुँह पर पट्टी बाँधकर सोते हैं। इसके पीने के बाद मनुष्य वे तो सोते ही रह जाते हैं। परंतु यदि ८-५ घंटों में पता लग जाय तो बचना संभव है। दवा के तौर पर ऊँट का मूत्र पिलाया जाता है और यह रामबाण दवा मानी जाती है। इससे कै होती है और जहर निकल जाता है। इसके पिए हुए को फिटकरी और नमक खारा नहीं लगता। लोगों का विश्वास है कि यह साँप साँस को पी जाता है पर वास्तव में यह सोते समय मुँह में जहर टपका जाता है। मुँह बंद किए हुए या करवट सोए हुए आदमी को यह हानि नहीं पहुँचाता। यह बड़ा होशियार होता है और छिपकर आता जाता है। इसे देखना या पकड़ना बहुत कठिन है।

विळकुळिमउ—चंचलता के साथ हिलाना। सामान्यभूत।

दूहा ६०१ भुयंगि—भुजंग ने। राजस्थानी में कभी कभी द्वित्व वर्ण को Single करके पूर्व वर्ण पर अनुस्वार लगा देते हैं तो कभी इसके विपरीत अनुस्वार को दूर करके आगे के वर्ण को द्वित्व कर देते हैं।

दूहा ६०२ मह—मिलाओ – हिंदी भी फलना=सफल होना।

पुंडरी—सं पौंडूर।

बाह—अप भाइ; हिं ठाट।

टटोळिवउ—प्रा टटोल्ल्। अकर्मक की तरह प्रयुक्त।

घह—मिलाओ—हिं घट (घटवरवाली)।

सोरठा ६०३ सत्रकि—सलककर, तुरंत।

सत्रछि—सं ज्वाला।

सत्रकर—सं स प्रा दर। संभवतः अनुकरणात्मक शब्द। मिलाओ—सड़सड़ सेत सावर-सठिका चहडह कंप्यड चरहर (जस्मल कृत गोराबादलरी बात)

बंधूपी—सं धू; प्रा धूप।

सोरठा ६०४ थासाँ—सं वल्लभ।

दूहा ६०५ कणमणाट—कुनमुनाना, शब्द करना।

साद—सं शब्द प्रा सद्द।

दीवाधरी—दीपक रखनेवाली दासी।

पडसाद—सं प्रतिशब्द प्रा पडिसद्द।

दूहा ६०६ पलाह—(१) सं पलाश् (२) सं प्रलाप प्रा पलाव।

चाह—अप चाहा; हिं चाह।

दूहा ६०८ ढारडी—सं रम्; प्रा ढर ढार। ढंग। डी अनादर वाचक प्रत्यय।

कोडी कोडी—सं खंड खंड=धीरे धीरे।

दग्ध—सं दग्ध प्रा दद्द।

दूहा ६११ कल्यइयाँ—प्रा कल (=कोलाहल) से।

दूहा ६१३ बडी—मारवणी के बहन होने का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। बड़ी बहन तो होना संभव नहीं। छोटी बहन संभव है। कहीं कहीं चौपाई म लहुडी बहन लिखा है। लहुडी पाठ होता तो ठीक था पर किसी प्रति में मिला नहीं।

दूहा ६१४ मनि—भाव मैं=मन्न मैं।

प्रन—न प्रण। प्रण पाणी=जीवन।

दूहा ६१५ परवट—सं प्रत्यय (ी=विश्वास करना, मानना समझना।

के—कई।

काँहीं—कहीं।

कवि—कार्य से।

दूहा ६१७ ओळखिया—सं उपलक्ष; प्रा ओलक्ख=पहचानना। यह क्रिया गुजराती एवं मराठी में भी आती है।

दूहा ६१८ सूँ—से साथ

मरहठ—(१) सं मरहट; प्रा मरहट्ट=मृत्यु (२) यों ही मनात् स्पर्श।

दूहा ६२० बीसारइ—बीसरणो का प्रेरणार्थक, आज्ञा, बहुवचन। अन्य रूप—बिसावयो बिसारयो।

दूहा ६३६ लंकि—लंकी = लंकवाली।
जाके—रावस्यामी जागो = ऊँट।
डहकि—डहडहाती है।
दूहा ६४० पवंग—सं प्लवंग = घोड़ा।
सूधा—सं शुद्ध। मिलाओ—हिंदी सीधा।
लगॅग—सं लङ्ग राज लगॅग लंग लग्ग।
चतुरंग—ऊमर के पास उस समय केवल घुड़सवार थे। फिर भी चतुरंग सेना का चढ़ना कहा गया है। यह केवल परिपाटी का निर्वाह है। लोकगीत (Ballad) की यह एक विशेषता है। आल्हखंड में जहाँ जहाँ युद्ध का वर्णन आया है वहाँ वहाँ वे ही शब्द बारबार पुनरावृत्त हुए हैं चाहे उनमें वर्णित बातों के लिये मौका हो या न हो।
दूहा ६४१ ढळहळ—अप ढलोत्कल=ढलचल।
कक्कर—सं क्रूर = युद्ध।
ओर्खेमिया—सं उत्कंप्, प्रा उक्कंप (?) = चंचल किया चलाया।
चारतइ—बैसे। बावयों का सामान्य भविष्य। प्रा चारतइ।
दूहा ६४३ छेटी—सं छिद्। छेटा = अंतर फासला।
घाटे—प्रा घत्त। पूर्वकालिक।
जिहाज—सवारी यहाँ ऊँट। मिलाओ—Ship of Desert (मरुभूमि का जहाज)।
दूहा ६४४ क्यांही—क्याहनो क्रिया का प्रेरणार्थक है। सामान्यभूत स्त्रीलिंग।
तिण—उसने अर्थात् ढोले ने।
ताउ—उसका अर्थात् ऊँट का।
दूहा ६४६ पइ—सं पद; प्रा पय।
दूहा ६४७ वंग—वाटी।
दूहा ६४८ फिर—सं किल। मिलाओ—
आरंभ मैं कियो जेपि उपायो गावण गुणनिधि हूँ निगुण।
फिरि कठचीतपूतळी निज करि चितारै लागी चित्रण॥
(वेलि २)
मारूनाथ प्रीतम मिल्यो फिरि हरि बइठो हंस।
दूहा ६५० विलखउ—सं विलक्ष्; प्रा विलक्ख।

दूहा ६६४ झूलरउ—समूह। मिलाओ—

साथ सहेल्याँ रे झूलरे, पणिहारी ए लो।
पाणीड़ेने चाली रे तळाव, बाला जो॥
(प्रसिद्ध पणिहारी का गीत)

लैकार—सं. लयकार = लयपूर्ण शब्द।

दूहा ६६५ फीकरिया—फीका + र (स्वार्थ प्रत्यय) + इया (अनादर वाचक प्रत्यय)।

दूहा ६६६–६६८ ये दूहे पहले आ चुके हैं। देखो दूहा नं ५१७, ५८४, ५८५।

निवाँण—नीची भूमि जहाँ जल भरता है। अतः उपजाऊ।

दूहा ६६९ नीर चढ़इ—(१) पानी पर चढ़े हुए। (२) पानी के लिये चढ़ती हुई (=जाती हुई)।

दूहा ६७० वखाँण—सं. व्याख्यान। प्रशंसा।

दूहा ६७१ पूरी सक्ख—साख भरना=समर्थन करना।

रळिआइत—रळी + आइत (वाली)। त के आगम की प्राप्ति।

परक्ख—सं. परीक्षा।

दूहा ६७२ विलोविया—अप०—निंदा किया।

मारू—मरुदेश मारवाड़।

सोहागिण—पतिप्रेमभागी। मिलाओ—दुहागिन=पतिप्रेम से वंचित।

दूहा ६७३ नइँ—से।

दूहा ६७४ ढोल—अन्यार्थ—नरवर में ढोल बजने लगे।

बात—कथा।

परिशिष्ट (२)

(थ)

[यह प्रति बीकानेर के रांगड़ी श्वेतांबर जैन उपाश्रय के महिमाभक्ति-भंडार में है। इसका पाठ जोधपुरीय (ध) प्रति से मिलता है। यह प्रति प्राचीन जान पड़ती है। इसमें जैसलमेर निवासी वाचक कुशललाभ द्वारा रची हुई चौपाइयाँ भी सम्मिलित हैं। इसका पाठ अत्यंत शुद्ध है।

ढोला मारवणरी चौपई

श्रीसारदाय (शारदायै नमः

दूहा

सकल सुरासुर सामिनी सुणि माता सरसति।
विनय करीनइ वीनवुं, मुझ द्यउ अविरल मति॥
चोवाँ नवरस एथि सुणि सबिहूँ सुरि सिणगार।
रागइँ सुर नर रंजियइ अबला तसु आधार॥
वचन विलास, विनोद रस हाव भाव विहुँ हास।
प्रेम प्रीति संयोग सुख ए सिणगार प्रकास॥
गाहा-गूढा गीत गुण कउतिग कथा कलोल।
चतुर तणा चित रंजवा कहिवइ कवि कल्लोल॥

गाहा

मरुधर नवरस भरके सुंदरि नारीय सरस संबंधा।
निरुपम कम्म निबद्धा सुपठ्ठ, करणा कथा कुसुआ॥
नरवर नयर नरिंदो नलराय सुउस्स सल्हकुमर वरो।
पिंगलराय स भूआ वनिता मारवणी वरवेसु॥

कवित्त

पंच उदंड प्रचंड तत्थ पंगो पुरसाथी।
बीबी निर्मल बम्भ पंच बिणु गंगानठ पाँथी॥

बरस बारमइ बइठउ राजि भरि मंडइ संमलि आमाजि ।
पैसाग तेडनइ भीय पसाउ मागइ ओळगिसउ नरनाह ॥
भाट भाइ, तउँ कुण कुण ठाम, कुण कुण देस नगर कुण नाम ।
वस्तु अपूरब दीठि जेह मुझ आगळि परगासउ तेह ॥
भाट भणइ, संभळि मुझ वात, मइ दीठा मरहठ, मेवात ।
दीठा वंग गौड बंगाल, पूरब्या नइ कालिंग पंचाळ ॥
दीठो सगळउ दखण देस, चतुर नारि तनि चंचल वेस ।
माळव नइ कालिंग मुलताण काश्मीर कुरमुख पुरसाँण ॥
सिंहळ दीप पदमिनी नारि, परम अलोपि रत्नाकर पार ।
गुजरात सोरठ, गाजवाड, कोंपठ देस तिहाँ नी वयठ ॥
सिंधु, सवालख नै सोवीर, पूरब गंग पइलइ तीरि ।
दीठा महँ इणि परि बहु देस, आपणि हरखि भाट नै वेसि ॥
पिंगळराय कहइ तिणि वार, कोई वस्ती (? वस्तु) अपूरब सार ।
दीठि हुइ, सा मुझनइ दाखि, भम गोचर मन माहि म राखि ॥
उत्तम दीठि वस्त अनेक, ते कहताँ किम आवइ अंत ।
थारइ मनि जे अवधारिय होइ, भाट कहै जिम दाखुँ सोइ ॥
नेहइ मंडळि आई नारि रूपवंत बहु राज-कुमारि ।
अति अद्भुत सुंदर आकार, ते परयोजा हरख अपार ॥
भाट भणइ सुणि पिंगळराउ मुझ मुह बोला वयउ सुभाउ ।
वरस बीत लगि इधर देखि, कोई वनिता देखि विशेषि ॥
रमणी मणी रूपि रतिथि निरखी एकाएक असंभ ।
पण जाळोर नगर पदमनी दीठि गवखि जाणि दामिनी ॥

दूहा

सिरि अचळार आबू भणी, गढ जाळोर दुरंग ।
तिहाँ सामंतसी देवडउ असमसी आगळ अभंग ॥

चउपइ

तस्स सेन सोवन-गिरि-धणी । पट्टराणी भगती (लोडी) तसु तणी ॥
तसु पुत्री ऊमा देवडी । जाणि विधाता घडवि घडी ॥

दूहा

चंद वदणि चंपक वरणि अधर प्रवाली दंत ।
कंठर नयणी, सोहो कुटि, चंदन परिमल अंग ॥

इणि परि मोटी सीपवि होइ, राजा प्रति बीनवियउ सोइ ।
बरस एक जब पूरण हुआ, तब पिंगळ चिंतातुर थया ॥
इक आपणउ पुरुष पाठवइ, ढोलउ ते मारवणी तेडण दिवइ ।
तउ वहि जाइ राजानइ मिळ्यउ, मारग सहू सुणउ सॉभळ्यउ ॥
पच्छम मारग मंडइ राठ, तठी कैंधि न चाढइ बाइ ।
पछी सुणाई बाई मठभगवाइ, जेमहि दइ कत्थरे थवइ ॥
सागर बड गाढर प्रतवार, भाषर ऊठ चलावइ भार ।
उघळ नाम बउ वाटइ वहइ, तउ रियायनठ नहीं सा सहइ ॥
सू (ी क) थी वाट कटक संग्राम, अनरथ थासइ बाइमॉम ।
चाम्विगइ तिथि आगइ बहू, इसी बात मारवनीसहू ॥
बउ मधुम आभइ एकलउ, पहिली आयउ बीनउ भलउ ।
कुमरी मरि पुहुचावी पवइ, सगळी बात तोहिली अवइ ॥
ते आव्यउ बेसक परधान हरषित मिळ्यउ पिंगळ राजान ।
मारग-तणी बात सहू कही तेवड सूझ न करियो छही ॥
एकवि वहिलइ वेसक साप, इम वेगहि मोकी नरनाय ।
इधतउ कहिइ आदरउ मान कहियउ चाचगादे राजान ॥

दूहा

बेसलनइ पिंगळ कहइ करि आया परिआया ।
दिन एकवि मौंहि इवडी जिम आवइ इथि ठामि ॥
साचउ ढोरू तू सही तूँ सेवक हूँ सामि ।
आगइ ते परधानियउ करि वळि एतउ कॉम ॥
सोवनगिरिहूँ विहुँ दिसइ, रूमा मारग वाट ।
पंथी कोइ पूगळ तणउ करे न सकइ वाट ॥
करची बउ आपे करौं तउ रीतावइ राव ।
सॉमतसी रूठइ बवइ बंधि न वरतइ वाव ॥
बचन सुणी राजा तणउ वेसक बीनउ मयॉम ।
तउ हूँ ढोरू तारउ बउ तारूँ ए कॉम ॥

चउपइ

राव कहइ वेसक इक बात तउ भोस बावउ एकवि रात ।
इणि परि बहिव्यउ ओपमा पही, आयोप्यउ ऊमा देवही ॥
सीव मानि वेसक बीनवइ सूप इतास करेसुं दिवइ ।
तउ तारउ ढोरू महाराज, बउ मेळावडे चीहली आज ॥

इणि अवसरि पाखत उठकाठ सामंद सीतकाठ संवरकाठ।
आपापणे देखे मनि भरइ पालख तणी सवाई करइ॥
नहि अहिराम्पड मोहित साधि मारवणी मूँकठ अम्है साथ।
बोलइ पिंगल कुमरी बाठ, न रहइ माय पयम इकबाठ॥
पाँचाँ सातां वरसां पछे, ताँ लगि कुमरी इहाँअपि अवइ।
कुमर मूँकियो आया काबि कुमरी मूँकेस्यूँ महाराव॥
सीपि मागि मिठि गठि सुचि वणइ पहुता देखे आपापणइ।
पूगठ नगरी पिंगठ राय नठवर गटि आमठ नठराय॥
अठगी भूमि न को परि लहइ वाटि घाटि पंथी नवि वहइ।
समाचार नहु लोकू न कोइ अठगे सगपणि ए परि होइ॥
इणि अवसरि नठवरगट धणी आलोच्या जेणहि आपणी।
परणी मी मारवणी तणी, तुमि न कहियो ढोलामणी॥
मारवणी परणी वाँधिस्यइ, आया कवि वई आधिस्यइ।
वणी भूमि मारगि मम मणा तिरिण पास्या मारक आपणा॥
पाठइ नठराजा परधान, तिणाँ देखि दीया बहु मान।
जिहु दिसि सगपण काजि वालवइ मूँक्या सरस देस माठवै॥

दूहा

माठव देस महीपतई भीम नाँम भूपाठ।
माठवणी धूं तसु-तणइ, सुंदरि अति सुकमाठ॥
परधानइ नठरावने माँगी बयइ मैंगोंपि।
ओठाँ आछाइ बुहइ मीति पणी परमाँपि॥
भीमसेनि मगताविवा महाराजई परधान।
नठनंदनरउ नावरठ मिलियो बहु मनि मानि॥

चउपई

कीदो नावरउ ढोला तणउ, चिहुँ राजा मनि आणंद घणउ।
पाच्छउ लगन, मूँक्या परधान तुरमि पधारो ढोला थान॥
सरस्या अरथ गरम अति घणा संजोण्या परीख्य आपणा।
माठवणी परणी मनि रंगि आइ निसि ढोला मन उछरंगि॥
हाथ मठावै गज पाँचसइ नगर पंचास गाम सुपि वसइ।
चारि सहस तेजी तोखार मरिया रिचि नवनिधि भंडार॥

महीपति सगळ सु माळवणी तिणि परणावी सू आपणी ।
माळवणी तसु कुमरी नाम अति सरूप सुंदरि अभिराम ॥
ढोला साथइ लागी प्रीति अनुरागसुं अणगइ चीति ।
नळवर गय परणी आवियो करि मॅंडाण्य पइसारउ कीयो ॥
परएवइ मारूवणी संभारि, ढोलउ तेह न आणइ याद ।
पूगळ दिसा न आवइ कोइ, मारूवणीनी नीरखि न होइ ॥
पनरइ बरस गया जब वही सउदागर इक आव्यउ सही ।
तिणि छानइ बार घोडा भला ढोलइ मोलविया वसु-वला ॥
ढोलउ नितु फेरवइ प्रभाति सउदागर पणि तेडइ साथि ।
मगति जुगति कीमत वसु-वणी पूरी हरेव साख्य वसुकणी ॥
मास पाँच सउदागर रहउ लेइ मोल घरीनइ बहउ ।
बहठउ रहतउ पूगळि आवियउ, फिरति राजा मनवाधियउ ॥

दूहा

साँझ समै सउदागरी आप तणै उवारि ।
बइठी गउखै तिणि समइ नयणी निरखी नारि ॥

[इसके आगे मूल के ८८ ८९, ९० और ९१ नंबरवाले दूहे हैं ।]

चउपइ

पिंगळराय तणउ प्रवास बइठउ घउ सउदागर पासि ।
पुरि हुँती माँडीनइ पणी, बात कही मारूवणी तणी ॥
बइठउ सउदागर इम भणइ, राजकुमार नळवर गढि रहइ ।
मइ घोडा तिहाँ जइ वेचिया, ढोला सुं आदरथ किया ॥
तेहनइ घरि मालवणी नारि अपछर तणी अधिक अणुहारि ।
ढोलारइ तिणसुं बहु प्रीति अनुरागइ लगि लागो चीत ॥
रूपइ रूडउ ते राजान कुमर न कोई तास समान ।
परघर आप ताप विहुणै, तापे मोटे तेथ कुंवर ॥
रहिया पाँच मास तिणि ठामि, निसि दिनि हूँता ढोला पासि ।
समाचार सहि ढोला तणा कहिया सउदागर अति भला ॥
मारूवणी तब चिति चमकणी आनी बातों सहि साँभळी ।
लागे मनि सउदागरि (कही) मारूवणी हीयडै गहगही ॥
सो मा पृ ९१ (११०–११९)

आगा चढिया चित्तर किमाड, दीनावटी बोळ्यणें माड ।
आज भाई वेदन अधु तयार रम्यो हठेंथ नहिं कारण किसार ॥
सुखी सुहि वालेंम तणी, विरह विथा लिखि छोर मुझ भणी ।
पीतम पवइ अमारउ जाइ, मावइ सुप वे मेळउ थाय ॥
तपी नमय तव नींदरें मुक्क मारुवणी आँषि नहि मिलइ ।
मम्मराति बउली वेवळइ, ऊमादे विरह लेवइ ॥
किरि किरि मारवणी आव, मरे न आवइ केवाइ काबि ।
बोलायता करि वे दे सिरौं माता आवी मारू विरौं ॥
माता आनी कमी रहइ, तपी प्रवइ मारवणी कहइ ।
सुम्नाइ नींद्र न आवइ आव, विरह पिमापी मूँकइ लाव ॥
कुंभडियाँ मिळि दूहा कहइ माता साँभळि छाँनी रहइ ।
वार वार प्रीतम संभरइ, करि विलाप नै आँसू झरइ ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ५१ ५२, ५३ और ५४ नंबर के दूहे हैं।]

प्रीतम तणा सँदेसड़ा मारवणी कहिवाह ।
माता मन माहि चाविसो विरह विलाप वधाह ॥

[इसके आगे मूल के ७६, ८ ८१ ८२, और ६६ नंबर के दूहे हैं।]

चउपई

इणि प्रस्तावे साल्हकुमार, मालवणीसुं प्रीति अपार ।
वे पहरे उमाइम तणे पोपट के मंदिर के आपणे ॥
सुखरेमइ मालवणि संघाति बैठो करि प्रीति सुप बात ।
चितवइ माता पंपावती अलगाणी दीठी मालवी ॥
दे देपी लीजियो कुमार, आनी निद्रा करइ ति वार ।
माता आवी ऊभी रही कास्यो सुन पोपट के सही ॥
वहू कन्या चवदी इक वार, ओरीसउ मोम्पउ लिपि वार ।
देता लागी अधिकी वार आवणो मन मारे मांझार ॥
तात वहू प्रवर ऊपरइ, कोइ बड़ाई एवडी करे ।
जो मारवणी ऊभी रही, तो तूँ करे बड़ाई सही ॥
पिंगळराज तणी पदमिनी ऊभी रही वहू मुझ तणी ।
तब तूं न्याय करइ मांझार, हम करी माता गई ति वारि ॥

मीनउ कोद महाजिमउ मारू जोबनियाँह ॥
मारवणी तहमुखि कह्या दूहा लिखि संदेस ।
मन मारू मेळावा करइ पधारउ उणि देसि ॥
तहमुखि ढोलाइ पूछिया मारू तणा वृतंति ।
ढोलउ नइ मारू मिलइ बेसारी एकंति ॥
मारे मारवणी तणे थारू करण बणाय ।
मारू जिसि निरखी नहीं जनम लियाँ अगमाय ॥
मारू ढोलानै कहइ कीजइ सीष पसाउ ।
इयाँरी बात (१८) कुसालाभ बोले पिंगळ राउ ॥
चउ ए मोला वाकिस्पइ मुझ पायइ संदेस ।
तउ मारवणी मालवी पामसि करइ प्रवेस ॥

चउपई

सालकुमरनइ करी जुहार, करइ बीनती मागिणिहार ।
जिहुँ मोकलउ अमरहूँ बोल करी आबी तुम्ह पासे ढोल ॥
तिण चउ हूँ तिम आपिसि नहीं मारू आगलि प्रवेसे सही ।
मया करीनइ बे महाराज, सीष पसाउ करउ हम आज ॥
बीस हुरी आपिया प्रहास, फदिया दिया लहस पंचास ।
वागा वस अपूरब वळी संतोषीया पूगो मन रळी ॥
मारू माट दियउ थिहाँ साथि आपि मनगाँठि ठेलनइ आपि ।
मया प्रत्या मारू मसी, मोकळिया मीसइ मनि वसी ॥
मारू माट नै मागिणहार, सीष मागि चाल्या अणगार ।
आदेसा मिलि सालकुमार, पहुचायो आम्हो तिथि वार ॥

दूहा

संदेसा नहि लषिगता कहियाँ जिमाँ सँभालि ।
मारवणी मनि संक्यो सीष देइ ततकाळ ॥
मारू माट, दविसउ दिढि तणयाँ कहियाइ ।
कीजइ मारू आमउ, थारों के मिळियाइ ॥
बिरोंसिया बिरही किमउ रपे इम न करेसि ।
ढोलाँ तयाँ संदेसवा प्रभणाँ कहाँ करेसु ॥

सोरठा

मह मुँ मारू एम ढोलउ मया छमाड़ियउ ।
पंथ बिदुणा एम मन सीचाव्यउ मऊपिसाइ ॥

[इसके आगे मूल का २०१ नंबर का दूहा है ।]

चउपई

कुमरि पद्मारयो माऊ मग्र, मारू मिलिया तबउ छमाइ ।
चिंता करठी आम्यो घरे चालण तणी उवाई करे ॥
ढोला मनि अति चिंता भयी, पाँति पयी मारवणी तणी ।
आगीनइ पौख्यउ आखाणि, मालवणी आवी प्रिय पाणि ॥
दीठउ प्रीतम चिंति उदासि मालवणी पूछियो पचासि ।
कुमर कहो किसि कारणि बीये ढीलइ आव उचाल्यो होमे ॥
आयउ तुम्ह मुँ सारथ चेइ मालवणी संतोषइ लोई ।
चल्ली कहीं पचासे बाव मारू माटे चेली चाव ॥
पिंगलराय कन्या आखिया साल्हकुमरि ते तेडाविया ।
पूगळ मझ ने प्रिय भुव भयी कही सुखि मारवणी तणी ॥
मारू मग्र ने साल्हकुमार आव्या तेडी मागिणहार ।
समाचार सुणि मारू तणा ढोलइ हरख किया अति घणा ॥
सीप देई ते पहुचाविया माऊ मग्र पथि लायइ दिया ।
भया गरव दिया तिवारयौ करइ उवाई हालण तणी ॥
कही पचासे समली बाव, मालवणी आवी प्रिय पासि ।
हासा मिसी पूछइ किरतंत, कोइ सबींता दोलउ कंत ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के २१६ २१७, २२१ २२३ २२६ २२८, २३ २२८ (प्रथम पंक्ति २३ का पूर्वार्ध एवं द्वितीय पंक्ति २२८ का पूर्वार्ध) २३६ २३२, २३३, २३३, २३८ २३६ २४ २४१, २४२ २४३ २४४ २५१, २५ २५३, २७ , २५६, २५७, २५१ २५८, २६१, २६२ २७१, २७४ और २७७ नंबर के दूहे हैं ।]

चउपई

मारवणीसुँ प्रेम अपार, ढीलउ रहियउ मास बे चारि ।
सुंदरि नेह किलूधउ सही ढोइ मारवणी वीसरइ नहीं ॥

इणि गामे नर सहु अकाय, आवइ नही करइ संभाय ।
अरी बीबी सहु परिहरउ पत्तउ अखियउ मोहरउ करउ ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ११३ और ११५ नंबर के दूहे हैं ।]

रे ढाँढा करि बोहड़ी करइ कराँरी आखि ।
ऊकरडे ओझ पुथे सो आप डंभायो आखि ॥

चउपइ

करहउ मुँह्यउ करग मसूरि प्रिय आग (ग) इम चंपइ नारि ।
जउ हाक्यिा धीमउ मन परउ, तउ पतउ गहियउ मारउ करउ ॥
जाँ लगि वैद नइ तूँ प्रिय पासि, ताँ लगि मीत म पाड़ महासि ।
आमणी निद्रा व्यापइ अंगि, तिणि वेळ प्रिय चल्यउ पवंगि ॥
मी पासे इम परि मागती पनरइ बीड़ रही जागती ।
आमणी नींदे व्यापी नारि तउ करहउ आयो मेल्यउ बारि ॥
सोनरवा पाहोरा साथि सोवन बाळिय कंबड़ी हाथि ।
सोनारा घूघरवा गळै, पंथीनी परि मारगि पुळइ ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के १४५, १४८, १४६ १११ ११८, ११६ १७६, ११२, १८१ १८४ १८० १८८, १८६ और ११ नंबर के दूहे हैं ।][१]

यळ मझार ऊथाळउ आयो ऊगयउ सूर ।
पथवा मनि आयाँह मुओ फिरय पखारयउ सूर ॥

[इसके आगे मूल के १६१, १६२ १६३, १७३, १७७ १६७ और १६६ नंबर के दूहे हैं ।]

चउपइ

पूगउ पंथइ ढोलउ वरइ, मूंगानइ माळवणी करइ ।
जिम जिम वीरिद नइ पाहुड़ बाळि, पंथी ए पीळपयउ पाळि ॥
तब आयाणि सूयउ ऊठियो, पहरि एक पंथी गयउ ।
ढोलउ सरवरि पाँणिय करइ सूतो आप इम ऊचरइ ॥

[१]मूल का ११६ नंबर का दूहा मिलाओ ।

दूहा

[इसके आगे मूल के ४०२ ४०६ और ४०८ नंबर के दूहे हैं ।]

चउपई

सूडो विरोंधी पाछउ वळे, आवे मारूवणीनइ मिळे ।
ढोला तणी बात सहि कही मारवणी अणबोली रही ॥
सरवरथी ढोलो ऊतरे, करह पंथि जिम पगला भरे ।
चंदेरी नइडे आवीयो, ठिणइ वणिक इक बोलावियो ॥
कुण परदेसी जाइसि किहाँ मारवइ काम अछे इक तिहाँ ।
ढोलउ कउ राखउ मनि रहे विवहारियो ति वारइ कहइ ॥
जो कागळ मारवइ ले जाइ, आपाँ सोना मोहर दाइ ।
कोसच बीस अछइ ते गाम, मुझ कागळ आपउ तिणि ठामि ॥
ढोलउ देइनइ कहइ ति वारि, ऊभा रहता तणी नही वार ।
विवहारियउ करे वेसास ते नापुरिस म मूँकि निरास ॥
ढोलउ कहइ, हो व्यवहारिया, जो कारिज कोये तारिया ।
ऊठ उपरि पूठइ थिर थापि कागळ लिखिनइ मुझनइ आपि ॥
ऊभे ऊठि चढे ते साह, कागळ लिखवा तणी उमाहि ।
ढोलउ करह चलावइ जुआँ ऊपरि बइठउ कागळ लिखइ ॥
कागळ लिखिनइ पूरा कीया तिणइ वेहे गामइ आविया ।
नाइ सवारी पूछइ कोइ पइ न गाम सही ते होइ ॥
विवहारिया अचंभम थया, बाँधी वास फिरी तन जात ।
एही वेळा जिम आवियो हियडउ फूटि हंस ऊडियो ॥
ढोलउ पुष्कर सरवर तीरि, ऊपरिया करहउ पाखियो नीर ।
कुण सरवर नर इक पूछियो तिणि पुष्कर तीरथ दाखियो ॥
ढोलउ कहइ सरोवर माँभि, आवर लिख्या पुरप दाखवि ।
तिणे सामि गई देखियो, परवना ते नामउ बाँधियउ ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ४१६ ४१७ ४१२ और ४१८ नंबर के दूहे हैं ।]

जहाँ चीना कर ईंधण मीठी दूँब सरक्क ।
ते जो मन बंधन करि मरे न पराही भक्क ॥

[इसके आगे मूल का ४२४ नंबर का दूहा है ।]

पिंगळ राजा हरखनौ, चारण कोइ चाउ।
साल्हकुमर तिणि बोलाव्यो, तब बोलाविणो माउ॥
[इसके आगे मूल के ४४२ और ४४४ नंबर के दूहे हैं।]
एक ज चारण पंथि सिरि, बोई कम्हा बाइ।
ढोलउ चालतउ देखि करि, तिणि मनि चपउ उपाइ॥

चउपई

साल्हकुमर सुख वचन सु सुणउ, ए चारण ऊमरराज तणउ।
मारू है माँगण आवियो, पिंगळ है वेसा काल्हियो॥
ऊमर मारवणीनइ भाव, परणा वंछ देवइ महाराव।
पिंगळराव न करइ मावरउ, मोटॉनइ न पडइ पाँतरउ॥
ढोला सुख सनाव सु सुणी, कुँमरी मूँक्यों हूँ तुम्ह भणी।
कउ मारू अवगुण साँभळे (?) तो किम ढोलो पाछउ वळै॥
ढोला साँभळि माहरी बात ऊमर मेलेसइ पवी घात।
मारवणीसुं लागो मोह गुमरेसुं मगी मानिस्सइ होइ॥
[इसके आगे मूल का ४५ नंबर का दूहा है।]

चउपई

तिणि वातइ संभळि गहगह्यो, ढोलउ पूगळि जावइ बहइ।
चारहइ पिंगळराय तणी, गामि एक आम्हउ प्रादुवाउ॥
तिणि ढोलउ दीठउ महाराज, मारे आगि धीमो सुमराज।
ऊठ पाँचिनइ ऊमो रह्यो पिंगळरा सहेला बहइ॥
वमाचार मारवणी तणा करिया हरख थया अति घणा।
माऊमार नै माँमिणहार, आया वउ हुइ साल्हकुमार॥

दूहा

बउ वर दिठौ मारवइ को सनियाय प्रगाइ।
गलि पोमाइ रूपणो लो मयणो लोचन॥
[इसके आगे मूल के ४०१ और ४१२ नंबर के दूहे हैं।]
वर सु गयवर पंग बरगु साहिम दंत सुवेज।
कुँमरी मावन (?) मोरियाँ, पंकज जैसा नेत्र॥
सदा उलखी मधि सखि, मवैणी सँग मम्मइ।
ईट मुख रूप वि, पंथी कइ वाइ॥
[इसके आगे मूल के ४३४ ४६८, ४८४ ४८५ और ४७५ नंबर के दूहे हैं।]

तिणि वेळा ऊमर-सूमरउ इणि वेळा वो पळ सूमरउ ।
मारगि सिरि ढोलउ मारेसि मारवणी परिणास करेसि ॥
इसउ आलोच करइ सूमरउ नगर पासि मगइ एकलउ ।
दस पूगळ नयरी मगइ ढोलउ मारू रंगइ रमईं ॥
जिणि वेळा ढोलउ नीकळइ, वेळा चउळाणा सायर करइ ।
सोम करेवउ इयो चाउरउ पडिस्याइ रणे दुमर्हां पीवरउ ॥
तो हूँ ऊमर साचउ राय इणि वेळा चउ लेसऊँ राउ ।
च्यारि पहुर मारगि लागिस्यइ साँझ समय नळवर आइस्यइ ॥
मास एक रहउ सासरइ चालण तणी सजाइ करइ ।
सहू अउळ्खणउ साथइ करी माँगे सीख हरख मनि धरी ॥
सगा सखीआ एकणि सगि मारू मोकळिणी मनि रंगि ।
प्रस्थानो समहूरति कियउ पिंगळ पहुचावा आवियो ॥
सायइ सउ कीया असवार कीयउ इलायउ मंगळचार ।
संबळ हीराबणा सहु करी मुकळावइ ऊमा देवड़ी ॥
सपरिवार मिल्या सहु कोइ करइउ मले पळायवउ कोइ ।
पूगळ नयरीई पाछिया मात पिता सहु मुकळाविया ॥
कोसच्यारि इक दिन चल्या चाकउ लाख पछ मायइ रह्या ।
अजवारे ऊतारा कीया भोजन परिघळ अणाविया ॥
साँझ पडी आथमियो सूर करइ सायरा बिछावण्या भूर ।
ढोला पापिलि चउकी फिरइ मारू स्वीमु निद्रा करइ ॥
घणी वार चागी वरण कंठ, निद्रा भरि पउढ्या निरचंत ।
तिणि मुईं फिरतउ आयो नाग, आयो ढोला तणइ अभागि ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के १ १ १ १ २ १ ३, १ ५, १ १ १ ७, १ ८ और ११ नंबर के दूहे हैं ।]

चउपई

ढोलाचे मन विमणा किया, चंपकूल एहवा थया ।
बार ढोलउ करइ वेचाल अधि अधि आवइ मारू-स्वास ॥
सरि साथी समझावइ घणुं बीनती एक अम्हारी सुणउ ।
पिंगळगयनी राजकुमारि चंपावती मारू अणुहारि ॥
ढो मा दू ११ (११ –१२)

ढोलउ मारगि करहउ चाल्यो, आडो एक विषम पड़ आल्यौ।
कोई एक पड़ आडो फिरइ, मारू देवी इम ऊचरइ॥

दूहा

[इसके आगे मूल का ६२७ नंबर का दूहा है।]

चउपई

मारगि चाल्याँ साँम्हो चार, ऊतरिया दीठा असवार।
ऊमर ग्रोलउ आयइ नहीं ढोलउ आवि मल्यायउ सही॥
ऊँमर मन महे हरखियो, जिम ढोलो नयणे निरखियउ।
अधकोसा रहियो लहु भेद जिम ढोलउ वेसासै होइ॥
सगळ मनइ विमासी बात चारू आइ जुड़ी छइ घात।
ढोलउ विलरउ आयो बहइ, ऊमर ऊठीनइ इम कहइ॥
थाँह ठकुराल आइउ बहइ आवउ इहां जु बइसी रहइ।
म्हे पधि चाल्याँ आपधि आवि आवो तुम्हे तुम्हारइ ठामि॥
ऊमर मनि मारवणी मोह, ढोला उपरि माँड्यउ द्रोह।
कूकइ मनि आदर धइ घणुं करइ उपंधी ढोला तणउ॥
आदर देइ आडा फिरया करहउ देखीनइ ऊतरया।
मुहरी मवली मारू हाथि, कह्यो करइ परेळी साथि॥
लहु भो बहठा एकणि पंति आगइ भुंब बजावइ तंति।
गावइ गावण मधुरइ सादि मारवणी लीणी विधि नादि॥
साथइ अमल मद भणऊक, मने द्रोहनइ पाई थाक।
ढोलउ अति परिछ्ल मद पीयइ पीवा आळी लाकर बइ॥
ऊमर छाप्यउ मुखइ कहइ, ते ढुमणी लहु परि लहइ।
ढोला नइ मारवणी तणी पीहररी आयइ ढुंमणी॥
अमना सगळा मरकत करइ मारूँवणी जोवा मनि धरइ।
तिणि बेळाँ गावणाँ डूँमणी, कही सँमि मारवणी मणी॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ६१ ६११ और ६१२ नंबर के दूहे हैं।]

चउपई

दूहउ मारवणी साँमळ्यो पहठी मीक चित्त मळफळ्यो।
आकुल व्याकुळ थीता भमर डूमणी वळी ऊचरइ॥

ढोलइ ऊँट्यइ चढइ चढिउ, ऊमर तोही नवि आपणउ ।
मारवणी मनि चिंत करइ, मारुरा पग रवि भिन मरइ ॥
ढोलउ पूछइ काँइ थया रई किणि कारणि मनि चिंता थई ।
स्वामी इसवर ऊमर तथा, तापी तरक तुरकी भया ॥
करइउ मति पंचइ धाकिस्यइ तउ कलक मुझनइ लागिस्यइ ।
करिस्यइ मारवणीकइ आपि, ऊमरि खासइ विणासउ आप ॥
बळ्यउ ढोलउ चयनइ कहइ करइ निरति मुँख नवि कहइ ।
मारगि पूगढि आयोकरे, पछपि पुहरे पुहकर परइ ॥
मिलिसो मुझ इक व्यवहारिसो, मरौं वेहनो एक करस धारिसो ।
चोमप वीठ ऊठि चाडिसो लिखिसो कागळ ऊतारिसो ॥
कागळ लिख्यौं बोई वार चोमप वीथ लैंप्या लिखि चार ।
चिंता म करि मूप मन माहि, एक दिवस मुझ पहुचण माहि ॥
इणइ अवसरइ विहाणी राति ऊगयउ सूर हूयउ परभाव ।
चारण इक आयो तिण वार, सामहउ बोई कियो जुहार ॥
संभळि राउत, चारण कहइ, कपडउ कूँटियउ बोररउ बहइ ।
केहो अवगुण कपडप कियो ऊपरि भार पाठ कूटियउ ॥
पइ वात ढोले साँभळी विलपउ थयो विमासइ बळी ।
मुझ बरांवउ मोल्ह पाम्यउ, कूँट न छोडी ऊपरि चाम्यउ ॥
कहारीं‍ई भली करी, चारणइ ने दीधी छुरी ।
करिहूं वाटि पटोळी भणी बेर न दीधी चारण भणी ॥
ढोलउ चारण प्रति इम कहइ आपे करहउ पंथ हरिय बहइ ।
माँभी कइ ऊमर सूमरउ परे पधारो गेहइ परउ ॥
वेहनइ छूपी तयउ महिनाथ पहोसी कपी लहिनाथ ।
एह दिपावीनइ इम कइ हिवइ रये अगावधि बहइ ॥
सूरज एक करे मारउ, मरठइ मिलइ ऊमर सूमरउ ।
ढोलइ घुर हांपी प्रति भणी भली वात कइ ऊमर भणी ॥

दूहा

गहिरपवन बाजइ हुरी न मारि न मारि ।
थे न गुणा पर पांगुरइ ते मनी मरिस्यइ मारि ॥
दुहरे करो हांथिया थे पड दूझ दुंग ।

* ऊमर आगइ इम कहे, मइं मारिवी तुरंग ॥
पंथी, एक संदेसड़उ ऊमर कहे दुर्लभ ।
कहजो ते गल लंघिया, जे फल हुआ दुल्लभ ॥

[इसके आगे मूल का ६४८ नंबर का दूहा है]

चउपई

तिहाँ ढोलउ आयो संभरइ, आगउ मनि आणंद धरइ ।
चारण देखइ मारगि पुलइ, बीजइ दिनि ऊमर वे मिलइ ॥
ऊमर पाइ उतावला धरइ ति इसड अति आकुलइ ।
पूछइ वातां मारगतणी, गढवी कहइ निरति भ्रम भणी ॥
भ्रम आगलि ऊठी इक घड़ी भ्रम ऊधि विधि सुर जेवी रहइ ।
चारण कहि बुधि ऊमर राय कोप्या इसवर मारउ काँइ ॥
ऊठी तुमि तिहुँ दिनि आंवरउ लोहे करइ आइ साँमरो ।
कुँवरे करइ कल लंघिया कुरी पटोळी गुमनइ दीया ॥
वे पहुता नळवरगढ मझी तिथि आपइ नारी पदमिनी ।
हूँ भ(? भो) लईं न मरम नवि लहईं हुओ एक संदेसउ कहूँ ॥
ऊमर मुहडउ विलखउ थयो, ते सहिनाण नमण निरखीयो ।
मारगि मूँक्या चौस महास, चारण थयो थयो निरास ॥
सिसिरित मारगि पाछउ वळइ पीछे विधि दीसउ कळकळइ ।
वळिनइ आम्यो आपणि गामि, देस विदेस गमाड़ी माम ॥
ऊमर आयो पाछउ वळी बात सहू पूगलि साँभळी ।
कुसळ खेम मारवणी नारि, पहुता नळवरि साल्हकुमार ॥
बीजइ दिनि नळवर गढि गया, वाढी माहिँ उतारा दीया ।
राजा सुत आव्यउ, साँभळी साम्हउ आव्यउ नळवर गढी मझी ॥
पइसारउ अमूरति करइ जन जयकार मइ ऊचरइ ।
विवागाइय मंगळ मरमणउ, ढोलउ मारवणी संजुत ॥
मारवणीसुं वाध्यउ नेह अमरा मीठउ अधिक सनेह ।
पंच सबद बाजइ वाजित्र दाळइ चामर छिरिवर छत्र ॥
मंगळ मंगळ धवळ धुनि करइ वारू विप्र वेद ऊचरइ ।
ओच्छव घणुं कयो मंडाण पइसारउ कीन्हो परमाण ॥
सात भूमि मंदिर उत्तुंगि मारवणी वाधी मन रंगि ।

---

* मूल का १०० नंबर का दूहा मिलाओ ।

\बाती बात पंचसइ पाखि, मारू मनि अति पूगी आस ॥
पगि ससुरानइ कियो प्रणाम, तिहाँ दीया मोटा सउ गाम।
सासू सयामी कियो जुहार, दीया सहि सोळन सिणगार ॥
हिव पूगळईती ऊमह्यउ माड मार से आम्मउ मयाउ।
सामइ चया करइ केकाण सेज सुखासण नइ मंडाण ॥
पिंगळ राजा साथ सई सीम लगइ मेळाव्या सही।
सउ असवार साथइ तिथि दीया कुशलखेम नळवरि आविया ॥
तिहाँ सगळउ माँडियउ अठमल्याउ संतोषियउ परियण आपणउ।
लाग हुवा सहि लियवा दिया हम सोभाग मारवणी लिया ॥
ढोलइ राइ मारूसउँ प्रीति चतुरपणाइ लागउ मिन चित्त।
दिनि दिनि अधिका करइ पसाउ विलसरियउ मारू सम नाथ ॥
मारवणी माळवणी मिळइ वेवइ बइठी ढोला कन्हइ।
मन मोहइ अधिकेरो माय पीहर ज्यौं करइ वणाव ॥
मोटउ महियळि माळव देस सुंदर रमणी सुंदर वेस।
बाणू सहस अठारह लाख, राता गाम मणी अति साथ ॥
पगि पगि नदियाँ नीर निवाण मया गरथ नइ लोक सुजाण।
समळ वरवे होर सुगाळ सुपनंतरि नवि दुकइ दुकाळ ॥
अधिका केता कहूँ वखाण देसाँ माँहि मुकुट समान।
माळवणीनइ ढोलउ कहइ तूँ देसाँ तणी निरति नवि लहइ ॥
ढोलइ बिमि कहिया पखळा दीवा देस अउर सहि भला।
मारवाडी वरती अति बुरी माँणस जू वेडँ दुँह परी ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ६५६ ६५८, ६५७ ६५९ ६६१ और ६६२ नंबर के दूहे हैं।]

चउपई

अति अणगुण मारू भुइ-तणा माळवणी कहिया अति घणा।
ढोलउ बात सुणी गहगहइ इणिनइ मारवणी प्रति इम कहइ ॥
कहि मारवणी ताहरउ देस केहवा माणस केहवा वेस।
बळती मारवणी इम कहइ मीप आपे सगळी परि लहइ ॥
मारवणीसुं मनरी प्रीति ढोलउ आगे देसाँ रीति।
समळा देस भला छइ सही पणि को मारू उपम नहीं ॥

दूहा

[इसके आगे मूल के ६६६ ६६७ ६६८, ६७ और ६७१ नंबर के दूहे हैं।]

चउपई

मोटा महल अनइ माळीया होइ पंच काचे दाळिया ।
गउख अपूरब चंदवा तणा, रतन जडित मोती झूमणा ॥
पँचवरण करया पडळया पल्यंक मनि गमता सुख सेज मयंक ।
सोळि भिन्ने महलि आपणे कृष्णागर वासित धूपणे ॥
साँझ समय सोळह सिंगार वेसइ रमणी करइ अपार ।
राति दिवस प्रिय सायइ रमइ सुखमांहि तासुनइ नमइ ॥
मारवणीनइ वारू होइ वारउ एक माळवणी होइ ।
करइ सेव दिन प्रति नवनवा, इंद्रलोकि अपछर जेहवा ॥
सुंदरि अति माळवणी नारि तोइ नहीं मारू अणुहारि ।
रूप देखि मायइ सहु कोइ परतखि मारू अपछर होइ ॥
एक कहइ दुल्ह करतार, पूनी गोरि रच्ये परकारि ।
सो मारवणी ढोलइ मिली जिहु छीपी मोती जुडी ॥
माळवणीसु प्रेम अपार, बालपणाइ संतोष अपार ।
ढोली मारवणीसु पचउठे लागो बहु मन ढोला तणउ ॥
विहुं तणइ सुख संतान दिन दिन कंत अधिक बहु मान ।
मनवंछित ते पामइ भोग सुख संपति सजन संयोग ॥

गाइ तातणइ पद समाय दोहा नइ चउपई कराय ।
वाचक रावळ श्रीहरिराज जोडी तासु कुतूहल काजि ॥
केवाईं परहँ हुंती सांभळी विविध परि मइ जोडी मन रळी ।
दूहा घणा पुराणा अछइ चउपइ बंध किया मइँ पछइ ॥
अधिकउ ओछउ जोअउ वहू मुझनी दे सा तहिवउ वहू ।
पढिवउ गुणी विहों पाँतरउ, ठेइ विचारि करिवो परउ ॥
संवत सोळह सत्तोतरइ आखा त्रीजि दिवसि मनि धरइ ।
जोडी जेसलमेरि मझारि वंछया सुख पामइ संसारि ॥
संभळि सगुण चतुर गहगहइ वाचक कुशललाभ इम कहइ ।
रिद्धि वृद्धि सुख संपति सदा सांभळतां पामइ संपदा ॥
इति श्री ढोला मारवणी चउपइ संपूर्ण ।

[यह प्रति बीकानेर राज्य-पुस्तकालय में है। यह संवत् १७२१ के लगभग की लिखी हुई है। इसका पाठ अत्यंत शुद्ध है। इसका बीच का एक पत्र जिसमें दोहा नं० २१५ से २५६ एवं २५७ का कुछ अंश लिखा हुआ था, नष्ट हो गया है।]

ढोला मारवणी दूहा

श्रीगणेशाय नमः

दूहा

सकल सुरासुर सांमिनी सुणि माता सरसति।
विनय करीनै वीनवुं मुझ द्यौ अविरल मति॥ १॥
बोलौं नवरस पथि सुणि, सविहुं सुरि सिणगार।
रागें सुर नर रंजीवै अबला तणु आधार॥ २॥
वचन विलास, विनोद रस हाव भाव रति हास।
प्रेम प्रीति संजोग सुख ए सिणगार आवास॥ ३॥
गाहा गूढा गीत गुण उकति कथा कल्लोल।
चतुर तणा चित रंजवा कहीये कवि कल्लोल॥ ४॥

गाहा

मणहर नवरस मज्झे सुंदर मारीया सरस संबंधा।
निरवम कवियहि निबद्धा सुणंतु सवणा कथा समुच्चा॥ ५॥
नळवर नयर नरिंदो नळराय सुरूप साल्हकुमार वरो।
पिंग (ग्र) राय दूहा वनिता मारवणी सु वर्णविसु॥ ६॥

कवित्त

पायो पंल पवंग, अंग अंगो सुरकांणी।
बीया निर्मल वस्त्र निर्मल गंगानो पाणी॥
पट्टकूल पहुवी दल मोतीयर दसण।
कुंवर वरती चंद विन देदेवरी सिणगार॥

तिम चंद बदन चंपक वरण इव झबकै दामिनी ।
सारंग नयण संसार इणि मनोहर मारू कॉमिनी ॥ ७ ॥
मुरधर देस मझारि सकळ वय वन रमियौ ।
नामैं पूगळ नयर पुहवि सगळै परसिद्धौ ॥
राज करै रिमराह प्रगट पिंगळ भिपतीपति ।
प्रतपै जग परताप दोंन जळहर जिम दीपति ॥
देवडी नाम रूमा तरणि मारवणी तसु धू कुमरि ।
चोसठि कळा सुंदरि चतुर कथा तासु कहिसुं सुपरि ॥ ८ ॥

दूहा

गिर अदार आबू धणी गढ जाळोर दुरंग ।
तिहाँ तार्मेवसी देवडो अमरसी मायन अभंग ॥ ९ ॥
चंद वदनि चंपक वरणि अहर अलता रंग ।
पंचर नयणी पीण कटि चंदन परिमळ चंग ॥ १ ॥
अति अद्भुत संसार इण नारी रूप रतन्न ।
मांहे रूमा देवडी कुमरी कंचनवरन्न ॥ ११ ॥
जो सुक सारीको सुणे मामिषु तिणि मरतार ।
तो राणी नैं काम ज्युं कर मेलै करतार ॥ १२ ॥
पिंगळने पिंगळ करे, करि आखाँ परियाँण ।
दिन एकणमैं देवडी जिम आवै इण ठाँण ॥ १३ ॥
आयो झोरू तूं तरी तूं सेवक हूं स्वामि ।
आगे हैं परधानीयो करि बळि एतो काम ॥ १४ ॥
जोयनगिरिहूं सिहूँ दिसे रूधा मारग घाट ।
पंथी को पूछळ तणो वही न लक्कै वाट ॥ १५ ॥
कटकी को आवे करौं तो मन रूसै राह ।
तार्मेवसी रूठे पछे दंड न देवे वाह ॥ १६ ॥
वचन सुणी राजा तणो पिंगळ किय प्रणाम ।
तो हूं झोरू थारो जो सारूँ ए काम ॥ १७ ॥
सुणी बात रिणधवळ सहु चाळी चयो कुमार ।
पाल्य पहुतो आपणे आरति करि अपार ॥
चाह्व तार्मेवसी सुपरि मोरे करि मंडाण ।
कुमारेरो ओळखो इण परी चढ्यो प्रमाण ॥ १९ ॥

पटराणी पिंगळ तणी अपछरनै अणुहारि ।
जाणे रूमा देवडी सुंदरि इण संसारि ॥ २० ॥
सुंदरि सोळ सिंगार सजि सेज पधारी संझि ।
प्राणनाथ प्रीतम मिल्यौ फिर घरि बैठो रंझि ॥ २१ ॥

बडा दूहा

अद्भुत रूप अनंग जग जोवे इण परि जपै ।
कहौ उपम कही कहाँ राणी परतपि रैंम ॥ २२ ॥
प्रियसुं अधिकौ प्रेम रमया दिवस रंगै रमैं ।
कुसुम जाणि केतकि तणौ मोह्यौ मधुकर प्रेम ॥ २३ ॥
मास्यो चोद मेहि ऊभी धरिण साँमुही ।
मोहण बेली मारवी ताह उपनी पेटि ॥ २४ ॥

दूहा

भूपति (मारू) मारूनैं कीधौ कोडि पसाउ ।
चाल्यौ नळवर गढ मन्ही अणमी पिंगळराउ ॥ २५ ॥
बरस दोढ बोळ्या थिते तिसै देव न बुठो देस ।
पड पाळे धन लोक सहि वसिया गया विदेस ॥ २६ ॥
मारुधाणिकै देस महि एक न आवै रज्जु ।
/ कदी होइ अवरस्या कै फाका कै विज्जु ॥ २७ ॥
पिंगल परीखण पूछिओ; कीजै केवडि काइ ।
कहै ठाम सु अच्छौ जोपि बसीजै जाइ ॥ २८ ॥
चळ सड अबरण छोडिआ देसे दुख दुबाह ।
पुहकर लइ पाँची अपळ संमळि पिंगळराउ ॥ २९ ॥

[इसके आगे मूल के ३० ३१ ३२ नंबर के दूहे हैं ।]

इण अवसरि धण ऊँनम्यौ प्रगट्यौ पावस मास ।
पाछै पिंगळराइनै कीधा उतारे वास ॥ ३३ ॥
ऊनमिओ उत्तर दिसा गाजय गरजै घोर ।
दह दिसि चमकै दामिनी; मंडै तंडव मोर ॥ ३४ ॥
च्यारि मास निरमळ रह्या सरवर तणौ मसंग ।
पिंगळ नै नळ भूपती मिळिया मन नै रंग ॥ ३५ ॥
सौंपा वागा सावद्द कोडीधज केकाँण ।
आप्यो ताँमा आणी (पि) या प्रीति चढी परमाण ॥ ३६ ॥

[यह प्रति बीकानेर राज्य पुस्तकालय में वर्तमान है। यह संवत् १७५२ में लिखी गई थी। इसका क्रम जोधपुरीय कथानक से मिलता है यद्यपि उसकी भाँति इसमें प्रस्तावना नहीं है।]

ढोलै-मारूरा दूहा

श्री गणेशाय नमः

[पहले मूल के १ २ ३ ४ ५, ६ ७ ८ और ९ नंबर के दूहे हैं।]

मा रूमादे देवड़ी नानो सांमेंवसीह।
पिंगळराव पमाररी कुमरी मारवणीह ॥१॥

[इसके आगे मूल के १ ११ १२ १३ १४ १६ १७ १८, १९ २ २१, ७० २३ २७ ५९ २८, ३ ३१ ३२ ३३ और ३४ नंबर के दूहे हैं।]

बाबहिया रत पंखीया मगर न लाजी रेस।
छती राखिद संभरपो बात न लखन देस ॥२२॥

[इसके आगे मूल के ३८ ५१ ६ , ६२, ६५ ६४ ५३, ५४, ×, ५७ ६७ और ९८ नंबर के दूहे हैं।]

वाहि प्रीतम संदेसड़ा मारवणी कहियाँह।
माता मन महि काँपियो विरह वियाप थयाह ॥४५॥

[इसके आगे मूल के ८१ ८ ८३ और ८५ नंबर के दूहे हैं।]

इक दिन ढोलामर फिरै, आप तणै दरबार।
बैठा हुतै पिय अवसरै, नजरे निरखी नार ॥५ ॥

[इसके आगे मूल के ८० ८९ ९ , ९१ ९३ ९४ ९५, ९६ × और ८२ नंबर के दूहे हैं।]

पिंगळ मन चिंता हुई करै मालवणी वात।
प्रोहित भीम राजा कयो मान महुत सुभ वात ॥६१॥

दो मा दू ३५ (३१ —६१)

पिंगळ कहै प्रोहित सुणो आवो ढोलै देस।
ढोलो ल्यावो इह किसै कहै एम नरेस ॥९२॥

वळती मारवणी कहै, बात म भाखी एह।
ऊमादेसूँ बीनती मालै यूं उधमेह ॥९३॥

बाप ए बात म बै कहो किण विचार करेस।
अणविचार नवि कीजिये, विचार नेह करेस ॥९४॥

[इसके आगे मूल के १ ३, १ ५, १ ६, १ ९ १ ७, १ ८, ११२, ११९ ११६ ११९ ११८ ११६ १८२, १४३, १५५, १५४ १४०, १४६, १६१ २ ७ १७१ १७३ १८३ १८५, १८६, १८७ १८८, १९२ और २ ८ नंबर के दूहे हैं।]

नागरवाळ ठेहाणिया ढोलाकुमर किया बार।
राख्यो माया निसद मर पूछ्यो तास विचार ॥९५॥

[इसके आगे मूल का १९५ नंबर का दूहा है।]

मारै मारवणी कन्हे बहु बधावी वधाम्व।
मारवणी निरखी नहीं जनम किसौं अप्रमौंख ॥९६॥

[इसके आगे मूल का १९७ नंबर का दूहा है।]

ए मायण सिख पाठवा ढोलकुमर तो काज।
मारवणीहूँ बीहदै मैं मेलावा आज ॥९८॥

जो म्हे मोड़ा आइस्यां तुम पावे रविस।
तो मारवणी मौमनी,भी (?पा) कब करै प्रवेस ॥९९॥

नागरवाळौं इस कहै, ढोलाकुमर नरेस।
जो मारू मिळवा करो तो पधारो उन देस ॥१ ॥

[इसके आगे मूल के १९८, २ १ २ १ और २ ९ नंबर के दूहे हैं।]

सुण बाती ढोलो कहै सीस करै सुन राव।
करीबा बहुत पचास दे बीया महाव सुराव ॥१ ९॥

मनमे चित ढोलो कहै सुद पिवणौंयो राठ।
मन आळोचे आपयो,तब रौंयी चि॰ (?)वाठ ॥१ ६॥

५९८, ५९९ ६ , ६ १, ६ २, ६ ५ ६ ६ ६ ७, ६ ८, ६११ ,
६१३, ६१४ ६१५ ६१६ ६१७, ६१८, ६१९, ६२ ६२१, ६२२,
६२३ ६२४, ६२५ ६२७, ६२६ ६२८, ६२९, ६३ , ६३१, ६३२
६३३ ६३४ ६३५, ६३६ ६३७ ६४१, ६४२ ६४३ ६४४, ६४५,
६४६, ६४७, ६४९ ६५ ६५१ ६५२, ६५३, ६५४, ६५५ ६५६,
६५८, ६५९ ६६ ६६१ ६६५ ६६६ ६६७, ६६८, ६७ , ६७१
६७२ ६७३ और ६७४ नम्बर के दूहे हैं।]

[कुल दूहा संख्या ६९५ है।]

॥ इति श्री ढोलै मारूरा दूहा संपूर्णम् ॥

संवत् १७५१ वर्षे कार्तिकमासे शुक्लपक्षे नवम्यां तिथौ
पंडित केशोदास लिपर्त मुकाम श्री नगर मध्ये ।

५९५, ५९७ ५९६, ५९८, ५९९, ६ , ६ १, ६ २ ६ ५, ६ ६, ६ ७ ६ ९, ६१ ६१३ ६१४, ६१५ ६१६, ६१७ ६१८ ६१९ ६२ , ६२१ ६२२ ६२३, ६२४ ६२५ ६२६, ६२७, ६२८, ६२९, ६३ ६३१, ६३२, ६३३ ६३४, ६३५, ६३६, ६३७ ६४१, ६४२, ६४३, ६४४ ६४५ ६४६, ६४७ ६४९, ६५ , ६५१, ६५२ और ६७४ नंबर के दूहे हैं।]

[कुल दूहा संख्या ३९९ है।]

[अंत में नीचे लिखी पुष्पिका है।]

इति श्री ढोलामारवणीरा दूहा संपूर्णम्।

संव(त्) १८१८ वर्ष मिती फागुण वदि ३ गुरुवारे।
श्रीरस्तु।

(ङ)

[यह प्रति बीकानेर राज्य पुस्तकालय में है। इसमें बीच बीच में गद्य है और नए दोहे भी बहुत से हैं। इसका पाठ (ख) प्रति से अधिकतर मिलता है। इसके प्रारंभ के कई पृष्ठ नष्ट हो गए हैं। यह प्रति पुरानी नहीं जान पड़ती।]

ढोलामारूरी बात।

...

(क) ढोलो पुगळरे नजीक आवा।

दूहा

करहो पवनां रूप कीय पंथो छंडि इक वाय।
पखवा खांच फरूक्कै पुगळ पोहोतो आय॥४६॥
करहो पेखे मन रमा आयो ढोलो एह।
पही धरा ढेलंपवों पगों न लागी खेह॥४७॥

भीमा म्हारवण वायक

मारवणी ढोलो आवीया करहा काहेके एह।
वही दे तुठा साहवों पूवे वूठा मेह॥४८॥

वारता

इम करतां गुदरक वेळा हुइ। तारे कोहर उपर पधारीया। नखे करहाने पांणी पावण लागा। तब करहो पौंणी पीवे नहीं। तारे ढोलाजी कहे।

दूहा

करहा चरे करेळीयाँ पांन पिठार न पेय।
सरवर ताम तरिवीयो मारेडीयां मुह पोय॥४९॥

वारता

मारवणी सहेलीयाँ समेत ढोलेजीरो रूप जोवण लागी। जिण समे मारवणी बोलीया।

दूहा

दीवां पांखी दंकर सरवर सुइवर्याह।
मानस वीठी मारवई वहते मह वनाह॥१ ॥

दूहा

सबे सोवळवाळीयां न थाखुं मया काव।
रूपवळंती मारवण, पदम धराबै पाव ॥७ ॥
सबे सोवडवाळीयां सहरीके गळि हार।
एकण मारू बाहिरी, बीची सगळीनें मुंदार ॥७१॥
लंचन नेण विसाल गति माणिका दीपक लोय।
ढोलो रुक्मिणयस हुयो थे नयण दीठो योय ॥७१॥

वारता

इतरी वात हुई नें मारवणी चाविबो थी सो सही ढोलोजी क । तिवारे साथ करनें तरवोंसुं सहेलीयामें थार । पिया साम्पात चोखमा लोभै तिम रूपीयां मैं सोभै छे। इम भोसे ढोलनें रथमें बैठनें घरे पधारीया । पछै । ढोलोजी पिंय कोहरव् असवार हुवा । सो रायके बागमें जाय डेरा कीया । में करहानें बनमाळी कनासुं बंधाया । पछै ढोलीजी मांव मांवरा अमल करवा लागा । पान कपूर मुखवास भरोगीया तिवरे पुमळ माहि पिया रावलोक पदर हुई । जो ढोलोजी पधारीया । मयर डाढो करे ।

दूहा

राजाजी डाढी करे, बात सुखी मरपत।
ढोलोकुंमर पधारीया भगत करो बहु मत ॥७१॥

वारता

राजाजी इतरी सांभळनें कुंवरांरी साथ ढोलाजी साम्हा मलीया तो मया । पर ढोलाजी सर्व साथमें राजी हाथमें मिलीया । पछी भमवारां कनी मैं अमल कपूर पान बीड़ा आरोगीया । सुंबा अतर लगाया । पछै कुमरांरो साथ सहित ढोलोजी महिरमें पधारीया । तारे राजाजो पिया ढोलैजीसुं मिलिया । साम्हा आया । राजाजी कमो डाळबीया साथमें डेरो दिरायो । तद राजा कहै ।

दूहा

नम्बर हुंता पोद समा करहो कहै वधेम।
हलकारां कर भाखीया कुंवरजी एकाएक ॥७४॥

वारता

तारे राजाजी कमो ढोलाजी एकाएक मलाइ पधारीया । इतरो कहिनैं राजाजी दरीखाने जाय बैठा । पछै ढोलेजी रावलोक माहि मुदार कहासी ।

ताहरै राणीमो पिण आसीस कहायनें नालेर पान बीड़ा मेल्हीया । पछै सहेलीयां मील स्नान करिनें मोतीयारे थाये वंदाया । पछै ढाकोजी महिलां पधारीया । पछै मारु (१र)वणीजी पिण सिनान मंजन तिलक वणाव करिनें सोल सोवरा आभूषण पेहरीया छै । तिणरै मारवणीजीनें वेळा लागी थाणी । तारै मीमा माटणीनुं कह्यो । जायो जासी जाईनें लेनें ढोलैजीनुं रामत करावो । तारै सहेलीयां मेळी होयनें ढालैजी कने रमायवानें ले गया । पाछै ढाकोजी कहै ।

दूहा

जायहां जावे दंतडा हीरा हारां हुंत ।

जो ये मारू परणा मर तो ये आम्हे पंत ॥७५॥

वारता

तितरां मांहि मारवणीजी विलंब करता पांन बीड़ा आरोगता सहेलीयां संघाते आवण लागी ।

दूहा

[इसके आगे मूल के ५१७ और १४ नंबर के दूहे हैं ।]

वारता

मारवणीजी ढोलाजा कनें आयनें मुजरो कीयो । तारै ढोलैजी पिण आदर सनमान दे मेळीया । मारवणीजो पुष्प(१) सा होयनें कह्यो ।

दूहा

[इसके आगे मूल के ५११ और ५४१ नंबर के दूहे हैं ।]

आज भला दिन ऊगीयो महवति गया मुझ गेह ।

सुपने मिलती सज्जन पिव सो दीठा नयणेह ॥८ ॥

[इसके आगे मूल का ५१९ नंबर का दूहा है ।]

सज्जन मिलीया है सखी दीहाड़ बहीयाह ।

संजोगी जब सज्जनां विजोगी रहीयाह ॥८२॥

[इसके आगे मूल के ५ ४ और ५४१ नंबर के दूहे हैं ।]

सज्जन मिलीया है सखी कामुं ममत करेस ।

महिरा कहिरा पचाहरा रमतां आव न देस ॥८५॥

वन आगूणो बीदड़ा वन आमूणी राव ।

कुंवर रिव म्हु मुरकळ आविचन राई मवि ॥८६॥

ढालो रूप अनंगर्मे मारू रिव अवतार ।

मिलीया वेहुं रंग महल कुंमरा राजकुमार ॥८७॥

वारता

तद सहेलीयां मारवणीमैं रमावणनुं आइ हुती । त्यां कह्यो राजबाईरो मुख जोवाड़ो । तारै ढोलाजी मुंघड़ो ऊंचो करनैं कह्यो देषो श्रो मुख छै । पछै ढोलोजी पिण देषण लागा तद मारवणी मुळकणा । पिण ढोलैजीसुं मर निजर सांम्हो आवणो न आयो । तद ढोलाजी कहै ।

दूहा

[इसके आगे मूल के ५४६ और ५४८ नंबर के दूहे हैं ।]

वातां हुतां मिलंतीयां आछो विरहो न समाय ।

कुसळ पछै ही पुछणा टुक एक प्रेम मपाय ॥९ ॥

[इसके आगे मूल का ५५१ नंबर का दूहा है ।]

[नोट—यहाँ इस प्रति का ११४वाँ पत्र नष्ट हो गया है ।]

वारता

तारै ढोलोजी बोलीया म्हाने तो भो कोई नहीं । नैं करतो पिण इतो छै तिको पाइजणा देवै नहीं । तारै पिंगळ राजा कह्यो । म्हां एक मजल तो म्हांरो साथ ले आवा । तारै ढोलैजी कह्यो प्रमाण । तद पिंगळ राव मुकळावारी सामरी तयारी करण लागो । घणा हाथी घरा घोडा रथ पालषी दीधा । ढोलाजीनैं पिण घणा मोती अनेक फिरंगी अमोलक वसता दीधी । मारवणीनैं दात दीधी छोकरियां एक एकसुं चढती रूप कळामें इसड़ी ही जो दीधी । कुंमरीरो साथ पाहोचावणने विदा कीयो । मारवणीजी रथ मांहे बैठा छै । सहेलियां पिण साथ छै इण तरैह ढोलोजी सीष करने असवार हुवा । पछै एक मजल तो साथ समेत पडाव जाय कीयो । पछै कुंमरांनु (सीष) दीधी । कुंमरां पिण ढोलैजीनुं मुजरो करने सीष कीवी । पछै आप आप आपा वहीर हुआ पुगळथी कोस बीस ऊपरे आया । पछै एक थळ माथै पांणी देखनें उतरीया । तंबू डेरा षड़ा कीया । पाषती सिरदारांरो साथ उतरीयो छै । पछै ढोलोजी नै मारवणी ढोलीयै पोढीया छै । तिण समें मारवणीजीरि वासना कस्तूरी सरीषी वास रही छै । तिसुं कणा सुषमें पोढीया छै ।

दूहा

[इसके आगे मूल के ६ ८ और ६ नंबर के दूहे हैं ।]

वारता

तितरै परभात हुवां मैं ... जागीया नैं ... सवळा । तारां ... बोली नहीं । जद मरण ... समझीया

सोरठा

[इसके आगे मूल का १ ८ और १ नंबर का दूहा है।]

वारता

पछै सहेलीयां नें ढोलैजी याद कीधो। सधीयां रोवनें सुरत आइ। देखे तो मारवणीजी मुवा निजर आया। सहेलीयाँ कहै छै।

[इसके आगे मूल का १ ९ नंबर का दूहा है।]

ढोला वायक

[इसके आगे मूल का ११ नंबर का दूहा है।]

पछ्यु पूरब वार्ता करी, वार विचारे तद।
तिण वेळा तिण ढोकरी, तरळ कीधो तद ॥११॥

[इसके आगे मूल का १११ नंबर का दूहा है।]

वारता

तारै ढोलैजी अग्नि म ता गरे पधारा। म्हे तो मारवणी लारे जीवत काठ लेस्यां। तद ढोलैजी काठ भेळो करनें आरोगी विचाइ। पछै लांपो देवारो हुक्म किया। तिण समें भी महादेवजी पारवतीजी आय नीकळ्या। तारै श्रीमहादेवजी कह्यो ये तो ढोलो मारवणी दिसै छे। पिण मारवणी मुई छै। तारै ढोलोकुंवर तद करै छै। तारै पारवती बोली। महाराज आप तो टै पधारीया छो। तो मारवणी मरवा न पावै। इतरी अरज पारवतीजी महादेवजीसुं कीधी। तारै महादेवजी ढोलैनुं कहण लागा। जो तुं इतरी रीत मतौं कर। अबी तारे पुरष करेह बळ नहीं। आरोगी माहेसुं परो उठ। तारै ढोलोजी महादेवजीनें कहै।

दूहा

हे दुंठा ढालो तवै कुडी गहु म कम।
दुवै तो विखवी एकठो मरणो मारू तम॥

वारता

पछै महादेवजी इमृतरो छांटो नांखीयो। सचेत कीधी। पछै महादेव पारवतीजी अलोप हुवा। पछै मारवणी सचेत होय नें बैठा छै। पछै सीर दासनें सहेलीयानें ढोलैजी सीप दीधी। ढोलोजी नें मारवणी करहे चढनें हालीया। पछै उमर सुमरारो साथ आगापछरो पाट रोकनें बैठा छै। ढोलोजी पिण उमरीज मारग चलै छै। पिण मारवणीजी बोलीया। कुंवरजी राज, ऐ तो मारग माहा हुकम निजर आवै छे विचार कीधो मारग तो तो

मतो छै। पछै ऊमर सूमरारै साथ ढोलाजीनै आवता दीठा। पछै ऊमर सूमरा मिजाजत करी। मुँहडा आगै डूंबड़ा गावै छै। तारै ढोलोजी साथ बैठो देखनैं मारगसुं टळीया। तारै ऊमर पाँच छै असवारासुं आडो आयनै फिरीयो नै कह्यो कुमरजी, अठ्या कांय नीसरो। आवो घड़ी एक तो अमल पाणी करने भेळा बैठा। पछै थारै मारग आवो नै म्हे म्हारै मारग जावां, युँ कहिनैं ऊमर ढोलोजीरो करहो आगाढोर म्हालनैं बेसीयो। ऊँठरी म्होरी मारवणीनूं भळाई। ढोलोजी ऊमररै साथरी जाजम ऊपरै जाय बैठा। तारै ऊमर बोलीयो, ढोलोजी हिवै माहरै सारू छै। पछै ऊमर आपरा सिरदारांनैं सेन करने समझावण लागा। थे ढोलेजीने अमल पाणीसूं छिकायनैं मारो। ऊमर कह्यो ढोलाजी दारू पीजीये। ढोलेजीरै नाअरी करणरी आपड़ी छै। पछै ढोलोजी दारू अमल पीवण लागा। तद मोहर देखने मांगणहार करै।

दूहा

पोहर हंता डूंबड़ी राग अलापै तेथ।
ढोलो मारू ऊगरै कहि समझावै बेथ ॥११९॥

[इसके आगे मूल का ६११ नंबर का दूहा है।]

वारता

पीयां ती साथ समझोई छीकीया। ढोलोजी पिण छिकण लागा। मांगण-हाररी बउ मांगणहार आरै गावती थकी कहण लागी।

दूहा

[इसके आगे मूल का ६१२ नंबर का दूहा है।]

वारता

साथ सारा ही छिकीयो दुवो तिणनूं कोई समझ्यो नहीं में मारवणी चिंता करण लागी। अब मांगणहारी बोली।

दूहा

[इसके आगे मूल का ६१८ नंबर का दूहा है।]

करहो कस्तूरी लदीया ऊपर भरीयो कोथ।
साथ नदीतां सूमरां वो निरवादू हाथ ॥

वारता

तरै मारवणीजी करहानैं साथ मारी नैं करहो चमकनैं भागो। तारै ऊमर आर'वो करहा आय आरै नहीं। पछै रमतूणारा साथ करहो म्हालनैं उठीया। ठाकुर करहा आरै हाथ न आरै। ज्यो सा ढंदरजीरो

हूं छ बेठाय करे छै। तद ऊमर बोलीयो, ढोलाजी करहो झालो। तद ढोलाजी ऊठनें करहामें पकड़न लागा। तद ऊमर बोलीयो। ऊंठारे मेढा रहिवा। तिण समै मारवणीजी सिध ढोलाजीरे लारैं हुव हुवा। ढोलैजी आवनें करहो झालीया। तारे मारवणीजी वाधीयो नें कह्यो, मोल्या सिरदार दुसमणारा किणा वसु करो छो, अठासुं पलमें पला तो भला हे नहीं तारा क माथे चूक छै। तारे ढोलैजी नें मारवणी करहानें पकड़नें असवार हुवा।

दूहा

मारू चढंती मारीवा ऊभ नैणांके बाण।
ताप इवि ताम सुमरा पढीया बांण पठाण ॥२४॥

[इसके आगे मूल का ६१९ वां दूहा है।]

वारता

तारे तारांसुं ऊमर-सुमर आय आय करने लारे हुवा। कह्यो जो ढोलो आवण पावे नहीं।

दूहा

करहो कंध कुवेरीया सुपकी मारू संग।
पाछे ऊमर सुमरो, ताता पड़े तुरंग॥

वारता

तारे ऊमर बोलीयो। ठाकुरे विनोद ढोलैनें पकड़ी सिघलुं भावो राजपाट देऊं। नें बेटी परणाऊं। तीवरे ढोलैजीरे नें ऊमर-सूमरैरे कोस चाली तरा आंतरो पड़ पयो। तिवरे मारग मांहे ढोलैजीने चारण मिलीयो। कह्यो के ठाकुरां ऊठ घोड़ांनें पेढ़ कंधा ऊपर चढीया। तो इसा करहामें कांई पन छै। तारे ढोलैजी हुती कमर मांहि काढनें दीनी। तारे चारण ऊंठरे पग मांहि वाढलो कादीयो। ऊठ ल्यारूं पगां हूवो। ढ वाढलो चारणनें दीयो। जो अगे ऊमर मिलै तो वाढलो देखाल्यो। ढोलैजी चारणनें पचास मोहर दीनी। कह्यो।

दूहा

ढोला थे मत संचीया ढोहरा में तुरंग।
कहजे ऊमर सुंमरा मत मारजे तुरंग॥

वारता

चारणनें सीख देनें आगा चढीया। चारणसुं ऊमर आवी सोन मिलीयो। तारे चारण वाढलो देखालीयो। सगला ही पछिनाय आया।

वारता वाचक

[इसके आगे मूल के ६४८ और ६५ नंबर के दूहे हैं।]

वारता

उमर तो चारणरै करै पाछा वळीया। मुँहडा मुंडो करनें आपरै ठिकाणै गया। तिणरै सांझ हुई ढोलाजी घरे आया। राजाजीरै पाए लागा। राजाजी मारगरा समाचार पुछीया तारै ढोलैजी सारा ही कह्या। तिणरां माहि रात पोहार गइ। तारै कह्यो ढोलाजी थे मारै महेल आय पोढजी। तिणरै ढोलाजीनें माहि पधारनें लोकां नें कुलदेवारी पूजा कीधी। मातारै पाए लागी (? गा) मारवणी पिण सासूरै पांवा लागी। सारांनही सासूजु पांवा लागा। पछै उछाह हरख हुवण लाया। मारगरा समाचार पुछ्या। कह्यो। वाचो लोम रहो रात घणी गइ छ। तारै ढोलाजी माहि पधारीया महेलांमें हथियार पालाया। फुलेल कुमकुमांरा पाणीस मंजण सिनान कराया। मालवणीमें मारवणी हसत देखीया। तारै माहिलो रावलोक आपणा लागो। माहिलो रावलोक समाचार सुणे छे। मालवणी समाचार पुछे छे। ढोलाजी कहै। एक पाणीसो मिळीया। एक पवाड मिळीया। फेर ऊंमरा में सु (म) मिळीया। पीवणे साप खाधी। तारै महादेव पारवती मारवणीनुं जीवाडी। तिके समाचार सारा ही कहीया। मालवणी सांभळीया। रावलोक सारां ही सांभळीया। तिणता माहि मालवणी मारवाडनें निंदण लागी।

दूहा

ढोला मारू देसमें पांणी मीठ कहाय।
मणो भमीयो देखवो देवड, वड पोचाय ॥ १ ॥

[इसके आगे मूल के ६६४ ६६५, ६६६, ६६१ और ६६२ नंबर के दूहे हैं।]

वारता

आखिरी बात मालवणी कही। हमै ढोलोजी उतर देवै छः।
[इसके आगे मूल का ६६६ नंबर का दूहा है।]

दूहा

मालवणी ढोलो करै सुण मन वाणी तव।
मारू मिळीयां प्रित हुइ उर लगठा बच साच ॥

मारवाड़ी-वाचक

दूहा

बाबा म देइ मारुवै बिहां छै पुरुष कुरूप।
छपड़ पैठ पथा पड़ रोगीला कुमीढ़॥
बाबा म देइ मारुवै, बिसरा पुरुष मजूर।
पर पैठा हुकम करे मांणस नहीं ते मूढ़॥
बाबा म देई मारुवै, बिया देसे कुरूप।
बप मधीरो पावणो मांणस नहीं ठे मूढ़॥

ढोला-वाचक

[इसके आगे मूल के ६७ ६७१ और ५५४ नंबर के दूहे हैं।]

इति श्री ढोला मारुरी बात संपूर्ण।

श्रीरस्तु। श्रेयं सुखकारी पुत्रपौत्रकारी बांचे सुणे सो कल्याण पावै। श्री।

बारहा बाचक

[इसके आगे मूल के १४८ और ६५ नंबर के दूहे हैं।]

बारता

उमर तो बारयारै करै पाछा बळीया। मुँहडा मुंभो करनें श्रापरे ठिकाणै गया। तिरै धाम हुए, ढोलाजी घरै श्राया। राजाजीरै पाए लागा। राजाजी मारगरा समाचार पुछीया तारै ढोलैजी सारा ही कहा। तिरां माहि रात पोहार गई। तारै कह्यो राजाजी थे मारै म्हेल श्राम पीहरो। तिरै ढोलाजीनें माहि पधारनें लोगां नें कुलदेवीरी पूजा कीधी। मातारै पाए लागी (? मा) मारवणी पिछ सासूरै पांवां लागी। सारां ही धामसुं पांवां लाया। घणा उछरंग हरख हुवया लाया। मारगरा समाचार पुछ्या। कहा। बाबो ठोल रहो रात घणी गई छै। तारै राजाजी माहि पधारीया सहेलीयां हथियार खोलाया। फुलेल कुमकुमांरा पांचीस मंजय तिनान कराया। माळवणीयें मारवणी हमह सेवीया। तारै मांहिलो राजलोक मळवा लागो। मांहिलो राजलोक समाचार सुणे छै। माळवणी समाचार पुछै छै। ढोलाजी कहै। एक सांढीया मिळीयो। एक पवाळ मिळीया। फेर लुंबापाळ में हु (म) मिळीया। पीवरो साप खाधी। तारै महादेव पारवती मारवणीनुं जीवाडी। तिके समाचार सारा ही कहीया। माळवणी सांभळीया। राजलोक सारां ही सांभळीया। तिणवा माहि माळवणी मारवाडनें निंदण लागी।

दूहा

ढोला मारू देसमें पांणी नीठ कहाय।
म्हांरो श्रमीयो देसडो, सेवज, खड पीवाय ॥ १ ॥

[इसके श्रागे मूल के ६६५ ६६६ ६६५, ६६१ श्रोर ६६२ नंबर के दूहे हैं।]

बारता

श्रीतरी बात माळवणी कही। हमै ढोलोजी उतर देवै छा।
[इसके श्रागे मूल का ६६६ नंबर का दूहा है।]

दूहा

माळवणी ढोलो कहै सुण मन बातां रूप।
मारू मिळीयां चित हुई उर तपता बस खाव ॥

पटराणी पिंगळ तणी, अपछरनइ अणुहारि ।
मारुइ उमा देवडी, सुंदर इणि संसारि ॥११२२॥
सुंदरि सोळ सिंगार सजि सेज पधारी सॉंझि ।
प्राणनाथ प्रीतम मिलउ, उ तरि वरठउ इंद ॥११२३॥
अद्भुत रूप अनुपम, जगि जागी इणि परि कहइ ।
राणी पति" "मा, कहीयउ एम अमी वरइ ॥११२४॥

सोरठा

प्रीमसुँ अधिकउ प्रेम रयणि दिवस रंगइ रमइ ।
मोह(उ) मधुकर जेम कुसुम जाणि कमळ तणउ ॥११२५॥
मागउ कोइ मेटि उमू सुरिज सॉंमुही
तउ रूपनी पेटि मोहणवेळी मारुइ ॥११२६॥

दूहा

भूपति मारू मारवइ कीधउ कोडि पसाउ ।
मारवउ नळवरगढ भणी मगसी पिंगळराय ॥११२७॥

× × × ×

वरस वठउ वउळ्या विवइ, तिणइ देवम मुठउ देखि ।
सुख पामइ सवि लोक सजि वसिया गया विदेसि ॥११३१॥
मारू कोइ देह माहि एक न जाइ रिणु ।
कहीं होइ अमरसराउ कइ फाकउ कइ रिणु ॥११३२॥
पिंगळ परियच पूछीयउ, कीधइ भेदक काम ।
जाइ सु ठाम न अटकळउ जेथि वहीवइ जाइ ॥११३३॥

११२१—कमा (म) ।

११२३—सेजि । संझि । मिलयउ । वरसरि । जपइ । (म) ।

११२४—अद्भुत । जोई = जोगी । जपइ = कहइ । परतयि = पति"" । कहियो ए अद्भुत कथन । (म) ।

११२५—प्रम । रयणी । रसि = दिवस । रंगइ । (म) ।

११२६—चोनउ । तिहाँ = तउ । चंपावरणी = मोहण वेली । (म) ।

११२७—कीया = कीधउ । राउ = राय । (म) ।

११३१—वरस वठका पछै = दउड मिसइ (म) ।

११३२—मारिवाडि दैसमैं = मारू माहि । पीव = रिणु । कहती मैइ वरसै नहीं कम पाका के तीर । (म) ।

११३३—कीयै । भेदक = भेदक । सु ठाम । अटकळी । (म) ।

इसके आगे मूल के ६५६, ६५८, ६५५, ६५६, ६६१ और ६६२ नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के ६६६, ६६७, ६६८, ६७ और ६७१ नंबर के दूहे हैं।

चोपाई

माहव रावल श्री हरिराज, जोडी ताम कुतूहल काज।
दूहा घणा पुराणा अछइ, चोपाइ बंध कीयउ मइ पछइ॥
संवत सोलइ सत्तोतरइ, आखा त्रीज दिवस मन खरइ।
जोडी जेसलमेर मझारि, वांच्या सुख पामइ संसारि॥
संमतिगुण चतुर गहगहइ, वाचक कुशललाभ इम कहइ।

इति श्री ढोला मारवइ चउपई संपूर्ण

१६६६ वर्षे कार्ती सुदि ८ दि (? दि) न नागउर मध्ये श्री उपकेशगच्छे भट्टारक श्रीसिद्धसूरि तत्शिष्य (सूरिणः शिष्य) मेघा लिखितं वाचनार्थं।

कल्याणमस्तु। शुभं भवतु। श्रीरस्तु। श्री।

[यह प्रति जोधपुर के श्री सरदार म्यूज़ियम में वर्तमान है। इसमें वाचक कुशललाभ की चौपाइयाँ भी हैं। इसका पाठ बहुत अशुद्ध और विकृत है। इसलिये मूल में इसके पाठांतर, और परिशिष्ट में इसका मूल देना उचित नहीं समझा गया।]

[इसका आरंभ इस प्रकार होता है—।

श्री हरिः

अथ मारवा ढोला नें मारवणीरी लिख्यते

प्रथम दोहा

सकल सुरासुर सामिणी, सुण माता सरसत्त।
विनय करेनै वीनवू, मुझ दो अवरळ मत्त ॥ १ ॥

[अंत इस प्रकार है—]

साहा सात वर्ष प परिमांण दोहानें चोपइ वखांण।
कारण पावळ भीहरराव, जोडी वात कुतूहल काव ॥
जेसल पर कवि कुल सोमसी, तिण पर मै जोडी मन रली।
दोहा घणा पुराणा अछे चोपाई बंध किसी मैं कहे ॥

संवत सोळसै सत्तोतरै (१६ ७), अखातीज दिवस मन धरै।
वाड़ी जेसलमेर मझार, वार्ष गुरु वी (? वो)मैं संचार ॥
संभळ चतुर सुगर सगरे, वाचक कुशललाभ इम करे।
ऋद्धि वृद्धि सुख संपति सदा, संभळतां भामें संपदा ॥

इति

आ वात किणमें वात कुशळचंद करी बनायोड़ी है। पैहला ढोला-मारवणरी वात है जिणमें मारवा में दोहा है। इण वाती वळी संवत् १६ ७ मैं जसलमेर रावळजी हरराजकारे विनोदाय दोहा और मारवा तिके चोपाई बंध वारची प्रतीत कीना है। जिणरो श्रम लिख दियो है जै म्है रावळजी हाजरी विनोदार्थ पुराणा दोहा रै चौपाई बंध किया है। बहुनी ढोला-मारवणीरी पुराणी वातरो उपभो कुशळचंद कियो है।

[यह प्रति पुस्तक-प्रकाश लाइब्रेरी, जोधपुर, में वर्तमान है। यह (ख) प्रति का अनुकरण करती है, पर इसमें नए दोहे भी अनेक हैं। इसके प्रथम ६ पृष्ठ नष्ट हो गए हैं। इसका लिपिकाल संवत् १८८१ है।]

ढोला-मारू-चउपई

दूहा

[आरंभ के १९८ दूहे-चौपाई नष्ट हो गए हैं।]

सांझ समै सौदागरें आय उतार उतारि।
बैठा इसे लिख अवसरे, अपछे निरखे मारि ॥१९९॥

[इसके आगे मूल के ८७, ८८, ९ और ९१ नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

दूहा

[इसके आगे मूल के ९९ और १८८ नंबर के दूहे हैं।]

चाँदणीयाँ रतनालियाँ, सहीयर ढोलनीयाँह।
चाली चंदन महमहैं, मारू ओपरडीयाँह ॥२१२॥

× × × ×

दूहा

[इसके आगे मूल के १७ ११ २१ ३ (पूरा) २९, २८ और १४ नंबर के दूहे हैं।]

बाबहिया बासी भयौं तु घर कहुबे म रोय।
पाँ(?) आवस्य पुन वासरै जोड़ म च (?) यो जोय ॥२३

[इसके आगे के मूल के १८, ९ ११ और ११ नंबर के दूहे हैं।]

[यहाँ पृष्ठ ११ नष्ट हो गया है।]

नोट—जहाँ × चिह्न है वहाँ चौपाइयाँ हैं।

[इसके आगे मूल के १८, १ , ९२ और ९३ नंबर के दूहे हैं।]

[यहाँ पृष्ठ ११ नष्ट हो गया है।]

[इसके आगे (ख) का १६१ नंबर का तथा मूल के ७९, ८ ८२ और ८६ नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

दूहा

[इसके आगे मूल के १ १ १ ४, (३८१ ख)* १ ६, १११ ११४ ११८, २ १, २ ४, १६, १८२ ११७ ११५ ४२२ १५५ १४८, १४७ १४६ १५१ १५४, १४५ १५६ ११६, ११५, ११६ १४१ १५७, १५८ २१४ १७२ (४२६ ख) और १ ८ नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

[इसके आगे (ख) प्रति के ४४७, ४४८, ४४६ ४५ ४५१ और ४५२ नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

[इसके आगे (ख) प्रति के ४५८, ४५६, ४६ , ४६१ और के ९ १ नंबर के दूहे हैं।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के २१६, २१७, २२१, २२३, २२६ (पंक्तियों का क्रम उलटा है), २२७, २२४ २२५ २१ , २३१ २२८, २२६ २३२, २३३ २३१ २३८, २३६ २४ २४१ २४२ २४३, २४४ २५१, २५ २५६ २७ २६१ २६२ २५७, २६७ २६ , २६८, २६१ २५९, २५१ २७३ और २७५ नंबर के दूहे हैं।]

आगळ लिपि कुंकूं अषर पाठवीयाँ हेयोह ।
ऊमी रहने वाचीयो रुपकडे मयखोह ॥ [३१]

[इसके आगे मूल का २७७ नंबर का दूहा है।]

× × × ×

[इसके आगे मूल के २७९ २८१ ३७ , २८३, २८४, २८५, ३ , ३ ४ ३ ५ ३ ७, (५२७ ख) ३४४ ३ ८, ३११ ३१२,

---

* जहाँ कोष्ठक में नंबर देकर (ख) लिखा गया है वहाँ समझना चाहिये कि वह दूहा (ख) प्रति का है और मूल में नहीं लिया गया है। उस दूहे को परिशिष्ट में (ख) प्रति में

[इसके आगे मूल के ६६६, ६६७, ६६८ और ६६८ नंबर के दूहे हैं।]

मालवणी ढोलो कहै, सुणमणि देखा नांच।
मारू मिलियां पूत हुइ, उर सकत अम कांच ॥

[इसके आगे मूल का ६७० नंबर का दूहा है।]

मारग मागी मारियां, ढोलइ पूरी वाच।
मारू संड अमोल त्रिय बीजी गल्लु म राच ॥ ७११ ॥

[इसके आगे मूल के ६७१ और ५८४ नंबर के दूहे हैं।]

ढोलो मारू परणीया, चरित्र ए कहिनाय।
वसु मढियोंखी मारवणि प्रीत ढोलो मधुवांस ॥७१४॥

× × × ×

पादव रावळ श्री हरिराज। चोडी वासु कुतूहल काज।
... ...

दूहा घणा पुराणा अछै। चोपई बंध मैं कीधो पछै।
इणिको ओछो वे ओछ्या कहु। तो कविजण सौंतहि ज्यो सह।
पढिया हो बिहा वही पांवरो। वेद विचारी करिग्यो सरो।
संवत सोलह सत्तोतरे। आखाबीज दिवस मनि खरे।
चोरी जैसलमेर मझारि। वांच्यां सुख पामै संसार।
सांभळ ग्रैंथ चतुरि गह गहे। वाचक कुशललाभ इम कहे।
... ...

इति श्री ढोला मारू चउपई समाप्ता।

सं १७८१ रा पापमासे शुक्ल पक्षे पंचम्यां तिथौ बुधवारे
लि पं श्री विसनदासेन ग्राम शिवपुरी मध्ये।

[यह प्रति बीकानेर निवासी बाबू जयपालसिंह द्वारा प्राप्त हुई थी एवं उन्हीं के पिता के निजी पुस्तकालय में है। इसमें पूरी प्रस्तावना दूहों में है जो किसी अन्य प्रति में नहीं पाई जाती पर यहाँ का एक पृष्ठ नष्ट हो जाने से कई दोहे अप्राप्य हो गए हैं। इसका क्रम बीकानेरीय कथानक के अनुसार है। इसमें जो दोहे मूल से अधिक हैं वे ही नीचे दिए गए हैं। इसका पाठ शुद्ध है।]

१ ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीरामजी ॥

मारवणीरी उतपति हुई। ढोलेजीरी कथा

दूहा

• सरसत मात पसाय कर दे मो अविरळ मति।
जेथी अमर सुधारस ने गुण गाऊँ तसु सकति ॥ १ ॥

• जोवों नरवर इसि जुगे जबहूं सुर सिणगार।
राणी सुरनर रंजीये अपछर तसु आचार ॥ २ ॥

• उपम विलास विनोद रस हास भाव रति हास।
प्रेम प्रीति संभोग रस के सिणगार आवास ॥ ३ ॥

• गाहा गूढा गीत रस कवित कथा कल्लोल।
चतुर-तणा मन रीझवै कहिवा कवि कल्लोल ॥ ४ ॥

गाहा

• मणहर मधरत मज्झे सुंदरि नारीव रूप संपन्ना।
निरुपम करे निर्मया सुर्यत देवा साथ सुगया ॥ ५ ॥

दूहा

देसौं माँहे दीपतो मरुधर पूगळ देस।
तिहाँ नरनारी नीपजै निरुपम नीकै वेस ॥ ६ ॥

• इस चिह्न से अंकित पद्यों के अतिरिक्त कोई पद्य किसी अन्य प्रति में नहीं मिलता।

कवित्त

सुरधर देस सम्मर सबळ धख धान समिद्धो।
मांझै पूगळ नयर प्रसिध सगळै परसिद्धो॥
राज करै रिखिराइ प्रगट पिंगळ परगंडो।
प्रतपै जगत प्रताप दान जळहर दीपंतो॥
देवड़ी नाम रूमा धरिणि मारवणी तस धू कुंवर।
चोसठि कळा सुंदर चतुर कथा तास कहिसुं सपरि॥ ७॥

दूहा

ऊँचा मंदिर चोवटा ऊचा घणुं आवास।
धवळ झरोखां जाळीयां छीनां सुपावास॥ ८॥
राज करै राजा तिहां पू(पि)गळ नाम प्रवीण।
तीमळियां सीसो रहै सिधि सि(रि)द्ध न नेहै छीण॥ ९॥
पतारां अमल करै सबळ सुरह अति रंग।
कोटडीयां कल्लळ हुवे राग छतीसे रंग॥ १०॥
भला सुरह महाव भल भली रावरी रीत।
राज लोक राची रहै पाळ प्रीतिहि प्रीत॥ ११॥
मन सुधि चेतळ मानिजै परो जाति पवात।
इक दिन चढी रामतै सुरह सुरसै साथ॥ १२॥
चटीयो मनरी चूंपसुं लखीयो दाम लगाव।
राजा म्रिग देखी करी जावे दीयो महाव॥ १३॥
राजा तिहां फिरि आवीयो पहीयो अटवी माहि।
त्रिषा बहुत लागी तरै त्रिप सीचे नहि जाहि॥ १४॥
त्रिप सीचे बैठो तिहां मायाल ढ्रागळ साथ।
मरम भाट दीयो तिस्यो मार ढोंपो करि हाथ॥ १५॥
अति शीतल अम्रित जिसा पायो परमळ नीर।
राजानुं आयौंद भयो सुख पामीयो सरीर॥ १६॥
तिरानुं राजा पूछीया कुण हुं आइत भेष।
मारू कह्यो राजा मयी मोंगस्या आयो एथ॥ १७॥
राजा तूठ तिहिं मयी, कीयो पैंयोग बखाण।
बेठे बैठा एकठा पूछ्ठ तिरानुं राज॥ १८॥

कहो माढ, दीठी किसी भगती रामति काय ?
कहो कांई नवली वारता, किसो भो अचरिज थाय ॥१९॥
कहो (? रे) माढ राजा सुणो दीठा कोइक देस ।
रामत ख्याल विनोद रस नारी निरुपम वेस ॥२०॥
काइ अनोपम कामिनी दीठी किसही ठांई ।
जिया दीठं मन रीझिये भाखूं साच बताय ॥२१॥

कवित्त

• पारकीपंथ दुरंग पंग बंगो पुरसाणी ।
बीजा नगर बहु सत निरमळ गंगानी पाणी ॥
पटकूळ पहरणी देस भोगी पुर बसिया ।
कुंवर कदळी थंभ विपरीति नीति विचक्षिया ॥
विम चंदवदन चंपकवरणा दंत झबकै दामिनी ।
सारंगनैणा संसार इण मनहर मारू कामिनी ॥२२–२४॥

दूहा

• गिरि अवार आबू धणी गढ आमेर दुरंग ।
तिहाँ सामैतसी देवड़ो अमळी माया अमंग ॥२५॥
सबळ सेन तेहनै धणी मोटो वस सुभाव ।
सुसमणा डर मानै घणो वेखी तिसारी राव ॥२६॥
पटराणी अपछर जिसी रंभाकै अणुहार ।
तसु को ऊमा देवड़ी अवर नहीं संसार ॥२७॥
• चंदवदन चंपक वरण अधर प्रवाळ रंग ।
चंवरनशी भी (? ली)खा कटि कोमळ नेण कुरंग ॥२८॥
• अति अद्भुत संसार इसी नारी रूप रतन ।
अम्है ऊमा देवड़ी कुमरी कंचन मन ॥२९॥
जो तुम्ह जादीपी हुवै मनमिणि सिधा भरतार ।
चोखी रात्री जान ज्युं जो मेळे करतार ॥३०॥
राजा तामळ रीझीयो जाण्यो चविक सनेह ।
प्राणपति हुवै तो पामीये ऊमा मिळण सनेह ॥३१॥
साथ सबे आयो नहीं राजा ऊठ्यो धाम ।
माढ भणी जाबे लीयो भावलो पूगळ ठाम ॥३२॥

अहो माइ, दीठी किती भरती रामति काम ।
कहो काइ भमती भारता किया मो अचरिज थाय ॥१९॥
कहो (? रे) माट राजा सुणो, दीठा सोहड़ा देस ।
रामत स्यामस विनोद रस नारी निरुपम वेस ॥२ ॥
काइ अनोपम कामिनी दीठी किसाही ठाई ।
किया दीठ मन रीझिये, मोनूं ठाम बताव ॥२१॥

कवित्त

• ग्वालीपंथ दुरंग पंथ चंगो पुरसाणी ।
थीआ नगर छहु तत निरमळ गंगानो पाणी ॥
परकूल पद्मणी, देस मालवी सुर सविरा ।
कुंभर करळी तंत विपरीति नीति विचखिणा ॥
तिम चंदवदन चंपकवरणा दंत अमकै कामिनी ।
सारंगनैणा संसार इम मनहर मारू कामिनी ॥२२-२४॥

दूहा

• गिरि अठार आबू धणी गढ जाळोर दुरंग ।
तिहाँ सामंतसी देवड़ो अमळी माया अभंग ॥२५॥
सबळ सेन तेहनै धणी मोटो वस सुभाग ।
कुसमरा दर मान्ने धणो देवी तिसारो दाव ॥२६॥
पटराणी अपछर जिसी रंभाकै अणुहार ।
तसु धी ऊमा देवड़ी अवर नहीं संसार ॥२७॥
• चंदवदन चंपक वरण अधर प्रवाळ रंग ।
पंखरनखी मी (? ली)णा कटि कोमळ नेण कुरंग ॥२८॥
• अति अद्भुत संसार इण नारी रूप रतन ।
आछै ऊमा देवड़ी कुमरी कंचन मन ॥२९॥
जो तुम्ह सारीषी हुवै मामिणि तिया भरतार ।
जोड़ी राही काम ज्युं जो मेळे करतार ॥३ ॥
राजा सामळ रीझियो जाग्यो अधिक सनेह ।
प्राणपति हुवै तो पामीये वैणा मिटसा छनेह ॥३१॥
साथ सबे आवो कही राजा ऊठ्यो ताम ।
म्हड मणी साथे लीयो आवयो पूगळ ठाम ॥३२॥

सासन दिनै पूगळ-धणी जो हवौं किसी आपाह ।
तो कुमरी नरवरगिरसौं परणो कीजो उमाई ॥४८॥
वेवळ मिळायो रावनै पिंगळनै कहि बात ।
आपै मद पूगळ-धणी जाइ करेसौं जान ॥४९॥
जान सहू सझि करी सुभड़ घणा ले साथ ।
चाल्यो राजा पूंपई अमरगढ़ लेई आय ॥५०॥
गोधूळक वेळा हुई जोवंता नाई जाम ।
पिंगळ आयो आपनै दीजै आदर माम ॥५१॥
राजा राणी परि सहू निरखे पिंगळराइ ।
॥५२॥

[५२ से ७६ तक के पूरे पन्ना खो जाने से, अप्राप्य हो गए हैं ।]

मयद वाणी मारवी आई जपती पेट ।
पूरे मासे पदमणी जनमी रतन स पेट ॥७७॥
उछव कीया अति घणा हरख्यो सावत लोक ।
राणी मन हरखित हुई, जिम रवि दरसण कोक ॥७८॥
• सुंदर रूप सुहामणो, अपछररै अणुहार ।
पदमिण पद सहू करै भ्रमर करै गुंजार ॥७९॥
• बरस पाँच जोवण पड्यो, दिवड़े मेह न वुठ ।
जड़ चाले सहू एकठा, कूमा मारवण मन मठ ॥८०॥
• पिंगळ उथाळो कीयो आयो पुहकर तीर ।
जठै पाणी परधरु तिहाँ सुख पामीयो शरीर ॥८१॥

इतरी तो मारवणीरी उतपति कही । हिव ढोलारी उतपति कहै छै ।

हिव जिम ढोला नीपनो, वेस-तवे परमाण ।
तेम मिले अयाणवीया, मावै बाणा न बाण ॥८४॥
नळ राजा नरवर रहै भाई दिढ़ अपार ।
मनी अनोपम भामिणी सुख मांही तंतार ॥८५॥
इक चिंता मनमें घणूं नहीं स पुत्र रतन ।
तिण पारी लागी हुता बाप अनूपा जतन ॥८६॥
दादा मायत पूछीयो तिण कह्यो पर उपाय ।
पुत्र हुवी मानवे मनो, पुहकर देव मनाय ॥८७॥
जात्रा जासी नाइ तिण हूवो पुत्र रतन ।
उछव कीया अति घणा सह का करै धन धन ॥८८॥

ऐ मै च चोक पूगळीया परणी चढे पुगंल ।
मन मढीयांरी मारवणी ढोलो कुरम रांग ॥
पुगळ वाळा वाळीया नरवर हुआ उछाह ।
ढोलो मारू परणीया वधेरे बीवाह ॥
पोहकर पींगळ चालीया ढोरख थंभा तेय ।
मन मकर ढालीया तरा ढोलो परणीया चेय ॥

× × × ×

छेत न चंदरा बावनो नागर बेल न पाय ।
सुरंट थळ मभि फोग बह करहो काई खाय ॥
करहा को पंभर चढो चोढी धुम तरीर ।
पाखल लोही नीछरे मुख पाठीयो कीर ॥
करहा पींपळ पान चर आगे मरीप मूख ।
वाळां उचालीच देखडे वे फळ लहीच रूख ॥

× × × ×

ढोलोजी ऐवाळमे मारग पूछण लागा । ऐवाळे कहीयो पूगळ मांहरे कामु काम है ढोलेजी कहीयो म्हारे छावणे है ।

× × × ×

कथ गाम ऐवाळ रैहतो हुतो तथ गाम ऐक सुगारसी नाम मांसपी हुंती । ऐवाळजाळीसो वा मारू । ऐवाळ करण लागी मारू तो माहरा वाय मांह छे । काले म्हारी छाळ चारती हुंती ।

× × × ×

दोहा

थळ मापे थळ बाहिरी भोसल रूप करूर ।
मौठां बोलां पच सदा वे उमखा रहीया दूर ॥

× × × ×

झमर झूमर वारंम मार मेलीयो—

× × × ×

दोहा

चूमळ है थाको गभो ऐतो मट दलाव ।
मारय देक पंथी मले ढोलो पूछे ताव ॥

दो मा दू ३९ (११ —१२)

[यह प्रति जोधपुर राज्य की पुस्तक-प्रकाश लाइब्रेरी में वर्तमान है। पन्ने आपस में चिपक गए हैं जिससे पढ़ने में नहीं आती। इसके कुछ नए दोहे नीचे दिए जाते हैं।]

॥ दूहा ढोला-मारू दे ॥

कान कड़ी मम नेउरी हाथे कंकण कड़ ।
गे पर दीठो मारुवाँ हेम घर गु मल ॥
कंचा अखबीठी कुँअरि करि म तनमंप कोर ।
मच विधि घां दीकरि हासुं करती जोर ॥
घन घर कुछ घर आप घर घे घर चोरू होय ।
तिहुं परकारे धरवाँ कंप करीजै कोर ॥
मळवर-राजा-तणो ढोलो कुँअर अनूप ।
राणी पिंगळ रावरी रीझी देवे रूप ॥
मारू सिर महेलीयाँ ढोलो सिर कुमराँ ।
कड़ूआ बोल न बोलही मीठा बोलहीयाँ ॥
कुमळीयाँ कळीयर कीयो ढोलो खेलै बीत ।
मारू पठवै एकली ढर सुं चपि हंस ॥

ताव मजाके प्रिय पिवे, करह उमाह्ले बेल।
ढोलो चढीयो रावभो मारू करहो मेल॥
उमया पल मग्न मंडीया, एहा रंग सुरंग।
चढ़ा लीजे श्री मारवे ढाढ बिछोड़ो संग॥

× × ×

करहो कवि भेरीयो, पुगयो मारू संग।
वाधे उमर सुमरो, ताता चाले तुरंग॥

× × ×

मे (? उमर) दीठी मारवा चीता बेठी लंक।
बानर भांवा शाकल्यु, कांपे चाले उरक॥
प्रीसु ढोलो भीम मारई, करहो फुंकु मन।
उमर दीठा एकठा चढ़ा च तीन रतन॥

इति श्री ढोलो मारवणीरी बात संपूर्ण॥ सं १८१२ वर्षे शाके १६७७ प्रवर्तमाने श्री ५ श्री पदमाजी मनराजी मौजयजी संपत वेमीजी पर्वनाथ नगर पोष वद १ दमे श्री ५ श्री जोरावरसंघजी सत से जी॥

[४२६, ४ , ४३१, ४३३, ४३८, ४४१, ४४२, ४४४, ४४५, ४४७, ४४८, ४५ , ४४९, ४५१ ४५२, ४५३, ४५४, ४५५, ४५६, ४५७, ४५८, ४८५, ४५९, ४६ ४६१, ४६२, ४६३ ४६४, ४६६, ४६७, ४६८, ४८३, ४६९, ४८४, ४८७, ४८८, ४८९ और ४९ नंबर के दूहे हैं।]

मीढ़ मोहर पधारीयो करहा सँदेशा काज।
अमल सुरंगा लावह कर आयो चढे विहाव ॥

[इसके आगे मूल के ५ १, ५ २, ५ ३, ५ ४, ५ ६, ५ ५, ५ ८, ५१४, ५१५, ५१३, ५२ ५१६ ५१७, ५१९, ५२१, ५२७, ५३३, ५२८, ५२९, ५३ ५३१, ५३२ ५३३, ५३६, ५४२ ५४४, ५४५, ५४६, ५५१ ५५२ ५४१ ५५२ ५५४, ५५५, ५५६, ५५९, ५६१ ५६२ ५६३ ५६४ ५६५, ५६७, ५६८ ५६९, ५७ , ५७१, ५७२, ५७३, ५७४, ५७५, ५७६, ५७७ ५७८, ५७९, ५८ ५४६, ५४७ ५४८, ५४९ ५५ , ५८१, ५९३, ५९४, ५९५, ५९७, ५९६, ५९८ ५९९, ६ , ६ १, ६ २ ६ ५, ६ ६ ६ ७ ६ ८, ६१ , ६१३ ६१४ ६१५ ६१६, ६१७, ६१८, ६१९, ६२ , ६२१ ६२२, ६२३, ६२४ ६२५ ६२६, ६२७ ६२८, ६२९, ६३ ६३१, ६३२, ६३३, ६३४, ६३५, ६३६, ६३७, ६४१, ६४२, ६४३ ६४४, ६४५, ६४६, ६४७, ६४८ ६५ , ६५१ और ६५२ नंबर के दूहे हैं।]

[कुल दूहा संख्या ६९१]

इति श्री ढोलेमारूरी वात संपूर्ण।

(त)

[यह प्रति बीकानेर के राज्य-पुस्तकालय में वर्तमान है। इसका पाठ प्राचीन नहीं है पर शुद्ध है।]

अथ ढोले मारूरी बात।

[इसमें आगे मूल के १, २ (पंक्तियों का क्रम विपरीत है) ३ ४, ५,
६ ७, ८, ९, १ ११ १२ १३, १४, १५ १७, १८, १९, २ ,
२१ २३, २४, २५, २६, २७, ३४ ३ , ३६, ३१, २९ ४८, ५१,
५२, ५३ ५६, ५४, ५५, ५७ ६१, ६२ ६५ ७८ ७७, ८२, ८३,
८४, ८६, ८८, ९ , ९१ ९२, ९३, ९४ ९५ ९६ ९७, ९९,
९८ १ , १ १, १ २, १ ३, १ ५, १ ६, १ ८, ११ , १११,
११२ ११३, ११५, ११६, ११८, ११९ १८२ १४ , १४४ ११५,
१४५, १४७, १५५ १५७, १५८, १६ , १६१, २ ७, २१४, ११७,
१७२, १७३ १७४ १७५ १८३, १८५, १८६ १८७, १८८, १९२,
१९४ १९५, १९६ १९७, २ ८, २ ९, १९८, २ , २ २ २ १
२१ , २११, २१२ २१३, २१८ २१९, २२१, २२२ २२४, २२५,
२२६, २२७, २२८, २२९, २३४ २३५ २३६ २३८, २३९,
२४ , २४१ २४२, २४३ २४४ २४६, २४७, २४९, २५ , २५१,
२५२, २५३, २५५, २५६ २५८, २६० २५९, २६ , २६८, २६१,
२७ , २७३ २७४, २७६ २७७, २७८, २८ , २८१, २८२, २८३,
२८७ २८८, २८९, २९ , २९१, २९२, ३ १ ३१७ ३२३
३ ४ ३ ५, ३ ६ ३ ८, ३ ९, ३१ ३१२, ३१३ ३१४
३१५, ३४३, ३१७ ३१८, ३१९, ३२ , ३२१ ३२२ ३२३
३२४, ३२५, ३२९, ३३ , ३३१ ३३२ ३३३ ३३४ ३३६
३४१, ३४४ ३४२, ३४६ ३४८, ३४७ ३६१ ३५ , ३६६ ३६७, ३६२,
३७०, ३७१ ३७३ ३५२ ३६२ ३६७, ३८ ३९७, ३९८, ४ ,
४ १ ४ २ ४ ३ ४ ४, ४ ५ ४ ८, ४ ९ ४१ , ४१२ ४१३, ४१७,
४१४, ४१६, ४१५, ४२ ४२६, ४२३, ४२४, ४२६ ४९१, ४९२,

(द)

[यह प्रति बीकानेर के रॉंगड़ी जैन उपाश्रय के अभयसिंह भंडार में है। यह प्राचीन नहीं है। नये दूहे बहुत से हैं। इसमें चौपाइयाँ भी हैं। यहाँ केवल नये दोहे लिए गए हैं]

श्री शारदाय नमः ।

ढोला मारूरी चोपई लष्यते ।

× × ×

होम ज्वाले बांधियो, ब्रेन भो कोठार ।
बाभा भर भर थाकवा, कुण्डी न पायो पार ॥ १ ॥

× × ×

दूहा

कांने बग चीरत हाथे । वेरी सब वस थाय ।
दीभे नव निध संपदा । वीधें माने राय ॥१६॥

× × ×

घर परगेमा संचरयो, भीना लोक उधागार ।
मस्तक मुकुट सोहामणो, हर मेकावळ हार ॥६५॥
पहरी वस्त्र विशेषपी, पटकूळ नव रंग ।
पग लाषीणी मोजड़ी चढीया तुरु चतुरंग ॥६६॥
काने कुण्डळ रत्न मै बाजुबंध अमुल ।
रतन जड़ित कर मुंदड़ी, बीरपळी बहु मूल ॥६७॥

× × ×

लाडे कोडे लाइयो लाषी परणयो चेह ।
चितमय चांभा प्रति घणी देखी कुमरी तेह ॥७४॥

× × ×

मण दीपक मंदिर बसो मण पूगी परिवार ।
करी मदेली चंद पिए पूव मण भजन भहार ॥१८५॥

बाबा कुरमड़ी मरावहो, के बदबरियो फोड़ाव ।
जब मे ढळा नींद भर, तब बोली मंझम रात ॥२१७॥

× × ×

संदेसा ही बीच पड़ो, नै कागद म्हारी होड ।
सही सलूणा सजना, का मनमाही लोड ॥११८॥

× × ×

सेठ सब जग मीत कर, बेर म कर इक ठांम ।
घर घर मीत न करि सकै,(तो) एक मीत एक गांम ॥१ ९॥

× × ×

जब जागे तब सांभळे, संत सबो भुणकार ।
बीजो धनक बालहा म मरो मांगणहार ॥११९॥
नाभि सकोमळ मुख कमळ डीला सु सीतळ गात ।
तिया का रुप सुण्या रहे, मन मयगळ मदमंत ॥११०॥

× × ×

सोरठा

छिन्न कांकादबराद मग पाखी मळगा पना ।
फट जाबस बाळाइ सजन बिया साथी रहे ॥१२१॥

दूहा

बिसारियां चीपड़ पड़ै बिसारियां चित माळ ।
तो ढोळो किम बीसरै दीधो छाती साल ॥११ ॥
ऊमी मी घर आंगणे सजन सांमहीबाह ।
बारे पोहरे धुंनळी, रोह रोह भीजबिगोह ॥११११॥

× × ×

बडतो सासा पसरियो पग चंगुओ म माम ।
दाबी हाथ संदेसड़ो लग होता पोहचाव ॥११४॥
बाड़ी फूली बहुत रे मे बाई सो नाह ।
बलहारी उस फूलकी बास रही मन मांह ॥११५॥

× × ×

जोबन आभे अंग सुं सुधरे रमो हुमाव ।
पंख पसारे उडण कुं रजमर रमो न जाय ॥१४२॥

× × ×

चौपई

कनकावती तसु कुंमरी नाम, अति सरूप अपछर अभिराम ॥२२१॥

दूहा

× × ×

मिसरी मीठी मधु करै विरावी मीठो दूध ।
मीठी बात सजणां तणी अधिक करै कुल सुध ॥२४ ॥

× × ×

चीवळीयां झळमळै आभै आभै दोय ।
कदी मिलूं उण साहिबा कस कंचुकी खोय ॥२४६॥
चीवळीयां झळमळै आभै आभै तीन ।
कदी मिलूं उण साहिबा, सायधण दरसी तांव ॥२५ ॥
चीवळीयां झळमळै आभै आभै च्यार ।
कदो मिलूं उण साहिबा बांधी बांह पसार ॥२५१॥
चीवळीयां झळमळी आभै आभै पंच ।
कद दिन वाला लागसी, साजठ लीसे मंच ॥२५२॥
चीवळीयाँ पड़ता बहल आभै आभै षट ।
कदा मिलूं उण साहिबा, करी उघाड़ा पट ॥२५३॥
चीवळीयां पड़ता बहल, आभै आभै सात ।
कदा मिलूं उण साहिबा, करी उघाड़ा गात ॥२५४॥

× × ×

चीवळियां गळ मालखा, मेहा मांये कूप ।
कदी मिळूँ उण सजणां करी उघाड़ा गम ॥२५८॥

\+ × ×

करमहिं हाथ सरिजया मति दीजै अवराध ।
पंख गळै मैं मसि मळै पडी संदेसै दाघ ॥२६१॥
बावर डंडा बळ बया, घर घर पेट भरांह ।
मांगी तांगी पंजरी बैठी धार बहांह ॥२६२॥

× × ×

कुरझड़ि चांचे मारझे करै अमीणा कंठ ।
ढोला आगळ यूं कहै, तो विण किसा बसंत ॥६४॥

× × ×

दव दाध्या डारे डुगरे, बळे मुक्त पर्रांह।
विष सगगुप वण पराइरी, मोटी खोड नैरांह ॥१४७॥

× × ×

ढोला वेगा आवज्यो मन मुझो वैराग।
रही विलोयो पी बिना पाछे रही न छाछ ॥१५ ॥

× × ×

कागद फाटो मसि ढळी, बेलण पड्यो कुमाल।
चोळ पड्यो उण धंदेसडे, रही निराळ मिराळ ॥१५६॥

× × ×

दूरा कहिया मारवण पिडवी देवन काम।
वाळो हाथ धरिसड़ो,(दे) बीनवज्यो म्हाँ काम ॥१६१॥

× × ×

कुच काठे कर कुंमळे, अधर लाल वर्गे।
मारू पड डेरे पुरब, बैठे वतन खीखे ॥१८७॥

× × ×

जो कोये सजन बसै जो होवे दीवड़ा मांह।
चाय न मिळीया ठठकर देख चख्या कुम्भण ॥४ २॥
मन ठहा पंचर हुहा, किमकरि मिलबो माम।
दैव न दीधी पांखड़ी दे सजन मीलाय ॥४ ३॥

× × ×

सोरठा

पहली प्रीत करेह, ढंढो पैषि आळोप्यो नहीं।
मिजगीया मयेह मीठा बोला मायणां ॥४ ४॥
अेक हुवन्ता बेवे गळ्य ज्यो चित ठाहय।
ज्यो मरंता पिहु आँगळ्य लावण कनन बीठ ॥४ ५॥

काव्य

पिरो अवापी मगमे च मेघा
चयांतरे भानु बसै च पद्मम्।
द्विलक्ष सोमो कुमदीकामाना
यो यस्य चित्ते न कदापि दूरे ॥४ ६॥

× × ×

सुतरो सासु ससि मिळी वोलाने बहु प्रेम ।
निज पुत्रीनो प्रति मणी, दे मशामण प्रेम ॥७४ ॥
ठुंकारो दीधो नथी, बाळपणा थी बार ।
किसी मर्तामण दाखवे बोभस्सी सुविचार ॥७४१॥
इम मारवणी कुमरी प्रतै समझावी सुप मांय ।
हीली मीली हित देवसुं कीधी सुख सुंगांय ॥७४२॥
मया करीने मुकल्या, कुशल-पमना होस ।
होला पति चलवो वळी समाचार सु विशेष ॥७४३॥
खंवर को दायो रथे पे ले सुमणो ठाम ।
देख्यो देव मया करी सेवक सरीखो काम ॥७४४॥
कारज समज संभारस्यो, चतुर तमे निज चित्त ।
मनथी मत विसारस्यो, मे मोटा महिपत्त ॥७४५॥
मात पिता बंधव बहु, सयण सकळ परिवार ।
बाळाथी पाछा वळ्या सुगते करी जुहार ॥७४६॥
साथे सैन्य सकळ कटक सुभट-घटा वळि भाट ।
पदीयल विरहापणी, मोसे मीजग माट ॥७४७॥

× × ×

ये ठाकुर ये छत्रपति, माने तिहां बहु माच ।
पाथी मछमे पातळी छास करै बहु लोच ॥७४८॥
रांधी हम रूडी परे, बरता मनीहर प्रीत ।
माहे सीख भली परे, राखी रूडी रीत ॥७५ ॥
राज तिपाधा तिप करी वळि वहला मिलस्याह ।
डुंगरथीथी बीजळो डंबर ज्युं छळस्योह ॥७५१॥

— — —

मेहा मोटी बोह मांयाधनैं मरवारणी ।
बीबी है लख कोड, ये वमाथी बोको मरी ॥७५२॥

— — —

प्यारनरी मन मोहिये पमद न देखो न चाय ।
जिम जिम दिवटे सांमरै, तिम तिम नवथ मुराज ॥७५३॥

मारवणी मन वालही, मनकी पुरी आस।
ढलणो विरहर ढंकियो, हुवो लील विलास ॥७१४॥

× × ×

[यह प्रति बीकानेर के रांगड़ी-जैन उपाश्रय के अभयसिंह भंडार में है। यह भी प्राचीन नहीं है। यहाँ केवल नये दूहे लिये गये हैं।]

दूहा

करह कोड बोळ्यो किरह अद्भुत सुंदर वेश।
पड पायइ सहु देखना, ढोलो मथा विशेष ॥११॥

× × ×

पींगळ "रावनी मारइ, नळ रावानो ढोल।
बचये वेहू वनमीया, तवयी बोरवा बोल ॥१६६॥

मारू ढोलो वनमीया विहारा ए छरनांय।
बन मरियांणी मारई प्रीय ढोलो चहुमांय ॥१६८॥

× × ×

तन तुरंग असवार मन नयन पयादे सथ।
सुंदर चली ठिकारकुं, बिरह वाज करि हथ ॥२७॥

मारू रूमी संमुही, किम तुरका हाथ करांय।
किया दिस नाये मालहा तिया दिस वके मयाद ॥२८॥

× × ×

बिबळी आंगड़े बाहला, मोरां मामे कृत।
कदहि मिळूंगी सजनां करी उपाड़ा गात ॥११७॥

× × ×

सजन सौपीमइ आवज्यो, मो मळ पती होय।
मरवदि ममण म पोतिजो, कोयौं बिछोही होय ॥५५१॥

× × ×

उनहीयो बरसे नही, करे चपीहा [वतोत।
ते सजन अणदीठा मला, मिळ्यां लेत न कोय ॥२८३॥

सोरठा

पहली प्रीत करेह, ठंको ग्राळोष्यो नहीं।
मुग्राळिग्रो मवेह, मीठाबोलै मारवे ॥१११॥

दूहा

पहली प्रीत लगाय कर, पछै चोरायो चित्त।
राड़ी केरा रूप ज्युं ऱ्यों माँहै घोड़ा चित्त ॥११३॥

× × ×

सोरठा

करका करव माह नीर विछोगे वे हुआ।
फिट काळजा कठा सजन बिन साबा रह्या ॥११४॥

दूहा

साहिब हंस समुद्रको मैं सुखीग्रो चावंत।
नीर मिलके कारणें घर घर जाइ फिरंत ॥११५॥
नयण तखत तुम दरिसकुं, सखण तपै तुम बैण।
कर माळा प्रभु नाम की, गये कपट विन रैण ॥११६॥
मम मानस है मित्तकुं चाहु मिलिह ईस।
पिया मोंगो मळ्यो मना, कहा करूं जगदीस ॥११७॥

× × ×

ढोला थिली घर कीग्रा, दिठो घणो करोह।
लाल सुरंगी पमझो रहे नवरोह ॥१२१॥
इक उपराइकुं ग्रावदे, इक मांहि मन मांह।
साली हवाकी प्रीतकी, बेगत उठे दाह ॥१२२॥
ग्रारति ग्रभूप (प)ग्रा(न) तामरो सोरया लोड़ा गाथ।
बाला तुम विच युं हुई पाको पान पलास ॥१२३॥
कहिग्रो लागे कारमुं, लिखिह केरो लाह।
ग्रंतरगत को पीड है, ते जाये जगनाह ॥१२४॥

× × ×

फागुण मास बसंत रित, नव तरणी नव नेह।
कहो सखी केसे रहुं, प्यार ग्रगन इक देह ॥१२८॥

× × ×

आवि विदेसी वालहा, नवि वीसारूँ हीयाइ।
ममणा दाडिम फूल ज्यूं रोइ रोइ लाल कीयाइ ॥११॥
भावे सज्जन इहां रहो, भावे रहो विदेस।
प्रीत पुरांणी होइ नहि जे मंघी कसु वेस ॥१११॥
लागो होइ तो छोडीइं, हाथ हाथसुं लाय।
मनको कहा छोडाइये, वाके हाथ न पाय ॥११२॥
मन वारंतो नवि रहै, तो वयु होलखा सच।
मो मन चकरी डोर ज्युं, गयो डोरो तव हथ ॥११३॥
जो हुं एसी जाणती, प्रीत कर्यां दुख होय।
ढेल दुहाइ फेरती, प्रीत करो मत कोय ॥११४॥

× × ×

के काई बांमण कर्‌सुं, रे रसिआला मित्त।
तिणकी सुध भूली गई चोरी लीनो चित्त ॥११५॥
निस दिन मो मन पिय बसे पिय बिन पल न सुहाय।
पिय बिन दीठइ सुख नहीं, बही जमारो जाय ॥११८॥
वाणु बई छाती मिलुं सुलका आपि म पंख।
इरिजड मिठा लाहिया, जेहपि भावा संख ॥११६॥
हुं रसि मनेहसु पंथी भीठ कहेस।
रही न सकुं लाल बिन ए अपराध खमेस ॥१४ ॥

× × ×

मांमव चाल्या मठधरइं करी चाइंपी सीख।
जो जीवा तो फिर मिलां वेग आवां लेइं सीख ॥१४१॥

× × ×

मारू रहे सोवसे, उर तीखे मिव सीध।
मारू बोसी माहिइ (वाले) पड़दे काची भीव ॥११५॥
उर लंबी लाला कमल, नीठ मिम फूल पेट।
एक न दीठी मारुई आंवा पाखे भेट ॥११६॥
उजल दंति कपूर का मारू सत्त गुवेह।
एकन मनगुव दे छसी जाली पखे करेइ ॥११७॥
हेमवरण सीतल लजित, गति गयंदरी जाव।
सुख परिमलनी परमली मारू उरौभि न कोय ॥११८॥

चाहत मग देखत नहीं, चत न मीठे तार ।
दाठ लवालु मांखतां, मेलो दे किरतार ॥६९१॥

सोरठा

मारू म्हारी प्रीत, हिर म्हारे वसाही ।
तांखी तीर न नाख, जो मीठी न सके झुमन्नें ॥६९२॥

× × ×

श्लोक

चिंतातुराणां न सुखं न निद्रा कामातुराणां न भयं न लज्जा ।
अर्थातुराणां न भयं न बंध्या क्षुधातुराणां न भयं न तेजः ॥६९७॥

× × ×

मालवणी वायक

सजन दुरजनके कहर लागी प्रीत न तोड़ ।
जु रंग लगो चोळियाँ सुं चीत लगो तोह ॥४९७॥
मोका मागळ नीकस्यो भरि गयो सौंधी मीत ।
तदी मिरवो वलहो छुटी पकराई सीख ॥४९८॥
होलो हुंतो से नहीं उतरी ओछो लेख ।
साकर हुंतो विख थयो दुरजणरे वयखेह ॥४९९॥

× × ×

तुम मत जाणो प्रीत गई दूर बसेवें जाव ।
नयन मिळोहीं पर गयो प्राण तुम्हारे पास ॥४४७॥
इक बेगळा से दूकड़ा पासे वसे ते दंन ।
प्यार अंगुळनें भोतरे नयण न देखे कौम ॥४४८॥

× × ×

आठ दिहा मत सिता दिन पनरहकी म्हव ।
चौमासा पासें दिहा मुंप मिहाळे मट ॥४९ ॥

× × ×[1]

बाजी छो राती हुरा चिरमी राती माथ ।
आलाळी चलने मिलवो पड़िया चोमट जाय ॥४९१॥

× × ×

रहो घली मठ करि करहो मीगमीचाद ।
कापी दास न चारीमी गुणे न रीझरी ब्राद ॥४८९॥

× × ×

करहा पांणी झूक पीम जो ढोलाको होय ।
आलड़ीया जग मोहीओ राग न मेल्यो कोय ।।६४८।।
देस पीआरो परमंडल करहा न कीजे आळ ।
जिणहीरी ढोल लगडी जिणहीरी वर गाळ ।।६४६।।

× × ×

मारू वाक्य सखी प्रति

मीठो कंठ मोरलिया सुरियां मीठो राग ।
मेही मीठो सजनां आगम मीठो म्याग ।।६६५।।

× × ×

अगर चंदनरो ढोलिओ पुकडीओ आवास ।
पण बीज्यो ढोला तणो मारूनूं परवास ।।६६७।।

× × ×

सोरठा

कहतां नावे अंत, सजन मिल्यां जे सुख होवह ।
ज्यांअसी बुधि अनंत, सीज्यो अमृत सजनां ।।६६ ।।

× × ×

दूहा

प्रेम अरहट आरतामें सजन सोहणां माह ।
सापुरिस ईसा सजमा, आता सुख पड़िवाद ।।७ १।।

× × +

करहो कस्तुरी लदिओ ऊपर भीणी लोय ।
वापसलो सुरंगढी वा (ढोला) निरवाहु होय ।।७१८।।
प्रथम मेलावो आविया ढोला मारू लोय ।
बेरा बहु दंडु दिया दीठ्या दे बहु कोय ।।७१६।।

× × ×

सोरठा

वालहु मरो वाद, किओ मही तो कुपाकुये ।
तो बागी पड़ी बाद तायी ताव दीवारी ।।७२१।।

× × ×

दूहा

इहां छै गुणमेलड़ी, ढहां छै रसमेल।
जम रोंणा साचो करां, वानेंई कोमो मेल ॥७१ ॥

× × ×

दूहा मणा पुराणा भाई, चोपइ बंध कीधो में पई।
संवत सोळह सतरोतरे आसाजीज दिवस मन करे ॥

× × × ×

(न)

[यह प्रति नागोर-मारवाड़ के श्वेतांबर-जैन उपाश्रय में वर्तमान है। इसका लिपिकाल सं० १७७१ है। पाठ प्राचीन ज्ञात नहीं होता।]

ढोला-मारवणीरा दूहा

सरसति मात पसाय करी, दे मो अविरळ मति।
भोगी चतुर सुजाण जे गुण गाउं तस कथि॥
देसाँ मांहे दीपतो, परगळ पूंगळ देस।
जिहाँ नर नारो नीपजै निरूपम नीकै वेस॥
ऊंचा मंदिर चोखणा, ऊँचा घणा आवास।
अवल अतीवा माळीयाँ दीस्याँ झुंबाभास॥
राज करै राजा तिहाँ, पिंगळ नाम प्रवीण।
कामनीयाँ मीनो रहै निस दिन नेहै लीण॥
अंतारौं अहनिस करै, अमल सुरत अति रंग।
कोकलीयाँ कळिरव हुवै राग छतीसे रंग॥
भला सुरत माणस भला भली राजरी रीत।
राज लोक रंभा भली, पाळै अहनिस प्रीत॥
गिर अडार आबू तणी मरु आखेर सुरंग।
तिहाँ सामंतसी देवड़ो, अमरसी माया अभंग॥
तस धी ऊमा देवड़ी, अवर नहीं संसार।
जाणी हुरि अपछरे, धरणी रह वि धार॥
पटरांणी पिंगळ तणी अपछरकै अणुहार।
सजै ऊमा देवड़ी सुंदर रूप संसार॥
सुंदर डोळ सिंणगार सजि, वेस पचारि साँझ।
मोंनमाय आप मिळी नर सिर चाढो हंझ॥
रामि दिवस रंजन रमैं, प्रीतम इणसै प्रेम।
कुसुम बाँध कैतक बनैं, मोह्यो मधुकर जेम॥

मयद वधी मारवी आइ अणवती पेट ।
पूरे मासे परमयौ, जनमी रतन ज मेट ॥
सुंदर रूप सुहामणी, अपछरकै अनुहार ।
बहु को मावे परमणी भमर करइ गुंजार ॥
बरस पाँच वरळूया जिसे हुवे देख न कुछ ।
पछ पावे बहु एकठा, मांगत हुवा ममभट्ठ ॥
मारवाड़के देसमें, एक न आवे पीव ।
कबही हुवे अपरठथो, कबही फाका तीक ॥
पींगळ परीयण पूछियो, कीजे केणव काइ ।
कोइ गाम न मरफळी, जेण वसीजे जाइ ॥
चढ चढ कारण चोकीया, देखे हु हु पाँव ।
पुहकर पव पाँणी सफळ, साँभळ पूंगळ राव ॥
पिंगळ ऊबाणो कीयो, आया पुहकर तीर ।
जब पांणी सफळ तिहाँ, हुवो सुख शरीर ॥
हिये जिम होलो मांफ्मै, देख उन्हो परिमाण ।
सेस मिले अणपीतिम्मो, मावे जाय न जाय ॥
नळ राजा नळवर रहे, जाके रिद्ध अपार ।
भली अनोपम मामणी सुख माणे संसार ॥
एक चिंता मनमें घणी, नही पुत्र रतन ।
तिण पाछे लागी हुवौं, बांधी अमूयो मन ॥
राजा मांगत पूछीया, किस करो एह उपाय ।
पुत्र नही पाई मलो, पुहकर देव मनाय ॥
जाता ओळी राइ किण, हुवौ पुत्र रतन ।
उछव हुवा अति घणा लोक करे धन धन ॥
राजा मन मैं चींतवे, आए करणी बात ।
राजा मनायो मांगणी, करपाणी परभात ॥
साथे रिद्ध जोइ घणी, आयो पुहकर तीर ।
न्हाण करी मन हरखीयो निरमळ वरवर नीर ॥
इण अवसर मन ऊमट्यो, अणमी, भावत मात ।
पिंगळ राजा पिण तिहाँ, मिळीया मन उछाव ॥
रुनमीणो उत्तर दिशा, घणये गरणथो मीर ।
पिउं दिस चमकी बीजळी, मंडि तंडव मोर ॥

ग्यार मास निरफल रहा, सरवर (त) यौ प्रसंग ।
दंपति ग्यान विनोद रस रहै मन उछरंग ॥
एक दिन नरवर रावजी, चढ्यो शिकार प्रभात ।
छिपलो दीठी नाखता, दीमा पोठा दे आस ॥
चौंतो पिंगळ रायने गयो ज गाढां मांहि ।
सूती ऊमा देवड़ी, कहि नीचे वहि जाहि ॥
दीठी राजा देवड़ी रांणी दीठो राय ।
मन मांहे अचिरिज भयो, अई सो रूप अथाह ॥
देखी ऊमा देवड़ी, राजा धंमी ज्याग ।
जो माथो इण नारिनै लिखीयो मोटा भाग ॥
तुरत राय पाछो वळ्यो आयो तगड़े ताप ।
पिंगळ आयो आपीया मोड़ीया अरने जब ॥
राव ऊतरो करि माया पीवो पाड़ी पैग ।
कहि अंतर किम राजीये वे उडमेरा ठयग ॥
ताप घडु तिहाँ ऊतरयो नळ राजा उदमेह ।
चौवी ममति मळि परे, पिंगळ राजा तेह ॥
आए बैठा एकठा करण कटूहळ केळ ।
नारी पाला तोगदा राजा ये मन मेळ ॥
दूंपी माया घावदू कोडी मन केळोंथ ।
आंखड़ो साँमा आपीया प्रीत चढो परमोंथ ॥
लगपण हुवै तो सौगुणी बधइ प्रीत अप्रमान ।
नरवर राजा पिंगळे, वचीया एहवी वांय ॥
तिणके मारू नीसरे आवो बीज मयंक ।
ऊ मांडो या निरखसी, कोई नहीं कळंक ॥
कुँवर अनोपम माहरै दीठे देव कुमार ।
तिणई मारू दीजिये समजोड़ी संसार ॥
तब हे राजा पिंगळ कहै बात एह परमांण ।
तरि करेस्यां नाथरो पूछीने परीमाण ॥
राजा उठी आपथो, डेरे आयो धांम ।
पिंगळ पूछे देवड़ी कहो त करौं ए काम ॥
आपे ऊमा देवड़ी वाहँम हीये विचार ।
मनह हकीकी मारवी ढोल समुद्रां पार ॥

तां लगि प्रीत भर्यंकीया जां लगि मूका मित्त ।
बद मन रापै भ्रमरलुं चतुर विरच्चै चित्त ॥
प्रिय सुंदरैरी प्रीतड़ी, मद भगाळि नयणां ।
भाइचै इम किम छांडही वयनेहा सयणां ॥
मन चिंता मिळबो सयण मंडावो आळाथ ।
माळवणी मन मानिया यही न कोई सोच ॥
[इसके आगे मूल के २१८ और २२१ नंबर के दूहे हैं ।]
जिके न बांमण वांणिया, तिकौं दिसावर थाप ॥
राजकुंवर राजा तणा लोइ दिसावर कांय ।
[इसके आगे मूल के २२१ २२६, २२७, २२८ और २२९ नंबर के दूहे हैं ।
चंपावरणी कामणी, तोदै तुम्म सरीर ।
इरणापी इसनै करै तो भ्रोंणा रुपणा चीर ॥
[इसके आग मूल के २३२, २२४ २२८, २३ और २३१ नंबर के दूहे हैं ।]
सुणि सुंदर दाती करै, कांइ चाकरी करांइ ।
कांई माई बरका, घर बैठा रहांइ ॥
कत म जाए चाकरी, फिरइ हो कुठाकुर साथ ।
रत पाड़ा सेवा पखी, पहरा देणो राति ॥
सुणि सुंदर दाती करै दीतां राजबीयांइ ।
घर बैठा हांमक हवै बाहिर कोइ समांइ ॥
ऊपळ चिंता ऊमायरा पग म मैले ठाम ।
सज्जन उतहार इसा, तिए ना मन बाजाप ॥
[इसके आगे मूल के २३६, २३८ और २३९ नंबर के दूहे हैं ।]
वरवम समद ढोढ़दप, बदी सयणां साल ।
कर बाहा कामिद करै, सुणि कंता सुकमाळ ॥
[इसके आगे मूल का २४१ नंबर का दूहा है ।]
नेह बंधन बंधीया, बळि रहिया दुइ मास ।
सहमेही क्युं बीसरै मन मारवणी पास ॥
बाइं दिन चमकी बीजळी चाढा बादल छांइ ।
सावड़ भाया पदमणी क्या व पुंगळ चांइ ॥

अधर तबोळे मोंखीया, कै कीरखी चीरिया।
धणहर कंचू मोंखीवा, मवगण न जाणूं केय॥

[इसके आगे मूल के ५५७, ५११, ५११ और ५९८, नंबर के दूहे हैं।]

मूंई हूंती रे बल्लहा, तूं म्हे मिळीयो आय।
कुमळ पड़े ही पूहुस्यां, पहिली प्रेम पसाय॥

[इसके आगे मूल के ५११, ५११ ५११ और ५५४ नंबर के दूहे हैं]

ढोलो निरखे कोइया अपचहरके अनुहार।
दूर न हीस्ये एण युग, मारू सरखी नार॥
बालंभ के विरचे नहीं, थे चूकीया हाम।
अधर अमृत-रस चूंख्यां कबही विपति न हाय॥
घणां दिनाई प्रीठ मिळ्या मनमानीता कंत।
अंगो अंग भीड़ै भयुं मिळे हसंत हसंत॥
पुंगळ ढोलो मांडुयो, रहीयो साल्हकादि।
पनर दिहाडा पदमणी मांणी ममहद हाडि॥
सगळे साथ सतावीयो पूछी सगळी बात।
मारू को शिखड़ीब गुणेह दीन्हा साथ पचास॥
ऊमर राजा सांभळ्यो के रांनांको राय।
मारू चाली सासरे ढोला लीये जाय॥
पंथ सहल पबंधे मिळ्या रहीया वनह मझारि।
मांदी तो मारू कीया मारग हालो मारि॥
ढोली मरम न जांणियो चढीयो करह पलांय।
साथ तो असवार हूवा हक पहिलड़ै पलांण॥
सिंघळ राजा मारवी पहुचाइ हरपेय।
मनह सकोडी मारवी सुपवंत सोहागेय॥
पुगळ-मुंधी मारवी चाली ढोले साथ।
पंचायरवो बल्लहा भयुं सकोमळ हाथ॥
पहिलो बातो मळ रामा मांडे करयुं माय।
नित मर धुती मारवी पीवी पैये बाम॥
अह पणी लहु जागीया मारू धुती कांय।
ढोलो करे दिन सामरी, मारवणी सगाम॥

दीयो मारू छोडि मुख, हूं कां पड़ो निसास ।
ढोला कूदो पिलाणीयो, चल्यो नरवर वास ।।
भूखि मधूखिवि लागरी, वार कि म्यार मुख ।
तिण वेळा तिण झाकरी, सरठा पीला सह ।।
देख न सकुं पिलाणीया काळो न पाप भाखार ।
मारू तन पिलाणीया, कंठ रह्यो निरधार ।।

[इसके आगे मूल का ६८ नंबर का दूहा है ।]

पिंड नगरो चाल मरै, बळि बळि करै विलाप ।
हा हा देव किंधु कीया, मारू लागी साप ।।
पिया रोवै पिड विलखतो मारू पास बयठ ।
घर मया दीधो नाह पिय, मया पिय नाह न दिठ ।।
मळ्यो ढोलो इम कही कळि मनीमाव करेह ।
मारवणी पैसे बळी हुं अब इर लागि बळेह ।।
चिळविळीया पिंगळा हुआ गया अ पिंगळ पास ।
मारवणी पंडवे बळी, ढोलो लागे बास ।।
पिंगळ राम कहावीयो, ढोला पाछो आव ।
मारू लाडुकी बहिनडी, तोहि मयो परधाव ।।
मळ्यो ढोलो इम कहै एहवा वचन म भाष ।
मारूसुं तन मळावीयो, मया विसन उवि लाप ।।
तन मोडे मठ आंखीयो, वचन कियो सुवार ।
मारूसुं ढोला बळे, हुवो अ हाहाकार ।।
मारवणी ढोलो मरै ढोलो बैठो मांहि ।
दीखावटी रे करहलो इवडी करै अपारि ।।
करहाने बंधीछने वहिराया पियमार ।
नरवर जाए मै कहै, ढोला-तणा जुहार ।।
भारड मीरड करहलो मिळीया तर मम्कार ।
ईसर देव पधारीया लारे उमया नारि ।।
उमया बोलै ईसरा, किसो अचंभो एह ।
पग वेरै करो बळे, आगो देखो एह ।।
संकरने मनरी करै प्रीतम ही किण पाहि ।
बो लागी कहीया क्यो तौ मारू जीवाडि ।।

संकर गवरीनुं कहै, आपां फिरां विदेस।
मूआ अनंता देषस्यां, कहि केता बीवाबेह॥
गवरी थळ पाछै छिपी, संकर बहुत विलगाय।
इम जाणे पारवती, प्रगटि ऊभी थाय॥
देखी दीन दयामणा, दया करै मन मांहि।
अमृत आंणी छांटीयो संकर दै इय साहि॥
विष विसहर पाछे गया, ऊठियो हुइ सचेत।
ढोला मनमां हरषीयो कै था पुर संकेत॥
ईसर के उपावीयो, का कीयो अरगाय।
गवरी इन पुत्रिका तेह न ढोला थाय॥
मारू पूछै कंत सुणि किया कारण विह ठाय।
तुम्ह मरंता मारवी मइ कळपीया माय॥
हिरयां ही पूरै हीया टोळासुं टक्रियाह।
कहि कैरै रहियो किसुं, वयणा बीह्ळीयाह॥
ढोलो मारू एकठा इस बैठा मन माहि।
तिहां तेडी बीवाभरी कीया लाय पसाय॥
पुंगळ का बीवामरी बहु बातां करि भाव।
मन बीती मीठ हरषाया, सरीयां सगळा भाव॥
पिंगळ राव पधारीयो कीया लाल पसाव।
घरि घरि हुआ बधामणा घरि घरि अधिक उछाह॥
ढोला थाक्यां करहै चढि, मारवणी संमुख।
ऊमर मारण रोकीयो उतपिया आइ पहुत॥

[इसके आगे मूल का ६२७ नंबर का दूहा है।]

ऊमर बीठा करहला, दीठा मारू ढोल।
आदर दे मद पावीया, बासे मीठा बोल॥

[इसके आगे मूल का ६१८ नंबर का दूहा है और पंक्तियों का क्रम उलटा है।]

गीत गावंती डूमणी पेसी मनली पाव।
एकरसुं राजा ऊठो करि समझाई ताउ॥

[इसके आगे मूल के ६३१ ६१४ और ६१९ नंबर के दूहे हैं।]

कंब चरवके करहलो गयो दुरंठ ऊठ।
मारवणी ले मारीयो, ढोलो म्हाली मूठ॥

ऊवपिया मारवणी कहै, सांभल कंत सुजांण।
मा बांपूड़ा ऊमरो किम चलि स प्रपांण॥
मनकै करहा भेळीया, छूट न बोला मूळ।
पण ढोला मारग वहै, ऊमर मागी चूक॥
मारू घटनी मारिया, बिहुं नवधांचे बांच।
साथ म हिवसुं ऊमरो, पहीया विसावे ठांव॥
हलो हलो ऊमर करै पवंगे चढे पलांण।
वा भली वसु लाप सु करहैनुं केकांण॥
ऊमर मारहवा पड़ै, पहुँच न सकै कोइ।
भवे कीम पहुचे ढप्पड़ा, करहा पंखी होय॥
माऊ माट पधारीया ढाले लाग्यो चाय।
पाछा फरहो किम लहो हेंति करि पूछै सोय॥
मारहै वाहै ऊमरो कहीयो चावै राय।
किण कारण ऊतावळा, मारवणी ले चाय॥
ढोलै माऊनुं पुरी दीधी वाढे कुंद।
पंच विषम वही संपीया बिहुं पवणयामेऊर॥
पंखी ऊमरनु करै, म मारिवे तुरंग।
पोहै करै संपीया के पऊ हुवा अवंग॥
मारू समभै मिलवी वन वन चाल्या साथ।
ऊमर तब पाछो वळ्यो सामळ ढोला बात॥
ढोला घरे पधारीया पूगी सघळी चाव।
मनवंछित सुख भोगवै मारवणी आणाव॥

[इसके आगे मूल के ६२१ ६२४, ६२५, ६२७ ६२८, ६६१, ६६६, ६७२ ६७३ और ६७४ नंबर के दूहे हैं।]

इति श्री ढोलामारूरा दूहा संपूर्णम्।

संवत् १७७१ वर्षे मति माघमासे शुक्लपक्षे तृतीया तिथौ सोमवारे लिपतं आर्यवजियद ग्रंथ मध नगरे। श्रीश्रीशुभं भवतु कल्याणम्।

सोरठा

ढोला मारू बात, सांभळ्यां सुख ऊपजै।
कैहणो सखरा पात, मांत मांतसूं बरणवै॥
चतुराई कवि चोज, जे जिणमै जैसी होवे।
मरदां देख्यो मोज, लाहो मन चोखम लीयो॥

इति श्री ढोला-मारवणीरी चौपई बात संपूर्णः।

सकल पंडित शिरोमणि पंडित श्री ५ श्री हर्षविजय गणि शिष्य पं॰ दीपविजयगणि लिखितं संवत् १८ १ वर्षे माघ सुदि १ वार शुक्रे लिपिकृतं श्री कवला ग्रामे। ठिंमल राव श्री कल्याणसिंघजीराज्ये चतुर्मासिक कृतं। श्री शुभं भवतु श्री॥

शब्दकोष

अणावों=मँगवाते हैं ६११
अणुहार=अनुहार शब्द का अनुकरण ५२
अदिठा दोठा=नहीं देखे हुए १, ५२१
अध्य=अध, आधा ५७०
अन=अय २१४, ६१४
अनइ=और ४६१
अपछर=अप्सरा १६७, ५६६
अपत = कुत्सित या हीन पशु ६११
अपूठा=वापिस, पीछे ४ ४
अप्पाणं=आत्मानं अपने आप को २२४
अभितरेण=अभ्यंतरेण, अंदर से, बीच में से ५७५
अभोखण=आभूषण गहना ४७१, ४७२
अम्म=अभ्र आकाश ४८७
अमल=अफीम, मद्यपान व विश्राम ६२८
अमले=अधिकार अमल ११
अम्हाँ=हमारे २
अम्हीणाह=हमारे ४ १
अम्हीणी=हमारी ११६, ६६६
अर=और १६८
अलता=अलक्तक, महावर ८७
अलापी=बजाई ५६६
अलगा=दूर अलग ४२, ११८
अलग्गा=दूर १ ७
अवतरइउ=उमड़ा, पानी म बरसना ६६
अवराँह=औरों का अब ८
अवसि=अवश्य, परवशता के कारण १
अवाड़=विपरीत ७१
अविंध=अविद्ध, बिना बिंधा हुआ २१
असण=आसीन बैठा हुआ ११६
आसण पास में ४२१
असाधि=असाध्य १६८
असत=अब ५६६
असपति=अश्वपति राजा ५६६
अहेंसा=अदेखा (क ६१४)
अहर=अधर ८७, ४७ , ४०२
५१६, ५१७, ५१८, ५६६ ५७२
अहलउ=व्यर्थ, यों ही ११८
अहिनाँण=अभिज्ञान चिह्न ५१६

आ

आँख्याँ- खियाँ=आँखें ११६, ५१६
५२१
आँगळी = अंगुली १४४
आँण=आकर ५१५
आँणि-०ये=ला १४ लाकर ११६, १४४, २८८
आँणी=लाई गई ५४४
आँणवा=लाना ५०१
आँवउ=आम ११७
आँमणी=विमना १ १
आँसुआँ=आँसुओं से ११७

आ=पद (स्त्री) १, ८, १, १०८, ४१
आइ=आकर १७, ११२, ११६, १११ १२१ १२५, १३२ १७१ ४ , ४२७ ४४७, ५ ४ ५ १ ५५८, ५४१ । आता है ५८ । आ ११२, ११७
आइस=आदेश आज्ञा ६
आई = आ गई ११५ ५६५, ११६ । आकर ५६१
आए=आता ११६ । आकर १८५
आएसौं=आवेंगे ४६
आकै=आक में ६६१
आखइ=कहता है १६, १ , २४ १११, ४४ कहे १११
आखव=कहता है ८
आखर = अक्षर (आंतरिक प्रेरणा) ६७
आखै = कहना १२४, ११४ । वर्णन करो ४६७
आगम = पहले से आगे से ५१६
आगली=आगेवाली बढ़कर ११७
आगहि=आगे १४१ १८१, २४
आघी=दूर अलग (व १)
आघेरि = दूर ६१
आछउ=अच्छा १ १
आछुआई=आखका ५१ ५३१
आछड़ी=आख की ५६७
आछैआख ही ५५६
आठम=आठवाँ ५८६
आडइ=आड़ा बीच में १११
आडवला-डे = पहाड़ विशेष राजपूताने का अरावली पहाड़ ४१४, ४१६, ५४
आडा=बीच में ६१, ६६ ७ , ७२, १६४ ११२ ११३, ४१६
आणंदियउ=आनंदित हुआ ३५
आणडै, आर्णू=लाऊँ २२६, २१
आणौं=लावें १११
आणविसि=मैं लावेंगे २११
आणिसि=लावेगा २१८
आणेउँ=लाऊँगा ३३५
आणयउ=लाया ३२६
आतम=आत्मा ११४
आथमणउ = अस्त होने की दिशा ५४६
आदित्या = सूर्य ४६४
आदिरथ=आदरा दीया ५७१
आदीता=आदित्य रूप ४६३
आधोफरर = आकाश और पृथ्वी के बीच में बहुत ऊँचे पर बालू जमीन पर अधित्यका पर छज्जे पर ४१६
आपड़ौं=पकड़े पहुँचे १८४
आपण=स्वयं, अपने आप १२१ १ ७ ६६१
आपणइ=अपने में ५१, अपने ३२५
आपणउ=अपना ७१
आपणा=अपने ६२३
आपणी=अपनी ४१
आपाँ=अपन, हम ६३४
आभइ=आकाश में ४१ ४४

उघ=उठ ४४ १४१, ४५ १४५
उघि=उठ १ ८, १ ५
उधिरि उधरिअ=उठी १५
उखिहार=अनुहार, समान ५८ १११
उर्तोमिळउ=वरसी से ११४
उर्तोमिअ=तेयो से ११८, १४२
उतार=उतारा ५७६ ५८ । उतार कर १११
उतर=उत्तर, उपरी पवन १८१, २१६, १ १
उतरइ=उतरता है चलता है ११८ २९१ । उतरकर २३
उतरउ=उतरा उतर आया १८१ १८७, १८९-२१५
उत्तिम=उत्तम १ १ १८७
उथापियो=हटा दिया (क ४४४)
उदभिया=उमड़ी ४१५
उदियइ=उदय होने पर (भाग्य) ४८८
उपइद=उमड़ता है २९९
उपराठउ=पीठ किए हुए विमुख १५ १११
उपराठियाँ=पीठ की ओर किए हुए १४
उपनियाँ=उत्पन्न हुए हुए उत्पन्न हुई हुई ४५७ ४८४ १११ ११७
उपाडियउ=उठाया उखाड़ दिया ११८, १२४
उपाडी=उठाई
उमाँचरा=भ्रमणशील ११२
उमाहउ=उमंग उत्साह ५१८
उमाहिउ=उमंगयुक्त हुआ १ १
उरहउ=हलका १८६
उलाहियउ=उमड़ा ५१८
उलालियउ=उठरा ५११
उलाह्नो=उलाहना करना नाश करना २ ९
उल्हसय=उल्लसित करनेवाला १९१
उल्हास=उल्लास ४ ७
उवाँ=वहाँ ११२
उवा=वह २७१ ४ ८ । उव ४११
उवै=वह ५१ । वे ५९
उवारिस्यौं=निकालेंगे, खींचेंगे ५२५
उहाँ=यहाँ २ ११

ऊ

ऊँचहरो=ऊँची १८ १९
ऊँट कमालउ=(प क)=ऊँट कमाल नामक पात्र १ ९ ४१७
ऊँडा=गहरे ५११ ५१४
ऊँमर ऊँमर सूमरउ=ऊमर सूमरा, एक राजा का नाम ११६ ११९, ११, ११५ ११४ ११८ १४१ १४५ १४७, १४९ १५
ऊ=वह ७४ १९१
ऊकलियइ=निकलता है २९७
ऊकलिया=खुला दिया २९५
ऊकरडी=घूरा १११
ऊगउद=उगते उमड़ते हुए १९४, १४१
ऊगइ=उग उदय हो होना ११९ ११ । उगम पर ५४९
ऊगउ=उगा उदय हुआ १५८
ऊगट=उबटन ५१५

ऊगरइ=गिरता है उगलता है २७२

ऊगसी=उगेगा, उदय होगा ११५

ऊगाळइ=जुगाली करता है १११

ऊघाळउ=प्रवाह या कूप, देश त्यागकर परदेश गमन २, ६६

ऊची=ऊँची ११

ऊचेळती=उचेलती हुई १६१, ५२१

ऊजाबहउ=उजाड़, जंगल ११२

ऊठ=उठ ४१६

ऊडइ=उड़ता है ३६

ऊडावेहि=उड़ायेगा ११७

ऊडी=उड़ी ६७

ऊतरइ=उतरता है ११८

ऊतावळि=जल्दी शीघ्रता १४

ऊनमि-॰निमि=उमड़कर ४१ २५७

ऊनम्यउ=उमड़ा २७१ २७२

ऊमयउ=उमड़ा हुआ २४१

ऊनहाळउ=ग्रीष्म ऋतु २४२ २७६, २७७

ऊपजियाः=उमगे चले २९६

ऊपनउ=उत्पन्न हुआ ९५

ऊपरइ=ऊपर ५२ ५१

ऊमउ=खड़ा हुआ ४४७

ऊमी=खड़ी हुई २१७ ३५५ ३७६ ४४७

ऊमम्यउ=उमंगयुक्त हुआ ५६४

ऊमहइ=उमड़ता है १८८

ऊमहउ=उमड़ा ११

ऊमायउ=उमंगयुक्त हुआ २८१, ३३१, ४४९

ऊमया=उमंगयुक्त हुए, उमगे ११७

ऊमा=ऊमादे, मारवणी की माता का नाम ७९, ८

ऊमाहियउ=उमँगा हुआ, उमंग-युक्त हुआ ४२४

ऊमाहइ=उमड़ता है १

ऊलाळीयइ=उछा दिया जाय, उछाइए ११२

ऊलंबे=प्रवर्धित करके—॰लिए हुए १५

ऊवनउ=लिप्त हुआ ४९७

ऊवारंता=निकालते हुए, ऊपर खींचते हुए ५१४

ए

ए=यह ११ १८७ २ ८, ११७, १८१ ४४५। हे २१ ये ३९, ७१

एकंत=एकांत (में) ५४२

एकइ=एक ने ४४८

एकण=एक (में) ४४८, ४९८

एकणि=एक (में) १ ५५१। एक (से) ४८८। एक ४९४

एकलड़ी=अकेली २११

एकल्लाँ=अकेली को २९५

एकोतरे=एक सौ एक २१

एण=इस ५२१

एता=इतने ४५५

एथि=यहाँ २१८

एम=यों इस प्रकार १, ७९ १७१, ४४८, ५१४

ख

खंच=खींचकर झुककर लुप्त होकर ४२६
खंचिया=खींच लिया, रोक लिया ४९६
खंजर=खंजन, पक्षी विशेष ११ ४५७ ४५८, ६६६
खंडियउ=खंडित किया ३९५
खंडी=खंडित किया ६६५
खंति=अभिलाषा २१८
खग=खंग २५५
खचंति=हाँक रहा है ४२१
खचइ=चलाता है ५१६ १४२
खचइड=खड़ाम से २१९
खचइरिया=खटके १८
खचौं=हाँकें चला दें १२४
खचौंह=चले १२८
खड़ि=चलाकर ४१
खड़िस्यौं=हाँक देंगे (सवारी को) चला देंगे २७८
खण=खाना १८१
खमणी=क्षमाशीला ४५२, ४५१
खयँग=तलवार १४
खरउ=पूरा पूरा निश्चय ही १ २
खलभलइ=शब्द करता हुआ बहता है २१५
खवास=नाई राजमहल का एक भृत्य (जो प्रायः नाई जाति का होता है) ८
खाँण=खानेवाला १ ९
खाजउ=खाओ, खाते हो ११७
खाइ=खाता है १४, ८९ १ १, २१९, २५४ ३७१, ३९१, ४२७, ५८८
खाहि=खाता है १६ । खा रहा है ४१६
खिवी=चमकी ५४२
खिजमति=सेवा ५१५
खिरा=गिरे २६४
खिरहोखिरन्त=मधुमधु (मिल गए) ५१
खिवतौं=चमकते हुए १५
खिवइ=चमकती है १६१ २६ ,५२१
खिविवौं=चमकी १८९ १९
खिवी=चमकी ८६
खिउ=खिसकर १४९
खिरइ=क्षीण होता है उतरता है १७७
खिस्या=शिथिल हो गए ४४२
खीज=खीझकर झुँझलाकर १४९
खीचोरी=मकरिया ४१८
खुरसउ=खुनस ५४९
खुरसाण=तलवार १८
खुरसाणी=खुरासानी ६४
खूँटइ=खूँटे पर १७४
खूटइ=खोदता है २१७
खेति=खेत १४६
खेलाइइ=खेलाता है ११४
खेह=खेह, धूल ११
खोखे=खोजता है ढूँढता है ११९
खोटइ=खोटे १९९
खोड़ौं=भाग्यहीन, अभागे २१९

किनौं=क्या, या ४ १
किमइ = करके ४१७ । किया १४१
किपउ=किया १, ५४, ५५, ५८, ५१
१४१, ४४० ५८१
किया याह=किया किए हुए १३८
१५४, १८४, २१५ १४५, २१९
५११ ५१८, १ ७, १७२
किर = मानो १४८
किरयाँइ = किरयौं ४११
किस = किस ५१८
किरइ=कौन से ११८, १४
किरउ = कौन सा २१८, २१२ २२१,
२५२
किरा=कैसे कौन से १७७, ४८८
किरं=कहाँ ८९
किरि = किसी १५
किरी=कुछ ४ १। किन्हीं को १९५
कीजइ=किया काम कीजिए १
कीप=किया ६ १८५ १८७, ५५४
कीपउ=किया १८
कीपी=की ५१ ५१४
कीन्हीं=की ११७
कीयाइ = कर दिए ५१
कीयो = किया ११७
कुँअरी=कुमारी ९
कुँमउ=कमल ४०१
कुम्भरिया=कुंज पक्षी कुरम्क ९८
कुँम्भरियाँइ=कुरमों का २४५
कुंमही=कुरम्क ६७
कुंमरों=हे कुरमों १२
कुप=कौन १९५
कुँमआर=कुम्हला जाती है ४०१
कुँमलाणी=कुम्हलाइ ७७ १११
कुँपिया=कुए में १५
कु = पादपूरक अव्यय ५१५
कुमारउ=अविवाहित, कुमार कुँवारा
१२२
कुरला=कोयला ११२
कुरियाँ = करने पर ११५
कुण=कौन ८९ ११७ ९८४
कुमकुमई=गुलाबजल से ९४
कुरंगउ = हरिण ११४
कुरम्भरियाँइ=पक्षी विशेष कुरम्क,
क्रौंच १८१
कुरमाँ=कुरमें, हे कुरमो ११, १४
कुरमंड=कुरम्क पक्षी ९ ९
कुरलइ=कलरव करता है १८९
कुरल्याइ = कलरव करती है २११
कुरलाइयौं = कलरव किया ५१
कुरलिया=कलरव किया ५१
कुरली=बोली कलरव किया ५१,
५७
कुल गुरु=गुरु कुलवासी १७४
कुरकणा=पुकारने के शब्द १५५
कुरदि=कुरद (कुँए की) ११७
कुराइउ=कुल्हाड़ा १५८
कूं=को १७, ५११
कूँआरि=कुमारी १५६
कूँकूँ=कुंकुम ४११ ११८, १५७
कूँम्भ, कूँमों कूँमडियाँ कूँमडियाँइ,
कूँमडी = कुंज पक्षी ५४ ५५, ५६,
५७, ५९ १५, १९८ ४५७

कुँद=जानवर के पैर का बंधन ११७
कुँटियउ=ओंप दिया १२६
कुँपळ=कोंपल ४११
कुँपळे=कोंपला किकिया की तरह एक पात्र ५६२
कुकड=मुर्गा ५८५
कुट=१४४ १४५
कुत्पाइ=बैंधा हुआ ६४८
कुटि=१४८
कुटियउ=बैंधा हुआ १४७
कुहर=भूठे ही ११, ११५
कुण=कौन ११
कं=कौन १४८। के ११६। कुछ कोई किसी को ११५ १२५
केक=कुछ ११
केकाँण=घोड़ा २६७ १ ६ १०५
केकाँहीं=घोड़ों ने १२४
केण=किस कारण ५१८, ५०१। किसी मे ११५
केता=कितने १८८, १७
केती=कितनी ७, ४६२ १४१
केती इक=कितनी एक १८१
केथि=कहाँ ४२१
केरह=के ११६
केरा=का के ५८ ११८ ४८५ ४४
केरी=की ११७ १८१ १६१ ४
करे=के की ४ २ ५२८ ५४५, ५६२
केळा ठि=कपे का पेड़ ४०६, ५११। कलि मीदा ५५५ ५६१
केळि-गम=कदली गर्भ केले के अंदर का भाग ४६४
केळिनि=कदली ११२
केवड़ो=केवड़ा ४०६
केहइ=कैसे ११२
केही=क्या, कैसी, कौन सी ५२५, ११६
केहे=कौन से ५४६
कै=के ५८१ ५८१
को=का १६। कौन, कोई ८२, २४७, २८१ १४८, ६१४
कोइ=कोई ६६, १११, २११ १४६, २११ १८१ ४१२, ४१७, ५१६
कोइक=कोइ एक १७ १५६
कोडि=करोड़ों कोटि ४६, २१५
कोडी=प्रमुख ४११
कोय=कोई ४४१
कोहरा=कुओं में ५२१
कोहरे=कुएँ में ५२४
कौ=का ५८५
क्यउँ=क्यों कैसे, क्योंकर २६४, २६६, २६१, ४८०
क्याँही=कुछ भी १८१
क्या=कैसे ५२
क्यूँ=क्यों कैसे ११८
क्रम=पग ४४
कु झाटि=कुरंग के १ ५
कु कि } =कुरग पक्षी १ २ ४
कुंभी }

चिआरि=चार ९५
चिहुँ=चारों २१४ ३१६, ४९७, ५८१
चींतिउ=सोचा हुआ (१६८ प)
ची=की १
चीकनी=चिकनी, चीकनवाली १७७
चीतारंती=याद करती हुई २ १, २ ५
चीतारेइ=याद करता है १९८
चीति=चित्त में २१७
चुगइ=चरता है चुगता है २ २ ३३६
चुगतियाँ=चरती या चुगती हुई २ १
चुगि=चुगकर चुनकर २ २
चुम्बेण=चोंच से ५७७
चुणइ=चुनता है तोड़ता है १२
चुर=चूरा ४८१
चुगाइ=चुगता है १८९
चुगता=चुने हुए (प)
चूंन=चूर्ण १७७
चूके=चूकना ४४
चूड़इ=चूड़ा ४७५
चूड़ी=चूड़ी वलय १४९
चूरि=चूरकर ५९२
चेट=चावधान हो ३३३
चैत्रि=चैत्र मास में १४१
चोपसिउँ=चुपड़ूँगी मलूँगी १२
चोल चोली=मजीठ ३३९ ४ १
चोवटा=चौगुने (देह में) १ ९
चोवा=मरगजा का लेपन ५९१

च्यार रि=चार ४२, १८८, ३३१ ५४१
च्यारइ-०रे=चारों ९६, ५२८, ५६९

छ

छंडाल=कगारा ५१९, ५४
छंडइ=छोड़कर छोड़ता है १९९, ४८१ ३२६
छंडियइ=छोड़िए १९९। छोड़ा जाय २८१
छंडिया=छोड़े २८९
छइ=है ९४ ३३१ २१७, ३३३ ४ ८, ३३७
छठैं=छठे ५८७
छपरउ=छत की छाल ४११
छाँ=है ६५
छाँटी=छींटे लिए २४
छाँडि=छोड़ ११ ११२
छाइयउ=छा गया, छाया २४५, ३३
छाक=नशा ५१४
छाजइ=छज्जे पर ५ १
छाडियइ=छोड़ा जाय छोड़ा जाता है २८५
छानी=छिपी ६७
छाला=छाले १५१
छाली=बकरी ३३२
छीलरियउ=छीलर गड्ढा छिछला ताल ४२३
छुटे=छुटे हुए ५४
छूटे=छूटा है चला है ५३९
छेह=छेह ५१४

जा=जा (जाझा) ४ ६। जिय २६९
जाइ=जाकर ६८, १ १, १११, १८१, २११, ३६८। जाता है, जावे १२ ७६, ८१, ११८, २११, २४१ ३६१, ३८७ ३४२, ३४८, ३६८। जा १२ १२१ ३६६ ४३६। उत्पन्न होता है, जनमता है ४६८
जाइयइ=जाइए २१६ १
जाइसि=जावेगा २१६
जाउँ=जाऊँ ११९
जाए=जावे जाता है २८१। जाकर १ ७ ४४१
जागंती=जागती हुई ४१८, ४१६
जागइ=जगती है जग रही है। ३६
जागती=जगती हुई ३४९
जागवइ=जगाता है ७६
जागानी=जगाए ५ १ ५ ७
जागिवठ=जगा १११
जागी=जागकर १७८। जगी ३४५
जागूँ=जगूँ जगती हूँ ७६ ३११, ३१४
जाण=जाने २११
जाणइ=जानता है १७ २२१, ४११ जाने का ११ जाने १११। मानो ३८८
जाणहता=जानेंगे २११
जाणउ=जाना समझो ६
जाणेरी=जानता है ४८४
जाणिअइ=जाना जाता है २१४
जाणी=जानी ७६
जाणूँ=मानो, मुझे ऐसा मान होता है ५ १, ५ ७, ३१६
जाणी=जानी ७६
जाणे=मानो १६२, १६६, २१६ ४४, ४७
जात=जाता है १७१। जाओ तो ४६
जातउँ=जाता हुआ ४४१
जातौं=जाते हुओं की १७८
जामीपक्षि=ईशान का बन्ध ५७
जाय=जाता है ४७१
जायइ=जाता है ११४
जाया=उत्पन्न हुआ ४६१
जारी=जलाकर १८१
जाल=जाल वृक्ष विशेष, कदंब (?) ३६१ ४१
जालि=जाल, वृक्ष विशेष ४११
जालि=जलाकर २८६
जालउ=जाला जाल, समूह १६१
जावइ=जाता है २६ ७८
जावउ=जाना १ ५ ११, ३६५
जावता=जाते हुए ३४१
जास=जिसका को १६८
जासौं=जावेंगे ११८
जाह=जाता है १८४। जाना १४ ४६८। जाकर ४४५
जाहि=जाता है १८१, ४३६, ३३८। जावे १८१
जि=जा ६६ पादपूरक व अवधारण सूचक अव्यय ४२६

जिउ=जीव प्राण ११, १५
जिउँ=ज्यों १६, ५६ १४३, १६३,
२ ५, २१४, ६६१
जिए=जिसके ११६
जिका=जो जिनके (?) १ १
जिण=जिस जिन ५१ ? १ २४६
२४७, २५६, २६१, २६१, २६५,
२६६, ४४२ ५ १ ५४६ ५५८,
६६१
जिणि=जिस जिस जिसने जिसमें,
जिससे ७४ २८ २८१ ६ ८
जिन=मत १४१
जिन्हाँ=जिन२१
जिसउ=जैसा ६१
जिसा=जैसे ४८ , १४५
जिसी=जैसी ४७६
जिहा=जहाँ १ १, १८६, ६५५,
जिहाज=जहाज, ऊँट ६४१
जीण=जीन २४८, १७५
जीमणवार=भोज रसोई ५८७
जीवण=जीवन २१
जीवसे=जिएगी ४२
जीवाँ=(हम) जियें ११८
जीवाड्उ=जिलाओ ६२
जीवीजइ=जिया जाय २५५
जीवुं जीवूं=जियूं १४ २६३
जीव्या=जिए, जीवित रहे १ ८
जीहा=जिह्वा जीभ १४
जु=जो अवधारणसूचक व पादपूरक
अव्यय १६, ५१ १६३, १८४
२५८, २६१, २६६ ३४१ ३४४,
३८५ ४५२ ५८८
जुवाँणा=जुवा जवान ५६६
जुवाँणि=जुवानों में, जवानों ने ५६६
जुहार=प्रणाम ३४७
जेँणा=जहाँ, जिसमें, जिससे (?)
३५६, ६५७
जे=जो (बहुवचन) २१, १ ४
२ ८, २१ , २५४ ४२१, ५५७
जो, यदि ११३, ११५, ११६,
१७६, ३२७, ४४६, ४५६ ४८८,
४६४ । जो (ए व) ४१२,
४१४ । जिस (के) ४१६
जेण=जिससे ३४ , ३७६ ।
जिसने ५७१
जेता=जितने ४८७
जेती=जितनी १७१
जेम=ज्यों जैसे १७१ ६
जेहवी=जैसी ४१६
जेहा=जैसे २१६, ३१४, ३१६, ४५७,
४६ ४७ ५६३, ६६६
जेही=जैसी ४६७ ५६३, ६१६
जैहइ=जायगा ६४१
जो=देख ४७५
जोअणे=यौवन पर १६ , २६१
जोइ=देखकर ३१४ ५ ७ ।
देख १ ६
जोइवि—न=योवन ३२८, १ ८,
५१
जोइवड=देखा १ ७, ६ १
जोइ=देखकर ३७६ । देखी ६ ४

पादपूरक अव्यय ६५, १ ८ १११ २४४ २४५, २५७ ३८२ ४८३, ४८८ ५१७

तईं=तु, तुमसे तूने १ , ३२ २६४। ४४५, ६ ५ । से १६५ । तेरे ४३६

तई=उस ४१७ ५१२

तउ=तो पादपूरक अव्यय १ ८, १२४ १४२ १४६, १६७ १७ २ १ २१६, २२५, २१ २७७, ३१८, ३१६ ३४७, ३६६, ४५६, ६६१ ६६८

तजेसी=छोड़ देगी ४ २

तड़ा=छोड़े ३५१

तणाँई=के का १४६ १५७, २१ , २४२ २७५ ४१६, ४८६, ५८ , ५६१ । से ६

तणउ=का ४ २११ ३१५, ३३१, ४४१

तणाकइ=तनतन तनतन शब्द करता है ६३१

तणा-णाँ=के, का २१, ६६, ८१ १ ४, १६४ १७४ ५१६, ६७४

तणी=की ४ ६१, १७१ २१८, ३७८, ४११

तणो=के ५५

ततखण=उसी समय ६५४

तता=गरम तैसा २४१

तत्त=तत्व रहस्य ६७

तद=तब ११४ ५११ ५१४ ६ ५

तनइ=तन का से २६, ७८

तनि=तन में ११६

तमे=तन से ५६६

तम्पउ=तपा २१६

तरंत=तारों का, तीखा २६१

तर=गहरा ६१

तरुणापउ=यौवन १२

तरतर तैरते तैरते १७६

तलीया=क्षीन हुआ

तळाइ=ताल में १६५

तळि=नीचे १६२

तस=उसका ५८

तसु=उसका ८७ ६

ताँ=तब ४२

ताँह=उनसे २१२, २८१

ताँह का=उनका ४५७

ता=उसके १ १

ता कहुँ = उसको १४८

ताकि=रक्षा करके ३ १

ताढउ ताढो=ठंडा ६६६, ५५६

ताता=ठंडा २६४

तात=चिंता दुःख १७८, ५२५, ६१६, वेगवती तेज ६६४

ताता=गर्म २६

ताति=चिंता कमी ६५६

तार=ऊँचा १२

ताळ=समय १ ५

ताव=ताप ५५६

तास=उसका उसके १६, १६४ १६६ २२१ २३३, ४१७, ५४५, ६७५

तासु=उसके ५८

ताह=उस २५२

दियउ=दिया १ ८५। देना, दो १११, ४ ७
दियण=देने १ ७ २११
दियौं=दो देना ११९
दिये=देता है ५८६
दिराऊँ=दिलाऊँ ११४
दिरावइ=दिलावे, दिलाता है १२१
दिवला=दीपक ५८२, ४९
दिवाउर-०रि दिशावर=देशांतर, प्रवास २२१ २२२ २२३ २११, २४६
दिशी=दिशा में ओर ११५
दिहाँ=दिनों २८ , ९८२
दी=दी २ ९ २१ । भी १५ २९९
दीकरी=पुत्री ७
दीखी=दिखाई देती ५५७
दीजइ=दीजिए दिया जाय १९९ २१ , १११
दीठ=देखा ११२
दीठउ=देखा ११९, २४१
दीठा=देखे ११८, १४१
दीठी=देखी ८१ ४७९ ४१०, १ ४ १ १, ११६ १४९
दीध=दिया ६
दीधा=दिए १८१ ४४१
दीन्हा=दिए १४४, ११२ ४१९
दीपक्को=दीपक, दिया ५७५
दीपता=देदीप्यमान दीप्त प्रसिद्ध २१२

दीपशिखा=दीप-शिखा, दिये की लौ ७०९
दीपाँ=दीपें ४९१
दीयइ=दिए, देने से १ ९। दे ११८
दीयउ=दीपक ५ ६
दीवळउ=दिवला, दीपक ५७८
दीवावरी=दीपकधारिणी दासीविशेष ६ ५ ६ ६
दीसइ=दीखता है ८८, २१८, ५२४, ६६५
दीसंता=दीखते (थे) ४२१
दीह=दिन २८१ ११४, ४९१ ५६८, ५८६
दीहड़उ=दिन ५११
दीहड़ा=दिन २ , १८३ ६११
दीहे=दिन में २११ २१५ २१६, २७९ २८ , ९८१
दीहे दीह=दिन दिन दिनभर
दुआळ=प्रकाश २
दुख लहणा=जिसमें दुख सहना पड़े २११
दुखणा=दुर्जन १९८, १९९, २१४
दुहुआँ=दोनों १७
दूख=दुःख १५८
दूखे=दुःख से ५५९
दूभर=दुर्लभ ४९
दूमणो=उन्मनस्क, उदास ११६
दूरा हुंता=दूर से २ ३
दूरिहा=दूरस्थित, दूर दूर रहनेवाले १
दूरियाँ=दूर से, दूरस्थित २१४

नाथिया=(न+आथिया) नहीं आए १४

नि=नहीं २७१

निकसी=निकली १२६

निकस्यउ=निकला १७१

निकस्यू=निकला १७१

निकहियाँ=निकले निकलने से १७२

निचंठ=निश्चित १८६, १४२ ६५

निचंती निचिंती=निश्चित १ ६ ६ ८

निचोइ=निचोड़कर निचोड़ते हुए १५६

निचोवया=निचोड़ने १५७

निडरि=डरि (से) ५१९

निबळ=निबल बलहीन ६६१

निडु=कठिनता से ५११

निपाइ=बनाकर १ ६

निर्मोखी=फड़कती हुई ५२

निरखि=बाहर ६६

निरम्मयाँ=पतीरहित विरही २८८

निरेत=चरने को जाऊँगा ११६

निल=नीला २१

निळज=निलज १७१, ५२

निलाट=ललाट ४६६ ४६९

निपाय=बनाकर प्रसन्न होकर १८८

निबौंघि=बनायए ४६

निव तू=नीची (उपजाऊ) भूमि वाला ६६८

निवारि=रोको बंद रखो २७

निवद=शब्द १७४

निसद=रात्रि ० में १ ८, १२६, १८८, १६९, ५ ४

निशाण=नगारे १४९ १५९

निशासउ=निःश्वास १४

निहसु=अत्यंत बहुत १६१ ५११

निहाळइ=ताकता है १५, १७। देखता है १६

नी=की

नीगमतांइ=जाते हुए १५४

नीयमियाइ=गई १५१

नीगुण=गुण-रहित ५ ६

नीझरणा=झरने २५६

नीझरतेरि=झरने (से) ४२१

नीठ=कठिनता से १५२ ६६२

नीद्र=निद्रा ५ ६

नीमाणी=बोलती हुई हुए हुई ४११

नीपजइ=उत्पन्न होता है, निपजता है २८१

नीरती=चरने को देती ४२९

नीरैं=चरने को दूँ २१६, ११ ४९८

नीलाणियाँ=हरी हुई (म ६५)

नीली=हरी ११९, ६५१

नीसे=नीलायमान हुए ४६१

नीझमियाँ=निखमाएँ ५

नीसरइ=निकलता है १८४

नीसरियाँइ=निकल पड़ी ४८१

नीसाँसाँ=निःश्वास १६६

नोहाळंती=देखती हुई २ ५

नैं=को ७ ९, १९ २४, २५ ८४, ८८, १ १ १ २ ११, ५११ ५६६ ६१४ ६११, ६१ , ६१५, ६४४, ६५२

नेड़ी=पास निकट ९८

पणिहारी=पनिहारी १६४
पति=पत विश्वास, प्रतीति ४११
पतीजूं=पतियाऊँ भरोसा करूँ १०२
पधारउ=पधारते हो पधारते हो १६१
पधारियाँ=पधारे हुए ५४८
पधारियाँ=सीधे ४८३ ४८४, ११७
पधारियउ=पधारा आया ४२७
पनरह=पंद्रह (१५) १४२ ४६४
पब=पर्व, पथा ४२१
पयट्ठ=प्रविष्ट हुआ, पैठा ५११ ५०१
परइ=परे उस पार ११, १८६, १६ १६१
परख=परीक्षा १०१
परखइ=समझता है ११५
परखियउ=समझाया १२१
परखणी=उचाला होने पर १८
परघा=प्रथा ४
परठणो=भेजो (म १५)
परठ्यउ=लिखा ५७८
परठिया=ने बनाए १६१
परणिया=विवाहित हुए १
परणी=विवाहित हुई ६ , १६७
परणयाँ=विवाहित हुए ब्याहे जाने (के) ६१
परतख=प्रत्यक्ष ५११
परदेसाँ=परदेशों (में से को) १०२ १८४ ५०१
परदेसी=प्रवासी १४
परदेस=परदेश ४१

परमो=परामर्श हुआ कह ७ (थ)
परहर=छोड़ १८
परहरियाइ=छोड़ दिया ४१७ ४१८
परहरे=छोड़कर ११५
पराया=पराए दूसरे के २५४
परायो=पराया दूसरा दूसरे का ५१८
परि=भाँति समान ७१, ७६ १७७, ४५१। पर, ऊपर ११५
परिघळ=अद्भुत, बहुत (?) २११
परिठ्यउ=बनाया बना १६६
परिठिउ=पहना ४६५
परियाविस्यों=विताएंगे ६११
परियाँख=प्रमाण अनुसार १४२
परिमाँख=प्रमाण तथा १७५
परिहरइ=छोड़ता है २६५
परि हाँ=पर हाँ निरर्थक अव्यय ५६५ ५६६
परीयबय=पौवन (?) ५७५
परेरट=पराया, दूसरों का २१६
पलटेहि पलटइ=बदलता है १८२
पलाँण=जीन (ऊँट का) ११६ १४१
पलाँणि, पलाँणि='जीन कसो, जीन कसो' का शब्द कसने की तैयारी १४४
पलाँणिया=जीन कस करके बनाए १११
पलाणियउ=जीन कस करके बनाया हुआ १ ८

पल्लाखियाँ=बीन करी, पलाए १४ । चलते हुए, चलते समय चलनेवाले १५

पल्लाणेह = प्रयाण करना १ ५

पल्लवइ = पल्लवित होता है ११८

पलइ = पलते हैं २ १

पलास=राक्षस हुए ११४

पलाइ=पलायन १ १

पवंग=प्लवग, घोड़ा १४

पवन=हवा २८५

पसरंति=प्रसरित होता- होता है २१४

पसरइ=प्रसरित होता है २१४

पसरियउ=प्रसरित हुआ व्यापा ११६

पसाउ=प्रसाद, 'पसाव' (एक प्रकार का दान) ४८६

पसारइ=फैलाता है ११६

पसारि=फैलाकर ४५

पसाव=प्रसाद दानविशेष ७४

पह=पौ १४६

पहरिस=पहना ४१४

पहलइ=पहले प्रथम १४७

पहियड़ा=पथिक ४७५

पहियाइ = हे पथिक ११ , २४१

पहिरइ=पहने, पहनता है ४७५

पहिरण=पहनने को ११२

पहिरवा=पहनने से ४६१

पहिरी=पहनी ११४ ४११

पहिरूँ=पहनूँ ११६

पहिरेसि=पहनूँगा २११

पहिलइ=पहले ५८१

पहिली=पहली १४६ । पहले, प्रथम ५४६, ४१७

पही=पथिक ११४, ११५

पहुत=पहुँचा ७६, १०६

पहुर=प्रहर ५४७

पाँखड़ियाँ=पाँखें पंख ७१

पाँखड़ी=पाँखें पंख १६६

पाँखाँ=पाँखें, पंख ११४

पाँखें = पंख पर ६६

पाँगुरियाँह=हरे हुए, अंकुरित हुए २४८

पाणि=पानी, जल ४२५

पाँणी=पानी, जल २४ , २४४, ११ ११४ १२१ ११५, ११७, ११४

पाँगरउ = पागलपन करो पागल बनो ८

पाँगरज्यउ=घोखा खाओ पागल बनो ४४६

पाँमियइ=पाइए पाई जाय ४८८

पाँमी=पाई १७१

पाँचड़ियाँह=पैंखुड़ियों ४७७

पाइ=पाँव पैर २४६, २५७

पाइयउ=पिलाया ४१५, ६११

पाकउ=पक गया १११

पाखर=कवच, बख्तर ४११

पाखर करइ = लगाता है ५८५

पाखरपउ = कवचयुक्त मनुष्य को खाया हुआ (?), सवार (?) ५१४ ५८१

पागड़इ=रिकाब पर, रिकाब से १ ४, ४११

पाछइ = पीछे १ ४ ४१७
पाछउ = पीछा, वापिस १६७, ४ ६ ४४४, ९ ५ ९ ६
पाछिले = पिछले पीछे की ओर के ५४ ५५
पाछी = पीछी, वापिस १२१, २७४
पाछे = पीछे १५४
पाज = तालाब की पार २६
पाठवइ = भेजता है, भिजवाता है ८१, ६१, १५८। भेजना १४३
पाठविसु = भेजेगी ६५
पाडा = मुहल्ले १५४
पाणी = पानी, जल ६१ १७१, २११, ३११ ४२१ ५२१, ५२४ ५५३, ६५६
पान = पत्ता तांबूल ५८६
पानहो = पगरखी जूती १७६
पामियउ = पाया ५११
पामेसि=पाऊँ,पाऊँगी, पावेगी ५११
पाम्या = पाए ४२७
पाय = पैर २२८
पाय = पाए ३८
पारउठ = कलेवा ४३
पारेवा = कबूतर १४३
पारेवाइ = कबूतर ४७४
पारोकियाँ = परकीयाएँ १५३
पालखी = पालकी ३५२
पालवियां=पल्लवित हुए ५११, ५६
पालम्या=पल्लवित हुए ५११ ५६
पाल=सरोवर की पार, पाज १६६, १८३ १६४ ५१६। पायल, पैरों का एक गहना ५४
पाळउ=पाला, सरदी ठंड २७६, २८ , २८३ २६१, २६६
पाळि=पाल, नियम १६७
पाखी=नैहर ५८३
पाखीवइ=चाहिए, पालना चाहिए ११८
पाळेइ = पालता है पालना २ २
पासइ = ओर पास में ७७, ११४ २६ , ६
पिंगळ = पिंगल, पूगल देश के राजा का नाम १ १ ४ ५, ११, ७६, ८ ८१, ८४ ८५ ६ , १ ६, १६६ १६७, ५२६ ५६५-५६७
पिअइ = पीता है ६२१
पीउ = प्रिय, प्रियतम पति १७, ४१, २५५ ६६ ५७५, ६११। पी (पीना' का आज्ञा) ४२६
पिउपिउ = पी पी पपीहे का शब्द २६१
पिछताइ = पछताता है १५६
पिया = पी ६२ , ६६८
पिय = पी करके ४१८
पियइ = पीता है ६११
पिया = पिए हुए ५१५
पिसुर्णों=पिशुनों दुष्टों १६८ (घ)
पीउ = प्रिय ६७
पीरउ = पीने साँप में ६१
पीव = पिया ५५४
पीपी = पी ली, पत ली ६ १

पीयणा = पीने पीनेवाले साँप, साँपों का प्रकार विशेष ६११
पीळी = पीली पीतवर्णा १५४, ४ १
पीवइ = पीता है १९ १११
पीवणउ = पीना साँप ६
पीवी = पी लो चाट लाइ ६१
पुंडरी = श्वेतवर्ण पुष्प २५१ १ २
पुकारियउ = पुकारा ११
पुणग = लौ (दीपक की) ५ १
पुणिंद = फणींद्र साँप ४५५
पुणो = पुनः, फिर ५७५
पुरिसे=पुरुष पर (पुरुष एक माप है) ११२
पुळइ = चलता है १७१
पुळि = चलकर १८५
पुळिया = चले ११५
पुह = पथ मार्ग १८५
पुह करइ = चलता है १८५
पुहकर = पुष्कर, तीर्थ विशेष ६, ४९५
पुहरा = पहरा, चौकी २११
पुहरि = प्रहर में ४२४
पुहवीय = पृथ्वी पर ११४
पुहुँचौं = पहुँचें १२४
पूगळ=एक देश और उसकी राजधानी का नाम २ १, ११ ८१, ६१ इत्यादि
पूगळइ=पूगल में ८२
पूगळि=पूगल में १
पूछंत=पूछता है ४८६
पूछण=पूछने का १६४
पूछी करी=पूछकर ११६
पूगउ=पूरी हो ४ ७ ४ ८
पूछियाँ=पूछने से ४७७
पूठ=पृष्ठ पीठ पीछे, पीठ पीछे, पीठ पर १११, ४१९
पूनिम = पूर्णिमा १९५, २२८, २४५, ६२२
पूर=धारापात, धारा प्रवाह १४७, २५६
पूरइ=पूर्ण करता है १९५
पूरउ=पूरा १९५
पूरि=भरकर, साथ ४९४। पूरा कर, तय कर ८९७
पूरी=भरी ६७१
पूरवउ=पहुँचा ४
पेट=उदर गर्भ ११५
पेम=प्रेम १ ४११ ५ ११४, ५१५
पैहलार=पहुँचा (आज्ञा) १२१, १२५-१२६ १२९
पैहच्यावइ=पहुँचा (आ) १२७, १२८, ११ १११
पैहच्यावउ=पहुँचा (आ) ११४
पोइणिए=पद्मिनियों ने, कमलिनियों ने— से २४५
पोयणी=पद्मिनी कमलिनी
पोहरे=प्रहर में १८९, १८१
प्रगटियउँ=प्रकट हुआ ६५८
प्रगट्यउ=प्रकट्य प्रकट हुआ २४१, १४४ ६२२

प्रगाढ़ठ=प्रमाद १८७
प्रयाँण = प्रस्थान १८४, १८५
प्रयोँग = यथा, सार्थक, वास्तविक ६७
प्रवाळी = प्रवाल मूँगा १७७
प्रह = पौ ६ २
प्रांण = प्राण जीव २११, ४ १ ६२७
प्राँणियउ = प्राणी जीव आत्मा १११
प्राहुणउ = पाहुना, अतिथि १११, ११४ २०१ २८१, ५८
प्रिउ = प्रिय प्यारा पति, प्रेमी १८, ११ ११ ६५ १६२ ५८८, ५६१ ६११ ६३८
प्रियाण = (प्रिय + प्राण), हे प्रिय प्राण २७
प्रियु = प्रिय, पति २१७
पिय = प्रिय प्यारा, पति ११७ ३६२ ४१५ ५५८, ५८२, ५९ ६ ४
प्री = प्रिय प्यारा, प्रेमी पति २६ १ , ६९ १२४ १५२ ६
प्रीउ = प्रिय प्यारा प्रेमी पति ११ ३५
प्रीतम = प्रियतम प्यारा प्रेमी, पति ७५ ११९, ११८ १४४ इत्यादि
प्रीतमा = हे प्रियतम २११
प्रीति = प्रेम ४११
प्रीय = प्रिय, प्रेमी पति ५ ४ ६७१
प्रेमइ = प्रेम से प्रेम में १५ २७५
प्रोहित = पुरोहित १ १, १ १ १ ४

फ

फई = फ्णी १९१

फर गयाफौट गया, फिर गया ५१
फरकइ = फड़कता है ५१६
फळाँ=फलों (के) १७२
फळियाँइ = फलने पर ११८। प्रफुल्लित हुए ५१८
फळियाइ = फल गए ५११, ५६
फाकउ = टिड्डियों के बच्चे ६६
फाग = फाग होली का खेल १ २
फागण = फाल्गुन १ २
फाटइ = फटता है १८
फाटही = फटेगा ३१
फाड़ताँ=चीरते हुए ४
फिरइ = फिरता है ५९९
फीकरिया=नीरस फीके ६६५
फुरंत=फड़कता है ५१७
फुर=फड़ककर ५१७
फुरइ=फड़कता है ५१७
फुरकइ=फड़कता है ५१७ ५१८
फुरपाराउ=फुरमैवाला ६११
फूटि = फूटकर फटकर १४३
फूटी=फूटकर, फटकर १९३। फटी ६ २
फूलड़ा = पुष्प ६१९
फूलाँ = पुष्पों ५८८ फूलों के १७९
फोग=मरुस्थल की एक पत्रविहीन झाड़ी ४९८
फोगे = फाग में ६६१

ब

बंकि=बाँके ४८२
बंम=पासी ६४७

बाँबि = बाँध को ५
बाँध्यउ = बँधा हुआ ११८
बाँवठि = बबूल का वृक्ष ५१४
बाँहडियाँ = भुजाएँ बाँहें ११७, ४८२
बाबरियाँ = बावरी के २६
बाबारउ = बाबाक, मीच ११४
बाट = मार्ग पथ १५१
बाड़ी = वाटिका बाग १११
बाढ़त = काटता है काटते, बाव लगाता है ११ ४१४
बाधइ = बढ़ता है १६१
बादळिवाँह = बदलियाँ २४८
बाबहियउ = पपीहा २६, २७ २४७ २५१
बाबहिया = पपीहे २८ ३६
बाबा = हे बाबा, हे पिता १८६ ६६५ ६२६ ६३८ ६३९, ६६४, ६६५
बाबीहउ = पपीहा २६१
बापड़ा = बेचारे २५८
बालम = बल्लभ, प्यारे १८६
बाळ = बालिका ११ । मुग्धा, बाला ६ १ ६ ४
बाळउँ = जला दूँ ६५६
बाळपणइ = बचपन में ६१, १६७
बाळा = बाला नायिका ५७७, ५८८
बाळापण = बालपन ४४१
बाळि = जला ५८६
बाळियउ = जलाया १६६
बाळूँ = जला दूँ १८५ ६५७ ६६४ ६६५
बावड़ी = बावली बापी १८३
बाहि = चला, प्रहार कर ४९२ ४९४
बाहिरी = बाहर बिना, अलग १७, १९ । बाहिर १६१ १९१
बाहुड़इ = लौटे लौट्या है, चले २ २९ ४१ ,५६६
बाहुडे = लौटे १५३
बाहे = बाहुओं में ४८१
बिकाइ = बिकते हैं १४१
बिचाहू = बीच में ही ८२
बिची = , ४
बिछोहउ = बियोग ५ ९
बिज्जुळियाँ = बिजलियाँ ५
बिणजारा = बनजारा १६३
बिधूँभिया = दो मुख वाले (ऊँट) ११८
बिन्हे = दोनों १४४
बिबीह = दो दो ४१९
बिलबिलइ = बिलाप करते हैं ६ ७
बियाउ = दूजा १६२
बिहूँ = दोनों ११८, ४६२
बिहु = दो ६६९
बिहूँ = दोनों
बीछ = विरह घना ३११
बीछड़ताँ = बिछुड़ते हुए ३८२
बीज = बिजली १६ १६२
बीजइ = दूसर ५६८, ५४६
बीजउ = दूसरा १४२
बीजळड़ी = बिजली ४८
बीजळ = बिजली १४९
बीजा = दूसरे १६६ ५१ , ६६१
बीजी = दूसरी ४४

मरखमा = सहनशील ५११
मरख = मरनेवाला ४०
मरम = भ्रमपूर्ण बात ४६७
मरिस्यौं = मरेंगे ४२२
मरेइ = मरता है ११७, ११७ ९६
मरेगी = मरेगा १११
मरयउ = मरा हुआ २
मल = मलैही १११
मलमायास = मलामानस ११४
मला = भले, भ्रमके २१७ २१८,१८२ १११
मली = ठीक १२७
मलेरउ = भला, भले (ऊँट) का (बाबा) ११२
मवाइसइ = मिलमिलाता है ४८
मवावा = चौंपा १११
मौंबइ = दूटे दूर हो ११८। मिटती है १११
मौंबिए = दूर करने, तोड़ने ११६
मौंवी = मायवी ७७
मागइ = भौंब दिया छिप कर दिया ४१९
मागउ = बीभ गया ४४१ मिट्या ६०१
माबइ = दूर होता है ६६
माबुनउ = मावना २६
माय = माइ, मल ११४। माइ मली १११
मारप्प = लबाइ ६११
मावई = बाडे १०५
मी = फिर १८२, १ २, ११५
मीगा = मीगता हूँ १०२
मीबइ = मीगता है ४१, १४४
मीयूँ = भीगती हूँ ४१
मीवि = मीत २१७
मीनी = भीगी हुई ११
मीमक = विकल २२९
मीमुर = दीप्तिमान् ४०१
मुँइ मुई = भूमि, फाउला ४८५ ४६१ ४९७ इ ।
मुवंग = मुवंग ५ ४ ६ ८
मुवगि = मुवंग (ने) २१६
मुवंगा = सप १७७
मुवा ग = मुवग ६ १
मूरा = मूर रंग का ४४८
मूलउ = मूला हुआ २२६
मेखिया = मेखा ६१६
मेरवी = मेरती हुई १६ २२१
मेरक = मेद बानमेवाला १ ४
मेखा = एकत्र ११० ६ ७
मेलिया = बाया किया ५६६
मोग = मोग १६१। मोग १२१
मोगवूँ = मागता हूँ १०
मोछे = भ्रम ४०८
भ्रांति = भ्रांति २११

म

मं = मत ६४८
मंगता = याचक १ १
मंगल = मंगल गीत ६२१
मँगाविवउ = मँगवाया ११९

मंझ = मध्य, में ५६,८६ ४१४,४२ ,
५७४, ६६८

मंझि=मध्य में ५६, ८६, ४१४, ४२ ,
५७४, ६६८

मंझि = मध्य में ५७, ५६८

मंडळे = मंडल में राज्य में ४११

मंडप = मंडप नृत्य २६१

मंडियउ = बना १८८

मंत्रे मंत्रित करके ६२१

मंद = मद्य, मदिरा ९१४

मंस = मांस, मांसल ४६१

म = मत नहीं, न ४० ४८ १५६,
१७५, २६६, २७८, १ ५ ४१४
४४ ४५६ ४६७ ४८१, ४६२
४६४ ५६१ ६१६, ६४० ६४२
६५८, ६५६

मईं = मैंने १९ १ , ११९४ ३६१
५४५,५१ । मैं ११। मुझको २६१।
मैं १६ ७८, ११५ २१७, ५४४,
५५६, ५६६ ६१६ ६२ ६१

मईंगल = मदकल, हाथी ५५४

मइ = मैं ५४८

मउर = मोर, मंजरी २७१

मउरियउ = मुकुलित या मंजरीयुक्त
हुआ १२

मउसर = मधु शहद ४७

मगरि = पीठ पर ६१

मग्गा = मार्ग २ ५, १८४

मजीठाँ = मजीठी मंजिष्ठा ५६६

मझे = मध्य में ५७७

मण = मन चालीस सेर ४ ५

मतवाला = मद्यप शराबी ४१८

मति = बुद्धि, विचार १८७, ५५१।
मत, नहीं ११, ५ २ ५ २। नहीं
म ३१

मत्थइ = ऊपर १९० ३९१, ६११

मथुरइ = पीये ५

मनइ = मन से

मनगमता = मनोवांछित मनको अच्छा
लगनेवाला ४२७

मनगरबी = बड़े मनवाली ५५२

मनह = मनसे ११८। मन के २११।
मनमें ९१७ ३१२ ६२४ ६५७

मनाँ = मनों को मन में ६८। मनोंसे,
मन से ११८

मनावण = मनाने के लिए ३९९

मनि = मन में ६ ६७ १७१ २ १,
९ ८, ३११, ३१२, ५४०, ५५१,
६२२

मनुहारि = मनोहर ४८१

मनुहारि=प्रणाम करके ६१९

मनै=मुझे ५११

मम=मम ८२ ४१६, ४४१, ५७२

मयंद=मृगेंद्र, सिंह ५५५

मयण=मदन काम १

मयमंद=मदमत्त ५६६

मरंत=मरता है ६१८

मरजीवउ=धनजुआ ३११

मरघि = हिरन हिरनी ४६

मरासिउँ=मरूँगी ५१४

मरि जाइ=मर जाये, मर जायगा ३२१

मरिस्यउँ=मरूँगी १४१

मरेस = मरूँगा १५१

मरेसि=मरेगा १५६

मरेठी=मरेगा १४६, १६

मरेहि=मरता है १८४

मलहर्पत=जाता है चलता है ६७

मलहर्पति=चलती है ५११

मलहपइ=चलता है ४६१

मलहाया=गाया १६५

मलहार=मलार राग १८८

मलेहि=मलता है १७८, १७९

मल=मली स्याही १४

मसकत=महकता हुआ उड़ता है ४७६

मशाण=श्मशान १५२

मसि=मसी स्याही, कोयला, १४१ १८ ५७२

महकाइ=महकता है ६

महकी=सुगंधित हो उठी ४६८

महक=महक ४ ६

महक्रियों=महके १६

महमहइ=महकता है ६ (प)

महल=महिला स्त्री ४४

महलों=महलों

महापद=प्रलयकालीन मेघ १५

महावनि=गुरुजन (में) १५६

महारत=नया है

महिरोंद=समुद्र २११

महिलों=महिलाओं ४६१

मही=मैं ८८

मँ=मैं ४१६ ६७१

मोंह=मैं ईठर ४११

मोंगणु=मोंगनेवाले, याचक १८६

मोंगणहारा=याचक १ ९

मोंगणहार=याचक जाति विशेष१ ९ १ ४, १८६ १६४

मोंगणहारों=याचकों (को) १ ६, ११

मोंगणों=याचकों (को) ६१

मोंगठोर=स्थान विशेष ३११

मोंगीतोंगी=मोंगी हुई ७

मोंजिवाड=मज्जन, स्नान ५१५

मोंझ=मध्य, में २७२ ४११

मोंझिम=मध्य ५७, २७८, ५ ५, ५२५

मोंडि=बनाकर, रचाकर १२६

मोंद नं=उपभाग करो न ४४७

मोंनसर=मानस सरोवर ६७१ (क)

मोंनसरहि=मानस सरोवर में ५५२

मा=मत ८

माइ=समाता है ९६ २६६ ५ ६, ५१६

माइ=हे माँ २६१

मागरवाल=याचक १८४

मागि=माग २६

माठ=मठ हुए १११, ४११

माठि=मठ हुए १४

माणस=मनुष्य ६५ २२ २८१

माणसों=मनुष्यों १८१ ४ ७, ५४५ ६५५

मात=माता ३१४

मेठिया = मिलावा ५६६
मेली=लगी, बंद की ५१
मोइ=मुझे ११४, ४१७, ५ ८। मेरा ५१२
मोकळउ=मैंने १४४
मोकल्या=मूर बहुत १६५
मोकळि=भेज १ ३
मोकळे=भेजना (भाजा) १४१
मोकळी=खुली १७५
मोकी=खुलियाँ ? १६९
मोडेर=मोड़ता है ५५५
मोडो=देर से ४४१
मोतियाँ=मोती ४७५
मोतीहरि=मुक्ताफल, मोती, मुक्तासरि २१
मोरों=मोर २६१
मोलह=मील पर १४१
मोहया=मोहन मुग्धकर ५५४, १ १
मोहि=मुझे १७१ । सर्व ६१५
म्हाँ=हमने ६ ११५। हमको २७६, २७८
म्हाँकउ=हमारा २४१ १४८, ४ ५
म्हाँका=हमारे ११२
म्हाँकी=हमारी ६१४
म्हाँनी=हमारी ४१८
म्हाँनूँ=हमें ६६१
म्हाँने = हमें ५६१
म्हाँरी=हमारी ५२६
म्हाकउ = हमारा ३२६
म्हेन=हमें ५६१, ५६१
म्हे=हम ६१, ६५, १ ८, १४१ २७८, ३ ६, ४ ६, ६१८

य

य = पादपूरक अव्यय
यतय=वध, चेष्टा ११५
यहु=यह १८१
याइ=आकर ५१
यूँ=यों ऐसे १११, ११५, ११६, ११८ ११९ ४२
यूँहो=योंही १३
ये=था १
यो=यह ४१

र

रंग रँग=प्रेम क्रीड़ा ८४ ५६५, ५७१, ६५१। रंग रंग ६१२। लाली ४७१। रंगवाली ४६५। सुरंग (विशेषण) ३६६
रंगइ=रंग में आनंद में ५६१
रंगि=प्रेम में प्रेममग्न ६ । रंगवाली ८७
रंजन=प्रसन्न करनेवाला प्रसन्नता १११ ४६७
रह=के १२७, १९ , ११९, ६११
रहदि=रात्रि ५७८
रहबारी=ऊँटों का रखवाला, एक जाति जिसका काम ऊँट चराना होता है १ ६, १०८ १११
रठ=का ४२४ ४५
रमा=रम ११४
रसियठ=रखा ४१७
रमदों=रंग रखनेवाले ५६१

रच्यउ=रचा सजाया ११५
रही=रोई १७५
रयोरि=रोती है १७८
रव=शाल १४ राग्रि ५७ मठ १ १
रवन=रत्न ५६६ ६१८। मेत्र ११६
रवउ=लाल ५७२
रवहा= ४५६
रवा= , रक्तवर्ण ४७४ ५७४
रमंतौं=रमण करते हुए ५११
रमवारी=ऊँटों का रखवाला ११
रळि मिळ्यउ=हिल मिल जाओ ११८
रळी=आनंद मौज १५१ ५५६
रवंद=तेज चारों का २८४
रवबेलि=रव की लता ११
रहंत=रहती ४१५
रहंति=रहती ७१
रहइ=रहता है ० १०१ २५४।
 रुकता है २७५
रहउँ=रहूँ २११
रहउ=रहो रहते हो रहूँ २१५,
 २५४
रहतउ=रहता ६५
रहाँ=हम रुक जाती हैं ६१
रहाइ=रहे, रहा जाय २७६
रहि=रह ४११
रहियउ=रहा ६५ २४१ ११६
 ५६४। रुक गया रह गया २७५
रहिया=रहे रह गए, रुक गए थक
 गए हार गए २७१ ११६, १७४
रहियाइ=रहे १११ २४१
रहिसि=रहता है २७१
रहु रहु=रहो रहो बस बस १२१
राँस=रह जा १२७
राँहि=रहूँ रह जाऊँ ११६
राँह=रह जा ११७
राउ=रहा २७४ १७१
राणौं=रहने से २५२
राण=रहे ११५
राँणाँ=रानों से ४६२
राँणी=रानी ४ ६ ७, ६, ७७ ७८,
 १ , १ २, ५२७
रा=का, के ४२ १ १, ११६, ४४२,
 ५८५
राइ=राजा ८
राउ= ,, ४
राऊ= ,, १
राखइ=रखता है ५५७। रखे, रोके
 १४८
राखउ=रखाओ ११२
राखणा=रखना रोकना ८ , ११७
राखती=रखती ४१६
राखिजइ=रखी जानी चाहिए १८७,
 ४५१। रोक लीजिए १ १
राखियउ=रखा, रोका १ ४, १११
राखिया=रोके हुए २१५
राखी=रखी ११
राखीयउ=रखा १११
राखे=रखता है ११
रागाँ=मोह, रागों में १२७
राज=आप ८, ११८, १४४। राज्य
 १७६
राजकुमारि=राजद्वार में १४५

सुर्गोंफ=चतुर १४२, १५३, १८४, १६१, ५६५, ५६६, ५६६, ६७२
सुणउ=सुनो ६७
सुणावे=सुनावे १६८
सुणि=सुन ११ २१८, ११४, १४१, १६७, ४११, ४४८, ४६ ६१६, ६४७ ६४६, ६७
सुणियउ=सुना १६२
सुणिवा=सुनने को ६६
सुणी=सुनी ५८ २५६, २१७
सुतोषि=सुर्नोंगी १४५
सुथोली=सुनोगी ५४४
सुपेद=सुनकर ४४४ ६५
सुपुर=सुपूर ! १८५
सुधू=सुकन्या ८४
सुरवा=सुने २५
सुपयस=पतली ४७१
सुपनंतर=स्वप्न में ५११ ५५७
सुपनंतरि=स्वप्न १७
सुपनई=स्वप्न में १४
सुपनइ=स्वप्न में ५ २ ५ १
सुपनउ=स्वप्न ५ १ ५५८
सुपना=स्वप्न
सुपनै=स्वप्न में ५५८
सुभराव=शुभराव आशीर्वचन ४४० ६४१
सुभाइ=स्वभाव ४५१
सुमर=याद करके १५६
सुया=सुग्गा १६६
सुरंग=सुंदर, सुहावना सुरंगा रसिक १११ १५६ ६५४, ६६१
सुरंगइ=सुरंगे २५२
सुरंगउ=सुरंगा ६६६
सुरंगा=सुरंगे, हरे भरे ५४६
सुरंगी=रंगीली ५१६
सुर=स्वर १८८
सुरत=याद स्मृति ११५
सुरपति=इंद्र ६१
सुरह=सुरभि, सुगंधित द्रव्य ५ ५, ५ ७
सुरहउ=सुरभि, सुगंध १६
सुरहि=सुरभित २२१
सुवइ=सोता है ६ ८
सुवेत=सुश्वेत उज्ज्वल ४५७, ६६६
सुहंगा=सस्ते २६६
सुहांमणउ=सुहावना ११ , २४५ २५१, १ २ ४१२
सुहांमणा=सुहावने ६५४
सुहावउ=सुहावना ४८५
सुहावा=सुहावने २६८ ५१५
सुहावो=सुहावना ५८४
सुहिणइ=स्वप्न की ५१५
सुहिणउ=स्वप्न २४, ५ १
सुहिणा=स्वप्न ५१२ ५१४
सूं=से १, ५७ ७७, ६२ ११७, १५६, १७१, २१८ २४८, १४२, ३१२ ५ १, ५४० ५१४, ६१०, ६२ , ६१६, ६११। साथ, से ६१८
सूंनउ=सूना १५४
सूंमर=ऊमर सूमरा ५६७

सत्थो ५११, ५१

सुकइ=सूखता है ११८

सुक्या=सूखने १७४

सुख=सुख ५११, ५१०

सुक्किया=सूखी २४८

सुकी=सूखी ११५

सुयउ=सुग्गा ४ २

सुया=हे सुग्गे १९७, ४ ५

सुधी=सीधी सादी १ १ (क)

सुतों=सोते हुए १ ५, १ १

सुती=सोई, सोती, सोई भी सोती हुई १४ ४७, ४८, ५४, ५५, १४१ १४२ १७८, ५ ४ ५ ५, ५ ७ ५१२ ६ १, ६१

सुधा=सीधे सादे, सरल ६४, ६५८

सुना=सूने शून्य ११८

सुनी=खाली ५

सुर=सूर्य ४९१, ५५१, ६४१

सुरिज=सूर्य ११ १ १

सुयउ=सुग्गा ४ ९

सुया=हे सुग्गा ११८, ४ १

सुरी=सूली १११

से=वह ९७ १११, २ , १८

सेवतों=सेवते हुए १२१

सेवइ=सेवता है २ १

सेवाँ=सेवा में ४७, ४८

सेवती=सेज शय्या १११

सेरियों=गलियों (में) १ ९

सेवार=पोड़ों की जाति २२१

सेवंत=सेता, पाता ४१४

सेवार=सेवाल ११४

सेविवइ=सेवन करना चाहिए १९४

सेहर=शिखर ११८

सैं=हम ४१८

से=मैंने से ४१९

सैण=मित्र ४१८

सो=वह ११४, १ ८, १ ९, १११, ४२९, ४७२। सा (परिमाण सूचक)। सौ ५९७

सोइ=वह वही उसे उसी, २१, २११, २७ , ४२९, ४६४, ५१ , ५१२ ५४१

सोऊँ=सोती हूँ ७१, ५११, ५१४

सोग=शोक, दुःख १२७, ६६५

सोमै=सोना ५१९

सोरम्भिपउ=सुरभित ५५

सोम=सोमद संख्या १९४

सोवनमू=सोने का ५९४

सोवन=सुनहला, सोनेके, सोना ८७, २ ९, १४१। सुहावने ४७१

सोवंम=सुवर्ण सुवर्णमय आभूषण ४६४ ४७५

सोवन=सुवर्ण ४६१

सोहइ=सुभग ५९७, ५९९ ६ ७

सोहणा=स्वप्न ५१

सोहणा=सपना ५११

सोहणो=सपना ५ ९

सोहली=एक आभूषण विशेष ४६५

सोहागण=सौभाग्यवती ५१

सोहागिया=सौभाग्यवती, पतिसंयुक्ता २९ , २९१ ६७२

सोहामणइ=सुहावनी २११८

स्यउँ=से १११
स्वात=स्वाति नक्षत्र (का जल) ११५,
 ११२
स्वाति=स्वाति नक्षत्र (का जल) १११
स्वास=श्वास ५१

ह

हंस=हंस ४९ , ४७४
हंडिज्जइ=घूमा जाता है, घूमना
 चाहिए २१४
हंदा=के ११
हंदा=के ५ ९
हंसइ=हँसता है ५४१
हंसड़ा=हंस ५५२
हँसतौं=हँसते हुए ५४७
हंसागमणि=हंस की सी गतिवाली
 १ ७
हँसड=हँसा १९४
ह=पादपूरक अव्यय ११८
हइ=है, अरे ४७, ४८, १७१।
 है ७१। होकर २९७
हउँ = होऊँ ११९
हउ हउ=अरे अरे १२१
हड्डन पड्डन=हार बाजार ४१८
 (च च च)
हथाहथिया=हिनहिनाए १ २
हथ=हाथ ५ ९
हथड़ा=हाथ ४११
हथियार=शस्त्रास्त्र १४९
हथ्थ=हाथ १११ ४११
हथ्थड़ा=हाथ १५, ११ २ १ ११११
 ११७
हमपी=हमसे २१७
हम हम=हे हे १ ७
हर=महादेव शिवजी ४७७, ११९।
 प्रेम, हर्ष आनंद ११८, ११९,
 हरियाली ११५
हरख्यउ=हर्षित हुआ ५२७, ११२
हरखियउ=हर्षित हुआ १७१
हरखिया=हर्षित हुए ५२७ ११५
हरखी=हर्षित हुई ५२७
हरण=हरनेवाला ११२
हरणाखियाँ=मृगाक्षियाँ २२२
हरणाखी=हरिणाक्षी मृगनयनी २२८,
 २९९
हरहार = शिव का हार सर्प ५७८
हरिया=हरे २५१
हरियाळियाँ=हरी हो गईं १५
हरियाळी=हरियाली की २१
हलबल=हलचल १४१
हलउँ हलउँ=चलता हूँ १ ५
हलाण=चलना चलने की बात ११७
हलसयउ=चलोगे १ ५
हलाणउ=चलना, प्रस्थान १ ४
हलिवा=चलने १ ४
हल्लउ=अम्मता, हलचली १२१
हळिमइ=धीर १९९
हवौं=हो १५
हवाल=हाल ५१
हसइ = हँसते हो २१८
हसनइ = हँसकर १११
हसि=हँसकर ११८, ५७ , ५७४,
हसि करि=हँसकर २७८, ५७१

प्रतीकानुक्रमणिका

प्रतीकानुक्रमणिका

प्रतीकानुक्रमणिका

फ

ब